

हिन्दी तथा उर्दू कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

(२० वीं शती में)

(अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

प्रबन्ध-सार

निर्देशक

डा० हरबंशलाल शर्मा

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता

रमेशचन्द्र शर्मा

एम० ए०, साहित्यरत्न

T 1011

कथा- साहित्य से हमारा तात्पर्य उपन्यास और कहानी दोनों से है। हिन्दी- साहित्य ने जिस गण की अनेक विधाओं के समान हिन्दी उपन्यास भी आधुनिक युग की देन है। कथा- साहित्य ने जिस तीव्रता के साथ प्रगति की है वह वास्तव में आश्चर्य का विषय है। हिन्दी - उर्दू का वर्तमान कथा- साहित्य बड़ी तीव्रता से आगे बढ़ रहा है। जीवन के घात- प्रतिघात की प्रतिक्रिया जितनी तीव्रता से कथा-साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है, उतनी तीव्रता से साहित्य के किसी अन्य अंग से नहीं। कविता में प्रयोगवाद ने अपना विशेष प्रभाव नहीं डाला परन्तु घटनाओं की मनोःक क्रियाओं ने कथा- साहित्य में एक विकास अवस्था प्राप्त की है। आज का कथा- साहित्य एक ऐसी अवस्था तक पहुँच गया है, जहाँ कि व्यक्ति और उसकी समस्या का अथक् संघर्ष है। कथा- साहित्य सबसे अधिक लोकप्रिय होता है। उसमें सभी आकाश वृद्ध रुचि लेते हैं। इसी से इसका क्षेत्र व्यापक है। भारतवर्ष प्राचीन काल से कथात्मक साहित्य के निर्माण में अग्रगण्य रहा है। हमारी जातक कथाएँ वृहत्कथा, पंचतंत्र, द्दितोपदेश आदि ने विश्व स्थापति प्राप्त की है। फारसी की 'अनवार सहेली' पंच तंत्र का ही अनुवाद है। यूनानियों की 'ईसा कथा' भी हमारे यहाँ से प्रभावित है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी कथा- साहित्य से सभी किसी न किसी रूप से प्रभावित हैं। उर्दू कथा- साहित्य का तो कहना ही क्या, इनका तो निकट का सम्बन्ध है।

प्रस्तुत प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता इस कारण से हुई कि हिन्दी और उर्दू कथा- साहित्य का अध्ययन तो पुष्क पुष्क इन दोनों भाषाओं के विद्वानों ने किया ही है और उन पर अनेक ग्रन्थ भी प्रकाशित किए जा चुके हैं पर दोनों भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर अभी तक किसी विद्वान ने प्रकाश नहीं डाला है। कभी छुट- फुट प्रयत्न पत्र पत्रिकाओं में साहि-

नियम लेखों के रूप में भी हुए भी हैं, जिनमें हिन्दी तथा उर्दू के दो विभिन्न उपन्यासकारों द्वारा किसी विशिष्ट काल की रचनाओं की तुलना की गई है परन्तु हिन्दी तथा उर्दू कथा-साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न कहाँ भी नहीं हुआ। हिन्दी तथा उर्दू कथा-साहित्य पर कभी कभी परिचयात्मक लेख तो निकलते रहे हैं परन्तु उनमें तुलनात्मक शैली नहीं अपनाई गई है केवल इतिहास की दृष्टिगतता शैली का ही वाक्ययोजना गया है।

हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाएँ लड़ी बोली से विकसित हुई हैं क्योंकि दोनों का मूल एक ही है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कोई तार्त्विक भेद नहीं है। बीसवीं शताब्दी में दोनों भाषाओं में विपुल साहित्य की सर्जना हुई है- जब और पय दोनों में। उर्दू पय की लफ्फो एक परम्परा रही है जो फारसी से अधिक प्रभावित है। अतएव शैली की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी की उर्दू पय में हिन्दी पय की से अपेक्षा चाहे जितना बेभिन्न हो, विषय वस्तु की दृष्टि से यह भेद न्यूनतर होता गया है। कथा-साहित्य में तो वास्तविकता समानता मिलती है। प्रस्तुत निबंध में उर्दू और हिन्दी में बीसवीं शताब्दी के उर्दू हिन्दी के कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन किया है।

प्रस्तुत प्रबंध में हिन्दी तथा उर्दू कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन का यह मन्तव्य कदापि नहीं कि वे पूरीतर पर बिना किसी मुकताचीनी या और वैषम्य के एकता हैं बल्कि उन्हें छोटा बड़ा या एक दूसरे से हीन या श्रेष्ठ सिद्ध करने का हमारा उद्देश्य है। ऐतिहासिक शैली बल्कि आधुनिक शैली तक ही किसी भाषा के कथा-साहित्य की सीमा को अपेक्षा समान प्रवृत्ति वाले की विवेचन कलाकारों की गम्भीर विचार मय द्वारा समझने का प्रयत्न करते हुए उन ग्रन्थों एवं लेखों की रचना शैली, विस्तार

प्रक्रिया, कल्पना की पौंठ विषयानुसार सही सही मूल्यांकन करने की सामता, उनकी सहायुक्ति दृष्टि और ईमानदारी साथ ही उनके साहित्य की केन्द्रीय प्रेरक शक्तियाँ एवं गत्यात्मक धाराओं से सापेक्षता का सम्बन्ध स्थापित करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। यहाँ दोनों कथा-साहित्यों की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप, सामान्य परम्पराएँ, भिन्न-परम्पराओं के कारण परिस्थितियाँ तथा विदेशी प्रभाव आदि का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से किया गया है। प्रस्तुत प्रबंध से प्रसंगतः तुलना सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला है।

प्रत्येक देश के उन्नत साहित्य में तुलनात्मक समीक्षा प्रणाली का विशेष महत्व रहा है वरन् यह कहना चाहिए कि इस प्रकार की साहित्यिक प्रतिबन्धता और स्पर्धा ने कितने ही मूलभूत स्थिररूप साहित्य-रूपों एवं रचना तत्वों को एक बद्ध किया है। आज हम विदेशी साहित्य से ऐसे बाढ़ान्त हो गये हैं कि उनकी रचनाओं के समकक्ष हमें अपने यहाँ की चीज़ें, नाटक, कहानी, उपन्यास - सभी कुछ बेगाना सा लगता है। पश्चात्य जालोचकों ने अपने यहाँ के कथाकारों को इतना सम्मान प्रदान किया है कि जालोचना तथा प्रत्यालोचना द्वारा उन्हें इतने उच्च धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है कि आज वहाँ के जदना से जदना कथाकार की ख्याति हमें चका-चौंध किये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पश्चात्य साहित्य आज हमें इतना समुन्नत जेतता है कि हमें वहाँ के कथा साहित्यकारों की तुलना में अपने यहाँ के कथा साहित्यकारों को रखने में मयमोल होते हैं। इसी होन भावना ने हमारी मनः शक्ति को इतना क्षीण और शिथिल बना दिया है कि हम अपने मौलिक बात नहीं सोच सकते वरन् विदेशियों की लीधी नकल करने में शान समझते हैं, यानी वे जो कुछ भी कहें वही पत्थर की लकीर हैं, वाकी सब बकवास है। अतः हमने इस शोध ग्रन्थ में निष्पक्ष भाव से हिन्दी उर्दू कथात्मक साहित्य को

समता तथा विषमता को लेकर विस्तृत विवेचन किया है ।

बीसवीं सदी के दो दशकों में यों तो हिन्दी-

उर्दू साहित्य के सभी धर्मों का संतोषजनक विकास हुआ है किन्तु कथा साहित्य का विकास अपना विशेष महत्त्व रखता है । इसका क्षेत्र इतना विस्तृत है तथा शिल्प विधियों का प्रयोग इतने ढंगों में किया गया है कि इसका समीक्षात्मक मूल्यांकन अपरिहार्य हो गया है । आज की हिन्दी उर्दू कहानियाँ इतनी विकसित हो चली हैं कि उनकी विषय, कला, विधान तथा प्रतिपादन शैली के विचार से अन्य भारतीय एवं अन्तराष्ट्रीय कहानियों के सम्पर्क में रखा जा सकता है । हिन्दी तथा उर्दू की आरम्भिक कहानियों की रचना बंगला तथा अंग्रेजी कहानियों के अनुकरण पर की गई । उनमें कल्पना तथा क्लृप्तता की प्रधानता थी तथा उनमें कथा-साहित्य के तात्त्विक विकास का अभाव था । अब उनमें कला तथा साहित्य का इतना विकास हो गया है कि उनकी गति विधि का यथार्थ मूल्यांकन तथा विवेचन अनिवार्य हो गया है ।

यों तो हिन्दी- उर्दू के कथा-साहित्य के विकास और इतिहास पर समय समय पर यथेष्ट प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है परन्तु तुलनात्मक अध्ययन पर अभी किसी ने प्रकाश नहीं डाला है । हिन्दी तथा उर्दू कथात्मक साहित्य का हमने जिस गहन अध्ययन और गम्भीर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है उसे हम इन दोनों कथा साहित्य की समीक्षा का प्रकाश स्तम्भ कह सकते हैं । इसमें विश्व कथा-साहित्य की फाँसी मिलती है । जहाँ एक ओर हिन्दी कथा-साहित्य में विदेशी कथाकारों पर विश्लेषण करते हुए हिन्दी कथा-साहित्य के प्राचीन अर्वाचीन उत्कृष्ट कथाकारों को पृष्ठियों पर अध्ययनपूर्ण समीक्षा प्रस्तुत की गई है । जहाँ प्रेमचंद, प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा, जैन्द्र, यशपाल, फादरी, भगवतीचरण वर्मा, रमिय राय, राहुल सांकृत्यायन, जीशो, नागर, देवीदयाल चतुर्वेदो और वंचल आदि की

कथा कृतियों पर गम्भीर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है वहाँ उर्दू कथा-साहित्य में न्याय फतेहपुरी, सुलतान हैदर जोश, जाज़म कुरैबी, रशीदजहाँ, मन्टौ, असमत जुगताई, कुशन चंदर, तश्क, खाना बहमद खन्वास, महेन्द्रनाथ, पलवी सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी, पन्तवार हुसैन, गुलाम खन्वास, हकमतउल्लाह क्लारी, शौकत धानवी आदि की कृतियों पर भी प्रकाश डालकर यह निष्कर्ष निकाला गया कि उर्दू कथा-साहित्य और हिन्दी कथा-साहित्य में समानता कई बातों में मिलती है। प्रारम्भ में दोनों कथा-साहित्यों में तिलस्मो जादूखो ऐसी ही उपन्यास मिल-बहलाव एवं मनोरंजन की दृष्टि से ही लिखे गये। उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से कम और कल्पनामय जीवन से अधिक था। उनमें तिलस्म जादू तथा कुतूहल का विशेष योग था। विकास-काल में ये विषय व्यापक तथा समाज सापेक्ष हो गये। अतः इस समय के कथा-साहित्य में भारतीय समाज की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि चित्र कृतियों का प्रतिबिम्ब परलक्षित होता है। कला-विधान की दृष्टि से इस समय चरित्र की प्रधानता रही है। जब कथा-साहित्य में कथानक निर्माण चरित्र और वातावरण अधिक कलात्मक तथा सफल होता है।

आज पाठ्यों की भिन चारित्रिक विशेषताओं को बालीबना कथना व्याख्या की जाती है उनके आधार में भारतीय एक दार्शनिकता मनोविज्ञान, समाजवाद, साम्यवाद, प्रान्तिवाद तथा यौनवाद आदि की विचार परम्परा रहती है। जब संवाद नाटकीय रूप और बौद्धिक अधिक हो गये हैं। पुराने कथाकारों पर गांधीवादो आध्यात्मिकता का व्यापक प्रभाव मिलता है जबकि नवीन कथाकार प्रायः के यौनवाद आदि की नवीन विचार धाराओं से प्रभावित हैं।

मुस्लिमी देशों का भारत के साथ सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पुराना रहा है। भारत में मुस्लिम साहित्य का

प्रभाव मरुभूद गजपती के समय से स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है ।
 फारस के तुर्की साहित्य पर भारतीय कृतवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है ।
 भारतवर्ष की कहानियों के अनुवाद फारसी, अरबी, तुर्की आदि बनेक भाषाओं
 में हुए हैं । दोनों भाषाओं में एक दूसरे के गुणों की ग्रहण करने की प्रवृत्ति
 का मिलना स्वाभाविक है । भारत में ईरानी भाषा का प्राचीनतम लेख
 बल्लुखी माना जाता है । यह फारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं का
 विज्ञान था । ग्याहवी शताब्दी के आरम्भ में बल्लुखी ने महाभारत का अनु-
 वाद फारसी में दिखा । बदाउनी ने महाभारत की फारसी अनुवाद "रज्ज-
 नामा" के नाम से किया । अब्दुल फजल ने संस्कृत कथा के आधार पर "अया
 दारैश" की रचना की । तात्पर्य यह है कि मुगलकालीन बनेक अनुवाद कर्ताओं
 का उल्लेख इतिहासकारों ने किया है । हिन्दी और उर्दू के साहित्य स्वतन्त्र
 रूप से विकसित हो रहे थे किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय साहित्य का
 प्रभाव फारसी पर अधिक पड़ा । इब्न निशातो ने संस्कृत "शुक्र स्मृतिलि" के
 आधार पर "सूतनामा" और "फूलवान" की रचना की । हुसैनी ने वाबू के
 हिन्दी के नाम से संस्कृत "हितोपदेश" का अनुवाद किया । मोर वनन ने
 "वागी बहार" की रचना की तथा हाफिजुद्दीन ने "अया दारैश" का
 उर्दू अनुवाद किया ।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी
 उर्दू के कथात्मक साहित्य का अध्ययन तो इन दोनों भाषाओं के विद्वानों ने
 पृथक् पृथक् किया है दोनों कथात्मक साहित्य की तुलना नहीं की । इन दोनों
 कथा-साहित्यों में कौन सी सामान्य परम्परा है, किस कथा-साहित्य में
 पहले जाई और क्यों ? भिन्न परम्पराओं के क्या कारण हैं ? क्या परि-
 स्थितियाँ हैं ? किस कथा-साहित्य में इन परम्पराओं का प्रादुर्भाव पहले हुआ ?
 इन सबका तुलनात्मक अध्ययन इसी कारण से किया गया । निःसंदेह हिन्दी
 उर्दू कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करना दुस्तर कार्य है क्योंकि बीसवीं

ऐतावदी में इस क्षेत्र में अधिक उत्थान पतन होते गये हैं। जैसे जैसे मैं इस व्ययम में प्रवेश करता गया बहुत से नवीन तन्त्र्य मेरी दृष्टि के सामने आते गये। जतः मैं अपनी भूमि से इसका तुलात्मक व्ययम किया है। हिन्दो उर्ध्व कथात्मक साहित्य में जो आश्चर्यजनक समानताएं मिलती हैं वह किसी से शिपी नहीं है। जहाँ हिन्दो कथा-साहित्य उच्च स्तरीय शानों के लिए उपादेय है वहाँ दोनों कथा-साहित्य का तुलनात्मक व्ययम जिज्ञासु और व्ययमशील पाठक के लिए मूल्यवान धरोहर है।

साहित्य के दो प्रधान भेद गद्य और पद्य हैं। कथा, वात्स्यायिका, उपन्यास प्रथम भेद के अन्तर्गत आते हैं। उपन्यास और कहानो साहित्य वास्तव में कथा-साहित्य के नाम से विख्यात हैं। उपन्यास से तात्पर्य उस प्रकार की गद्य रचना से है जो मानव जीवन के सुख दुःख को व्यवस्था, नर नारी के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उसकी गति और परिणाम को उचित रूपेण विस्तृत करती हुई आगे बढ़ती है। मानव-जीवन को पूर्णरूपेण पटना? जब किसी कल्पित कथानक के सहारे प्रकाशित होती है तो हम उसे उपन्यास के नाम से पुकारने लगते हैं। उपन्यास की सफलता इसी में है कि उसका वात्स्यायन-वाधार नाना प्रकार का होते हुए भी एक ही। पटनाओं की शृंखला आपत्ति-कारक न हो। नर-नारी की कहानी और उनका पारस्परिक सम्बन्ध वर्णन उचित रास और स्वाभाविक हो। इसके अतिरिक्त भावों का वैचित्र्य, चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता और निपुणता पटनावली का सुसंगठन भाषा का अनुठापन और वर्णन की चित्राकर्षक शैली का होना आवश्यक है।

जैसा हमने अभी कहा कि "उपन्यास" तथा "कहानी" कथात्मक गद्य-साहित्य के नवीन रूप हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में उनके स्थानों में कथा तथा वात्स्यायिका शब्दों का प्रयोग मिलता है। कहानी किसी एक पात्र के जीवन की कोई विशेष पटनामात्र है। किन्तु वह पटना केवल जैसी

तैसी घटना नहीं वह मानव हृदय कप्ता गहरा कर टासने वाली होती है । उसके जीवन में एक वेग एक गति का संसार होता है, क्योंकि उससे वैयक्तिक तथा काल्पनिकता के सार्वजनिक की प्रतिष्ठा होती है । कहानी में जीवन के किसी वेग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य रहता है । उसके चरित्र उसकी शैली उसका कथा विकास सब उसी एक भाव की पुष्ट करती है । उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता । उसमें उपन्यास की भाँति सभी तथ्यों का सम्मिश्रण नहीं होता । वह ऐसा तथ्यात्मक उद्यान नहीं जिसमें भाँति भाँति के फूल बेल बूटे सबे हुए हों, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही जाँचे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है ।

एक प्रकार कथा- साहित्य के तत्त्व एक कथा है उन उपकरणों को कह सकते हैं जिनके द्वारा कहानी या उपन्यास का संगठन होता है । जिनके तत्वाव में उसका संगठित होना सम्भव नहीं होता । हिन्दी कहानियों तथा उपन्यास के तत्त्वों में कोई मौलिक भेद नहीं है । कहानियों उपन्यास का समुच्चय ही है । उपन्यास में उसके सभी तत्त्व नाम में ज्यों के त्यों उपरिक्त रहते हैं किन्तु वंतर केवल उनकी मात्रा, स्थिति, गुण तथा धर्म में होता है । उपन्यास में यदि पात्रों का जीवन है तो कहानियों में तंत्रों का कौमार्य । तत्त्वों की दृष्टि से विद्वानों ने कथा- साहित्य के 6 तत्त्व माने हैं :-

- (१) कथा वस्तु या घटनाक्रम
- (२) चरित्र- चित्रण या पात्र
- (३) कथोपपन्न या संवाद
- (४) भाषा शैली
- (५) दैत काल
- (६) उद्देश्य या बीज

तत्त्वों का यह वर्गीकरण यूरोपीय है। उक्त ६ तत्त्वों में से तीन प्रसृत माने जाते हैं। कथानक या प्लोटाक्रम, चरित्र या पात्र और बोज या उद्देश्य। जहाँ बोज या उद्देश्य नहीं होता वहाँ मनोरंजन ही उद्देश्य होता है। अब उपन्यास के कथानक और पात्रों का निश्चित रूप प स्थिर करने में भी कठिनायियाँ उपस्थित हो गई हैं। क्योंकि नवीन उपन्यासकार कथानक और पात्रों का नया रूप प गढ़कर नवीन प्रयोग कर रहे हैं। कुछ जाली-बक कहानी को पाँच तत्त्वों में विभाजित करते हैं और कुछ कः में। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उनके अंतर्गत कथा, पात्र, संवाद, देशकाल तथा उद्देश्य और शैली का वर्णन किया है। विनोद शंकर व्यास ने कहानी के ६ त्त्वों - प्लोट, प्लोटाक्रम, सीबक, वारम्भ और अंत, चरित्र-चित्रण, बाललाप और भाषा-शैली का निदर्शन किया है। कुछ भी हों कहानी के प्रसृत तत्त्वों में वस्तु, पात्र, संवाद को सम्भलना चाहिए। कहानी के कुछ साधारण तत्व भी हैं। कहानी को वारम्भ तथा समाप्त करते समय रचना कौशल का विशेष समझाव आवश्यक है। उलम कौटि की कहानियों का वारम्भ आकर्षक और अंत प्रभावपूर्ण होता है।

२- कथावस्तु-

कथा-साहित्य के तत्त्वों में कथा वस्तु का प्रसृत स्थान है। यही कहानी और उपन्यास का वह तृतीयांश है जिस पर कथा-साहित्य निर्मित होता है। जो हम कथा-साहित्य का मेरुदंड कह सकते हैं। यह वह तत्व है जिसके बिना कहानी एवं उपन्यास को कल्पना करना वाक्यांश कुतुम्भवत है। किसी उपन्यास एवं कहानी को मूल कहानी को कथा वस्तु कहा जाता है। इस प्लोटा श्रृंखला का उदय, विकास और अंत निश्चित हो जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती चाहिए कि उपन्यास की सारी घटनाएँ गण्य में ऐसी सम्बद्ध हों कि यदि उनमें से किसी एक को भी हटा कर दिया जाय

ही विरुद्धलिखित ही जायगी उसका क्रम टूट जायेगा । इन घटनाओं में वास्तविकता
 का ध्यान रहता निरन्तर आवश्यक है । व्यर्थ की घटनाओं का समावेश क्या-
 वस्तु को सिधित, विवृत एवं सारहीन बना देता है । घटनाओं का क्रम चाहे
 सत्य ही, या काल्पनिक उन्हें दैनिक जीवन पर गढ़ना आवश्यक है । कथानक
 का चुनाव इतिहास, पुराण, जीवनी आदि कहीं से भी विभाजित किया जा
 सकता है । वास्तव जीवन से सम्बन्धित कथानक की ही अधिक महत्त्व दिया जाना
 है । कहानी में जीवन के किसी एक क्षेत्र की व्याख्या होती है । काल्पनिक
 आकार संक्षिप्त रहता है । इसमें उपन्यास की तरह घटनाओं के अनावश्यक
 विस्तार की स्थान न रहने के कारण अधिकारिक और प्रार्थनिक भाग नहीं
 होते । कहानी की कथा का विषय सब कुछ ही सकता है । उसकी घटना में
 ऐथिल्य नहीं आना चाहिए और न उसकी योजना अत्यन्त ही लम्बी होनी चाहिए । कहानी
 की कथा वस्तु में वस्तु स्थिति तथा पुरुषों की क्या क्या व्यवहार स्थान दिया
 जाता है । परन्तु वह कथा के सदैव बाधित रहते हैं । कहानी की घटना से
 वस्तु स्थिति अथवा पुरुष वर्णन को सदा स्वतन्त्र नहीं । कहानी की कथा वस्तु
 की, उसके अन्तर्भाव के आधार, चार भागों में विभाजित कर सकते हैं - (१)
 प्रस्तावना अथवा (२) मुख्यश (३) चरम रोमा (४) पृष्ठ भाग । प्रस्तावना
 भाग कहानी के पात्रों तथा उनकी परिस्थिति का परिचायक होता है । इसमें
 कहानी की घटना का संकेत होता है । कहानी की वह स्थिति जिसमें वह प्रस्ता-
 वना भाग से लगे जाकर अपने को तीव्र गति के साथ प्रसारित करता है, मुख्यश
 कहलाती है । इस अवस्था में बाह्य अथवा आन्तरिक तन्त्र का प्रदर्शन किया
 जाता है । कथा का वह भाग जिसमें पाठक अथवा श्रोता का कीर्तुल्लस अपने चरम
 उत्कर्ष पर होता है, चरम रोमा कहलाता है । जहाँ कहानी का तथ्य लुप्त
 जाता है या किसी लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है, वहाँ कहानी समाप्त कर
 देनी पड़ती है । कहानी का प्रस्तावना भाग संक्षिप्त होता है मुख्यश से
 बचकर उसका प्रकार तत्पश्चात् कहानी उपरोपर तीव्र होती जाती है । चरम

सीमा पर पहुँच कर उत्सुकता के डूब उग्र रूप की अभिव्यक्ति होती है । अधि-
कृति कहानियों को लेखक चरम-सीमा पर उपास्त कर देते हैं ।

१- चरित्र चित्रण कथना पात्र-

कहानी या उपन्यास की कथा वस्तु के अंतर्गत जिन घटनाओं परिस्थितियों को ग्रहण किया जाता है उनकी अभिव्यक्ति पात्रों द्वारा होती है । पात्रों के गुण, दोष, स्वभाव, व्यवहार, योग्यता, उम्र, लिंग, आकार आदि सभी बातें चरित्र चित्रण के अंतर्गत आती हैं । चरित्र-चित्रण के लिए जिन पात्रों को चुना गया है उनके व्यक्तित्व को पूरी शाय कहानी एवं उपन्यास लेखक के मस्तिष्क पर होनी चाहिए और उसी प्रकार की शाय पाठक पर भी पड़नी चाहिए । उसके पात्र सजीव, आकर्षक, मनोरंजक तथा संसार में मिल सकने वाले होने चाहिए । जिस कहानी में पात्रों के संवाद सजीव तथा स्वाभाविक और कार्य परिस्थिति के अनुकूल मिले वह अवश्य प्रभाव-पूर्ण रचना है ।

पात्र कथा वस्तु के सजीव संज्ञाक हैं, जिनसे एक और कथा वस्तु का बारम्बार विकास और अंत होता है और दूसरी ओर जिनसे हम कहानी में वास्तविकता पैदा करते हैं । कहानी में पात्र निर्माण करने के लिए कहानीकार को तीन बातों पर ध्यान रखना चाहिए । पात्र सर्वथा सजीव और स्वाभाविक हों और उनकी व्यवहारणा कल्पना के धरातल से न होकर कलाकार को वास्तवानुभूति के धरातल से हो जिसे पात्र और पाठक में पूर्ण सरलता से साधरणीकरण हो जाय । पात्रों की सृष्टि कहानी की मुख्य संवेदना के अनुकूल हो तथा पात्र ऐसे हों जो प्रायः सर्व सुलभ और सम्राण हों । आधुनिक कहानी कला की धारा में बहुत-से लोकौत्तर पात्रों की व्यवहारणा विलुप्त नगण्य है । नायक का युग बुद्धिवादी युग है । उसे तर्क, वितर्क, विवेक और विश्लेषण में अधिक लागता है, लक्ष्य विश्वास, कल्पना और निष्ठा में कम । वह स्व आधुनिक

कहानी कला में सामान्य पात्र ही लिये जाते हैं जो मानव संघर्षों और युग चेतना के प्रतीक होते हैं। आधुनिक कहानी कला में चरित्र-चित्रण के उच्च मापदण्डों में ये संकेत और कथोपकथन द्वारा चरित्र चित्रण की शैली सबसे अधिक कलात्मक स्वीकार की जाती है। चरित्रों में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिए चरित्र विश्लेषण की पद्धति आधुनिक कहानी-कला की सबसे बड़ी देन है। कारण आधुनिक कहानी का मूलधार मनोविज्ञान है और उस मनोविज्ञान का मूल केन्द्र चरित्र है। कला: वाच के पात्र कल्पना और चरित्र-विधान में कहानीकारों की व्यक्तित्वादिता पूर्ण प है प्रतिकल्पित हो रही है। इस दिशा में आधुनिक कहानीकार की प्रगति स्थूल है सूक्ष्म की ओर चरित्र के बाह्य संघर्ष से आन्तरिक संघर्षों की ओर बढ़ना उस युग की कला की सबसे बड़ी देन है। वाच पात्रों के बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व पर मनोपैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला।

3- कथोपकथन या संवाद-

कथोपकथन भी घटना के विकास और चरित्र प्रकाशन का उपयोगी और स्वाभाविक साधन है। इन दोनों का ही उपयोग कहानी-कार तथा उपन्यासकार अपनी चि और आवश्यकता के अनुसार करता है। स्वाभाविकता तथा संक्षिप्त के गुण दोनों में होने चाहिए। यह एक नाटकीय तत्व है। यह कथा वस्तु के विकास तथा पात्रों के चरित्र चित्रण में सहायक होता है। इसी कथा वस्तु में नाटकीयता तथा सजीवता आ जाती है। इसका विधान पात्रों के चरित्र, स्वभाव, देश, स्थिति, शिक्षा, वशिक्षा आदि के अनुसार होना चाहिए। कथोपकथन का उद्देश्य वस्तु का विकास तथा पात्रों का चरित्र चित्रण होना चाहिए। बातचीत, सरल, स्पष्ट, सुगोप और मनोहर होनी चाहिए। इसी कहानी में आकर्षण, सजीवता और पाठकों की जिज्ञासा-

वृत्ति की प्रेरणा मिलती है। कहानी में पात्रों की बातचीत निरर्थक, आवश्यकता से अधिक लम्बी तथा पैरालाइज के विना नहीं होने चाहिए। संवाद द्वारा पात्रों का व्यक्तित्व स्वतन्त्र रूप से सामने आना चाहिए। कहानी के अंतर्गत कथोपकथन का सबसे बड़ा गुण ठीक जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न करना है। कथोपकथन में पात्रों द्वारा प्रयुक्त वाक्य कथना वाक्यांश दीर्घ नहीं होने चाहिए। उसमें मानव सुलभ व्यावहारिकता होने चाहिए। उसे अपेक्षवृत्ति की कथोपकथन से सदैव हटाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि कथोपकथन एक निरन्तर स्वाभाविक रिपति का परिचायक है। अतएव उद्दिष्टिष्ठ जहाँ लेखक पात्रावर्णन की अत्यन्त स्वाभाविक निकटवर्ती और सहज विस्मयनीय बनाना चाहता है, वहाँ वह कथोपकथन का आश्रय लेता है।

४- भाषा-शैली-

जात की अनुसृति तथा अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है। पात्रों के अनुसृत और अपनी रीति के अनुसार कहानीकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए जो कथानक तथा चरित्र चित्रण का वर्णन और कथोपकथन द्वारा व्यक्त कर सके। भाषा के आधार से हम उस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कौन-कौन सी कहानी सरल सुबोध तथा सरल शैली में है तथा कौन-कौन सी कहानी गूढ़ और सुबोध शैली में है। शब्द सक्ति का ज्ञान उसको सम्प्रेषण और उत्तरा संयम तथा विषय और वस्तु के अनुसार उसमें परिवर्तन कहानी की भाषा-शैली की मुख्य विशेषता है। भाषा-शैली के अन्तर्गत भाषा के सौन्दर्य की भावना भी होती ही है साथ ही रचना के ऐसे व्यापक गुण दोष की परत भी होती जाती है जितने आधार पर एक कहानीकार की रचना दूसरे कहानीकार की रचना से पूरक की जाती है। रिपति और पात्र के अनुसार कहानी और उपन्यास की भाषा का होना आवश्यक है।

५- देश काल-

पात्रों के चित्रण की पूर्णता एवं स्वाभाविकता देने के लिए देशकाल या वातावरण का ध्यान रखना आवश्यक है। एक काल-काल या स्थिति तथा मनः स्थिति दोनों का समावेश किया जाता है। कहानी एवं उपन्यास में कहानीकार की पर्यवेक्षण शक्ति, संसार का देशकाल गत यथार्थ अनुभव और पुरुषों के मन का वैज्ञानिक आकलन आदि का निर्मित सत्यता के साथ काल तक होना चाहिए। कहानीकार, कहानी की कथा-वस्तु अपना पात्रों द्वारा समाज के किस वर्ग, जीवन के किस पक्ष तथा मन की किस स्थिति का परिचय देता है उसका प्रत्यक्षीकरण पाठकों को यदि उही रूप में नहीं हुआ तो उसका द्वारा परिश्रम व्यर्थ है। ऐतिहासिक उपन्यासों का तो यह प्राण है। यदि कौंसे सैक सद्गुण और चाणक्य की छूट छूट में चित्रित करें तो उसकी मूर्तता एवं ऐतिहासिक अनिविजता पर हँसी छाये बिना न रहेगी। उपन्यास में देशकाल से हमारा तात्पर्य उसके वर्णित आस-पास- विचार, रीति-रिवाज, रस-रस और परिस्थिति आदि से है। सफल कहानीकार संसार में बसि सौकर चलता है और उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता है।

६- उद्देश्य या ध्येय -

उद्देश्य से हमारा तात्पर्य जीवन की व्याख्या से है। कथाकार किसी उद्देश्य को ही लेकर रचना करता है। यदि कौंसे उपन्यासकार या कहानीकार बिना कुछ सोचे हुए और उसका परिणाम बिना ज्ञात किये हुए अपनी कौंसे रचना करता है तो वह अपनी कथा-साहित्य में सफल नहीं हो सकता। आज के कहानीकारों का मुख्य उद्देश्य मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और उसके द्वारा मानव मन के गहनतम स्तरों की व्याख्या करना है। उपन्यासों

में मुख्यतः यही दिखलाया जाता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विचार, भाव और पारस्परिक संबंध आदि कैसे हैं ? वे दिन किन किन कार्यों तथा प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कैसे कैसे कार्य करते हैं ? अपने प्रयत्नों में किस प्रकार सफल एवं असफल होते हैं और उनके सफलता के कारण प उनमें कैसे कैसे मनोविकास आदि उत्पन्न होते हैं । समाज को नाना परिस्थितियों तथा समस्याओं के प्रति कहानीकार का अपना दृष्टिकोण और उनके प्रति उसके निदान, उसके निर्णय आदि कहानी के उद्देश्य बनते हैं तथा जो उद्देश्य के माध्यम से कहानी का कथानक, चरित्र और शैली आदि की व्यवस्था होती है ।

साहित्य की रचना, मनोरंजनार्थ, स्वान्तः सुखाय धर्म, वर्ण, काम और मोक्षकी प्राप्ति के लिए तथा किसी अन्य प्रयोजन-युक्त, धन, लोक व्यवहार आदि के उद्देश्य से होती है । कहानी रचना भाग्य-शिक्षा, उपदेश, सुखद, शान्ति तथा सार का यथार्थ ज्ञान तथा सु-प्राप्त किया जा सकता है । कहानी में उपन्यास तथा नाटक की भाँति जीवन के निम्न-निम्न पक्षों के व्यापक चित्रण को लक्ष्य नहीं बनाया जाता । कहानी-कार अपने चोपित चित्र में जगत् जीवन का एक भाग, एक घटना तथा पात्रों की किसी एक चारित्रिक विशेषता को फलक ही दिखलाता है । इस प्रकार उद्देश्य यह है कि जिससे लेखक का कहानी लिखने का मन्तव्य स्पष्ट हो ।

कहानी और उपन्यास एक ही कथा-साहित्य के भाग हैं पर उनमें भेद आकार का है । उपन्यास समाज की दृष्टभूमि में किसी भी व्यक्ति के पूर्ण जीवन का वर्णन करता है जबकि कहानी जीवन के किसी बड़े-बड़े तत्व पर ही चित्र उपस्थित करती है । उपन्यास के भीतर जाने वाले लोक तत्व स्वतः पूर्ण कहानी नहीं होते उनमें जाने की घटनाओं के प्रति जितना जगती है जो उपन्यास के क्षेत्र में आकर पूरी होती है । तत्व को दृष्टि है यद्यपि उपन्यास और कहानी में मौलिक भेद नहीं है पर एक को कला पूर्ण

विवरण में है और दूसरी की संक्षिप्त में। कहानीकार कथौकथन, वर्णन पात्र आदि में किसी एक प्रकार के साधन से संतुष्ट हो सकता है। परन्तु उपन्यासकार केवल एक से ही काम नहीं चला सके। उपन्यास का सौत्र प्रायः वस्तु वर्णन से है जबकि कहानीकार अपनी आन्तरिक भावनाओं की गति काव्य की मूर्ति निरन्तर व्यभि-मान ढंग से ही व्यक्त कर सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत कथा-साहित्य का उद्गम स्थान माना जाता है। भारतीय कथा-साहित्य की मौलिकता तथा प्राचीनता की हम विज्ञान स्वीकार करते हैं। इसका सर्वप्रथम दर्शन ऋग्वेद की संक्षिप्ता में है। ऋग्वेद प्राचीनतम साहित्य मानवता का माना जाता है। उपनिषदों में सुल-शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच बीच में कथाएँ जाने लगती हैं लेकिन ये कथाएँ कथान साहित्य की दृष्टि से नहीं आती हैं वस्तु उपनिषदों के भिन्न भिन्न प्रतिपाद्य तत्त्वों की ऊँच उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। उपनिषदों में छान्दोग्य, कठ, केन, तैत्तिरीय आदि में बनेक उपाख्यान और प्रसिद्ध उपाख्य मिलते हैं। काल की दृष्टि से रामायण और महाभारत का समय बत जातक कथाओं में बहुत पहले पड़ता है। इस प्रकार रामायण और महाभारत के माध्यम से वाख्यानकों और पौराणिक कथाओं का प्रारम्भ जानक कथाओं से पहिले हो चुका था। रामायण में मूल कथा के साथ विभिन्न तन्त्र-कथाएँ, प्राचीनिक और अप्राचीनिक ढंग से गुथी हुई हैं। वाख्यान और पौराणिक कथाओं की दृष्टि से महाभारत का ध्यान प्राचीन संस्कृत कथा-साहित्य में उत्तम है। कथा-तन्त्र की दृष्टि से इसकी कथाओं की परम विशेषता यह है कि हमें इतिहास, धर्म और कल्पना का जतना सुन्दर समन्वय है कि ये कथाएँ स्वामाषतः पौराणिक कथाओं के रूप में समूचे परवर्ती संस्कृत नाट्य साहित्य की उपजीव्य बनी है। इस प्रकार वाख्यानकों तथा पौराणिक कथाओं का प्रारम्भ यही है होकर आगे जाने वाले पुराणों में विकसित होकर ये कथाएँ भारतीय कथा-साहित्य में अपनी पूर्णता तक पहुँच गई हैं।

महाकाव्य काल से जागे कथा- साहित्य का नया युग आरम्भ होता है। उस समय हिन्दू बौद्ध तथा जैन धर्मों के अनुयायी वावागमन के सिद्धान्त पर जीवन के लोक जन्मों में विश्वास करते पाये जाते हैं। वे तन्त्र की कहानियाँ इसी काल में लिखी गईं। उन कहानियों को रचनाई ब्राह्मण रचानाकारों ने राजकुमारियों को शिक्षा देने के लिए की थी। उनमें उपदेश के स्थान पर धार्मिक भावना की प्रधानता मिलती है। पौराणिक साहित्य का कथानक जन्मों में लिखा गया तथा कल्पना और ऐतिहासिक तथ्यों का बहुभुत मिश्रण है। कहानियों के पात्रों में ऋषि, मुनि अधिक हैं। चरित्र का विकास सुन्दर है तथा प्राचीन कथाओं का उपयोग चरित्र को उज्ज्वल तथा निहारने के लिए ही किया गया है।

बौद्ध जातक कथाएँ अपने वर्तमान रूप में दो हजार वर्ष पुरानी हैं। जातक कथाओं का स्थान परवर्ती संस्कृत कथाओं परसे आता है। ये कथाएँ बौद्ध धर्म के प्रकाश और प्रचारार्थ ही लिखी गई हैं। स्वर्ण कथा का जन्म सम्भवतः उसी जातक कथाओं से आरम्भ हुए तथा उसे कला को चरम सीमा छूँते जागे चलकर संस्कृत के सुप्रसिद्ध कथा संग्रह "कथा सरित्सागर" और "पद्म तन्त्र" में मिलते हैं। उन कथाओं में कल्पना तथ्य मुख्य है। ये जातक कथाएँ बहुत ही व्यापक और मानव तत्त्व के समीप हैं। ये कथाएँ कभी भुलाई नहीं जा सकती। उस प्रकार भारतीय कथा विकास में जातक काल का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

कथा- कहानियों की उपर्युक्त परम्परा सरवर्ती संस्कृत में भी प्रसारित रही। संस्कृत के परवर्ती कथा- साहित्य में वृक्ष कथा का स्थान सबसे महत्वपूर्ण स्थान है।

सम्पूर्ण परवर्ती संस्कृत कथा- साहित्य में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं, एक मनोरंजन प्रधान, दूसरी शिक्षा और नीति- प्रधान

संस्कृत कथा- साहित्य में पहले प्रकार की कथाएँ बहुत ही सीमित और मानव-सापेक्ष हैं परन्तु दूसरी प्रकार की कथाएँ संस्कृत-कथा-साहित्य में सीमित हैं। जहाँ 'चर', 'वचन', 'पु' पक्षी उसकी कथा साधन बनाया गया है। 'पंचतन्त्र' तथा 'शिवोपनिषद्' ज्ञानः तैत्तिरीय तथा चौदहवीं शताब्दी के 'पाराशर' की रचनाएँ हैं लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनों नीति संबंधी कथानक संग्रह हैं। 'पंचतन्त्र' की कहानियाँ विभिन्न भाषाओं में अनुवादित होकर सम्पूर्ण विश्व में फैली। 'वल्कि' 'सैला' की कहानियाँ का आधार भी 'पंचतन्त्र' की कहानियाँ ही हैं। 'पंचतन्त्र' की भाँति 'शिवोपनिषद्' भी नीति ग्रन्थ है। 'पाराशर' उद्देश्य भी 'पंचतन्त्र' की ही भाँति है। 'पाराशर' मुख्य उद्देश्य उपदेश देना है।

काव्यात्मक कथाओं में 'सुबन्धु-पुत्र', 'वासवदत्ता', 'पाणमट्ट कृत 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' और 'दंडीकृत 'दशकुमारचरित' प्रमुख हैं। 'पाणमट्ट' की 'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य की उत्तम कृति है जिसमें वादल प्रेम को सुन्दर भाँटियाँ दिखाएँ जाती हैं। 'जैन' वर्णन साहित्य में कथा का 'प' मूलतः काव्यात्मक रहा है तथा महाभारत की कथा से सम्बन्धित लोक कृतियाँ मिलती हैं। जहाँ 'का' कीर्ति का 'हरिवंश पुराण' सबसे महत्वपूर्ण है। 'जैन' वर्णन प्रभाव पार्वती कथा-साहित्य के कथा तत्त्व पर कितना पड़ा इसके ऊपर मैं हम मध्यकालीन हिन्दी साहित्य काव्य की इस समझ हैं तथा प्राकृत वर्णन कथा तत्त्व की हम इस मध्यकालीन साहित्यिक काव्य के कथा तत्त्व में ढूँढ सकते हैं।

सम्पूर्ण चरण साहित्य में दो शैलियाँ देखी जा सकती हैं। प्रथम प्रवधात्मक शैली तथा दूसरी गीतात्मक शैली। प्रवध काल के वर्तमान था और मुख्यतः काव्य जनता को वस्तु थी जहाँ वे कथाओं को जोड़कर अपनी मनोरंजन में लाते थे। कथा के इन 'पी' में लौकिक भावनाएँ अधिक हैं। वर्णन में विदनाय सम्प्रदाय वाले जन भावना में उन्हें वैराग्य जगता धार्मिकता

के वन्य स्व पौ को प्रतिष्ठित करने के लिए उनके वसिष्ठवात्मक दृष्टि करते थे। उन लोक गाथाओं में गीतात्मकता ही प्रमुख विशेषता है। 'दौला मा' और 'माधवानल काम श्रद्धा' इन सबका धरातल मुख्यतः प्रेम है।

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रेमाख्यान काव्य सबसे अधिक मिलता है। कुतुबन की 'मृगावती' जाकीर की 'फ़द्मावत' मक़न की 'महुमालती' बुर मुहम्मद की 'उन्दावती' आदि जहाँ एक और वर्णों चित्रणों और काव्यात्मक रसात्मकता में उत्कृष्ट है, वहाँ दूसरी ओर उनका कथा-शिल्प भी परमावश्यक है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में वैष्णव के जीवन चौरासी वार्ताएँ संगृहीत हैं। इन वार्ताओं में वैष्णव मन्त्रों के जीवन सम्बन्धी किसी एक घटना से अधिक का विवरण इनमें नहीं मिलता। इनमें न कोई कथा तत्व न जीवन का कोई संतुलित पक्ष। भारत में मुस्लिम साहित्य का प्रभाव हिन्दी-साहित्य की तथा व्यापारिक पद्धति पर पड़ा है। मल्लभ गजनवी के समय से मुस्लिम साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भारतीय कथा-साहित्य का जो व्यापक प्रभाव मुस्लिम साहित्य पर पड़ा उसके दर्शन का काल की रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। मुस्लिम काल में जितने भारतीय कथा-साहित्य का विकास हुआ उससे सब देशों और विदेशी सब कथाकारों का योग था।

हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग के पूर्व तक कथा-साहित्य में वर्णनात्मक शैली सर्वाधिक उपयुक्त रही परन्तु द्विवेदी युग में बहुत सी कहानियाँ में सम्पादक शैली का प्रचलन हुआ। उस युग में कानि में कलात्मकता के साथ सजीवता की भी अभिवृद्धि रही। जयदेव प्रसाद, कौशिक, गुलेरी, प्रेमचन्द आदि कथाकारों ने कहानियों की भाषा शैली में नवीन आविष्कार किए। उनके अतिरिक्त हृदयेश, राधाकामण प्रसाद, रायकृष्ण दास, सुदर्शन आदि कहानीकारों की अवतारणा भी हुई। निःसंदेह यह

द्वितीय उत्थान कहानी कला तथा शैली में ही वर्णन व्याख्या और चित्रण हो जाने से नाटकीयता का वा जाना ही ठीक स्वाभाविक है। उग्रवी उत्थायात की भाँति राजनैतिक, सामाजिक वादि दोनों की समस्याओं की साथ ही लेकर जाये। शिवेदी युग के लगभग पचासों के समय जेन्द्र कुमार की कहानी प्रकाशित हुईं जिनमें सूक्ष्म मनोविज्ञान विश्लेषण की भाँचा शैली उद्घुटित हुई। निःसंदेह शिवेदी जी की प्रथम भाषा ही पृष्ठ भूमि पर हिन्दी कहानियाँ ने वामनोय युगों से प्रुत प्रवृत्त किया और तब कथानीकारों के साथ नवीन शैलियाँ सामने आईं।

शिवेदी जी के कठोर अनुशासन तथा एतिवृत्तता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप छायावादी विचारधारा का जन्म हुआ। जो युग के साहित्यकारों में प्रसाद, फा, निराला तथा महादेवी वर्मा प्रमुख हैं। प्रसाद जी की प्रतिमा सर्वतोमुखी योर्कशाल में प्रसाद जी ने समाज के दलित दुःखी कलंकित वर्ग को चित्रित कर प्रसाद ने समाज की चेतावनी भी दी है। भावमूलक वादशवादी परम्परा की कहानियों की रचना करने वालों में प्रसाद जी का प्रमुख स्थान है। निराला की कहानियाँ में रचना चमत्कार का विशेष लक्ष्य नहीं। जिनमें भाव पक्ष की खेपा कला पक्ष बसा हुआ है। फा जी ने भी अपनी कलात्मक कल्पना ऐन्द्रिय प्रेम तथा भावुकता का परिचय दिया है। इनकी कहानियाँ में प्रेम की प्रधानता है। महादेवी वर्मा भी भाव मूलक परम्परा के अंतर्गत आती हैं। वर्मा जी ने अपने रचनानों में अपने चिर परिचित व्यक्तियों के जीवन की क्रांती उतारी है। इनकी कहानियाँ उपम पुंख तथा तन्त्र पुंख दोनों शैलियों में वर्णित हैं।

छायावादी कथा- साहित्य का हास खं पतन का कारण उसका व्यक्तिगत दृष्टिकोण था। वास्तव में रीटी का राग और श्रान्ति की वाग लेकर ही प्रातिवाद जागे जाया और उसने फक फौर कर

साहित्यकार को एक नवीन समस्या और एक नवीन चेतना का बालोक दिखाया। प्रातिवादी कथा साहित्यकारों में रमिय राय, राजेन्द्र यादव, यशपाल, कमलाल नागर, नागार्जुन राहुल सांकृत्यायन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। समाज के धर्मार्थवाद चित्रण की दृष्टि से यशपाल के उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। जीवन के प्रति उनकी एक निश्चित दृष्टि है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनकी कृतियों में पूँजीवादी व्यवस्था तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता की कथा वर्णित है। उनकी कहानियों का मुख्य लक्ष्य बाँकि ईश्वर और वर्ग के ना की समन्वयित तथा पुनर्जाति के भिन्न भिन्न सम्बन्धों एवं नैतिक मान्यताओं का विच्छेद करना। रमिय राय ने उपन्यास लिखने की बहुमुखी प्रतिभा है। उपन्यास लेखन के लिए ऐतिहासिक एवं सामाजिक जीवन को पर्याप्त सामग्री है। उनका अनुभव विद्यालय तथा विद्वाना तीव्र है। कमलाल नागर में बड़ी मौलिक प्रेरणा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति गहन अनुभूति, मानव मनोविज्ञान में गम्भीर पैठ तथा विषयानुसार नूतन विधानों की क्षमता है। बाँचलिक उपन्यास लेखकों में नागार्जुन ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है। राजेन्द्र यादव भी प्रातिकार लेखकों में आते हैं। उनकी तीव्र अनुभूति, कुशल कल्पना तथा प्रतिभा के साक्षात्कार दर्शन 'उल्टे हुए लोग' तथा 'प्रेत बीसते हैं' उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। राहुल सांकृत्यायन पुनर्जाति लेखकों में से हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। अपने ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर राहुल जो ने अपने उपन्यास एवं कहानियों में तत्कालीन समाज का उल्लेख किया गया है।

प्रयोगवाद-

हिन्दी कथा- साहित्य में पिछले लगभग पन्द्रह वर्षों से एक ऐसी नवीन प्रवृत्ति के दर्शन होने लगे हैं जिसे उसके उन्नायकों एवं कालोक्तों

ने प्रयोगवाद की संज्ञा दी है। हिन्दी में प्रयोगवादी लेखक ब्रजेश, प्रभाकर मास्के आदि आते हैं। आज साहित्यकारों की सम्पूर्ण सभित टेक्नीक के नवीन प्रयोग की ओर लग गये हैं। ब्रजेश विप्लव मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। "शेखर : एक बीवनी" एक नितान्त नूतन प्रयोग है। इनके उपन्यासों की प्रमुख समस्या प्रेम, यौन हृष्टि और विवाह की है। ब्रजेश की कहानी कला की तात्त्वा अधित चरित्र के केन्द्र बिन्दु से निर्मित हुई हैं। प्राथमिक शैली ब्रजेश की कहानी कला का एक लक्षण पता है। हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रयोजन जोड़ी है। हिन्दी का प्रयोगवाद भी पश्चिम की छूटन है। जोशी जी के दृष्टिकोण से क्षैतिज और वर्तिकाक्ष का सुन्दर सामंजस्य है।

आधुनिक कहानी साहित्य का उद्गम लगभग 40 वर्षों का है। हिन्दी कहानी साहित्य के उद्गम और विकास के अनुसार कहानी को निम्न कालों में विभाजित दिया जा सकता है :- प्रारम्भिक काल में लखनऊ का "प्रेम रागर" सदस्य मिश्र का "नातिकेतीपास्थान" तथा झाबुल्ला लाल की "रानी केल्की की कहानी" के दर्शन होते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब तीन कथात्मक रचनाओं के बलादा कीर्ति विशेचरचना नहीं दिखाई पड़ती। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में "कवि वचन गुधा" "हरिश्चन्द्र मेगधीन" "हिन्दी प्रदीप" आदि छोटी छोटी व्यंग्यात्मक कथानियाँ प्रकाशित होती थी और उनके द्वारा पाठकों का मनोरंजन होता था। पाश्चात्य संस्कृति तथा शिक्षा का प्रभाव तत्कालीन भारतीय जीवन पर पड़ा और उसकी प्रतिक्रिया स्वप्न चित्र, व्यंग्य चित्र आदि पों में प्रकाशित होने लगी और उन्हें कथा का रूप मिलने लगा।

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ "सरस्वती" और सुदर्शन के प्रकाशन के साथ 1800 संवत् में होता है। इसके पूर्व 1744 ई. में बृहत्कथा

के बाधार पर 'कात्पाक' और 'वर लवि' की कथा हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित हुई। बंगला कहानी का प्रभाव हिन्दी कहानी पर पड़ा है। बंदिमबैत तथा खीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियाँ के कारण बंगला कहानी के इतिहास में नये युग का आरम्भ हुआ। बंगला में कहानियों को गल्प कहा जाता है। ये गल्पे अनुचित रूप में हिन्दी में प्रकाशित होने लगे। बंगला कहानी परब लीवी साहित्य का प्रभाव था। अतः यह प्रभाव बंगला को अनु-दित कहानियाँ द्वारा हिन्दी में जाने लगा।

हिन्दी कहानी के विकास क्रम में किशोरीलास

गौतामी की जाधुनिक कहानी 'उन्मुक्ती' १६०० में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। बाबाय रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' बंग महिला कृत 'हुलाह वाली' नाम की कहानियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। डा० त्रीमुष्ण जाल के अनुसार 'उन्मुक्ती' हिन्दी की प्रथम कहानी है। उस काल में ज्योति-देश नारायण त्रिपाठी कृत 'एक लश्करी की वात्स्य कहानी' यशोवदन बाबूरी कृत 'इत्यादि की वात्स्य कहानी' वात्स्य कहानी शैली में रही गईं हैं। चौंसवी सताब्दी के प्रथम दशक के उत्तरार्ध में कहानी कला की प्रयोगावस्था का दर्शन 'बंग महिला कृत', 'हुलाह वाली' सत्यदेव कृत 'कीर्ति का सिमा' आदि कहानियों में मिलते हैं।

ऐसव काल की कहानियों में पुन्दावन लाल वर्मा कृत 'तातार और एक वीर राजपूत' में कहानी की प्रयोगावस्था के दर्शन मिलते हैं। यह कहानी ऐतिहासिक है। इस कहानी की कथौकथन शैली में भाव सौन्दर्य और उसकी मधुरिमा पाठक के हृदय को छिला देती है। हिन्दी कहानी साहित्य के विकास में 'सरस्वती' पत्रिका ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया।

कहानी साहित्य के विकास में 'हुं' पत्रिका का प्रकाशन बहुत महत्वपूर्ण घटना है। हिन्दी कहानी-साहित्य के इतिहास में

सन् १९१० से १९२७ तक का काल अपना विशेष महत्व रखता है। प्रसाद जी की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' जन्तु में प्रकाशित हुई और उत्तम गुण के लेखकों की जीताऊ कविताएँ की प्रथम कहानी भी उसी समय प्रकाशित हुई। सन् १९१५ और १९१६ में प्रकाशित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' विषयम्परा-नाथ जिज्वा की 'विदीर्ण हृदय' तथा प्रेमचंद की 'सौत', 'देव परमेश्वर' अत्यन्त उच्चकोटि की कहानियाँ हैं। गुलेरी जी 'उसने कहा था' कहानी लहनासिंह की जाति समर्पण की कथा कहानी, पवित्र प्रेम के लिए दिये गये निःस्वार्थ वसिदान की कहानी है।

वाधुनिक कहानियों में विकास का प्रथम और प्रमुखतम सूत्र प्रेमचंद की है। उन्होंने पहले-पहल कहानियों की बाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ाकर मानव जीवन के अंतःकरणों के उद्घाटन का साधन बनाया और उसकी अंतःकरणों का विकास मनोवैज्ञानिक चरित्र में चित्रित करा हो किया। प्रेमचंद के इस आविष्कार ने मानव चरित्र नाम की एक लघुमुक्त फिटारी तैयार की जिसके आश्चर्यों का कोई छिपाना ही नहीं। प्रेमचंद ने ग्रामीण समाज का चित्रण करके तत्कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद मानव जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्र खींचने में कहे सिले रहते थे। उनकी कहानियाँ सुधारवादी दृष्टिकोण से जीत प्रीत हैं।

प्रेमचंद जी की कहानियों के साथ ही साथ प्रसाद जी की भावपूर्ण कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानियों में कान्ता, सौन्दर्य प्रेम, आनंद कापि के दर्शन होते हैं। प्रसाद जी कवित्वपूर्ण वातावरण, कवित्वपूर्ण भावना और नाटकीय तथा आदर्शवादो परिस्थितियों की सृष्टि करने में बलियो हैं। बहुरसैन नास्त्री, चंडीप्रसाद गुदके, शर्मा जी ने भी लोक कहानियाँ लिखी हैं।

वाधुनिक कहानियों का सूत्रपात जेम्स, जोसो, जैक्स, जैक्स कादि की प्रारम्भिक कहानियों में मिलता है और बाद में उनकी विकसित परम्परा सियाराम शरण गुप्त, भगवतोपरण शर्मा, भगवती प्रसाद बाजपेयी

कमला देवी चौधरी, नागा, सिन्धुवन उराय, धर्मवीर भारती, फाटो, यशपाल, चन्द्र किरण, चंद्रगुप्त विपास्कार आदि प्रौढ़ कथानोकारों की कहानियाँ में मिलती हैं। वाधुनिक कहानी किसी विशेष ढंग या पाठ से प्रभावित नहीं है, उस पर जीवन के भिन्न-भिन्न वाद्यों का प्रभाव दिखाई देता है। वह पारम्परिक साहित्य से प्रभावित है और उनमें सृजनात्मकता के अनेक प्रवृत्तियों का दर्शन मिलता है। उस पर गांधीवाद, साम्यवाद, धर्मवाद, प्रातिवाद आदि के सिद्धान्तों का प्रभाव दिखाई देता है।

यशपाल की कहानियों में प्रातिश्रील विचारधारा का प्रभाव है तो फाटो की अधिकतर कहानी क्रान्ति के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। इनकी कहानियों में प्रेम्बर को यथार्थवादी परम्परा का चिह्नित रूप मिलता है। कमलाकान्त वर्मा ने अपनी एक नवीन शैली कहानी-साहित्य की दी। उनकी कहानी चेतिकाओं में चन्द्र किरण, उषादेवी मित्रा, तैल रानी पाठक आदि ने उन्नी बीसवीं की समकालीन की दृष्टि से कहानियाँ लिखी हैं।

वाधुनिक कहानियों के विषय में विचार करने समय उनके विषय, रचना-विधान, भाषा आदि के बारे में अनेक प्रश्न उपस्थित रहते हैं। इतने कम समय में कहानी-साहित्य ने आश्चर्यजनक उन्नति की है और वह विकास के पथ पर है। उसमें हमारे जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण हुआ है और अधिकांश हमारे सामने नये नये वादों उपस्थित करने में वह सफल हुई है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य का सूत्रपात भातेन्दु हरिश्चंद्र के जीवन काल में हुआ। प्रथम उपन्यास 'वीरनिवासदास कृत' परीक्षा गुप्त' है। शुभल जी 'भारतवर्ष' की फलतः उपन्यास मानते हैं। कुछ लोग 'रानी बेतकी की कहानी' को ही उपन्यास मानते हैं परन्तु यह कहानी है।

कुछ भी हो ' परीक्षा गुं' ही प्रथम हिन्दी का उपन्यास है। इस प्रारम्भिक युग में संस्कृत, बंगला आदि भाषाओं से अनुदित रचनाओं द्वारा नई नई प्रवृत्तियों का प्रभाव उपन्यास के क्षेत्र पर पड़ने लगा। विशेषतः बंगला से कनेक उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ। गदाधर तिलक तथा राधाचरण गोस्वामी। बंगला से अनुवाद हिन्दी में करने वालों में प्रथम थे। इन अनुदित उपन्यासों में 'दुर्गेश नदिनी', 'राधा रानी', 'मधुमती', 'दीप सिंघा', 'कपाल कुन्डला' आदि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

प्रेमचंद के 'सेवा सदन' (१९१८) के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों में वादर्थ एवं यथार्थ का चित्रण नहीं मिलता उसमें प्रेम का कुछ वर्णन था। प्रेमचंद हिन्दी जगत् में एक युग की प्रेरणा लेकर आये। वे पहले उर्दू के अच्छे लेखक थे और उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ हिन्दी क्षेत्र में कहानियों के रूप में प्रकाशित की। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में जीवन के यथार्थ का चित्रण कर उसके पौष्टिक के लिए वादर्थवाद की स्थापना की। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों द्वारा किसानों की वार्षिक व्यवस्था ग्रामीण जीवन की दुर्बलता, विधवाओं तथा वेश्याओं की समस्या, समाज की दुरीतियाँ, हिन्दू-मुस्लिम अन्ध, जमींदार तथा पुलिस के अत्याचार आदि तत्कालीन प्रश्नों पर प्रकाश डाला है। मुंशी जी ने सत्य के पथ की ग्रहण का मानव मजिस् के मंगल को कामना की और संकेत करने वाली नैतिक वादर्थों की स्थापना की है। जीवन के कठोर यथार्थ का चित्रण करते समय उन्होंने व्यक्ति की अथेक्षा तत्कालीन समाज की समस्याओं का यथार्थ रूप अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

प्रेमचंद के समान प्रभाद जी ने कंकाल, तिलकों, बरा-बती नामक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में योग दिया।

प्रेमबंद की वादार्थानुसंधानवादी परम्परा का अनुसरण करने वालों में कौशिक, कृतस्तेन शास्त्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ग्रामीण समस्याओं को लेकर सियारामशरण गुप्त ने बनेक उपन्यास लिखे। वे सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने स्वच्छन्दतावादी विचारधारा को हिन्दी-कथा साहित्य में बसाया। उग्र जी ने अपने उपन्यासों के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया तो बृन्दा नारायण वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा हिन्दी कथा-साहित्य को बूट सेवा को। हिन्दी उपन्यास-साहित्य के इतिहास में सन् १९३६ का वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस वर्ष प्रेमबंद का 'गोदान' जेन्द्र का 'सुनीता' भगवतीशरण वर्मा का 'तीन वर्ष' निराला का 'निष्पत्ता' भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'पतिता की राधा' आदि उल्लेखनीय उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। जेन्द्र ने अपने उपन्यासों में मनुष्य स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। जेन्द्र पर वास्तुनिक मानस शास्त्र का प्रभाव है। उन्होंने समाज की केवल वेला ही नहीं बल्कि अपने अनुभव तथा सत्य के आधार पर सामने लाई हुई समस्याओं के मूल की खोज की और नैतिक दृष्टि से उनकी व्याख्या भी की है। चौरी जी के उपन्यासों का धरातल भी इसी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैसा की 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के दीप' महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

हिन्दी में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार 'एन' पत्रिका के द्वारा हुआ और शिवदानसिंह के प्रकाशित लेखों द्वारा हिन्दी-क्षेत्र में उसका प्रवेश हुआ। समाजवादी उपन्यासों में यापाल के 'दादा कामरेड' देश मोहो आदि उपन्यास महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। समाजवादी विचारधाराओं का प्रचार रागिय राय के 'विषाद मठ' नागार्जुन के 'बलकनवा' आदि उपन्यासों में मिलता है।

सन् १९४७ से पूर्व हमारी प्रत्येक समस्या का सम्बन्ध औद्योगिकी राजनीति से जाता था। भगवतीशरण वर्मा का 'टैड मैड रास्ते' तथा

गुप्त का 'स्वाधोन्नता के पथ पर' जैसे ही उपन्यास है। राजनैतिक विचार-धाराओं का चित्रण लेखक ने अपने उपन्यास 'चढ़ती धूप' में किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जो का 'बाण मूट को वात्सल्य कथा' बहुत ही महत्वपूर्ण उपन्यास है। डॉ० कालोन गुप्त का वातावरण लेकर यशपाल ने 'दिव्या' तथा क्षुरसेन शास्त्री ने 'वैशाली की नगर बधू' उपन्यास लिखे। यशपाल की 'दिव्या' में नारी के चरित्र सौन्दर्य तथा आकर्षण व्यक्ति आदि का भेद लेकर नहीं मानता। ऐतिहासिक उपन्यासों में वृन्दावनलाल वर्मा तथा राहुल सांकृत्यायन का नाम उल्लेखनीय है। राहुल सांकृत्यायन ने 'सिंह ऐनापति', 'जय यौधेय' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। वर्मा जी ने 'फाँसी की रानी' और 'मृगनक्षी' आदि उपन्यास लिखकर ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाया।

कलाकार का कहानी सुनाना उसका उद्देश्य नहीं।

यह अपनी कृतियों की कथावस्तु की अपेक्षा पाठकों को और भी कुछ देना चाहता है। 'कला कला के लिए' जगन्दीश की ज्ञाया इस काल के उपन्यासों पर होने के कारण उपन्यास पाठरी ढाँचे में परिवर्तन हुआ है और उपन्यासकार अपने उपन्यासों में मनमाने पात्रों की दृष्टि करने लगे हैं।

उर्दू कथा- साहित्य का इतिहास-

उर्दू कथा- साहित्य के वर्तमान लफ्फाने और दास्तान होते हैं। लफ्फाने और दास्तानों की ही कहानी और उपन्यासों के सम्बन्ध रखा जाता है। उर्दू में उपन्यास के स्थापन पर 'नासिर' जो लैंगी का शब्द है, अपना दिया है। उर्दू- कहानी साहित्य का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। यह बीसवीं शताब्दी की ही घेन है। प्रारम्भ में उर्दू कहानियाँ 'खुश फर' नामक पत्रिका में प्रकाशित होती थीं उसमें मुहम्मद, शम्शेरान आदि पर लेख प्रकाशित होती थे। बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक उर्दू कहानी का शुरुआत काल था। इस युग में राजाद हैदर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी सभी

कहानियाँ कहाना के नाम से प्रसिद्ध हैं और सभी रोमान्टिक थी जैसा 'सैला मज्दू' जिनमें कल्पना का घुट अधिक है।

मुन्शी प्रेमचंद निःसंदेह उर्दू के सर्वप्रथम महान् कहानीकार हैं। कहानों लिखने की कला मुन्शी प्रेमचंद जी ने ही दी। मुन्शी जी उन ३० वर्षों में उर्दू कहानों का रूप ही बदल दिया। मुन्शी जी की कहानियों का पहला संग्रह 'सौंठे बतन' में आया। उनकी प्रथम कहानी 'दुनियाँ का ज़मीन हल' और सौंठे बतन के नाम से सन् १९०६ में प्रकाशित हुई। इस कहानी में देश प्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना निहित है।

मुन्शी प्रेमचंद के समकालीन कहानीकारों में 'सुदर्शन' का नाम आता है। उनकी कहानियाँ पोलू हैं। यह भी मुन्शी जी की भाँति पुष्पास्पदी है। 'सौंठे बतन' सुदर्शन का सबसे पाद का प्रकाशन है जिसमें समाजवाद की गूँज सुनाई देती है। प्रेमचंद का अनुकरण करने वालों में तम्मद नदीम कासिमी, अली अब्बास हुसैनी आते हैं। कासिमी की कहानियों का संकलन 'बाँपास' तथा हुसैनी की जारुली-सस-दोनों ही बड़े लोक हंग हैं। ये कहानियाँ देश-प्रेम तथा न्याय पर आधारित हैं। कासिमी का उद्देश्य ग्रामीण जनता का मोलापन, ज्ञानता तथा लोचन का चित्र लोचता है। प्रेमचंद और उनके बाद आज़म कुरेशी, सुदर्शन और अली अब्बास हुसैनी के यहाँ कला का यही निष्पन्न हमें मिलता है। 'लंगारे' की कहानियों में पालीवार आधुनिक कहानी के कुछ कला संबंधी तत्त्व नजर आते हैं और कला के सौन्दर्य पक्ष की आरम्भिक किरणें भी उन्हीं कहानियों के बीच ही कहीं दिखी मिलती हैं।

'लंगारे' के आद कृतन बंदर और देवी के यहाँ कभी कभी कहानियों की साहित्यिकता प्रकट हुई है। कृतन बंदर ने कला के सौंदर्य पक्ष की उपागर करके अपने कई जगुण शिष्य लिये हैं। सौन्दर्य वादी युग अपनी आभा ली चुका है। इस दृष्टि से देता जाय तो अब कृतन बंदर

साहित्यहीन कथा का प्रतीक बन चुके हैं। वेदी के यहाँ कला की बारीकियाँ तो थी जो "साजवसी" में उभर कर सामने पारें हैं किन्तु उन्होंने कला को सूक्ष्मता का उदासीकरण करना नहीं सीखा। मेटो में कहानी-कला के सर्वाधिक तत्त्व मौजूद हैं किन्तु मेटों की कौतूहल प्रियता ने उसे नाटक के निरूपण दिया। यथार्थवाद के क्षेत्र में उन्होंने केवल मनुष्य के सामाजिक और नैतिक पक्ष ही चित्रण किया है। यही कारण है कि पीढ़ी की कहानियों में रचनात्मक दृष्टि का अभाव स्पष्ट लक्षित होना है। महमद नदीम काहिमी ने इस पीढ़ी के अस्तित्व की रक्षा की है।

"मेघ मल्लार" वालो सुमनाथ रोरी, हुर्रुतु अल्वर के बाद पहली बार संवेदना और रचनात्मक कल्पना को विस्तृत प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति "मेघ मल्लार" में प्रस्तुत करती है। उर्दू कहानी का नगरीकरण अल्वर ने ही किया है। "रोरी के घर" की समस्त कथा निर्वा वायुनिक ज्ञान की उन वास्तविकताओं की प्रतिनिधि है जिनका प्रकटीकरण उर्दू को सीमित परिधि में संभव नहीं होता। "फन्सर को ला लाव" एक ऐसी कहानी है।

अल्वर हुर्रुतु ने कहानी की रचनाएँ निरवस्था की भी अनुभव किया है और अपना राह भी स्वयं तलाश करने की चेष्टा की है। "ककरी" कहानियाँ अल्वर के विविध प्रयासों का प्रमाण हैं। जिन कहानीकारों में रचनात्मक कला की प्रवृत्ति मिलती है उनमें जमीरुद्दीन अहमद, दोस्त्र अ. बाबिद हुर्रुतु आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सन् १९३५ से सन् १९४७ तक जितनी उर्दू में कहानियाँ लिखी गईं, उनमें बहुत ही सख्त कहानियाँ हैं जिनकी हम पश्चिमो देशों को सर्वश्रेष्ठ कहानियों की पंक्ति में लड़ कर सकते हैं। उन चारों वर्षों के समय में

गोरखामी गहमरी, जैसा बल्लाही बादि मो मनोरंजन के लिए ही कथा-साहित्य लिख रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय दोनों कथा-साहित्यों का मुख्य उद्देश्य दिल बहलाव एवं मनोरंजन प्रदान करना था।

यशपाल साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है, उन्होंने अपने उपन्यास एवं कहानियों में गांधीवाद का विरोध तथा समाजवाद का समर्थन उतनी ही शक्ति एवं दृढ़ता के साथ किया है जितना बेदी, पटौ, हयाल उल्लाह एवं कमल चुगताई ने। राहुल सांकृत्यायन ने इतिहास के माध्यम से साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने की चेष्टा की है। उर्दू में ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से बाधुनिक विचारधारा का प्रचार करने वालों में नसीम हजाजी, एम० तसलम और कैसी रामपुरी हैं। ज़िन्द पर खीन्द तथा शरफ का प्रभाव है। बंगला उपन्यासों का उर्दू लेखकों पर जتنا प्रभाव नहीं पड़ा जितना हिन्दी उपन्यासकारों पर।

एम० बालम, रसि जाफरी तथा नसीम हजाजी ने उर्दू में ऐतिहासिक उपन्यास लिखे परन्तु हिन्दी कथा-साहित्यकार, वृन्दावन-लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री तथा राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों से निम्न-कौटि के हैं। उर्दू के कथाकारों ने इतिहास की कौई अधिक परवाह नहीं की क्योंकि उर्दू कथान साहित्यकार ऐतिहासिक घटनाओं से अधिक रोमान्स और प्रेम की ऐतिहासिक उपन्यास की बाधाएँ शिवा समझते हैं। वर्माजी की कृति 'मृगनयनी' ऐतिहासिक अधिक है, रोमान्टिक कम। हिन्दी उर्दू कथा साहित्यकारों का केन्द्र उत्तर-प्रदेश, पंजाब तथा दिल्ली ही रहा है तथा दोनों साहित्यकारों के समस्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और वार्षिक परिस्थितियाँ तथा समस्याएँ एक ही रही हैं। इस कारण विधवा, वेश्या, कूत, मजदूर, देश की स्वतन्त्रता, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, गरीबी और बेकारी बादि से सम्बन्धित प्रश्नों ने दोनों भाषाओं के कथा-साहित्यकारों को सोचने और

बीर समाधान हूँ ने के लिए प्रेरित किया। वास्तव में हिन्दी साहित्य ने नई उर्दू साहित्य को अधिक प्रभावित किया है। हिन्दी में प्रभाकर माचवे, गोपाल शेरडे ने जो स्थान हिन्दी कथा-साहित्य में प्राप्त किया वही उर्दू क्षेत्र में राजेन्द्रसिंह बेदी, कृष्ण चंदर, पंडी एवं कसमत् चुगताई ने की है। दोनों ही कथा-साहित्यों पर गांधीवाद का विशेष प्रभाव है।

बाव हिन्दी उर्दू उपन्यास क्षेत्र में गत्यावरोध की बात कहीं पा रही है कि मुन्शी प्रेमचंद के उपरान्त हिन्दी उर्दू में कच्चे उपन्यास नहीं लिखे गये। यह बात बसंतः सत्य नहीं है। आधुनिक काल के हिन्दी-उर्दू कथा साहित्यकार मनोविज्ञान से आयात लेकर भी उसकी रचना से परिचित हैं। व्यक्ति को निष्ठा, सद्व्यवहार और देवीय प्रवृत्तियों में विश्वास होने के कारण वे व्यवहार के भ्रमों के साथ साथ मानव मन के देवालयों की कार्यियाँ भी प्रस्तुत करते हैं। मनोविज्ञान के अधिकारी प्रयोग, प्रकृतिवादी कसौखता प्रयोगवाद केनाम पर वह जूल प्रवृत्तियों से हिन्दी तथा उर्दू साहित्य मुक्त हो जाता है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें यह दोष है या नहीं। कथाकार के लिए यह वास्तविक नहीं कि वह पात्रों के आत्मनिवेदन के स्थान पर उन्हें अपने लयादे फावावे और अपनी ही फाँटियों पर मोड़े। नये कथाकार सिद्धान्त को लेकर चलते हैं और जीवन उस प्रकार उस प्रकार अभी प्रारम्भ नहीं होता। यह दोष विशेष रूप से समाजवादी उपन्यासकारों की कृतियों में पाया जाता है। इस विकृति के मूल में कथानुकरण की प्रवृत्ति तथा नवनिता के प्रति लोभ है। कुछ लेखकों का उद्देश्य पात्रों की जीका ह ह देने वाली बात कहना होता है जिससे उनकी कृतियों में अर्थ गाम्भीर्य का स्थान आम्नी संकलन ने ले लिया है। मूल्यों की मौलिकता की बात गौड़कर, मानसिक विलक्षणता के चित्रण का सम्मान हुवा है।

हिन्दी तथा उर्दू में कभी एक विश्व उपन्यास है जो छुड़ लिया गया है उसका बहुत कुछ वीर अनुकरण तथा लपहरण के रूप में ग्रहण किया है। उदाहरण के लिए प्रेम के विविध चित्र जबकि पाश्चात्य लेखकों ने स्यान्धुति में लिखे हैं, हमारे यहाँ के उपन्यासकारों ने अनुकरण, क्लृप्त-एल एवं वस्तुस्थिति के कारण उन्हें विकृत कर दिया है। हमारे यहाँ प्रेम-कथा काम-कथा बन गई है क्योंकि सभी प्रेम-कथा के लिए आवश्यक अनुभूति तथा उस अनुभूति को कलात्मक ढंग से चित्रित करने की कुशलता एवं सत्य निष्ठा का यहाँ अभाव है। हमारे भारतीय शताब्दियों से स्वप्नदर्शी रहे हैं, मनमोहकों के लम्बस्त। अतः बाव यथार्थवाद के उपासक होते हुए भी यदि हमारे कथाकार उस मनोवृत्ति से प्रभावित हो तो लक्ष्यचक्यं वाच्यं नहीं। साहित्य एक मोलक स्वप्न व्यवस्था है, पर वह बागुलावस्था का है, सुप्तावस्था का नहीं। हमारी संस्कृति के मूल्योक्ति में रणिव राज्य, चतुर्सेन शास्त्री का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है, उसी प्रकार उर्दू साहित्य में बैदी, मन्टी, कुश्न पंदा, लसमत, लीकत, धानवी आदि का नाम विशेष प्रशंसनीय है।

राज का जीवन लम्बस्त व्यस्त है। च पाठकों के पास चार हाँ फनी का उपन्यास पढ़ने का समय नहीं है। बाब कहानी का युग है। दोनों कथाकार कहानियों के विकास में योगदान कर रहे हैं। बाब का कहानीकार एक ऐसी अवस्था तक पहुँच गया है जहाँ कि व्यक्ति और उसकी समस्या में अन्तर्गच्छ है। व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति के साथ जीवन से जुड़ा हुआ है। बाब व्यक्ति का पक्षिण प्रकाश की लोच में है इस कारण उसने शिल्प और वस्तुगत विशेषताओं को अफाया है।

उन पचास वर्षों के जीवन काल में हिन्दी उर्दू कथा-साहित्य ने सामाजिक जीवन की व्यापक परिस्थितियों को चित्रित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न करते हुए बीच बीच में पाठकों की तिसिस्मों की तरफ कराई

है तथा भाव लोक के मनोरम दृश्यों का परिचय दिया है । हम मानते हैं कि दोनों भाषाओं के लेखकों में कुछ कमियाँ हैं और कुछ समय परचाह समाप्त हो जावेगी । अतः इन प्रासंगिक न्यूनताओं को देखकर सज्जित होने का कारण नहीं है । पश्चात्त्य कथा-साहित्य की तीन सौ वर्षों की विकास यात्रा को हिन्दी तथा उर्दू ने पिछले साठ वर्षों में पूर्ण किया है । जिस कथानुसार साहित्य ने प्रसाद की संवेदना, जैन्द्र की कलात्मकता वर्मा जी का इतिहास कुशल चित्रण तथा प्रेमचंद का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया है जिसमें शिल्प के कई विविध रूप, भाषा का सख्त माधुर्य और मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन विद्यमान है जिसके कथाकारों प्रेमचंद, हादी अहमद, गुलशान, जैन्द्र, वेदी, कुशल, पन्टी आदि की कृतियों का अनेक विदेशियों ने सम्मान दिया है, उसका गौरव है ।

हिन्दी तथा उर्दू कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

(२० वीं शती में)

(अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)



निक
डा० हरवंशल शर्मा
प्रोफेसर, अध्यक्ष
हिन्दीभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

1971

प्रस्तुतकर्ता
रमेशचन्द्र शर्मा
एम० ए०, साहित्यरत्न



T1011

विषयानुक्रमिका

हिन्दी उर्दू कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
(बीसवीं शताब्दी में)

निवेदन

प्रथम अध्याय :

विषय प्रवेश

(हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक परिवेश)

(तुलनात्मक अध्ययन की आधारभूत सामग्री)

द्वितीय अध्याय :

कथा-साहित्य

अ- सामान्य विवेचन

ब- कथा और उपन्यास तत्त्व विवेचन (कथावस्तु,

चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश काल तथा

वातावरण, वर्णन शैली , उद्देश्य)

स- वर्गीकरण

तृतीय अध्याय :

कथा साहित्य में प्राचीन परम्पराएं और नवीन
प्रयोग

१- हिन्दी (बौद्ध जातक, संस्कृत का परवर्ती,
नीति-सम्बन्धी, काव्यात्मक कथाएं,
प्राकृत , अपभ्रंश में कथा का स्वरूप,

कथा साहित्य में कथा तत्व, मध्यकालीन हिन्दी
आस्थानिक काव्य का द्विवेदी, क्लृपावादी, प्रगति-
वादी, प्रयोगवादी)

२- उर्दू - (फारसी साहित्य, विदेशी, बंगला,
ईरानी आदि)

चतुर्थ अध्याय :

हिन्दी का आधुनिक कथा साहित्य

(आरंभिक काल, निर्माणकाल, विकास
काल, विस्तारकाल)

प्रथम खण्ड (कहानी) आरंभिक काल, शैशवकाल,
निर्माणकाल, विकास काल एवं आधुनिककाल ।

द्वितीय खण्ड (उपन्यास) यथार्थवादी, सामाजिक
उपन्यास, स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, मनोवैज्ञानिक
उपन्यास एवं ऐतिहासिक उपन्यास ।

पंचम अध्याय :

उर्दू का आधुनिक कथा-साहित्य

प्रथम खण्ड (कहानी) १९०० से १९६४ तक,
स्वतन्त्रता से पूर्व की कहानियाँ, बाद की
कहानियाँ, नये कहानिकार १९४७ -६४ ।

द्वितीय खण्ड (उपन्यास) सन् १९०० से पूर्व
उपन्यास की कला, १९०५ से १९४७ तथा सन्
४७ से ६४ तक के उपन्यास एवं उपन्यासकार ।

षष्ठ अध्याय :

हिंदी तथा उर्दू कथा साहित्य की तुलना

- (अ) हिन्दी तथा उर्दू उपन्यास साहित्य की तुलना
हिन्दी उपन्यास साहित्य की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप, उर्दू उपन्यास साहित्य की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप, विभिन्न तत्वों के आधार पर, विषय वस्तु की दृष्टि से, कला विधान की दृष्टि से, चरित्र चित्रण की दृष्टि से, भाषा एवं शैली की दृष्टि से, प्रतिपादन शैली से, घटनाओं के आधार पर दोनों उपन्यासकारों में मौलिक भेद, विदेशी प्रभाव एवं देशीय प्रभाव के कारण, परिस्थितियाँ एवं कारण, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक परंपराएँ तथा विकास में वैभिन्न्य का कारण ।

- (ब) हिन्दी तथा उर्दू कहानी साहित्य की तुलना

हिन्दी की कहानी साहित्य की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप, उर्दू कहानी की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप, सामान्य परम्पराएँ, भिन्न परम्पराएँ, कारण, परिस्थितियाँ, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक परंपराएँ तथा विकास में वैभिन्न्य किन कारणों से हुआ । विभिन्न तत्वों के आधार से तुलना, विषय वस्तु एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से,

घटनाओं एवं कथोपकथन की दृष्टि से, कहानी
का दोनों भाषाओं में आधुनिक रूप तथा दोनों
भाषाओं के कहानीकारों का भविष्य ।

सप्तम अध्याय :

उपसंहार

परिशिष्ट

सहायक पुस्तकों की सूची

१- हिन्दी

२- अंग्रेजी

३- उर्दू

४- पत्र- पत्रिकाएं

५- उर्दू के प्रमुख कहानीकारों की सूची

६- हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों की सूची

७- उर्दू के प्रमुख उपन्यासकारों की सूची

८- हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों की सूची

निवेदन

आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व अक्षय परम पुण्य गुरुवर
डा० हरबंस साह जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट०, प्रोफेसर एवं हिन्दी
विभागाध्यक्ष की सत्प्रेरणा से मैं अपनी रुचि और दायित्व के अनुसार
प्रस्तुत विषय को चुना । हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
बीसवीं शती का यह एक शोध की दृष्टि से अभी उपेक्षित ही था । दोनों
कथा साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक इससे पूर्व नहीं हुआ । हाँ
छोट फुट बालीचनात्मक एवं भावात्मक निबन्ध हो प्रकाशित हुए हैं किन्तु
शोध की दृष्टि से अभी तक कोई कार्य इस क्षेत्र में नहीं किया गया । अक्षय
डा० साहब की स्फूर्तिपयी सत्प्रेरणा पाकर उनकी वरस काया में इस विषय
के शोध कार्य में प्रवृत्त हुआ ।

हिन्दी उर्दू कथा साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों का
विकास जितना बीसवीं शताब्दी में हुआ है उतना उससे पूर्व नहीं। आज का
हिन्दी उर्दू कथा साहित्य इतना विकसित हो चला है कि उनकी विषय,
कला विधान तथा प्रतिपादन शैली के विचार से अन्य भारतीय तथा अमार्-
तीय कथा साहित्यों के समान रखा जा सकता है। बीसवीं शताब्दी वास्तव
में कथा साहित्य की ही शताब्दी है। पिछले दो दशकों में तो इसका विकास
चरम सीमा पर पहुँच गया है। हिन्दी की वारम्भिक उपन्यास और कहानियाँ

दूसरे प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का सामान्य विवेचन , कथा और उपन्यास तत्त्व विवेचन तथा उनका वर्गीकरण पर विस्तार से विचार किया गया है। साथ ही इन घीतों के आधार पर कथा के मूल घीतों को तीज, कथा साहित्य का अर्थ, संस्कृत, परवती साहित्य, प्राकृतिक अरवी, फारसी का प्रभाव तथा पाश्चात्य प्रभाव आदि पर यथेष्ठ प्रकाश ढाला है।

तृतीय प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में प्राचीन परम्पराएं और नवीन प्रयोग, आयावादी, प्रातिवादी, प्रयोगवादी रोमा-ण्टिक आदि का वर्गीकरण करते हुए हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में जी परम्पराएं आई और उनमें क्या क्या नवीन प्रयोग हुए उनकी बताया है।

चतुर्थ प्रकरण में हिन्दी के आधुनिक कथा-साहित्य (कहानी- उपन्यास) पर तथा पंचम अध्याय में उर्दू के आधुनिक कथा साहित्य पर प्रकाश ढाला गया है। लेखक का मन्तव्य केवल ऐतिहासिक ही नहीं वरन् वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक ढंग से आधुनिक कथा साहित्य पर यथेष्ठ प्रकाश ढालना ही है।

षष्ठ प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य (कहानी- उपन्यास) पर कला कला तुलनात्मक विवेचन करना ही लेखक का उद्देश्य है। तुलना से तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि किसी को बड़ा या छोटा सिद्ध करने का है वरन् इन दोनों में कौन कौन सी सामान्य परम्पराएं हैं और कौन सी भिन्न परम्पराएं हैं। इनके क्या कारण हैं ? तथा कौन सी परि-स्थितियां इन दोनों के मध्य आईं । सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक

निवेदन

आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व अद्वय परम पूज्य गुरुवर
डा० हरबंस सास जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, प्रोफेसर एवं हिन्दी
विभागाध्यक्ष की सत्प्रेरणा से मैं अपनी रुचि और दायित्व के अनुकूल
प्रस्तुत विषय को चुना । हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
बीसवीं शती का यह का शोध की दृष्टि से अभी उपनिर्गत ही था । दोनों
कथा साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक इससे पूर्व नहीं हुआ । हां
छुट छुट कालीवनात्मक एवं भाषात्मक निबन्ध हो प्रकाशित हुए हैं किन्तु
शोध की दृष्टि से अभी तक कोई कार्य इस क्षेत्र में नहीं किया गया । अद्वय
डा० साहब की स्फूर्तिपयी सत्प्रेरणा पाकर उनकी वरद छाया में इस विषय
के शोध कार्य में प्रवृत्त हुआ ।

हिन्दी उर्दू कथा साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों का
विकास जितना बीसवीं शताब्दी में हुआ है उतना उससे पूर्व नहीं। आज का
हिन्दी उर्दू कथा साहित्य इतना विकसित हो चला है कि उनकी विषय,
कला विधान तथा प्रतिपादन शैली के विचार से अन्य भारतीय तथा अमार्-
तीय कथा साहित्यों के समान रखा जा सकता है। बीसवीं शताब्दी वास्तव
में कथा साहित्य की ही शताब्दी है। पिछले दो दशकों में तो इसका विकास
चरम सीमा पर पहुँच गया है। हिन्दी की आरम्भिक उपन्यास और कहानियों

की रचना बंगला तथा अंग्रेजी कथा साहित्य के अनुकरण पर की गई है। उनमें कल्पना तथा कुतुहल की प्रधानता थी तथा कथा साहित्य के सांत्विक विकास का अभाव था। अब इसमें कला तथा साहित्य का उतना विकास हो गया है। आज हिन्दी तथा उर्दू कथा साहित्य की पीढ़ी का करने वाली कतिपय पुस्तकें विद्यमान हैं, किन्तु उन सबका दृष्टिकोण एकांगी अज्ञाता सीमित है। कुछ रचनाकारों के विवेचन में ऐतिहासिक आधार का अभाव है तो कुछ ने कथा साहित्यकारों के सम्बन्ध में जो निर्णय दिए हैं वे उनकी एक दो विशेषताओं के आधार पर अवलम्बित हैं। कुछ ने शिल्पविधि के विकास क्रम का इतिहास तो दिया है किन्तु उसमें वर्णित विषयवस्तु तथा प्रतिपादन शैली की व्याख्या की उपेक्षा की है। इस प्रकार अधिकांश लेखकों ने दोनों कथा-साहित्यों की गाथा तो गार्ह है किन्तु उनमें साम्य-वैषम्य परम्परा, स्वरूप उनके कारण, परिस्थितियाँ कौन कौन सी थीं, का तुलनात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करके किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं। हिन्दी उर्दू काव्य पर आलोचनात्मक ढंग से दोनों साहित्यकारों ने केवल लेखनी ही घुमाई है पर कथा-साहित्य का तुलनात्मक विवेचन शोध की दृष्टि से अभी तक कितनी विद्वान् ने नहीं किया। इन पंक्तियों के लेखक का यह प्रयास इस तथ्य की पूर्ति करने के विचार से हुआ है।

कथा-साहित्य गद्य साहित्य का एक अंग है। उसमें कल्पना, भावोन्मेष तथा मनोरंजन के साथ ज्ञान विशेष भी होता है। कथा-साहित्यकार केवल मनोरंजन करने वाला व्यक्ति ही नहीं बरन् विचारक भी है। उसके लिए विचार परम्परा की पहजा का मूल्यांकन आवश्यक है। इस शोध प्रबन्ध में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करते समय

हफने अपने निर्णय, विषयवस्तु, कला-विधान तथा प्रतिपादन शैली के आधार पर दिए हैं। उनमें किन किन बातों पर साम्य, वैषम्य, इनका क्या कारण तथा परिस्थितियाँ आदि का पूर्ण ध्यान रखकर ही लेखक ने दोनों का शोध की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में यह सीजने का प्रयत्न किया है कि हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में किन किन बातों में साम्य और किन किन बातों में वैषम्य है और इसका क्या कारण और परिस्थितियाँ हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में भरा यह मन्त्रव्य कदापि नहीं है कि वे पूरी तौर पर बिना किसी नुकताचीनो या अन्तर वैषम्य के खसतों है अथवा उन्हें छोटा या बड़ा या एक दूसरे से हीन या श्रेष्ठ सिद्ध करने का हमारा उद्देश्य है। सैद्धान्तिक साँची अथवा स्थूल आकारों तक ही किसी के कृतित्व की बाँधने की अपेक्षा समान प्रवृत्ति वाले दो विवेच्य कलाकारों की गम्भीर विचार मंथन द्वारा समझने का प्रयत्न करते हुए उनको रचना शैली, चिन्तन प्रक्रिया कल्पना को पैठ, विषयानुरूप सही सही मूल्यांकन करने की दायता उनको सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि एवं समानदारी साथ ही उनके साहित्य की ऐतिहासिक प्रेरक शक्तियाँ एवं गत्यात्मक धाराओं से सापेक्षता का सम्बन्ध स्थापित करने पर अधिक ध्यान दिया है। हिन्दी उर्दू कथा साहित्य को परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप, कथा-साहित्यों में कौन सी परम्परा उर्दू में पहले आई या हिन्दी कथा साहित्य में कौन सी परम्पराएं सामान्य हैं, किनमें वैषम्य है, कारण परिस्थितियाँ, प्रभाव फारसी, अरबी, बंगला अंग्रेजी आदि और किन कारणों से वैभिन्न हुआ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिस्थितियों आदि का अध्ययन किया गया है।

अधिकांश कालीचक्रों ने हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का आरम्भ बीसवीं शताब्दी ही माना है इसलिए उन्होंने बीसवीं शताब्दी ही माना है। इसलिए उन्होंने बीसवीं शताब्दी के पूर्व का विवेचन नहीं किया। किन्तु १६ वीं शताब्दी कथा साहित्य का निर्माण काल है, जिसमें उनकी एक स्वतन्त्र परम्परा के दर्शन होते हैं। अतः हिन्दी कथा साहित्यों का अध्ययन करने के लिए उनके प्राचीन तथा आधुनिक दोनों साहित्यों का अनुशीलन तथा विवेचन करना आवश्यक है।

हिन्दी उर्दू कथा साहित्यों के भिन्न भिन्न कालों को रूप व्याख्या समय समय पर चलती रही है। विद्वानों ने इनका स्वरूप निर्धारण करते समय भिन्न भिन्न मत प्रकट किए हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हिन्दी तथा उर्दू कथा साहित्य के भिन्न भिन्न प्रयोग सामने आये, उनकी रूप स्थिरता मिली। काल क्रम के आधार पर भारतीय कथा साहित्य का विकास संस्कृत, प्राकृत, तथा अपभ्रंश आदि साहित्यों से होता हुआ आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं तक आया है, इसी प्रकार उर्दू कथा साहित्य फारसी बंगला से प्रभावित होकर आधुनिक उर्दू भाषा तक आया है। भारतीय कहानी साहित्य पर मुस्लिम कहानियों का भी विशेष प्रभाव पड़ा। बंगला कहानियों ने भी हिन्दी कहानीकारों को कहानी रचना में पर्याप्त प्रेरणा दी।

साहित्यिक विचारों का अनुसंधानकर्ता या तो किसी नवीन तथा मौलिक विचार परम्परा को उपस्थित करता है अथवा पूर्व संचित ज्ञान राशि का विश्लेषण तथा पुनर्वर्गीकरण करता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में

दूसरे प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य का सामान्य विवेचन , कथा और उपन्यास तत्त्व विवेचन तथा उनका वर्गीकरण पर विस्तार से विचार किया गया है। साथ ही इन श्रोतों के आधार पर कथा के मूल श्रोतों को तीज, कथा साहित्य का अर्थ, संस्कृत, परवर्ती साहित्य, प्राकृतिक बरवी, फारसी का प्रभाव तथा पाश्चात्य प्रभाव आदि पर यथेष्ट प्रकाश डाला है।

तृतीय प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में प्राचीन परम्पराएं और नवीन प्रयोग, छायावादी, प्राक्वादी, प्रयोगवादी रोमा-ण्टिक आदि का वर्गीकरण करते हुए हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में जो परम्पराएं आईं और उनमें क्या क्या नवीन प्रयोग हुए उनकी बताया है।

चतुर्थ प्रकरण में हिन्दी के आधुनिक कथा-साहित्य (कहानी- उपन्यास) पर तथा पंचम अध्याय में उर्दू के आधुनिक कथा साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। लेखक का मन्तव्य केवल ऐतिहासिक ही नहीं बरन् वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक ढंग से आधुनिक कथा साहित्य पर यथेष्ट प्रकाश डालना ही है।

आठ प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य (कहानी- उपन्यास) पर अलग अलग तुलनात्मक विवेचन करना ही लेखक का उद्देश्य है। तुलना से तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि किसी को बड़ा या छोटा सिद्ध करने का है बरन् इन दोनों में कौन कौन सी सामान्य परम्पराएं हैं और कौन सी भिन्न परम्पराएं हैं। इनके क्या कारण हैं ? तथा कौन सी परि-स्थितियां इन दोनों के मध्य आईं । सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक

हिन्दी तथा उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है वह दूसरी कोटि का है। इस अध्ययन प्रक्रिया में हिन्दी उर्दू के उपलब्ध प्रमुख उपन्यासों एवं कहानियों का वर्गीकरण करने उनकी साम्य एवं वैषम्य विशेषताओं का विश्लेषण, विषय, कला विधान तथा शैली के आधार पर करने में ही लेखक ने अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। इस शोध कार्य में लेखक कितना सफल हुआ है, यह बतलाना लेखक का अपना कार्य नहीं, यह तो उनकी विवेकी पाठकों का कार्य है जो किसी रचना की वाणीपान्त धर्मपूर्वक पढ़कर अपना स्वतन्त्र मत निर्धारित करने में पटु है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात प्रकरणों में विभक्त है।

प्रथम प्रकरण में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में तुलनात्मक परिवेश एवं तुलनात्मक अध्ययन की आधारभूत सामग्री बताई है उस पर प्रकाश डाला गया है। दोनों भाषाएँ सही बीली से विकसित हैं। दोनों का मूल एक ही है। उर्दू काव्य की परम्परा फारसी से प्रभावित है, परन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। कला साहित्य में तो आश्चर्यजनक समानता मिलती है। प्रारम्भ में दोनों भाषाओं के कथाकारों का दृष्टिकोण मनोरंजन ही प्रदान करना था इसके उपरान्त विदेशी प्रभाव के कारण सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक यथार्थवादो प्रगतिवादो प्रयोगवादो विचारधारा साहित्यकारों की रचना का ग्रीत बनों । आधुनिक युग में दोनों भाषाओं के कथाकारों का जो नवीन दृष्टिकोण शिल्प एवं कला की दृष्टि से अपनाया गया है, उसका यथेष्ट मौलिक एवं नवीन विवेचन किया गया है।

एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उसका पूर्ण विवेचन किया गया है। दोनों में कल्पना भाव, रचना कौशल, विषयावस्तु तथा चरित्र - चित्रण एवं तत्त्व विवेचन की दृष्टि से ही तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। दोनों कथा साहित्यों (हिन्दी-उर्दू) का निर्माण काल, उत्कर्षकाल में पश्चिमी साहित्य का प्रभाव तथा आधुनिक युग में इसका स्वरूप तथा भविष्य में क्या होगा ? इस पर पूर्ण विचार किया गया है। दोनों कथा-साहित्यों में परम्परा एवं विकास में वैभिन्न्य किन कारणों से हुआ ? कौन सी परम्पराएं उर्दू में पहिले आईं तथा कौन सी परम्पराएं हिन्दी कथा-साहित्य में प्रविष्ट हुईं, कारण विदेशी प्रभाव, बरब और फारस का प्रभाव इसका पूर्ण विवेचन कर लेखक एक निष्कर्ष पर पहुंचा है।

अन्त में उपसंहार में लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह दोनों ही कथा- साहित्य एक दूसरे के कण्ठी हैं। दोनों में केवल एक ही प्रकार के कथा तत्व हैं केवल नाम का ही अंतर है। भविष्य में दोनों ही कथा- साहित्यकार अपनी वृहत् दृष्टिकोण से नवीनता प्रदान करते हुए इसे समृद्धिशाली बनायेंगे ।

प्रस्तुत शीथ प्रबन्ध का प्रणयन भूज्य गुरुवर डा० हरबंस लाल जी शर्मा के स्नेह, मार्ग दर्शन और सहयोग का परिणाम है। ऐसे गुरुवर के तत्वावधान में अपना कार्य सम्पन्न करके मेरा जोधन धन्य होगया । यह उन्हीं की कृपा एवं आशीर्वाद का फल है कि मैं इस कार्य के सम्पन्न करने में सफल रहा । उनकी ओर से केवल मार्गदर्शन ही नहीं प्राप्त हुआ बरन सामग्री संकलन से लेकर हर प्रकार की सहायता प्राप्त रही है। परम प्रभु की अनन्त कृपा से यह प्रबन्ध पूरा होगया । अतएव इस

प्रबन्ध के दीर्घ प्रणयन काल में जिन मनोष्ठी विद्वानों, साहित्य सेवियों और साहित्य संग्रहालयों के प्रबन्धकों के निष्कट सम्पर्क में आया हूँ और जिन्होंने मुझे किसी प्रकार का भी सहयोग प्रदान किया है, उनका हृदय से धन्यवाद हूँ।

इस शोध कार्य के करने में मुझे जिन महानुभावों से पूर्ण प्रेरणा प्राप्त हुई तथा जिन्होंने इस कार्य में धैर्य सहायता की है, उनमें से प्रमुख उर्दू विभाग के अध्यक्ष श्री० सरदार साहब हैं, जिन्होंने मुझे उर्दू कथा साहित्य पर मार्गदर्शन कराया तथा श्री मजबूत गीरसपुरी, रोडर उर्दू विभाग का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे तीन वर्षों तक उर्दू कथा साहित्य के मूल प्रीति का ज्ञान कराया। श्री मजबूत गीरसपुरी हिन्दी उर्दू कथा साहित्य के उद्भट विद्वान् हैं। उन्होंने इस शोध ग्रन्थ की पूरा कराने में अपना सहयोग दिया। मैं इन सबका हृदय से आभारी हूँ। डा० राम विलास शर्मा, श्री० रहतशाह, डा० प्रतापनारायण टंडन आदि महानुभावों ने मुझे उत्प्रेरणा दी है। अतः इन सभी विद्वानों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

इसके अतिरिक्त आजाद लाइब्रेरी के उर्दू विभाग के पुस्तकालय प्रभारी, काशी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय अध्यक्ष, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, आगरा विश्वविद्यालय, सेंट जॉन्स कॉलेज आगरा, के० एम० एच० इन्स्टीट्यूट, आगरा, जॉन्स पब्लिक लाइब्रेरी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, मालवीय पुस्तकालय, अलीगढ़ एवं भारत प्रकाशन पंडित, अलीगढ़, श्री जैनन्दा जो, डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, श्री

हरिशंकर पहाड़ी, उषादेवी मित्रा, कमलादेवी चौधरी आदि विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया तथा विभिन्न पुस्तकालयों आदि के प्रबन्धकों अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर अपने अपने पुस्तकालयों से उपयोगी सामग्री देने को अनुमति एवं सुविचार प्रदान करके इस शोध कार्य में मेरी पर्याप्त सहायता की है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के सहायक रजिस्ट्रार श्री मुहम्मद अली साहब का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मुझे आशा, धैर्य एवं आर्थिक सहायता प्रदान करके यह कार्य सम्पन्न कराया ।

अन्त में मैं विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रो० और विश्वविद्यालय सङ्ग्रहालय इतिहासज्ञ प्रो० मुहम्मद अब्दुल साहब, बी०ए० (आक्सन) आनर्स, बार-एट० ला, डी०लिट् का सच्चे हृदय से जीवन भर ऋणी रहूँगा जिन्होंने मुझे पितृ-तुल्य स्नेह प्रदान कर समय समय पर आर्थिक सहायता देते हुए मेरे इस शोध कार्य की सम्पन्न कराया । उनकी मानवता सज्जनता, सच्चरित्रता, अध्ययनशीलता, सहानुभूति एवं पितृ तुल्य स्नेह सदैव मेरे हृदय पटल पर अंकित रहेंगे ।

एक बार पुनः मैं उन सभी महानुभावों एवं उष्ट मित्रों को भी धन्यवाद देता हूँ जिनकी प्रत्यक्षा एवं परीक्षा रूप से मुझे सहायता प्राप्त हुई है और जिनकी सद्भावनाएं सदैव मेरे साथ रही हैं। मैं बस महानुभावों से विचार विमर्श करके तथा विभिन्न मूल ग्रन्थों का अनुशीलन कर इस प्रबन्ध को जैसा सम्पन्न है वैसा ही शुद्ध अन्तःकरण से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यदि इसमें कोई त्रुटि है तो उसका सम्स्त दायित्व मुझे पर है- मेरा अज्ञान एवं अविवेक उसका एक मात्र कारण है। मेरा निवेदन है कि सङ्कट पाठक मेरी भावना के साथ सादात्म्य स्थापित करके इस ग्रन्थ में प्रति-

पादित विषयवस्तु को हृदयंगम करने का अनुग्रह करें । पदापात एवं रागद्वेष
के मत्तिन वातावरण को दूर रखकर ही माधुर्य भाव में निष्पञ्चित होना
संभव है। वन्त में मैं पुनः सभी महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

१ जनवरी १९७१

विनीत,
रमल चन्द्र शर्मा

प्रथम अध्याय

हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाएँ उड़ी बोली से विकसित हुई हैं अर्थात् दोनों का मूल एक ही है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। बीसवीं शताब्दी में दोनों ही भाषाओं में विपुल साहित्य की सर्जना हुई है- गद्य और पद्य दोनों में। उर्दू काव्य की अपनी एक परम्परा रही है जो कात्सी से अधिक प्रभावित है इसलिए ऐली की दृष्टि से 20 वीं शताब्दी की उर्दू पद्य में हिन्दी पद्य की अपेक्षा चाहे जितना वैभिन्न्य हो, विषय वस्तु की दृष्टि से यह भेद न्यूनतर होता गया है। कला-साहित्य में ती वास्तव्यजनक समानता मिलती है। अपने इस नियन्ध में उर्दू और हिन्दी के बीसवीं शताब्दी के उर्दू हिन्दी के कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है।

“कहानी” तथा “उपन्यास” ये कलात्मक गद्य-साहित्य के नवीन रूप हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में इनके स्थान में “कथा” तथा “वात्स्यायिका” शब्दों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत के वाचार्यों ने विषय वक्ता शैलीगत विशेषताओं के आधार पर “कथा” तथा “वात्स्यायिका” की स्वल्प व्याख्या का स्वतन्त्र रूप निर्धारित न कर सके। भाषा ने कथा साहित्य के दो रूप कथा तथा वात्स्यायिका स्वीकार किए। वस्तुतः ये एक वस्तु के दो नाम हैं। बाप इनके स्थान में “उपन्यास” तथा “कहानी” शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बाप कहानी का जो रूप अब स्वीकार किया जाता है उसका प्राचीन “कथा” तथा “वात्स्यायिका” से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। वाधुनिक “कहानी” तथा “उपन्यास” प्राचीन कथा तथा “वात्स्यायिका” से कुछ सीमा तक स्वतन्त्र रूपनाएँ हैं। प्राचीन कथाओं में घटनाएँ बिना किसी व्याघात के क्रमिक रूप से विकसित होती थीं जबकि वर्तमान “उपन्यास” तथा “कहानी” में घटनाओं का विकास कुछ टूटा तथा चपत्कारपूर्ण हो जाता है। बाप का कलाकार घटनाओं

की धारावाहिकता के साथ साथ भाव और रचना कौशल के समतकार का भी ध्यान रहता है तथा प्राचीन कलाकारों की अपेक्षा मौलिकता का अधिक प्रदर्शन करता है। उपन्यास तथा कहानी दोनों में कला की प्रधानता होती है। दोनों की कथावस्तु जीताजी जैसा पाठकों में कुतूहल जागरूक कर उनकी अपनी और वाकचर्चा करती है। दोनों में वस्तु, पात्र, संवाद आदि का संवेदन रहता है।

रचना-काल की दृष्टि से भारतीय कथा-साहित्य बहुत प्राचीन है। संस्कृत में कथा साहित्य का जो रूप विकसित हुआ है वह विषय, प्रतिपादन शैली तथा स्वरूप विकास की दृष्टि से सीमित था। उसमें पर्याप्त कथा साहित्य के सब तत्वों के दर्शन नहीं होते। वह केवल संवाद कथानक तथा पात्र सम्बन्धी समतकार उपस्थित करने तक ही सीमित रहा। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की यह परम्परा मध्य युग तक बराबर चलती रही इसके पश्चात् उसका सम्पर्क मुस्लिम कथा साहित्य से हुआ। तन्त्राटपा-फिराजों का फारसी अनुवाद सन् ५७० में हुआ। यह अनुवाद फारस से सीरिया आया होता हुआ योरोप पहुँचा। पैतंत्र की प्रसिद्ध कहानी "कालिदास" और "दमस्त" का अरबी अनुवाद "कलिला" और "दिमिना" के नाम से हुआ। पैतंत्र के विस्तार का फारसी अनुवाद सन् १५७७ में हुआ। "शुभ संस्तति" का फारसी अनुवाद "सुखीनामा" के नाम से १४ वीं शताब्दी में हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय कथा-साहित्य का प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार उर्दू कथा साहित्य पर पड़ा।

सलामी देशों का भारत के साथ सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पुराना है। भारत में मुस्लिम साहित्य का प्रभाव महमूद गजनवी के समय से स्पष्ट रूप में दिखलाई देने लगता है। यद्यपि अफ-

गानिस्तान फारस तथा पश्चिमी एशिया का कथा साहित्य भारतीय प्रभाव से बहुत न रह सका । फारस के सुफी साहित्य पर भारतीय कथवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष की कहानियों के अनुवाद फारसी, बर्बी तुर्की आदि अनेक भाषाओं में हुए हैं। हिन्दी का फारसी के उस रूप से जो मुसलमानों के भारत में आने के बाद विकसित हुआ, विशेष सम्बन्ध है। दोनों भाषाओं में, एक दूसरे के ग्रंथों की ग्रहण करने की प्रवृत्ति का भिन्नता स्वभाविक है। भारत में ईरानी भाषा का प्राचीनतम लेख बल-बहनी माना जाता है। वह बर्बी फारसी और संस्कृत का मिश्रण था । ११ वीं शताब्दी के आरम्भ में बहसलैह और बकुल ससन अर्कि जिली ने महा-भारत का अनुवाद फारसी भाषा में किया । मुगलकाल में फारसी साहित्य की अभिवृद्धि के कारण कथा-साहित्य की भिन्न २ खाने सामने आईं । बहाउनी ने महामात का फारसी अनुवाद 'रजनामा' के नाम से किया । बकुल फजल ने संस्कृत कथा के आधार पर 'बयोर दानेश' की रचना की । मुगलकालीन अनेक अनुवाद कर्ताओं का उत्तम इतिहासकारों ने किया है। इस समय संस्कृत तथा हिन्दी कहानियों का समुचित प्रभाव मुसलिम जनता पर पड़ा । सुफी मुसलमान कवियों ने भारतीय हिन्दू कवियों कथाओं के आधार पर बीत्वास की अवधि में भी कुछ कहानियाँ लिखी । मलिक मुहम्मद जायसी, कृतवन, फैज़न रचनाकारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। हिन्दी और उर्दू के साहित्य इस समय स्वतन्त्र रूप से विकसित हो रहे थे किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय साहित्य का प्रभाव फारसी पर अधिक पड़ा ।

भारतीय कथा-साहित्य का व्यापक प्रभाव उर्दू साहित्य पर पड़ा । इब्ननिशाती ने संस्कृत 'शुक रचसति' के आधार पर 'सुतीनामा' मस्तफरी ने 'गुलशने इस्क' की रचना की । सेय्यद हैदर बरक

ने 'तीता कहानी' तथा भीरु अपने ने 'बागी बहार' की रचना की। तात्पर्य यह है कि मुस्लिम काल में जिस भारतीय कथा साहित्य का विकास हुआ उसमें देशी और विदेशी एक कथाकारों का योग था। इस काल की कहानियाँ में हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों का प्रतिबिम्ब मिलता है। ये कहानियाँ वाक्यात्मक, सांसारिक, प्रेम प्रधान मनोरंजनात्मक ही थीं। इनमें कल्पना का चमत्कार मिलता है। इनमें पात्रों की वपेता कथावस्तु का चमत्कार अधिक वाक्यार्थक है। तिलस्म या जासूसी प्रवृत्ति के दर्शन इनमें सर्वत्र होते हैं। इस परम्परा का निर्वाह मुस्लिम काल से आगे भी होता रहा। हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों के सम्पर्क ने जिस कथा-साहित्य का सृजन किया उसमें वाक्यात्मक तथा लौकिक दोनों प्रकार का जीवन चित्रित किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों का आरम्भ उर्दू कहानियों की वपेता कुछ बाद में होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी कहानियों का आरम्भ होने से पूर्व देश में कथा-साहित्य की एक व्यापक परम्परा थी।

पौराणिक काल के अन्तर्गत सभी परम्परागत कथाओं की रचना हुई। इस काल की कहानियाँ में 'कथा - साहित्य' विषय, प्रतिपादन शैली तथा स्वरूप विकास की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ जाता है। मुस्लिम काल में कहानी कला के जितने प्रयोग हुए उनमें पात्रों की वपेता प्यनारें अधिक वाक्यार्थक हैं जिनमें तिलस्म तथा जासूसी प्रवृत्ति की स्थान मिला है। स्वरूप विकास की दृष्टि से 'कहानी' के सब तत्वों के दर्शन नहीं होते। का: हिन्दी उर्दू कथात्मक साहित्य का जो इतिहास उपलब्ध है उसमें विषय प्रतिपादन शैली तथा स्वरूप विकास की स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

१६ वीं शताब्दी में वात्स्यानात्मक साहित्य की रचना वारम्भ हुई। यद्यपि इस शताब्दी की समाप्ति तक कथा-साहित्य का कोई निश्चित रूप निर्धारित नहीं हो सका था किन्तु इस दिशा में कहानी-कारों के सतत प्रयास बराबर होते रहे। इस समय किसी नाम से रचना के एक ऐसे रूप के का व्यापक प्रयोग किया गया जिसमें समन्वय की व्याख्या व्यापक शैली में की जाती थी। उसमें कोई प्रेम कहानी अवश्य रहती थी। इस समय कथा साहित्य के एक ऐसे रूप का प्रयोग मिलता है जिसकी रचना हुई तो कहानी के ही नाम से किन्तु उसकी अभिव्यक्ति शैली में फ़ोवर पद्यति को अपनाया गया। इसका विषय प्रेम ही होता था।

यद्यपि १६ वीं शताब्दी में कहानी कला के भिन्न २ प्रयोग उपस्थित किये गये परन्तु इनमें कहानी के सभी तत्वों का समावेश न हो सका। जाधुनिक कथा-साहित्य में वस्तु, पात्र, संवाद, उद्देश्य शीर्षक वारम्भ वन्त तथा भाषा शैली की स्वतन्त्र तथा निश्चित विशेषताएँ हैं, परन्तु इस दृष्टि से १६ वीं सदी की कहानियाँ बहुत पीछे हैं। अब कहानी में रौनकता लाने के लिए भाव तथा कल्पना का समुचित प्रयोग होता है। गत शताब्दी की कहानियाँ पौराणिक परम्परा के अधिक निकट हैं उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से कम और कल्पनामय जीवन से अधिक है उनमें सितरुम जादू तथा कृतकता का विशेष योग है। वाक्य की दृष्टि से कहानियाँ कुछ लम्बी हैं इनकी लघु उपन्यास कहें तो व्युत्पन्न न होगी। इनमें फ़ोवर तथा उर्दू का भी प्रभाव विप्लव है।

बीसवीं शताब्दी के वास्तविक दश वर्षों में कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी गईं जिनका उद्देश्य कोई उपदेश अपना सिद्धा देना

रहता था । ये कहानियाँ पौराणिक कथानकों के ढंग पर चलती थीं । कहानियाँ ही कथावस्तु, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्रतीकात्मक तथा रहस्यात्मक ग्रहण की गईं । हिन्दी की आधुनिक कहानियों का आरम्भ 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन काल से ही गया था । विकासशील भावमूलक आदर्शवादी कहानियों का आरम्भ १९११ से ही प्रारम्भ हो गया था । चार वर्ष बाद एक नवीन तथा स्वतन्त्र कला संस्थान की प्रतिष्ठा प्रेमचन्द की कहानियों द्वारा हुई । आदर्शान्मुख यथार्थवादी परंपरा के कथानीकारों में मुन्शी प्रेमचन्द का प्रथम स्थान है। ये उर्दू कथा-साहित्य के क्षेत्र में सन् १९०१ में ही प्रकाशनात्त कर चुके थे परन्तु हिन्दी में उनकी रचनाएं सन् १९१५ से शुरू नहीं मिलती । कथाकार प्रेमचन्द जी का जीवन उर्दू उपन्यास तथा कथन रचना से प्रारम्भ होता है। उन्होंने उर्दू में १७ कहानियाँ लिखीं जो उर्दू की प्रसिद्ध पत्रिका 'जमाना' में निकली । उनकी प्रायः सभी उर्दू कहानियाँ हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। ये उर्दू से हटकर हिन्दी कथा-साहित्य की ओर मुड़े और २९ वर्ष तक हिन्दी उपन्यास तथा कहानियों की रचना करते रहे । उनकी कथा-विशेष का प्रथम संग्रह 'सौजन्य' में नवाब राय के नाम से हुआ । उनकी उर्दू कहानियों में भारतीय जीवन के विविध रूप प्रदर्शित होते हैं। प्रेमचन्द १७ उर्दू कहानियों में व्यावहारिक भाषा तथा वर्णनात्मक शैली का पर्याप्त अभ्यास कर चुकने के बाद हिन्दी की ओर मुड़े थे । उनकी कहानियाँ, उनके उपन्यासों की अपेक्षा कुछ पहले सामने आती हैं। इस कारण मुन्शी प्रेमचन्द प्रथम एवं महान् कथानीकार हैं। सौजन्य संग्रह में पाँच कहानियों का संग्रह है। दुनियाँ का सबसे कमोस रतन, शैल मल्लूर, यही मेरा वतन है, शैल मातम और हल्क दुनियाँजस्त वतन है। उनकी सर्वप्रथम हिन्दी कहानी 'सौत' है तथा कहानियों का सर्वप्रथम संग्रह 'सप्त सरोज' है। उनकी हिन्दी कथा-विशेष का

रचनाकाल सन् १९१५ से सन् १९३६ तक ठहरता है। उन्होंने लगभग २५० से ३०० कहानियाँ लिखीं। कौई कौई कहानी तो बैशकीमती नगीनी^० की तरह कपाल की शानदार बन पाई है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार^१ कफन^२ की मुंशी प्रेमचन्द की सर्व श्रेष्ठ कहानी बताते हैं। प्रारम्भ की कहानियों में जिनमें घटनाक्रम और वाकस्मिता की प्रधानता है।

प्रयोगकाल की कहानियाँ में भारतीय समाज का जर्जरित रूप अपने नग्न रूप में दिखाया गया है। वास्तव में मुंशी प्रेमचन्द ने समाज का पोस्टमार्टम कर दिया है और इस दम्भी समाज की कलह सील दी है। प्रेमचन्द की कहानी रचना का उद्देश्य पतित समाज की वादरी रूप में परिवर्तित करने का था। जाफ़ा दोनों (उर्दू- हिन्दी) कथा- साहित्यों पर समान अधिकार है। प्रेमचन्द उर्दू कथा- साहित्य का अभ्यास करते हुए हिन्दी की ओर वापस थे। उक्तः उनकी प्रतिपादन शैली प्रारम्भ से ही परिष्कृत रूप में सामने आती है। हिन्दी गद्य उस समय तक बहुत परिमार्जित हो चुका था। उसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्राधान्य था। इस समय उर्दू गद्य अरबी फारसीप्रिय था। हिन्दी और उर्दू की गद्य शैलियाँ अपने अपने स्वतन्त्र मार्ग पर चली चली हुई एक दूसरे से बहुत दूर हो गई थी। उर्दू गद्य हिन्दी की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक था क्योंकि उसमें मुहाविरों तथा लोकोक्तिओं का अधिक प्रयोग होता था। प्रेमचन्द ने प्रारम्भिक कहानियों में उर्दू तथा हिन्दी की स्वतन्त्र शैलियों को निकट लाने का प्रयास किया है। इन कहानियों में हिन्दी तथा उर्दू दोनों शैलियों के मिश्रित रूप की स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया गया है। यही कारण है कि कुछ समय तक उनकी भाषा ' उर्दू शब्द' बहुत हिन्दी रही। विशेषता यह है कि मुंशी प्रेमचन्द से पूर्व उर्दू के वर्णन

तथा वास्तानों के प्लॉटों पर जब तथा फार्स का अधिक अधिक प्रभाव था। मुन्शी जी ने हिन्दुस्तान के समाज से ही अपना प्लॉट तैयार किया है। क्योंकि मुन्शी जी गरीबी में पैदा हुए, गरीबी के पालने में फूटे और गरीबी में ही मरे। वे जनसाधारण थे इसलिए उनमें जनसाधारण के सुख दुःख कीब अनुभूति जितनी तीव्र थी उतनी उच्च वर्ग के प्रति नहीं।

यह समय कथा साहित्य का विकास काल के नाम से पुकारा जाता है। इस काल की कहानियाँ संस्था में अधिक हैं। उपन्यास भी लिखे गये किन्तु कान्ती संस्था में नहीं। देश के इतिहास में यह समय उथल पुथल का है। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर उसका प्रत्यक्ष व्यापक प्रभाव देश में चारों ओर फैलने लगा। बीमारी, काल, व्यसनायकीमत्ता आदि का प्रकोप समाज में दृष्टिगोचर होने लगा था। इस समय का राजनीतिक वातावरण विद्रुब्ध था। बलियावाला बाग का हत्याकाण्ड, रौलट एक्ट, असहयोग बान्दोलन खिलाफ बान्दोलन, लीग, हिन्दू महासभा आदि के कारण देश का वातावरण अशान्त था। मुन्शी जी के 'कथा-साहित्य' पर इन घटनाओं की पूरी छाप पड़ी थी। उन्होंने राष्ट्र प्रेम के आदेश में सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और गान्धी जी के असहयोग बान्दोलन में सक्रिय भाग लिया। यही कारण है कि महात्मा गान्धी जी की विचार धारा का प्रत्यक्ष प्रभाव मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियों में विद्यमान है। इनके कथा-साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक आदि अनेक समस्याओं का नया दृष्टिकोण देखने को मिलता है। इनके समकालीन हिन्दी कहानीकार जयकिशोर प्रसाद, राधिकाशरण, कृदयेश, सुदर्शन, कौशिक धेनेन्द्र, उपेन्द्र नाथ अस्क, गुलेरी जी, निराला तथा उग्र जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी कला की धारा में सुदर्शन ने अपने

अपनी भिन्न भिन्न प्रयोगों द्वारा पर्याप्त प्राण शक्ति प्रदान की। न्यास
 फतहपुरी, सुदर्शन, सुल्तान हैदर जोश, राशद खर्बे उल लेरी, अनीस बेगम
 चुगताई, वाजम कुरैली, अब्बास हुसैनी ने भी मुंशी प्रेमचन्द के उर्दू कथा-
 साहित्य में योगदान दिया। उर्दू में इन लेखकों ने वादशर्म्मुल यथार्थवादी
 ही कहानियाँ नहीं लिखी वरन् यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी। जब
 उर्दू लेखकों का काम मनीरुज्जन् तक ही सीमित न होकर समाज की बुराईयों
 को सामने लाकर सुधारात्मक दृष्टिकोण हो जता। हिन्दू मुस्लिम एकता
 को बल मिला। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से सभी हिन्दू मुस्लिम
 प्रभावित थे, कतः इस युग में स्वतन्त्रता की चिनगारी प्रत्येक देशवासी के
 हृदय में सुलग रही थी। इसका प्रभाव हिन्दी उर्दू कथा साहित्य पर भी
 पड़ा। कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान में मुंशी प्रेमचन्द शुद्ध भारतीय
 तथा गान्धीवादी विचारधारा से जीत प्रीत है। बीगाने हस्ती, पैदाने
 पैरा का ही कर्मभूमि एवं रंगभूमि अनुवाद है। मिर्जा रुसवा का 'उमराव
 जान कदा' नावल मुंशी प्रेमचन्द के 'सेवासदन' से मिलता है। 'उमराव
 जान कदा' का चरित्र ठीक सेवासदन की 'सुमन' जैसा है। 'कश्क' ने
 सितारों के तैल, देरी वीर दूबरे कफसाने, कौफल जादि में मध्यमवर्गीय
 समाज की समस्याओं को ही अपनी कहानियों का विषय चुना है। इनका
 उद्देश्य केवल मनीरुज्जन् प्रणीत होता है तथा उनमें सत्य वीर व्यंग्य सूक्ष्म
 से सूक्ष्म होता गया है। उन्होंने समाज के स्वस्थ तथा अस्वस्थ सब वर्गों
 का चित्रण तथा प्रेम के विविध रूपों को अभिव्यक्ति व्यापक रूप से
 दी है। कथानक स्पष्ट तथा संक्षिप्त रहते हैं। इस काल में सामाजिक तथा प्रेम
 प्रधान कहानियाँ अधिक वाकचर्चक एवं कलात्मक ढंग से लिखी गई हैं। इस समय
 हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में प्रतीकात्मक तथा काव्यात्मक कहानियाँ एवं

उपन्यास कम संख्या में लिखे गये। पात्रों की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में यह काल कभी नगण्य था यद्यपि कृष्ण निर्माण हो चला था किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। कला विधान की दृष्टि इस समय की कहानियों में चरित्र की प्रधानता रही।

विकास काल के कथा साहित्य में प्रेमचन्द युग के कलाकारों ने कथानक, चरित्र और वातावरण की तीव्रतम अनुभूतियों के दर्शन कीते हैं। इसके पश्चात् कथा-साहित्य का उत्कर्ष काल आता है। उत्कर्ष काल का आरम्भ १९३० से आरम्भ हो जाता है। यह युग कथा साहित्य की दृष्टि से उथल पुथल का युग है क्योंकि सन् १९३० में स्वातन्त्र्य-संग्राम के साथ देश में एक नवीन चेतना का जागरण हुआ जिसके फलस्वरूप राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक क्षेत्रों में क्रान्ति और विद्रोह की लहर चारी और तीव्रगति से फैल गई। हिन्दी तथा उर्दू कथा साहित्य दोनों पर इसका प्रभाव पड़ा। नये युग का सन्देश देने वाले नवीन कलाकार अपनी कला कृतियों द्वारा स्वतन्त्र मार्ग निकालते सामने आते हैं। विचार जात् में, पुरानी परंपरा के कहानीकारों पर गान्धी वादी वाध्यात्मिकता का व्यापक प्रभाव मिलता है जबकि नवीन परम्परा के कलाकार समाजवादी, यथार्थवाद दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और फ्राइड के यौनवाद वादि की नवीन विचार-धारा से पूर्ण प्रभावित मिलते हैं। इसका कारण राजनैतिक उथल पुथल ही है।

सन् १९३० के मध्य अवस्था बान्दीजन से सारे देश में बर्तौल और विद्रोह की लहर फैली हुई थी। स्थान स्थान पर नए कानून

मंग किया जाता था। विदेशी वस्त्र बहिष्कार, शराब बंदी बहिष्कार, गोलमेज सभा, फ्रा फ्रेट, १९३५ का एक्ट के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं में कांग्रेस का प्रवेश प्रमुख घटनाएं थी। कांग्रेस के त्यागपत्र देने पर चीन ने मुवित्त दिवस मनाकर (१९३६) लाहौर प्रस्ताव द्वारा पाकिस्तान की मांग उपस्थित की। एक ओर यूरोपीय युद्ध के कारण देश की सुरक्षा, सम्बन्धी स्थिति भयावह होती जा रही थी। भारत छोड़ो प्रस्ताव, देशांत लियाकत वाली योजना, वैवेल योजना, कैबिनेट मिशन, बीवासाली की निर्मम हत्याएं बिहार का हत्याकाण्ड और अन्ततोगत्वा १५ अगस्त १९४७ को हिन्दुस्तान पाकिस्तान का विभाजन जादि की घटनाएं देशवासियों और कथाकारों के लिए महत्वपूर्ण हैं। गांधीवादी और मानववाद का प्रभाव उनके कथाकारों पर पड़ा। इस युग में मनोविज्ञान के विकास ने मनुष्य की अन्तःप्रवृत्तियों की विश्लेषण पद्धति के आधार पर मनुष्य और समाज की प्रश्नों को नये दृष्टिकोण से देखने का मार्ग निकाला। कथाकारों ने चरित्रों की अवतारणा को मनोविश्लेषण पद्धति पर करना आरम्भ कर दिया। प्रेम वासना की प्रमुख मानकर नैतिकता और सच्चरित्रा की भावना को मनुष्यकृत है, प्रकृति जन्य नहीं, बतलाया है। उसके वस्तुवादी दर्शन का आधार द्रष्टात्मक नैतिक-वाद है जिसके आधार पर राजनीति में साम्यवाद और साहित्य में प्रातिवाद की धारा प्रतिष्ठित की गई। इस काल में जेनेन्द्र, हलाचन्द जोशी, वसंत, यशपाल, रमिय राय, नागर, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, रेणु, बन्द्रगुप्त विद्यालंकार, फी, पहादेवी वर्मा, मणवतीचरण वर्मा, उपेन्द्र नाथ त्रिपाठी, पहाड़ी, कमला देवी बांधरी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार उर्दू कथाकारों में रहीषजहाँ, कयात उल्लाह अंसारी, लहादत हसन मिन्टो, असमत जुगताई, कृष्णवंदर, अशक, अहमद नदीम कासिमी, देवेन्द्र सत्यार्थी,

अली अब्बास हुसैनी, गुलाम अब्दुल अब्बास, अख्तर अंसारी, राजेन्द्र सिंह वेदी, महेन्द्रनाथ, बलवंत सिंह, अख्तर सिंह, दुग्गल, देवेन्द्र झा, रज्जाब, हाजरा मकसूर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

राजेन्द्र सिंह वेदी, हयातउल्लाह अंसारी, कृष्ण चंदर, मिन्टो, अब्दुल नदीम कासिमी ने उर्दू कथा साहित्य में अपना योगदान देकर प्रातिवादी कथा साहित्य रूप लिया। उनकी दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक के समूह ही साथ प्रातिवादी ही है। अब्दुल चुगताई ने 'सुबे मुबे', सीने का बण्डा, कलियां, केन्डल कोर्ट, तिहाफ, फेर, कहानियां लिख कर उर्दू साहित्य में नवीन विचारधारा को जन्म द दिया। राजेन्द्र सिंह वेदी ने, लाजवंती, पनादन, गरम कोट, ग्रहण, गुलामी, रहमान के जूते आदि में नई परंपरा को लिया है। कृष्ण चंदर तथा मिन्टो ने लिखा रूप और इस दम्पती समाज के व्यर्थों को स्पष्ट हमारे समक्ष लाकर खड़ा कर दिया। उनकी अधिकांश कहानियां तथा उपन्यास प्रातिवादी है जो मनोविज्ञान तथा फ्राइड के प्रभाव में जड़े हुए हैं। इस काल में हिन्दी तथा उर्दू कथाकारों ने उपन्यासों की अपेक्षा कहानियां अधिक लिखीं।

हिन्दी कथा- साहित्यकारों में जैनेन्द्र, बल्य, जोशी, पहाड़ी का विशेष नाम है। ये सभी हिन्दी के कथा साहित्यकार उपन्यासकार के साथ समकाल तथा पौरिक कहानीकार भी हैं। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियां तथा उपन्यासों में पार्श्विक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ही अपनाया है। सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुलता, परत ये उपन्यासों में उन्होंने गांधीवादी दृष्टिकोण ही अपनाया है। उनके निर्माण के आधार में कोई निश्चित

नैतिक धारणा, अनुसृति जैसा सांस्कृतिक प्रेरणा रखती है। उनकी दार्शनिक कहानियाँ जहाँ एक ओर समाज की यथार्थवादी समस्याओं को सांसारिक घटनाओं और पात्रों के माध्यम से उपस्थित किया गया है वहाँ दूसरी ओर उनके द्वारा सूक्ष्म सिद्धान्तों, सांस्कृतिक प्रेरणाओं तथा नैतिक और आध्यात्मिक अनुसृतियों की अभिव्यक्ति की गई है। मनोवैज्ञानिक कहानियों में व्यक्ति का सूक्ष्म अध्ययन तथा विश्लेषण किया गया है। "मास्टर जी" कहानी में एक व्यक्ति के जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई है। उनके चरित्र ऐतिहासिक, पौराणिक, लौकिक, आध्यात्मिक, भावात्मक काल्पनिक और प्रतीकात्मक है। जैसा भी कहानीकार तथा उपन्यासकार दोनों ही हैं। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक धरातल को ही रखा है। उनकी कहानियों में कथानक कतिवृत्तात्मक तथा निश्चित रहते हैं जो ऐतिहासिक शैली में हैं। ज्ञानचंद जोशी व्यक्ति और समाज के द्वासीन्मुख जीवन का विश्लेषण और उसकी निर्पेक्ष बालीचा करने वाले कथाकारों में माने जाते हैं। मध्यमगीय समाज का नग्न चित्रण और व्यक्ति के एकात्मिक वर्तमान की भावना पर बौद्धिक प्रभाव उनकी कहानियों की विषय वस्तु की प्रमुख विशेषता है। उनकी कहानियों में चरित्र विश्लेषण तथा चरित्र बालीचना सब मनोवैज्ञानिक धरातल पर है। इस काल में समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

गांधी वादी आध्यात्मिकता और भारतीय आदर्शवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव जेनेन्द्र के कथा-साहित्य में मिलता है। जैसा की कहानियों में व्यक्ति के प्रति करुणा संवेदना तथा आदर्शवाद का विशेष स्थान है। जोशी जी की कहानियाँ वर्तमान के ऊपर प्रहार करके समाज की ओर जाती हैं। उपेन्द्र नाथ वर्मा आदर्शान्मुख यथार्थवादी से यथार्थवादी होते चले गये हैं। भगवतीचरण वर्मा भी यथार्थवादी कथा साहित्यकार हैं। कला विधान की

दृष्टि से इन समस्त कलाकारों में प्रसाद, प्रेमचन्द तथा उपेन्द्र नाथ त्रिपाठी की कला का स्वर सबसे ऊँचा है।

समाजवादी व्यथनवाद के कथा-साहित्यकारों में यशपाल का विशेष स्थान है। उनकी कहानियाँ तथा उपन्यास दण्डात्मक मौलिकवाद की दृष्टि से लिखी गई हैं। इनमें समाजवादी विचारधारा का सहारा लेकर समाज की वार्षिक स्थिति और धर्म, नीति, प्राचीन परम्परा आदि की आलोचना की गई है। शोषक और शोषित वर्ग का संघर्ष, समाज की धर्मनीति, पाप पुण्य आदि की मान्यताओं की आलोचना की गई है। उनके कथा-साहित्य में चरित्र व्यंग्यारणा, वार्षिक संघर्ष और वर्ग-चेतना के दर्शन होते हैं। उनके अधिकांश पात्र व्यथनवादी है जिन्होंने चित्रण, वार्तालाप तथा घटना एवं साधनों से की गई है। उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य वार्षिक संघर्ष और वर्ग चेतना की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना है।

हिन्दी के वर्तमान कथा-साहित्यकारों में फरादी का विशेष स्थान है। उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज का नग्न चित्र उपस्थित किया है। वर्तमान समाज पर पश्चिमी सभ्यता के नैतिक प्रभाव की नग्न क्रांति है। विशेषतः उनकी स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध की कहानियाँ विषय वस्तु तथा कला संस्थान की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। मोहन लाल महताब तथा कमला कान्त वर्मा ने भी कल्पना प्रधान तथा भाव प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। बन्द्रगुप्त विद्यालोक ने भी कथा-साहित्य में स्वतन्त्र शैली अपनाई है।

वाय का युग कहानी का युग है, उपन्यास का नहीं। इसका मुख्य कारण है कि वाय के मानव के पास समय का अभाव है। इस कारण

यह कहानी ही पढ़ना चाहता है उपन्यास नहीं। उसका यह तात्पर्य नहीं है कि बाबू उपन्यास नहीं लिखे जा रहे हैं, लिखे जा रहे हैं, पर कम।

कमला देवी चौधरी, उषा मित्रा, व्यक्ति हृदय ने भारतीय गृहस्थ और पारिवारिक जीवन सम्बन्धी कहानियाँ अधिक लिखी हैं। व्यक्ति हृदय सफल कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में समाज की महत्वपूर्ण समस्याओं का स्थान दिया है। पति-पत्नी का सम्बन्ध, बाल विवाह, सुहागरात, धृष्ट का पट, लाल चुनरी, सुहाग की लाली, पारिवारिक जीवन की सुन्दर कहानियाँ हैं। भगवतीनारायण वर्मा तथा हरिश्चन्द्र शर्मा हास्य प्रधान कथाकार तथा सिद्धहस्त लेखक हैं। इनकी कहानियों की विषय वस्तु का सम्बन्ध समकालीन समाज से है।

वर्तमान हिन्दी साहित्य के कथाकार रणिय रायच, नागर, नागार्जुन, प्रमोद भारती, माधवे, राहुल सांकृत्यायन, उषा देवी मित्रा, मन्मथनाथ गुप्त, गुरुचर, देवेन्द्र सत्याधी, कमला जोशी, कस्तूर सिंह दुग्गल, कमलेश्वर, बलवन्तसिंह, अन्त गोपाल लेदडे आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। हिन्दी कथाकारों पर पश्चिम का अधिक प्रभाव पड़ा है। मुख्यतः रूस तथा अंग्रेजी माध्यम से लिखी गई कहानियाँ से बहुत प्रेरणा मिली है। जय्य, जैन, आर्यद जोशी पर रूसी कथा साहित्य का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। प्रमोद, कौशिक, सुदर्शन, जैन, जय्य, चन्द्रगुप्त विनायक आदि अन्य कथाकारों पर पश्चिमी कहानी कला का प्रभाव पड़ा। विकास काल की अधिकतर कहानियाँ में जो घटनाओं की प्रधानता मिलती है उसकी प्रेरणा टॉल्स्टाय तथा मीपासा की कहानियों से मिलती है। जैन पर

गान्धी तथा टात्सटाय का प्रभाव अधिक है। इस समय भारतीय वादसंवाद तथा वाध्यात्मिकता के अतिरिक्त, पश्चिमी मनोविज्ञान शास्त्र, समाजवाद, साम्यवाद, यौनवाद, दम्भात्मक भौतिकवाद आदि की नवीन विचारधाराओं का प्राधान्य है। यज्ञपाल की कहानियाँ तथा उपन्यासों पर गौकी का अधिक प्रभाव है। दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक कहानियों में चरित्र अवतारणा मनो-वैज्ञानिक संघर्षों तथा सूक्ष्म घटनाओं पर अवलम्बित रहती है। समाजवादी यथार्थवादी कहानियों का सम्बन्ध विषयवस्तु से अधिक खीर कला-स्थान से कम है। उनका प्रतिनिधि कथाकार यज्ञपाल है। उनका दृष्टिकोण बौद्धिक अधिक है जिसमें विद्रोह और संघर्ष के साथ संतुष्ट समाज के निर्माण की भावना का पवित्र उद्देश्य निहित है। यौनवादी कहानियों का अपना स्वतन्त्र स्थान है। तात्पर्य के कहानीकार भगवतीचरण वर्मा, शरत् तथा ५० हरि शंकर शर्मा हैं। उनके पात्र आकर्मिक तथा लाक्षणिक होते हैं। हिन्दी उर्दू कथा साहित्य दोनों पर बंगला और अंग्रेजी लुप्त कहानियों का प्रभाव पड़ा है।

कला- विधान की दृष्टि से अब कहानी का रूप पूर्ण कलात्मक हो गया है। अब कहानी 'घटना' के स्थान में 'चरित्र' को अपना आधार बनाती है। चरित्र अवतारणा का आधार यथार्थवाद ही रहता है। अब 'संवाद' नाटकीय कम और बौद्धिक अधिक है। बाज देश की प्रत्येक क्षेत्र, अन्तराष्ट्रीय, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक वाद में जागे बढ़ना है। साथ ही साथ विज्ञान का क्षेत्र दिनों दिन विस्तृत होता जा रहा है। विज्ञान के विध्वंसकारी तथा निर्माणकारी दोनों रूप कथाकार समाज तथा व्यक्ति सबके सामने हैं। जूझोदार, हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध,

संस्थापिका समस्या, भारतीय गृहस्त तथा पारिवारिक जीवन की समस्याओं, नारी आन्दोलन, आदि के विषय भविष्य के कहानीकार के लिए बहुत समय तक प्रेरणा के स्रोत रहेंगे। आज की कहानियों का आधार वैज्ञानिक अधिक है। अतः सामाजिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा व्यंग्य प्रधान तथा सांस्कृतिक विकास की कहानियों का भविष्य अधिक उज्ज्वल है। आज कहानी बौद्धिक है।

उर्दू कथा साहित्यकार कुछ छोटे विभाजन से पूर्व और कुछ विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान चले गये जिनमें हाजरा मशरूर और खदीजा मस्तूर हैं। आज के उर्दू कहानीकारों में राजेन्द्र सिंह बेदी, कृष्णचंदर, सयादत हसन मिन्टो, गुलाम अब्बास, अकमत चुगताई, अब्दुल क़त्तार हुसैन, अनवर अजीम, अलफाक अकमत अनवर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका उद्देश्य कहानी की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपस्थित करना है जिससे समाज का नैतिक उत्थान हो। इनके पात्रों का उद्देश्य समाज की गली सड़ी समस्याओं को धामने रहना होता है जिससे समाज की भविष्य निर्माण का संकेत मिलता है। इन लेखकों की कहानियों का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं होता बल्कि किसी घटना के द्वारा वस्तु स्थिति से अलग होकर पारिवारिक प्रधान होता है।

बीसवीं शताब्दी के इस चरण में (सन् १९४७ से ४०) तक उपन्यासों की रचना उर्दू साहित्य में कम हो रही है। कुछ उपन्यासकार पाकिस्तान चले गये और कुछ ने अपनी कहानियों में विशेष रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया है। कैसी रामपुरी, एम० इक़बाल, मुफ़ताद

उलीन जफर, नजर बेदी, कुराकतुलसेन हैदर, बली खन्नास हुसैनी, शौकत खानवी, कृष्णचंदर, फातमा मुबीन, जुबैदा साहू, शफीक उल रहमान, ससन जसकरी, सुप्ताप मुफ्ती, राजेन्द्र सिंह बेदी और दुग्गल वादि हैं। उन्होंने उर्दू कथा-साहित्य की जो परम्परा चल रही थी उसमें एक नवीन मोड़ दिया। उनके उपन्यास प्रातिवादी मनोविश्लेषणवादी तथा सुधारवादी हैं। सहायत ससन मिन्टो ने रूप लिखा है। उनके उपन्यास और कहानियाँ धीरे धीरे प्रातिवादी होती गईं। बली सरदार जाफरी ने मेक्सि, सिपाही की मौत, तथा रशीद जहाँ की 'कागरा' शान्तिकारी उपन्यास हैं। शौकत सिद्दीकी ने 'इस सुकी रात' में जीवन का मनोविश्लेषण किया है। अनवर वजीम ने 'जागते हैं' में देश के भावी भव-निर्माण की और संकेत किया है। जुमीर उल्दीन ने 'बहता हूँ', 'बाँदनी और कंधेरा' में समाज का वर्तनाक चित्रण किया है। असमत भुगतार्ह ने 'सिंहाफ', 'फेर', 'फँ' के पीछे, भूल भरीया, उफ यज़ बच्चे, उसके खाय वादि लिखकर उर्दू कथा साहित्य में उथल पुथल मचा दी है। उनके उपन्यास समाजवादी हैं। किस प्रकार समाज का सुधार हो सकता है उन्होंने अपने कथा साहित्य में प्रदर्शित किया है। राजेन्द्र सिंह बेदी एक प्रातिशील उर्दू के कथाकार हैं। 'साजवती' मौला, गरमफोट, गुलामी, रहमान के जूँ 'वादि लिखकर उर्दू कथा साहित्य को नवीन प्राण दिए। कृष्णचंदर ने, शिकस्त के बाद, तीन गुण्डे, तथा मिन्टो ने 'साढ़े तीन बाने' तथा 'बादशाहत का सात्मा' लिखकर राजाओं और नवाबों के कत्याचारों को समाज के समक्ष लाकर रख दिया है। कश्क बी ने 'सितारों के हैं' में समाज का बीता जागता चित्र सींच दिया है। गुलाम खन्नास ने 'साया' उसकी बीबी और फेन्सी हैयर कटिंग सैलून' में समाज का यथार्थवादी चित्रण किया है। रशीद जफर की 'वास्त'

कहानी पढ़ने के योग्य है। कथपद खली का "काँरे, शीले, ड्रान्तिकारी कहानियाँ" में से है। एम० कसलम ने "गुनाह की रातें" लिख कर सामाजिक मनोवृत्ति की विचारधारा लेकर मुन्शी प्रेमचन्द का अनुकरण किया। इन्होंने खली ताज हास्य रस के कलाकार हैं। "शिकस्त" और "गुरेज" में कृष्णचन्दर ने कला साहित्य एक खलबली पैदा कर दी। अनात रहमानी का हंगामा तथा जफर का पतन से दूर एक ऐतिहासिक उपन्यास है। मरहूम तरजी ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही लिया है। ए० कथपद ने "हल्वे" "फली और फवल" जहाँ सरफ गिल्ली है " फिर बहार बाँधे और फूल उदास है " में मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू कथा साहित्य में कहानी का प्रादुर्भाव हिन्दी कथा साहित्य से फली ही हो चुका था। प्रारंभ में उसका उद्देश्य मनोरंजन पैदा करना ही रहा था परन्तु विकास काल एवं उत्कर्ष काल में उसने एक नवीन विचार धारा दी। इसी प्रकार उर्दू उपन्यास जिसका प्रारम्भ में एक रिपोर्टर ही के रूप में था आज वह ऐतिहासिक, सामाजिक मनोवैज्ञानिक बाधा ले चुके हैं। आज के उपन्यासकार अपने उर्दू उपन्यासों में ड्रान्ति लाना चाहते हैं। इसलिए उनके उपन्यासों एवं कहानियों में ड्रान्ति-कारी तथा प्रातिवादी फलक स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसका दृष्टिकोण सुधारवादी है।

हिन्दी उर्दू कथा साहित्य के आरम्भ में दोनों कलाकारों का दृष्टिकोण मनोरंजन ही था। उर्दू में फिस्ता, कफसाना प्रारंभ में लिखे गये उनका मुख्य उद्देश्य पाठकों को दिल बहलाव के लिए मनोरंजन प्रदान

करना था। उर्दू कथा-साहित्य पर फ्रांस तथा अरब देशों का काफी प्रभाव है। अन्य सैला, चहार दारैश का प्रारम्भिक उर्दू कहानीकारों पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। उन्होंने अपने कथाक साहित्य की कथावस्तु भी फ्रांस से ली है। वे कहाना ही बखि लिख करते थे जो प्रेम के ऊपर आधारित होते थे। धीरे-धीरे उन्होंने समाज का व्ययन करके समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया। उर्दू कथा-साहित्य भी हिन्दी कथा साहित्य की भाँति पश्चिमी देशों के कथा-साहित्य का गुणी है। अमेरिका का हगर्फी, रूस का पुस्किन, फ्रान्स का न मीपासा ने कथा-साहित्य में उच्चतम पुण्य पैदा कर दी। इन सबका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी उर्दू कथा-साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। उसी कहानी साहित्य में टालस्टाय, गोर्की, चेखव का प्रभाव सैलार के सभी कथा साहित्य पर पड़ा। कुछ कहानियों का अनुवाद भी हिन्दी उर्दू में हुआ। हिन्दी उर्दू कथा साहित्य के विकास युग में बंगला कथा-साहित्य का विकास पश्चिमी कथा-साहित्य के सम्पर्क से ही रहा था। मुंशी प्रेमचंद पहले उर्दू के लेखक थे उन पर टालस्टाय तथा गोर्की का प्रभाव था किन्तु वह उनके कहानियों का अनुवाद कर रहे थे। तुर्गेनोव की कहानियों को चन्द्रशेखर वियाल्लेकार तथा मोपासा की कहानियाँ स्वाचन्द जीशी अनुवाद कर रहे थे। यह अनुवाद का धुआँ था। धीरे-धीरे मुन्शी प्रेमचंद ने उर्दू में कहानियों लिख कर एक नया मोड़ दिया। मुन्शी प्रेमचन्द हिन्दी उर्दू दोनों में ही वाते हैं। उर्दू से हिन्दी में वाये एक कारण उनके हिन्दी उपन्यासों तथा कहानियों पर उर्दू का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

हिन्दी भाषा में वाज सेकड़ों पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं और सभी में कहानियाँ प्रकाशित की जा रही हैं। पहले कुछ

वर्षों में 'नयी कहानी' और 'कहानी' को लेकर हिन्दी कहानीकारों के बीच बहुत जोरों से चर्चाएं चल रही हैं। वास्तव में नयी कहानी लेखन की दृष्टि से कोई नवीन विधा नहीं है। क्लासवाद में 'परिप्ल' की गोष्ठी में खीन्द्र कालिया ने कहा था "नयी कहानी का शिल्प अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट विधा है जो अत्यधिक सजा और प्रतिभाशालियों की देन है और यदि कोई इसे नहीं समझता तो यह उसके बौद्धिक स्तर का दिवालियापन है।" वास्तव में सोचा जाय तो नयी कहानियों में बहुत ही विदेशी - कलात्मक प्रभाव है जिनमें विचारों और वाद्यों का अभाव नहीं तो उनकी बराबर-जकता है, सामाजिक दायित्व से भागकर और व्यक्तित्ववादिता है कि प्रतिष्ठा है। नवीनता के लिए नवीनता है, स्वाधीनता का नाम पर उग्र रूप है ऐवस के बरसीस, कृष्णाग्रस्त किन्नर की परमार हैं। परम्परा की अवहेलना ही नहीं उसे बलपूर्वक विरुद्ध करने की प्रवृत्ति है, शिल्प की दृष्टि से बराबरता विष्टन, नीरसता, शुष्कता तथा दुरुक्ता को प्रत्यक्ष है, तो कहानी के साधारण पाठक के प्रति उपेक्षा ही नहीं कृपा है। आज का कहानीकार 'ऐवस' से लेता है। उसकी रचनाओं में प्रणय, रसिकता कथवा उसकी कृष्णाओं का ही घोंघ सुनाई देता। वास्तव में आज की कहानी उन कथाकारों से उतनी कृष्ण और झुड़ी नहीं है जितने अपने नये मसीहाओं से जाडान्त होगई है। कहानी में शिल्प का बड़ा महत्व है। पिछले कुछ वर्षों में रेणु, शरद जोशी, मार्कण्डेय, हरिशंकर परसाई, रंजित मटियानी, कमलान्त, उषा मिश्रदा, मन्मू मंडारी ने देखते देखते कथा के क्षेत्र में जो स्थान बना लिया है उसका भ्रम उनके शिल्प और कथा की ही है। मोहन राकेश तो प्रयोगात्मक शिल्प में सिद्ध हैं। कमलेश्वर राकेश की कहानियों के प्रति उत्कण्ठा कभी रहती है। मोहन राकेश की कहानी 'फाँलाद का जाकाश' में ऐवस की बड़ी चतुरता से प्रस्तुत किया गया

हैं और उसे उद्धृत भी नहीं किया जा सकता। कहानी का अंतिम वाक्य है- "और हमाल - हमाल की धोबी के कपड़ों में डाल देना।" अन्त में सुताई की "छेड़ी कीलर" कहानी खींचिए। कहानी का पहला वाक्य "सब फलन सारा जिन्दगी में कबाल उनके उन्हींने फलन खपार कुबारियों के ताते तोड़े थे।" ध्यान देने की बात है कि ऐलिया मरौदय क्या कह रही है? कहानी की एक २ पंक्ति खी रंग में रंगी है। बाप के नवीन लेख सुखोटे तो शाहीनता के लगाते हैं परन्तु व्यापार कर रहे हैं गंदगी का। यह कहानी की धारा हिन्दी उर्दू दोनों कथाकारों में मिलती है। सुदर्शन बोफ्ला, रफी पन्किर, विष्णु झाकर, बन्धु किरण, सोमेश्वरा, अनन्त गोपाल शैवडे, राजेन्द्र अवस्थी, शरद, भिन्नु वादि कहानीकारों में विभिन्न रूपों में उफनती हुई मिलती है। जेनेन्द्र जी "विज्ञान" अविज्ञान कहानियों में अधिक संवसी होगये हैं।

जब हम हिन्दी उर्दू कहानियों के शिल्प के विषय में सोचते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे इन प्रयोगशील नयी कहानीकारों को या तो दिशा का ही बोध नहीं है या यह अपनी प्रतिभा का उपयोग बानबूझ कर जनक्ति में न करके केवल फैशन के लिए कहानीकार बने हुए हैं और अपने कथा सूत्र जनता के वास्तविक जीवन में फेंकर नहीं बल्कि काफ़ी हाउसों की मैजों पर बैठकर या छपा में उड़ती हुई तितलियों के वक्षत में सिफ्टकर फड़कते हैं। प्रत्येक नये कहानीकार की दृष्टि अपने किसी न किसी मौलिक शिल्प का उपयोग करती हुई धान पड़ती है। वृत्ति इन सब परिवर्तनों की पट्टे राजनीति है। इसलिए जीवन की हर गतिविधि में एक राजनीतिक स्वर सुनाई देने लगता है। उर्दू में लिखने वालों की जो मनः साहस्य करीबी की दूरियों से जाती थी, वह अपने ही जीवन का का बन

महं है। उर्दू लेखकों के नाम नयी नयी खानाओं के साथ साहित्य में दिखाने
 देते लगे हैं। वारिस शाह से सवाल पूछती हुई कभी कभीता प्रीतम की कहानियाँ
 "हाफ" सुनाई देती हैं तो कभी मेटो की कहानी "टोनाटेक सिंह" पन्ना
 का विषय बन जाती है। कभी कभीता के "सरदारजी" लोगों की नींद
 हराम करते हैं तो कभी राजेन्द्रसिंह बेदी के "लाजपत्ती" "कृष्णचन्दर की
 "बन्धुवाता" और - फावर स्वप्न "देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक
 गुफती रहती है। कथर कपूतराय, रणिय राघव, भगवतराण उपाध्याय, यशपाल
 विष्णु श्राकर, नागर, चन्द्रकिरण, सौनरेखा, गिरीश कल्याण, बरक,
 कल्यादि कितने कहानीकार हैं जो राजनीतिक और सैद्धान्तिक धरातल पर
 उनका साथ दे रहे हैं। उदात्त विचारों और गम्भीर सूक्तियों की कहानियों
 का जामा पहनाने वाले जेन्द्र, बीरी, फादी, वीर्य, कृष्ण पाणों की सत्ता
 चुप होते हुए देखते हैं। उनमें वीर्य का "शरणार्थी" नाम से कल्पित उद्यम
 कहानियों का एक संग्रह जाता है।

उर्दू के "वीर रात शराब" वाले मेटो, कम्ता,
 महेन्द्र नाथ की भी "मानवता का कौट" चित्रित करने वालों के रूप में
 प्रातिशील होने की प्रतिष्ठा प्राप्त थी तो दूसरी ओर कृष्ण चन्दर, यशपाल,
 कल्याण, बेदी, कपूतराय, नागर, चन्द्रकिरण सौनरेखा आदि की वर्ण चेतना
 युक्त आशावादी लेखकों के रूप में। मेटो जैसे लेखकों की गहरी अन्तर्दृष्टि
 और मध्य हासने वाली वेदना, "ममी" और "सील दी" जैसी कहानियों
 के कारण मेटो अपने वर्ण के लेखकों में सबसे महान् हैं। परिस्थितियों के यथार्थ
 चित्रण के बावजूद वे इस दल में कहानी का जो स्वल्प उभर कर आया वह
 रिपोर्ताज था। अविगत आवेश की कतिरिफ्तारों के साथ घटनाओं की

“रविग कपेन्दी” के क. रागिय राघव ने “सुफानी के बीच” भगवतशरण उपाध्याय ने “इतिहास के पन्नों” पर सामाजिक चेतना के लोल्ले रिपोर्ताज दिये हैं।

बाज हिन्दी तथा उर्दू में जो कहानियाँ लिखी जा रही हैं वह अधिकांश ऐक्स पर आधारित हैं। बाज दोनों (हिन्दी-उर्दू) कथाकारों ने उपन्यास लिखना कम कर दिया है। कहानी का प्रवलन अधिक हो गया है। बाधुनिक कहानी दिन ब दिन कथात्मक होती जा रही है। उनमें कथानक के द्रास के सजाण हैं। सुदर्शन चौफड़ा, रमेश बरनी, कृशन चन्दर मानवीय संवेदनाओं का सफल उद्घाटन करते हैं। नयी कहानी को यह गर्व है कि फरसी बार भाषा और प्रान्त की बोझी सरपटों से उठकर भारतीय कहानी लीज निकालने का रचनात्मक प्रयत्न किया जा रहा है। इसका विस्तृत विवेचन अलग से दिया गया है कि बाज का कथा साहित्यकार चाहे वह प्रयोगवादी (वैय की) विचारधारा से प्ररित हो कथवा यामास की की (प्रातिवादी) विचारधारा से जीत प्रीत हो, कहीं तक अपने वस्तु प्रसाण, घटना का तथा चरित्र चित्रण में सफल है।

हिन्दी उर्दू कथात्मक साहित्य के विकास युग में उपन्यास और कहानियों का क्या रूप था ? इससे पूर्व प्रयोगकाल की पौराणिक कथाएँ तथा ऐतिहासिक कहानियों की विशेषताएँ क्या थीं तथा उत्कर्णकाल में उनका क्या रूप हुआ और बाज का बाधुनिक कथाकार किस प्रकार नयी कहानियों का सर्जन कर रहा है। इसका विस्तृत विवेचन किया गया है।

उर्दू कथा- साहित्य तथा हिन्दी कथा साहित्य की परम्परा और बीसवीं सताब्दी से पूर्व उसका क्या रूप था ? क्या उसमें

सामान्य परम्पराएं तथा भिन्न परम्पराएं थीं ? इनका कारण तथा परिस्थितियां क्या थीं ? परम्पराओं और विकास में वैभिन्न्य किन कारणों से हुआ ? उस पर विदेशी प्रभाव क्या पड़ा ? उसकी कौन सी भांति बणिति किया गया है।

वास्तव में देखा जाय तो भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं (हिन्दी-उर्दू) में कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनों ही सड़ो बीली से विकसित हुई हैं। बीसवीं शताब्दी में दोनों ही भाषाओं के साहित्य को सर्वना हुई है। अन्तर इतना है कि उर्दू को अपनी एक परंपरा रही है जो फारसी से अधिक प्रभावित रही है तथा हिन्दी संस्कृत से । विषय वस्तु की दृष्टि से दोनों में अधिक समानता है।

हिन्दी तथा उर्दू का क्या साहित्य पर्याप्त रूप में एक दूसरे से प्रभावित है। परम्पराओं में बाह्य जो भेद रहा हो- परिस्थितियां लगभग समान ही रही हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कोई सात्विक भेद नहीं है। बीसवीं शताब्दी में दोनों ही भाषाओं में विपुल साहित्य को सर्वना हुई है- गद्य और पद्य दोनों में । उर्दू काव्य को अपनी एक परंपरा रही है जो फारसी से अधिक प्रभावित है- इसीलिए शैली की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी की उर्दू काव्य में हिन्दी काव्य की अपेक्षा बाह्य जितना वैभिन्न्य हो, विषय वस्तु की दृष्टि से यह भेद न्यूनतर होता गया है। क्या साहित्य में ती आश्चर्यजनक समानता मिलती है। हमने इस निबन्ध में उर्दू हिन्दी में बीसवीं शताब्दी के उर्दू हिन्दी के कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन किया है।

कथा साहित्य सबसे अधिक लोकप्रिय होता है। उसमें सभी आवास वृद्ध रुचि लेते हैं। इसी से इसका क्षेत्र व्यापक है। भारतवर्ष प्राचीनकाल से कथात्मक साहित्य के निर्माण में अग्रगण्य रहा है। हमारी जातक कथाएं, वृहत्कथा, पंचतन्त्र, शितीपदेश आदि ने विश्वव्याप्ति प्राप्त की है। फारसी की कबज़ार सैली पंचतन्त्र का ही अनुवाद है। यूनानियों की हीरोप कथा भी हमारे यहां से प्रभावित है। उर्दू कथा साहित्य का तो कहना ही क्या, इनका तो निकट का सम्बन्ध है। अतः इस विषय पर शोध करने की आवश्यकता इसी कारण से हुई कि हिन्दी और उर्दू कथा-साहित्य का अध्ययन तो पृथक् पृथक् इन दोनों भाषाओं के विद्वानों ने किया है और उन पर अनेक ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। यहां तक कि छुट छुट दोनों भाषाओं के विद्वानों ने आलोचनात्मक एवं भावात्मक दृष्टिकोण से निबन्ध लिखे हैं पर शोध की दृष्टि से दोनों भाषाओं के विद्वानों ने कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया है। हिन्दी उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक लेखों के रूप में दो विभिन्न उपन्यासकारी कथा कहानीकारों की विशिष्ट काल की रचनाओं की तुलना की गई है परंतु हिन्दी तथा कथक उर्दू कथा साहित्य पर तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया गया। हिन्दी तथा उर्दू कथा साहित्य पर कभी कभी परिचयात्मक लेख तो निकलते रहे हैं परन्तु उनमें तुलनात्मक शैली के दर्शन परिलक्षित नहीं होते हैं केवल इतिहास की दृष्टिवात्मात्मक शैली का आश्रय लिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन से तात्पर्य यह है कि दोनों भाषाओं के कथा साहित्यकारों की प्रवृत्ति कहाँ कहाँ पर तथा किन किन तत्वों में मिलती है और किन किन में नहीं मिलती तथा परिस्थितियाँ और कारण कौनसे हैं हैं, यह बताना लेखक का मुख्य उद्देश्य है। सैद्धान्तिक तार्किक कथा स्थूल आकारों

तक ही बांधी की जैसा समान प्रवृत्ति वाली दो विविध कलाकारों के गंभीर विचार मंगन क्या तत्वों के आधार पर तथा उनमें साम्य और वैषम्य के कारण तथा परिस्थितियाँ, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं आर्थिक बताते हुए एवं उनके ग्रन्थों और लेखों की रचना शैली, चिन्तन एवं दर्शन की प्रक्रिया कल्पना की पैठ विषयानुरूप सही सही मूल्यांकन करने की क्षमता उनकी जालीबना एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि और ईमानदारी साथ ही उनके साहित्य की केन्द्रीय प्रेरक शक्तियाँ एवं गत्यात्मक धाराओं में सापेक्षता का सम्बन्ध स्थापित करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। यहाँ दोनों क्या साहित्यों की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उत्तका रूप, सामान्य परम्पराएं भिन्न परम्पराओं के कारण परिस्थितियाँ तथा देशीय और विदेशीय प्रभाव आदि का तुलनात्मक दृष्टि से हो अध्ययन किया गया है।

प्रत्येक देश के उन्नत साहित्य में तुलनात्मक समीक्षा प्रणाली का विशेष महत्व रहा है वरन यह कहना चाहिए कि इस तरह की साहित्यिक प्रतिद्वन्द्विता और स्पर्धा ने कितनी ही मूलभूत साहित्य रूपों एवं रचना तत्वों की रक बढ किया है। आज हम विदेशी साहित्य से ऐसे वाक्यान्त होगये हैं कि उनकी रचनाओं के समकक्ष हमें यहाँ की धाँपे, नाटक, कहानी, उपन्यास सभी कुछ बेगाना सा लगता है। पश्चात्य जालीबकों ने अपनी यहाँ के कथाकारों की इतना सम्मान प्रदान किया है कि जालीबना तथा प्रत्यालीबना द्वारा उन्हें इतनी उच्च धरातल पर लाकर तड़ा कर दिया है कि आज वहाँ के जदना से जदना कथाकार की स्थाति हमें चकाचौंध किए

हुए है। कहने का तात्पर्य यह है कि पार्श्वात्य साहित्य आज हमें उतना समसामयिक ज्वला है कि हमें वहाँ के कथा-साहित्यकारों की तुलना में अपने यहाँ के कथा साहित्यकारों की रचने में भयभीत होते हैं। इसी हीन भावना ने हमारे मनः शक्ति को उतना क्षीण और शिथिल बना दिया है कि हम अपनी मौलिक बात नहीं सीच सकते वरन् विदेशियों को जँधी नकल करने में शान समझते हैं, यानों में जो कुछ कहें वही पत्थर को तकीर है, बाकी सब वक्रवास है। अतः हमने निम्नका माय से हिन्दो उर्दू के कथा-रचनाक साहित्य की समता विषमताओं को लेकर विस्तृत विवेचन किया है।

बीसवों सदी के विगत बी दशकों में या तो हिन्दो उर्दू साहित्य के सभी अंगों का एतानावनक विकास हुआ है। इसका क्षेत्र उतना विस्तृत है तथा शिल्प विधियों का प्रयोग करने उपाय किया गया है कि उसका समीक्षात्मक मूल्यांकन अपरिहार्य होगया है। आज उर्दू हिन्दो कहानियाँ इतनी विकसित हो चली हैं कि उनकी विषय, कला विधान तथा प्रतिपादन शैली के विचार से अन्य भारतीय तथा अभारतीय कहानियों के समकक्ष रखा जा सकता है। हिन्दो उर्दू कहानो तथा उपन्यासों की आरम्भिक रचनाएं बंगला तथा अँग्रेजी कहानियों के अनुकरण पर की गईं। उनमें कल्पना तथा कुतूहल को प्रधानता थी तथा उनके कथा साहित्य के तात्त्विक विकास का अभाव था। तब हमें कला तथा साहित्य का उतना विकास होगया है कि उनकी गतिविधि का यथार्थ मूल्यांकन तथा विवेचन अनिवार्य होगया है। कथा साहित्य में कितनी ही ऐसे तत्व होते हैं कि यह परिमाण समीक्षा की कमीटी पर रखते ही बहुत सीमित रह जाता है, किन्तु यही सीमित परिमाण साहित्य के तथा कथित अंग के वास्तविक विकास का

परिचायक होता है। ऐसी समीक्षा के लिए पैनी दृष्टि, गहन अध्ययन और समन्वय दृष्टि आवश्यक है।

हिन्दी तथा उर्दू कथात्मक साहित्य का हमने जिस गहन अध्ययन और गम्भीर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार किया एवम् है, उसे हम इन दोनों कथात्मक साहित्य की समीक्षा का प्रकाश स्तम्भ कह सकते हैं। उसके विश्व कथा साहित्य की भाँकी होती है। जहाँ एक ओर हिन्दी कथा साहित्य में विदेशी कथाकारों का विश्लेषण करते हुए हिन्दी कथा साहित्य के प्राचीन आधुनिक उत्कृष्ट कथाकारों की कृतियों पर अध्ययन पूर्ण समीक्षा प्रस्तुत की गई है। जहाँ प्रेमचन्द, प्रसाद, जैनन्, यशपाल, पहाड़ी, भावती चरण वर्मा, रांगेय राघव, जीश, नागर, देवी दयाल चतुर्वेदी और अंबल आदि की कथा कृतियों पर गम्भीर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है वहाँ उर्दू कथा साहित्यकार न्याज फ़तेहपुरी, सुल्तान हैदर जीश, वाजिम कुरैशी, रशीदजहाँ, मण्टी, असमत चुगताई, क़ुरानन्द, शरफ़, महन्त्र नाथ, बलवंत सिंह, देवेन्द्र सत्याधी, धन्तजार हुसैन, गुलाम अब्बास, शौकत खानवी आदि की कृतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। यह निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की गई है कि उर्दू कथा साहित्य और हिन्दी कथा साहित्य में समानता कई बातों में मिलती है। प्रारम्भ में दोनों कथा साहित्यों में तिलस्मी जानूसी, रेयारी, उपन्यास दिल बहलाव एवं मजीरान की दृष्टि से ही मिल जाते थे। उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से कम और कल्पनामय जीवन से अधिक था। उनमें तिलस्मी जादू तथा कुतूहल का विशेष योग था। विकासकाल में ये विषय व्यापक तथा समाज सापेक्ष हो गये। अतः इस समय के कथा साहित्य में भारतीय समाज को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि चित्प्रेरणा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखता

होता है। कला विधान की दृष्टि से इस समय चरित्र की प्रधानता रही । व जब कथा साहित्य में कथानक निपटि , चरित्र में वातावरण अधिक कलात्मक तथा सफल होता है।

वाज का कथाकार केवल मनोरंजन कथा वादर्थ के लिए रोचक कथा काल्पनिक घटनाओं के आधार पर कहानी रचना नहीं करता । वह उनकी कृतियों में जालू और उसका जीवन कथा व्यक्ति और समाज पूर्ण दार्शनिकता के साथ चित्रित किए जाते हैं। वाज पात्रों को जिन चारित्रिक विशेषताओं की जाँचना कथा व्याख्या की जाती है उनके आधार पर भारतीय दार्शनिकता, मनोविज्ञान, समाजवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद तथा यौनवाद आदि को विचार परम्परा रहती है। जब संवाद नाटकीय कम और शैक्षिक अधिक होगये हैं। पुराने कथाकारों पर गांधीवादी आध्यात्मिकता का व्यापक प्रभाव मिलता है जबकि नवीन कथाकार फ्राउड के यौनवाद की नवीन विचारधाराओं से प्रभावित है। इन सबका तुलनात्मक अध्ययन इसी कारण से किया गया है। निःसंदेह हिन्दो उर्दू कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करना दुस्तर कार्य है क्योंकि बोखों सुताब्दी में इस क्षेत्र में अधिक उत्थान पतन होते गये हैं। और मैं इस अध्ययन में प्रविष्ट करता गया था २ बहुत से नवीन तथ्य मेरी दृष्टि के सामने आते गये । अतः मैं अपनी सूझ से इसका तुलनात्मक अध्ययन किया है। हिन्दो उर्दू कथात्मक साहित्य में जो वाश्चर्यजनक समानताएं मिलती हैं वह किसी से छिपी नहीं हैं। जहां हिन्दो कथा साहित्य उच्चस्तरीय पात्रों के लिए उपादेय है वहां दोनों कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन जिज्ञासु और अध्ययनशील पाठक के लिए मूल्यवान् सब धरोहर है।

इस शोध ग्रन्थ में वैसे ही समस्त कहानीकारों, उपन्यास-कारों (हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओं के) का संक्षिप्त परिचय दिया है परन्तु वाष्पनिक प्रमुख कथा साहित्यकारों का (हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओं में) विवेचन पूर्ण रूप से दिया गया है। हिन्दी कहानीकारों में बंग महिला, गोस्वामी, बृन्दावनलाल वर्मा, प्रसाद, हृदयेश, व्यास, उग्र, प्रेमचन्द, जिग्जा, बत्सी, सुदर्शन, कौशिक, अरक, गुलरी, चतुरसेन शास्त्री, वाजपेयी, जीवास्तव, जैनन्द्र, कौय, जीशो, यशपाल, पहाड़ी, महती, कपलादेवी चौधरी, उष्मा देवी मित्रा, सोमवती देवी, व्यथित हृदय, शैवड़ी, हरिशंकर शर्मा, नागर आदि कहानीकारों का आलोचना दृष्टि से उर्दू कहानीकारों मुंशे प्रेमचन्द, सुदर्शन, राशद उल्लरी, कृष्णचन्दर, अरक, मंटी, दुग्गल, शौकत धानवी, देवेन्द्र तत्थारथी, ताज हाजरा मवरुर, अहमद नदीम कासिमो, इंसजार हुसैन, राजेन्द्र सिंह बेदी, देवेन्द्र नाथ उग्र आदि से तुलना की गई है। इसी प्रकार हिन्दी उपन्यासकारों जैसे प्रेमचन्द, प्रसाद, वर्मा, जैनन्द्र, चतुरसेन शास्त्री, उग्र, रांगेय राघव, भारती, नागर, पाचवे, अमृतराय, राजेन्द्र यादव, प्रभाकर, गुरुदत्त, राहुल सांकृत्यायन, कर्तारसिंह दुग्गल, बलवंत सिंह आदि उपन्यास कारों की उर्दू के उपन्यासकार शरर, रुसवा, सुल्तान हैदर जीश, आज़म कुरेशी, न्याज फ़ातेहपुरी, प्रेमचन्द, कृष्णचन्दर, गुलाम अहमद अब्बास, अरक, मिन्टी, राजेन्द्र सिंह बेदी, इंसजार हुसैन, शौकत धानवी, मुमताज मुफ़्तो, चुगताई आदि से तुलना की गई है।

कैसा मैं पढ़ते कहा है कि हिन्दी तथा उर्दू के विद्वानों ने फ़ाक़ फ़ाक़ आलोचनात्मक एवं भाषात्मक निबन्ध लिखे हैं परन्तु शोध कार्य की दृष्टि से कोई कार्य नहीं किया है। छुट छुट प्रयत्न कभी किया भी गया ही तो वह प्रकाश में नहीं आया है। अतः लेखक ने दोनों कथा -

साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन बीसवीं शताब्दी में शीघ्र पूर्ण दृष्टि से हो पूरा किया है। इस शीघ्र प्रबन्ध की सात प्रकरणों में विभक्त किया है।

अभी तक हिन्दी उर्दू के विद्वानों ने हिन्दी उर्दू के कथा साहित्य पर शीघ्र कार्य नहीं किया। अतः लेखक ने इस विषय पर प्रथम बार शीघ्र कार्य करके इस दिशा में एक नवीन और मौलिक प्रयास किया है। लेखक ने बताया है कि हिन्दी तथा उर्दू का कथा साहित्य पर्याप्त रूप से एक दूसरे से प्रभावित है। परिस्थितियाँ लगभग समान हो हैं चाहे परम्पराओं में भेद रहा हो। परम्पराओं में भेद का क्या कारण है ? ये परम्पराएं हिन्दी कथा साहित्य में पहले आई या उर्दू में इस पर प्रथम बार ही शीघ्र प्रबन्ध लिखा गया है। दोनों भाषाओं के कथा साहित्य के तत्त्व यक़्सां हैं केवल नाम का ही अन्तर है दोनों ही कथा साहित्य अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित हैं अतः सांत्विक दृष्टिकोण अंग्रेजी का ही है। फिर भी कथा साहित्य के तत्त्वों की कल्पना करते समय विषयवस्तु तथा प्रतिपादन शैली की ही क ग्रहण करना चाहिए।

दोनों कथा साहित्यों (हिन्दी तथा उर्दू) शीघ्र कार्य के दृष्टिकोण से जब हम तुलना की खाँटी पर कसते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भिक कथाकारों ने उपन्यास पर कहानी लिखने की प्रेरणा या तो सीधे अंग्रेजी से ग्रहण की ज़्यादा बंगला के माध्यम से। दोनों ही अव्यक्त ग्रंथों से प्रभावित हैं। मुँहो प्रबन्ध तो उर्दू से ही हिन्दी में आये। प्रारम्भिक कथाकारों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन तथा उपदेश

देने तक ही सीमित था चरित्र चित्रण का दिग्दर्शन करना नहीं बौर २ भारतीय समाज की भिन्न भिन्न समस्याओं को जीर पाठकों का ध्यान वाकृष्ट कराया गया है। भिन्न २ काल तथा परिस्थितियों में मनुष्य की व्यक्तित्वगत, पारिवारिक और देश धर्म तथा समाज सम्बन्धी समस्याएं कैसा रूप धारण करती है बताया गया है। उनमें पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण विश्लेषण किया गया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक तथा सजीव है। सामाजिक दार्शनिक तथा मनीषज्ञानिक, भावमूलक व्यर्थ कादी, प्रगतिवादो , यौनवादो आदि कहानियों का विस्तारपूर्वक मौलिक शोध को दृष्टि से वर्णन किया गया है।

आज के हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में पात्रों की जिन चारित्रिक विशेषताओं की जातीचना कक्षा व्याख्या को जाती है। उनके आधार में भारतीय दार्शनिकता, मनीषज्ञान, समाजवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद तथा यौनवाद आदि को विचार परम्परा रहती है। जब संवाद नाटकीय रूप और बौद्धिक अधिक ही होते हैं। कथाकारों के सामने प्रतिपादन शैली के विविध रूप- वात्स्य विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक, संवादात्मक, पत्रात्मक आदि रहते हैं जिनकी जंगला तथा कीर्ती कहानियों से ग्रहण किया है। बहूतीदार , हिन्दू, मुस्लिम, सम्बन्ध , शरणार्थी समस्या, नारी आन्दोलन आदि अनेक विषय मविष्य के कथाकार के लिए विचार सामग्री देकर कहानी रचना को प्रेरणा देते रहेंगे । वैज्ञानिक विषयों पर अभी कथाकारों का मार्ग अभी सुता है। अतः सामाजिक, वैज्ञानिक हास्य तथा व्यंग्य प्रधान तथा सांस्कृतिक विकास की कहानियों का मविष्य अधिक उज्ज्वल है।

आज हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में जी नवोन प्रयोग

जी चल रहे हैं उनको आधार मानकर ही तुलना की गई है। हिन्दी क्या साहित्य से उर्दू क्या साहित्य प्रेमपरक अधिक है क्योंकि उर्दू पर फारसी का अधिक प्रभाव है इस कारण जासूसी घटनाएँ जादि का हीना स्वाभाविक है। मुझे प्रमचन्द ने तो उर्दू में पहले लिखा बाद में हिन्दी की ओर आये वतः बादशाहनुल्ल यथार्थवाद की फसक दोनों क्या साहित्यों में देखने को मिलती है। इसी प्रकार प्रगतिवादी लेखक यशपाल, नागाजुन, रांगेय रायस की तुलना कृष्णचन्दर , राबिन्द्र सिंह वेदी, पंटी जादि से की जाती है। इसी प्रकार सैक्सी क्याकार वसुध , जी.डी. की तुलना कृष्णचन्दर तथा बुगताई से की जा सकती है। इसी प्रकार ऐतिहासिक मनोविज्ञान सामाजिक जादि नवीन प्रयोगों को ध्यान में रखकर शोध को दृष्टि से ही हिन्दी तथा उर्दू क्या साहित्य का दोसवीं शताब्दी में तुलनात्मक अध्ययन का मौलिक प्रयास किया गया है।

द्वितीय

द्वितीय अध्याय

कथा-साहित्य का अर्थ-

असंख्य वर्णों की साधना से तथा अनेक युगों में विकसित भारतीय-साहित्य की अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त इसकी कथा-प्रवृत्ति अनुपम है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में कथा की कला क्रमशः अपने बीज रूप से विकसित होती हुई चरम सीमा पर फलवती हुई है। संस्कृत में कथा, कथानक, आस्थान, आस्थानक तथा आस्था-यिका ये ही शब्द छोटी बड़ी सभी प्रकार की कहानियों में प्रयुक्त होते हैं। "कथा" आस्थायिका और कहानी कथनात्मक साहित्य के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। "कथा" नाम इतना शिथिल है कि प्रत्येक कथानात्मक रचना को "कथा" कहा जा सकता है। पुराने साहित्य में कथा शब्द का व्यवहार स्पष्ट रूप से दो अर्थों में हुआ है। एक तो साधारण कहानी के अर्थ में और दूसरा अलंकृत काव्यरूप के अर्थ में। साधारण कहानी के अर्थ में तो पंचतंत्र की कथाएं भी कथा हैं, महाभारत और पुराण के आस्थान भी कथा हैं और सुबाहु(सुबन्धु) की वासावदत्ता, बाण की कादम्बरी, ऐस्केन्ड की बृहत्कथा आदि भी कथा हैं। परन्तु विशिष्ट रूप में यह अर्थ अलंकृत गद्य काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। "शेष दो नामों में से आस्थायिका अधिक कलापूर्ण होने के कारण बहुत आगे तक न चल सका। केवल कहानी शब्द ही मध्य युग और आधुनिक युग तक चल रहा है, यद्यपि उसका रूप परिवर्तित हो गया है। "उपन्यास" नाम से पूर्व कथा और कहानी नाम मिलते थे, परन्तु दोनों के अर्थों में अधिक अन्तर न था, "आस्थायिका" नाम आजकल कई बार छोटी कहानियों के लिए आया है, परन्तु वह न तो शास्त्र के अनुकूल है और न आस्थायिका की परम्परा में ही ठीक बैठता है।

“कथा” शब्द कथ से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ कहना या बतलाना है। कथा का अर्थ कहानी या कल्पित आस्थान है पर साधारणतः सभी पुराण रामायण आदि के श्रोताओं के सामने अर्थ सहित पारायण करने की कथा कहते हैं। कथानक का भी यही भाव है। आस्थान शब्द भी “स्था” क्रिया से बना है जिसका अर्थ कहना, वर्णन करना है। इससे बने हुए सभी शब्दों उपास्थान, आस्थायिका आदि का अर्थ कहानी, वर्णन, वृत्तान्त आदि हैं। इन शब्दों के अर्थ में थोड़ा भेद किया गया है, जैसे आस्थान कहानियों के नायकों में से एक माना गया है, जिसे कथा के रूप में कहा जाय। आस्थायिकाओं में उपदेशपूर्ण या शिक्षा देने वाली कहानी रहती है जिसे पात्र स्वयं कहें उसे आस्थानक कहते थे। इस प्रकार ये सम्पूर्ण शब्द साधारणतः कथा-कहानी के लिए प्रयुक्त होते थे। आधुनिक काल से बड़े उपन्यास पहले लिखे ही नहीं जाते थे अनेक कथाओं के विशाल संग्रह भी बृहत्कथा, कथासरित्सागर आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत परम्परा :

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषा युगों में मिलता है। इन समस्त भाषा युगों में कथा की कला अपनी अलग अलग विशेषताओं के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी है। अतः जालीचकों ने प्राचीन कला साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से जोड़ा है परन्तु ऋग्वेद में हमें कथायें नहीं मिलती वरन् कथाओं के बीज मिलते हैं। इनमें यज्ञ छुत्र की सुगन्धि तथा मंत्रों का सुन्दर संगीत मिलता है। इनमें कहीं भी कथा का वह रूप नहीं मिलता जिसे हम ब्राह्मण और उपनिषदों में पाते हैं। ऋग्वेद विभिन्न दैवी शक्तियों की आराधना, पूजा और प्रशंसा में कहें गये मंत्रों का भाण्डार है इनमें कहीं कहीं पर सूक्त अवश्य मिल जाते हैं, जिनमें दो या तीन पात्रों के परस्पर कथोपकथन जुड़े होते हैं। ऐसे सूक्तों

की संवाद सूक्त कहते हैं। इसी प्रकार भिन्न देवताओं के विषय में मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद आख्यानों के संकेत मिलते हैं- जैसे प्रसिद्ध "अपाला की कथा" का संकेत ।

कथा-साहित्य के संस्कृत में दो रूप हैं- नीति कथा एवं रंजन कथा । पाठकों को सामान्य नीति का उपदेश देने के लिए बीच २ में श्लोकों से युक्त गद्य कथा नीति कथा की इसके उदाहरण "पंचतन्त्र" और "हितीपदेश" हैं। इनमें पद्य-भाग प्रायः उद्धृत है, गद्य भाग रचित । मूल कथा के भीतर और उपकथारं प्रायः किसी पद्य के टांके से जुड़ी हुई हैं। रंजन-कथाओं के दो रूप हैं- साहित्यिक और लौकिक । साहित्यिक रंजन कथाओं की "आख्यायिका" और "कथा" दो संज्ञारं हैं, इनके उदाहरण हैं "दश-कुमारचरित" और "अवन्ति सुन्दरी कथा" वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी आदि । ये रचनाएं कलापूर्ण हैं और इनमें कथा तत्व और सौंदर्य-तत्त्व का समन्वय है। लोक रंजन कथाओं में "बृहत्कथा मंजरी", "कथा सरित्सागर", शुक सप्तति, वैताल पंचविंशति और सिंहसन द्वात्रिंशिका आदि हैं। इनकी मूल प्रेरणा गुणादय की "बृहत्कथा" है। इनका उद्देश्य कुतूहल और मनोरंजन है। इनका साहित्यिक तथा सामाजिक स्तर बहुत अधिक नहीं है। समस्त कथाएं अतिरंजित यथार्थता से भरी हुआ है। इस साहित्य का विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और विदेश में "अलिक लैला" जैसी कमर कथाओं की इसने जन्म दिया ।

उपनिषदों में सुख-शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच बीच में कथारं आने लगती हैं। परन्तु ये कथारं कथा-साहित्य की दृष्टि से नहीं आई हैं वरन् उपनिषदों के भिन्न भिन्न प्रतिपाद्य तत्वों को लेकर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गई है- ठीक उसी प्रकार जैसे बाइबिल ईसाई धर्म की महान् सत्ता और ईश्वर की अन्त शक्ति में विश्वास और अविश्वास के

धरातल पर अनेक कथाएँ मिलती हैं। कठोपनिषद् में "देवताओं की शक्ति परीक्षा की कथा, कठोपनिषद् में नचिकेता के साहस की कथा, छान्दोग्य उपनिषद् में "सत्यकाम की गौ सेवा" आदि। वस्तुतः उक्त कथाओं का सम्बन्ध हमारे आत्मिक जीवन से है तथा इन कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णात्मक और कलात्मक है, जिनके माध्यम से अध्यात्मवाद, यज्ञ, मृत्यु के बाद का जीवन, पूर्व जन्म, मोक्ष, आनन्द आदि विषय प्रतिपादित किये गये हैं। इन अमूर्त विषयों को मानव के हृदय में प्रतिष्ठित करने के लिए यहाँ कथाओं को ही उनका माध्यम बनाया गया है। अतः इन कथाओं में जहाँ तत्कालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में दर्शन तथा अन्य स्थितियाँ व्यंजित हुई हैं, वहाँ उनमें एक जलौकिक पवित्रता भी मिलती है। इन कथाओं के पात्र प्रायः कृष्ण, ब्रह्मचारी, राजा तथा पुरोहित मिलते हैं। इन कथाओं का मूल विषय भी आत्मा परमात्मा के धरातल से चला है। ये कथाएँ आदर्श तथा शिक्षाप्रद हैं। प्रत्येक कथा में कथानक का विकास गहन तत्त्वों के प्रवचन के बीच तथा प्रायः समस्त कथाओं का आरम्भ प्रश्न और जिज्ञासा से हुआ है। यही कारण है कि उपनिषद् की मुख्यतः उक्त कथाएँ अत्यन्त मनोरंजक हैं।

संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् के कथा तत्त्व के संयोग से अनेक कथाएँ प्रचलित हुईं। उस काल के साहित्यिक मनोविन्यासों को एक महान् और व्यापक कथा ढूँढनी पड़ी। परन्तु तब तक की सामग्री के अन्तर्गत में ढूँढने से जो उन्हें राम कृष्ण की कथा मिली होगी वह बहुत छोटी रही होगी। अतः वाल्मीकि और वेद व्यास को कुछ मूल कथा और बहुत कुछ कल्पना के संयोग से एक आस्थान बनाना पड़ा होगा और ऐसे ही आस्थान के भरदण्ड पर उन मनोविन्यासों ने रामायण और महाभारत आस्थानक काव्यों की सृष्टि की होगी। परन्तु इन आस्थानक काव्यों के पूर्व ही उपनिषदां

की कथाओं की मूल आत्मा जिज्ञासा और प्रश्नोत्तरों की भावना पर आधारित थी । वाल्मीकि रामायण में सरयू नदी की उत्पत्ति की कथा इसका उदाहरण है। तथा महाभारत में विभिन्न पात्रों के सम्वाद, प्रश्न तथा समस्त गीता के प्रवचन इसके साक्षी हैं। रामायण की रचना बुद्ध के जन्म से पहले ही हुई, क्योंकि रामायण की ५०० ई० पू० से पहले की रचना मानना संगत है। महाभारत भी बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ है। इस प्रकार रामायण और महाभारत के माध्यम से पौराणिक कथाओं का प्रारम्भ जातक कथाओं से बहुत पहले ही चुका था ।

आख्यान और पौराणिक कथाओं की दृष्टि से महाभारत का स्थान प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य में अग्र्व है। इन कथाओं की विशेषता यह है कि उनमें इतिहास, धर्म और कल्पना तीनों का एतना सुन्दर सन्धय हुआ है कि ये कथारं स्वभावतः पौराणिक कथाओं के रूप में समूचे परवर्ती संस्कृत नाट्य-साहित्य की उपजीव्य बनी है। इसके उपाख्यानो के ही अवलम्बन से आगे के संस्कृत कवियों, लेखकों ने काव्य, नाटक, चम्पू और कथा आख्यायिकाओं आदि की सृष्टि की । दूसरी ओर महाभारत की ये अखण्ड कथायें मूल आख्यान से इतनी कलात्मकता के साथ जुड़ी हुई हैं कि उनके सामूहिक कथा-तत्त्व में हमारा समग्र जीवन अपने विस्तृत रूप में समा गया है, यही कारण है कि महाभारत जहाँ कि एक ओर आख्यानक काव्य है वहाँ दूसरी ओर पुराण भी । संस्कृत में पुराण शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है- पुराणमाख्यानम् । इस प्रकार आख्यान और पौराणिक कथाओं का प्रारम्भ यहीं से होकर आगे जाने वाले तमाम पुराणों से विकसित होकर ये कथारं प्राचीन भारतीय

१- संस्कृत साहित्य का इतिहास- बल्देव उपाध्याय, गौरीशंकर उपाध्याय

पृ० ४५

२- ,,

,, पृ० ५७

ग्रन्थ है। वैसे लोग परवती कथा साहित्य को बाण को 'कादम्बरी', वसुबन्धु की 'वासवदत्ता' और दण्डी का 'दशकुमारचरित' भी लेते हैं। परन्तु यह काव्य ग्रन्थ कथा और उपन्यास की अपेक्षा गद्यकाव्य अधिक और कथा कम है। बाण का 'हर्षचरित' तो निश्चित रूप से कथा ग्रन्थ के बहुत ही समीप है। 'कथा सरित्सागर' का स्थान परवती संस्कृत कथा-साहित्य में अद्वितीय है।

हिन्दी परम्परा :

अपभ्रंश के अस्त होते होते आधुनिक भाषाओं का युग आरम्भ हो गया। अपभ्रंश और खड़ी बोली के बीच के युग को साहित्य का मध्ययुग कहा जा सकता है। इस काल में जनता की चित्तवृत्ति वीर रस, भक्तिरस, शृंगार-रस की ओर कालक्रम से झुकी रही। इस काल में अपार साहित्य का सर्जन हुआ। इसमें एक बड़ा अनुपात कथनात्मक साहित्य का था। इस साहित्य के सम्बन्ध में यह समस्या है कि काव्य और 'कथा' का अन्तर किस प्रकार किया जाय। यदि मुक्तक को अलग कर लें तो बचे हुए प्रबन्ध ग्रन्थों और कथा-काव्यों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है। पद्मावत को श्रेष्ठ काव्य भी कह सकते हैं तथा उत्तम कथा भी। दूसरी समस्या काव्य रूप की है, चरित कथा, कहानी, उपन्यास, मंगल आदि साहित्य रूपों का इतना शिथिल प्रयोग है कि प्रयोग के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालना कठिन है। रासो, वात, चरित, मंगल, उपाख्यान, कथा, कहानी आदि मुख्य मुख्य साहित्यिक रूप मिलते हैं। चरित, उपाख्यान, कथा और कहानी ये चारों रूप परम्परा से चले आ रहे हैं। इनमें से कथा का शिथिल प्रयोग बाणभट्ट के समय से ही धार्मिक कहानियों में ही होने लगा था। चित्रमुकुट की कथा, मृगावती की

कथा, सत्यवती की कथा, कबीली भटियारी की कथा मकरध्वज की कथा । चरित काव्य रूप संस्कृत की आख्यायिका और अपभ्रंश के "चरित" का ही रूप है, यह नायक-नायिका के आश्रय से लिखा प्रबन्ध का मध्ययुग में इसके कथानक के रूप में इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति का जीवन ही आसकता था, जैसे-रामचरित, गुदामाचरित, ध्रुवचरित, पद्मिनी चरित आदि । सूफी कवियों ने अपनी कथाओं को लोक कहानी और प्रेम कहानी कहा है। इनका काव्य रूप तो मसनवी है, परन्तु इसकी परम्परा "प्रेम तथा लोक से सम्बन्ध रखती है, यह लौकिक प्रेम कहानियाँ पूर्वी हिन्दी में लिखी गईं । मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रमास्थानक काव्य सबसे अधिक मिलते हैं। हिन्दी के चारणकाल में उसकी प्रायः वही स्थिति रही लेकिन लोक गाथाओं में वह प्रेम विशुद्ध लौकिक परातल पर जाया तथा लोक गाथाएं तथा प्रेम कथाएं प्रतिष्ठित हुईं । मध्यकालीन हिन्दी आस्थानक काव्यों में इन्हीं लौकिक कल्पित अथवा मिश्रित प्रेम कथाओं में आध्यात्मिकता जोड़ी गई और इसके तदात्म्य से हिन्दी में जो आस्थानक काव्य बच्य, उनमें कथा-शिल्प और भावात्मिकता दोनों अपूर्व ढंग से सिद्ध हुए । ये मध्यकालीन आस्थानक काव्य जैसे - कुतुबन की मृगावती, जायसी का पद्मावत, मकन की मधुमालती, उसमान की चित्रावती, नूर मुहम्मद की इन्द्रावती और दुखहरन की पुष्पावती आदि जहाँ एक ओर वर्णनों, चित्रणों और काव्यात्मक, रसात्मकता में उत्कृष्ट हैं, वहाँ दूसरी ओर इनका कथा-शिल्प भी परम आकर्षक है। पद्मावती, मृगावती, मधुमालती, इन्द्रावती आदि प्रमास्थानों का कथा-शिल्प प्रायः एक ही भांति है, परन्तु मकन की मधुमालती के कथा-शिल्प पर कथा सरित्सागर और "हितोपदेश" के कथा-शिल्प का प्रभाव है। चौरासी वैष्णवन की बातें तथा दी सौ जावन वैष्णवन की बातें वैष्णव के जीवन सम्बन्धी पटनाओं की कथा के पुट से अभिगत करता है। इन वाताओं में कथा-तत्त्व केवल इसी अर्थ में है कि यहाँ जीवन की किंचित्

घटनाओं विवरणों की अभिव्यक्ति कथा के माध्यम से हुई है लेकिन इनसे हम यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी गद्य में यह पहला प्रयत्न है जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बातें कथा-रूप में ढलकर हमारे साहित्य में आई हैं। कथा-चरित्रों के रूपों के परिवर्तन के साथ साथ जिस भांति कथाओं, आख्यानों के विषय और लक्ष्य में भी परिवर्तन होते गये हैं। वैदिक काल में कथाएं देवताओं की स्तुति और यज्ञादि के मंत्रों के बीच में छिपी हुई थीं और उनका ध्येय विरुद्ध धार्मिक था। उपनिषद् काल में कथाओं की मुख्य संवेदनएं अध्यात्मज्ञान और अध्यात्म चर्चा की लिए हुई आई हैं। पौराणिक काल में जीवन अपने संपूर्ण रूपों में अभिव्यक्त हो उठा है। धर्म, समाज, राजनीति का समावेश साहित्य में हुआ है। फलतः यहां से दन्त कथाओं एवं आख्यानों का आरंभ हुआ है। जीवन और साहित्य में कथा ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। इसका प्रभाव हमकी परवर्ती संस्कृत-कथा-साहित्य में परिलक्षित होता है। पालि-साहित्य में कथाओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया है और कथा के माध्यम से धर्म की प्रचारात्मक नीति की नींव पड़ी है। हिन्दी के प्रारम्भ और मध्यकाल में काव्य की प्रमुखता थी प्रायः सब प्रकार के विषयों और विवेचनाओं का अध्ययन पथ ही था परन्तु कथा का महत्व सर्वत्र था। चन्द्रबर-दाई का रासी, जगनिक का आल्हाखण्ड, जायसी का पद्मावत, सूर का सूर सागर, तुलसी का मानस, केशव की रामचन्द्रिका, लाल का "छत्रप्रकाश" सुदन का "सुजान चरित्र" आदि सभी ग्रन्थों का आधार कथा ही है। वैष्णवों की बातों के माध्यम से हिन्दी कथा की एक नवीन मार्ग मिला लेकिन इस दिशा में शीघ्र ही हिन्दी खड़ी बोली के आजाने से यह मार्ग बन्द हो गया। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज भाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली गद्य इन तीनों की स्फुट साहित्यिक परम्पराएं हमें पहले मिली थी, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी

के उत्तरार्ध में इन तीनों परम्पराओं से खड़ी बोली को एक नवीन पथ मिला । उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध ही हिन्दी कहानियों की पीठिका है। भारतभू से पूर्व का कथा-साहित्य मुख्यतः पौराणिक आख्यानो पर आधारित है और लेखकगण रागात्मक कल्पनाओं से प्रेरित हैं। लल्लुलाल का "प्रेम सागर", सदलमित्र का "नासिकेतोपाख्यान", शंशावल्ता खां की रानी कतकी की कहानी अन्य कथा ग्रन्थ कह जाते हैं। ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दृष्टि से केवल "प्रेम सागर" का ही महत्व है।

अन्य भाषाओं की परम्पराएं :

अन्य भाषाओं का स्थान भी भारतीय कथा-परम्परा में अपना विशिष्ट महत्व रखता है। इन भाषाओं में बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाएं आती हैं। ज्ञान-प्रचार तथा प्रसार के साधनों का संग्रह बंगाल में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा कुछ पहले हुआ । अतः बंगला कथा-साहित्य का आरम्भ अंग्रेजी संस्कृत, बरबी, फारसी तथा उर्दू कथा-साहित्य के आधार पर बहुत पहले हुआ । सर्वसाधारण के सम्पर्क में आने वाले अंगरेज अधिकारियों को यहां की देशी भाषाओं से अवगत कराने के लिए फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना सन् १८०० में हुई । उसमें प्रान्तीय भाषाओं के विशेषज्ञों की नियुक्तियां की गईं तथा कथा-साहित्य की क्षाप बंगला कहानियों में पड़ी । हिन्दी के समान बंगला में भी **जुलुसिख कपड** आधुनिक कथा-साहित्य का प्रारम्भ मनोरंजनार्थ क्लृप्त कहानियों से ही प्रारम्भ होता है। श्री त्रिपुरा शंकर सेन के अनुसार जो ७ पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनमें ३ कथा सम्बन्धी हैं- "मृत्युञ्जय" विमलंकार, "बत्तीस सिंहासन" गोलीकनाथ शर्मा, "श्लोपदेश" चण्डीचरण मुन्शी "तोता इतिहास" । जिस प्रकार "किस्सा खां" का

वर्णन^१ डा० लक्ष्मीसागर वाष्णीय ने किया है उस प्रकार के कथक^२ पूर्वो भारत में समाज के विशेष अंग थे - उस्मान ने कथा प्रिय चार जातियों^३ में कथक का भी नाम गिनाया है। पाश्चात्य संस्कृति का बंगाली समाज पर प्रभाव बहुत दिनों तक कथा का विषय बना। इस वर्ग की श्रेष्ठ मौलिक रचना प्रमनाथ शर्मा (भवानीचरण वन्द्योपाध्याय) का "नवबाबुविलास" है। भवानी चरण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे "समाचार चन्द्रिका" और "संवाद कौमुदी" के सम्पादक तथा धर्म-सभा के मंत्री थे। भवानीचरण ने "नवबाबुविलास" में बाबुजी का बड़ा व्यापक चित्रण किया है। वास्तविक जीवन के चित्रण का बंग भाषा में यह प्रथम प्रयत्न है। कुमांगी से धन संचय करने वाले धनिक पुत्रों का इसमें विलासी जीवन अंकित किया गया है। इसी परम्परा का विकास "आलार धरर दुलाल" में हुआ है।

"समाचार-दर्पण" में प्रकाशित "बाबूर उपास्थान" नामक हास्य रसपूर्ण सामाजिक चित्र "नवबाबुविलास" का पूर्वागामी है। कुछ व्यक्ति इसकी भी भवानीचरण की रचना मानते हैं। एन्हीं रचनाओं की कला का विकास "आलार धरर दुलाल" में हुआ, इसके लेखक टेकचंद ठाकुर थे। "आलार धरर दुलाल" ही बंग भाषा का प्रथम उपन्यास माना जाता है। "नवबाबुविलास" में कई स्थानों पर कर्लीलता जागरूक है परन्तु "आलार धरर दुलाल" में सर्वत्र शिष्टता का ध्यान रखा गया है।

१- फीट विस्त्रियम कालिः पृ० ५०

२- डा० जयन्तिकुमारदास गुप्त : ए क्रिटिकल स्टडी आफ दि लार्फ एण्ड नाविल्स आफ बंकिमचन्द्र - पृ० १

३- भाटन जीरि भटन्तु सुहावा । गुनियन उहे गति पुनि गावा ।
कथन देखावहि कथा बखानी । घर घर बालक कहै कहानी ॥

- चित्रावली : कथक खण्ड

४- इस वर्णन में प्रकाशन तिथि श्री त्रिपुरा शंकर सेन के अनुसार दी गयी है।

“नवबाबुविलास” और “अलातर घरेर दुलाल” के बीच में प्रसिद्ध पुस्तकें “द्विती विलास” “प्रारब्ध उपन्यास” नवबोबोविलास मनोहर उपास्थान आदि हैं। “अलातर घरेर दुलाल” और “दुर्गेशनन्दिनी” के बीच में लिखित इसी प्रकार की कथा-कृतियां हैं इनमें से अधिकतर तो मध्य-युगीन वर्ग की या संस्कृत-उर्दू आदि से अनूदित हैं। भूदेव मुत्तोपाध्याय की ऐतिहासिक उपन्यास और रामकालि राम सदन भट्टाचार्य की “अद्भुत उपन्यास” है। ये दोनों लेखक अपने अपने क्षेत्र में प्रथम मौलिक उपन्यासकार हैं। बंकिमचन्द्र के समय तक बंगला में साहित्यिक उपन्यास की तीन मुख्य धाराएं विकसित होने लग गई थीं— “सामाजिक, ऐतिहासिक एवं अद्भुत। हिन्दी में भी इसी प्रकार की धाराएं दृष्टिगत होती हैं। किशोरोलाल गोस्वामी ने इनकी क्रमशः सामाजिक, ऐतिहासिक तथा घटनात्मक नाम दिये हैं।

बंगला के प्रथम साहित्यिक उपन्यासकार जिन्होंने उपन्यास क्षेत्र की एक एक करके १४ रत्नों में प्रकाशित किया बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय थे। प्रारम्भ में वे अंग्रेजी में कहानियां लिखते थे। “दी एड-वेन्चर्स आफ् क यंग हिन्दू” उनकी प्रथम तथा “राजमोहन बाइफ” अंतिम रचना है। इसके बाद उन्होंने बंगला में लिखना प्रारम्भ किया और बंगला के सबसे बड़े उपन्यासकार बन गये। अंग्रेजी में “कपालकुण्डला” का अनुवाद सन् १८७६-७७ में, दुर्गेशनन्दिनी का १८८० में और विष्णुदा का १८८४ में हुआ। हिन्दी में १८७३ में दुर्गेशनन्दिनी का और १८८० में मृणालिनी का अनुवाद हुआ। देवकीनन्द खत्री और किशोरोलाल गोस्वामी के लेखन से पूर्व बंकिमचन्द्र की कुछ रचनाएं अवश्य बंगाल से बाहर भी लोकप्रिय हो गई थीं। “दुर्गेशनन्दिनी” का अनुवाद भारतेन्दु वाङ्मय के प्रयत्न से ठाकुर गदाधर सिंह ने और “राधारानी” का श्रीमती मालिका देवी ने किया था। अस्तु भारतेन्दु के अन्तिम दिनों में बंगला उपन्यासों का अनुवाद का कार्य प्रारम्भ हो गया था तथा बंगला के अनु-

करण पर नवीन ढंग के उपन्यासों की ओर हिन्दी जगत् की रुचि होने लगी थी ।

बंकिमचन्द्र के समकालीन साहित्यिकों में उपन्यास-लेखन का विशेष उत्साह था, अधिकतर उपन्यासों के हिन्दी में अनुवाद भी हो जाया करते थे । तारकनाथ गंगोपाध्याय ने "स्वर्णलता" नामक उपन्यास लिखा, जिसका अनुवाद भारतेन्दु ने राधाकृष्णदास से कराया । सजीवचन्द्र चट्टोपाध्याय का "माध्वीलता", पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय का "शैल सखरी", रमेशचन्द्र दत्त का "माध्वी" "स्वर्णकुमारी" का "दीप निर्वाण" आदि उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में होकर बड़े लोकप्रिय हो गये थे । भारतेन्दु ने उपन्यास क्षेत्र में अनुवाद और मौलिक रचनाओं का जो सूत्रपात किया वह उत्तरोत्तर विकसित होता गया, फलस्वरूप हिन्दी में कई अच्छे उपन्यासों की रचना हुई । भारतेन्दु के उदय से हिन्दी-साहित्य ने एक निश्चित मार्ग और स्तर ग्रहण किया । भारतेन्दु का जन्म यद्यपि काशी में हुआ था, परन्तु उनके पूर्वज सेठ अमीचन्द बंगाल के नवाब के उच्च पदाधिकारियों में थे । उस संस्कार से या जगन्नाथ की यात्रा के कारण भारतेन्दु का बंगीय साहित्य से विशेषतः नाटक और उपन्यास से घनिष्ठ परिचय हो गया । तन् १८६८ में उन्होंने बंगाल के नाटक "विषा सुन्दर" का अनुवाद किया तथा "कवि-नवन-सुधा" नामक पत्रिका निकाली । उनकी विशेष छाप खड़ी बोली गय पर है, कथा के क्षेत्र पर भी उनका प्रयास स्तुत्य है। भारतेन्दु ने मराठी और बंगला से उपन्यासों के अनुवाद करायें । संस्कृत से "कादम्बरी" बंगला से "दुर्गेशनंदिनी" और मराठी "चन्द्रप्रभापूर्ण प्रकाश" हिन्दी में उपन्यास के प्रथम अनुवाद हैं। "चन्द्रप्रभापूर्ण प्रकाश" का अनुवाद श्रीमती "मल्लिकादेवी" "चन्द्रिका" ने किया था और भारतेन्दु ने स्वयं शुद्ध किया था । भारतेन्दु जो ने अनुवाद

ही नहीं कराये वरन् स्वयं कथा-साहित्य की रचना की। कथा-साहित्य की उनकी अनर रचना तो एक कहानी "कुछ आप बीती कुछ जग बीती" है जिसका कवि वचन सुधा में वे केवल एक "लैल" लिख पाये थे। यदि यह रचना पूर्ण होगई होती तो आत्म कथात्मक उपन्यास के क्षेत्र में अपूर्व एवं अनुकरणीय बन जाती। यदि जीवन के प्रति उत्साह जागर पाठक की वास्तविक जीवन के निकटतर लाना वाज के उपन्यास का लक्ष्य है तो वह भारतेन्दु की इस कहानी में पूरी तरह पिलाई पड़ता है। उस समय तक समाज चित्रों की परम्परा बंग भाषा में प्रारम्भ होगई थी, टेकचन्द ठाकुर के "आला-लैल परैर दुलाल" का दूसरा संस्करण निकल चुका था, टेकचन्द ठाकुर जूनियर का "कलिकातार नूकीचूरि" प्रकाशित हो गया था। इन्हीं दिनों "आलालैर परैर दुलाल" का अंग्रेजी अनुवाद नरेन्द्रलाल मित्र ने किया तथा श्रीनिवासदास ने "परीक्षा गुरु" नामक मौलिक उपन्यास लिखा।

विद्वानों के अनुसंधान से अप्रमंश में लिखित बड़ा ही समृद्ध साहित्य प्रकाश में आया है। यद्यपि इसका अधिकांश काव्य है किन्तु इससे कथा-कथन के स्वरूप एवं उसकी परम्परा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अप्रमंश की संपूर्ण रचनाएं मुक्तक तथा प्रबन्ध इन दो रूपों में मिलती हैं। मुक्तक रचनाएं अधिकतर सूक्ति बहुत एवं धर्म-आचार के प्रचार के लिए लिखी गई हैं। किन्तु इनके बीच बीच शृंगार एवं वीर रस की रमणीय मुक्तक रचनाएं भी मिलती हैं जिनके द्वारा तत्कालीन लोक कथाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन कथाओं में मुंज और मुणालक्वती की कथा तथा रानवधण और राण सम्बन्धी कथाओं में पर्याप्त औपन्यासिक सामग्री है। इन्हीं को आधार मानकर श्री के० एम० मुन्शी ने गुजराती में क्रमशः "पृथ्वी वल्लभ" तथा "गुजरात के नाथ" नामक उपन्यास लिखे।

संदीप में भारतीय कथा-परम्परा के विकास से स्पष्ट हो जाता है कि इस प्राचीन देश में आदि काल से ही कथाओं का प्रचलन रहा है। वैदिक साहित्य में यज्ञ, देवस्तुति, अध्यात्म जिज्ञासा एवं तत्त्व-निरूपण के लिए संक्षिप्त कथात्मक प्रसंगों के संकेत भर मिलते हैं। रामायण, महाभारत तथा पुराण ग्रन्थ अस्तित्वा कथाओं का भाण्डार है। इनमें एक और ती उच्चतम आदर्शों की स्थापना की गई और दूसरी ओर मानवीय दुर्बलताओं को भी चित्रित करने का प्रयास किया गया। इसी समय में वर्णन पद्धति की कुछ रुढ़ियां बन गई जिनका आगे भी पालन होता रहा। इनमें सबसे प्रमुख रुढ़ि यह बनी कि कवि स्वयं कथा न कहकर दो पात्रों के प्रश्नोत्तर के रूप में सारी कथा कहता है। बुद्ध ने अपने उपदेश के लिए लोक भाषा पाति की ग्रहण किया और लोक कथाओं के माध्यम से उपदेश देने की प्रणाली प्रादुर्भूत हुई। जातक कथारं छोटी छोटी हैं, किन्तु उनमें उद्देश्य के अनुसार लोक कथा की परिवर्तित कर लेने का अद्भुत कौशल है। पूर्व जीवन कथा को वर्तमान कथा से सम्बद्ध करने का कौशल भी जातक की विशेषता है। जातक के कथाकार एक ही व्यक्ति (बुद्ध) हैं। परवर्ती संस्कृत साहित्य में आकर कथा में मनोरंजक तत्व की प्रमुखता मिली और कथासरित्सागर के रूप में एक बृहत्कथा भाण्डार प्रस्तुत हुआ। " पंचतन्त्र " " श्रितापदेश " में कथा के माध्यम से उपदेश देने की जातक शैली का विकास हुआ तथा अपभ्रंश में कथा की अधिक लौकिक धरातल प्राप्त हुआ। प्रेमास्थानों की कादम्बरी वाली परम्परा नवीन वातावरण में एक नवीन रूप में विकसित हुई जिसमें काव्य तत्व की अपेक्षा कथा तत्व की प्रमुखता मिली। यही परंपरा सूफ़ी कवियों में हुई और " पद्मावत " जैसे उत्कृष्ट प्रेमास्थानक काव्य की रचना हुई। " पद्मावत " आदि रचनाएं आध्यात्मिकता के पुख को हटा देने पर शुद्ध रोमान्स काव्य रह जाती हैं। हिन्दी-उपन्यास के प्रारम्भिक युगों में इस रूमानी प्रेम के वर्णन की प्रवृत्ति अधिका मिलती है।

कथा और वाख्यायिका का भेद :-

दण्डी के अनुसार वाख्यायिका केवल नायक द्वारा कही गई होनी चाहिए। यदि नायक अपने गुणों का उल्लेख भी करे तो वह दोष नहीं है इसके विपरीत कथा का वाचक नायक या अन्य कोई व्यक्ति हो सकता है। वाख्यायिका में यद्यपि नायक के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा कहे जाने पर दोष होता है, किन्तु वाचक नायक है अथवा अन्य कोई प्राणी कथा और वाख्यायिका के रूप में कोई अन्तर नहीं आता। वक्ता और अपरवक्ता छन्दों का तथा उच्छ्वासों का प्रयोग प्रसंगानुसृत कथा में भी हो सकता है। इस प्रकार कथा और वाख्यायिका दोनों एक ही जाति की दो सजाई हैं और शेष वाख्यान छन्दों के अन्तर्गत आजाति हैं। दण्डी के अनुसार कथा में अभिप्राय (जो कुछ निश्चित सक्तों जैसे माघ के काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में " श्री " और भारवि के किराताजुनीय के सर्गान्त में सर्वत्र " लक्ष्मी " शब्द के प्रयोग से प्रकट होता है) सूचित हो और वाख्यायिका में ऐसा निष्कर्ष होना आवश्यक नहीं है। यह भी दोनों के भेद का कोई आधार नहीं होना चाहिए। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वाख्यायिका और कथा में केवल इस बात को छोड़कर कि वाख्यायिका का वाचक अन्य कोई व्यक्ति (पात्र ?) अन्य किसी भी प्रकार का अंतर नहीं किया जा सकता। दूसरी यह है कि दोनों ही विधाओं पर एक वाचन सम्बन्धी (बंधक को छोड़कर और किसी प्रकार का बंधन नहीं होना चाहिए। तीसरी यह कि कथा और वाख्यायिका के अतिरिक्त गद्य के और भेद नहीं किए जा सकते। वाख्यायिका कवे छोटी कहानियाँ हैं जो केवल मनोरंजन के लिए लिखी गईं। भामह ने वाख्यायिका की व्याख्या में निम्नलिखित लक्षण गिनाये हैं। वाख्यायिका उच्छ्वासयुक्त होनी चाहिए। इसका वृत्त नायक स्वयं अपने मुख से कहे। इसमें वक्ता और अपरवक्ता (छन्द) होते हैं और भविष्य की घटनाओं की सूचना होती है। कहीं कहीं इसमें कवि का अभिप्राय व्यक्ति

का प्रयोग, उच्छ्वास नामक परिच्छेदों की व्याख्या, उच्चर भाग में चूर्णक गद्य की शैली, वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग ।

कथा पर अग्निपुराण की कृपा मालूम देती है।
वाक्यायिका पर जितने बंधन थे कथा पर उतनी ही छूट दी गई। इसके लक्ष्मण इस प्रकार हैं : कर्वा के वंश की संप्रदाय प्रशंसा । मुख्यार्थ की सिद्धि के लिए अवान्तर कथाओं की सहायता । कभी कभी बालम्बन (लम्बक) नामक परिच्छेद भले ही हों, पर प्रायः परिच्छेद विहीन हों । दण्डी ने वाक्यायिका और कथा के भेद का आधार ही नायकवाचन और नायकेतर वाचन रखा है। भामह के अनुसार भी वाचन भेद दोनों विधाओं का एक महत्वपूर्ण भेद है। वाक्यायिका के सम्बन्ध में जिसके लिए सभी वाचार्य एक मत हैं उसका वाचन नायक द्वारा ही होना चाहिए । वाक्यायिका गद्य प्रधान साहित्यिक रचना है उसमें कई योजना आगामी घटनाओं का संकेत करने के लिए होती है। उसका विषय महान् होता है, उसमें प्रेम के दोनों पक्ष संयोग वियोग होते हैं तथा उसका कक्षा भाग संस्कृत भाषा में स्वयं नायक द्वारा वर्णित होता है। वाक्यायिका साहित्य का वह रूप है जिसके कथा प्रवाह और कथोपकथन में अर्थ अपने प्रकृत रूप में अधिक विद्यमान रहता है और उसे दवाने वाले भाव विधान या उक्ति वैचित्र्य के लिए और थोड़ा स्थान बचता है।^१
वाक्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नार्दीय वाक्यायिक है।

वाक्यायिका की परिभाषा :

“तत्र नायिका स्थावस्स वृत्तान्ता भाव्यर्थं शंसिनी
सोच्छ्वासा कन्धकाफहार समागमाभ्युदय भूषिता भिन्नादि मुक्ताख्यात वृत्तान्ता

१- प्रो० रामचन्द्र शुक्ल का भाषण : २४ वीं हिन्दी साहित्य सम्मेलन पृ० ६

२- साहित्यालोचन- श्यामसुन्दरदास पृ० ११६

अन्तरान्तरा प्रधिरसपय वन्द्या वात्स्यायिका । ”

(काव्यानुशासन - वामभट्ट द्वितीय)

इसका पर्याय वागै चलकर कथा का उल्लेख है :

” धीर प्रतन्तानायाकीक्षा गयेन वा सर्व माणानुविदाकथा ।

” वात्स्यायिकावन्न स्ववरित व्यावर्णवी पितु धीर शान्तानायकः ।

तस्य तु वृत्त मन्थेन कविना यत्र वर्ण्यते सा काविद्वयमयी कादम्बरीकत ।

काचित्पुष्पमयी । सीतावती वत् । सर्वमाणानुविदासंस्कृत प्राकृतेन माग-
ध्यासात्सैन्या शाच्या वपुर्गणैः वा रचिता कथा ।

सा सित्य दर्पण में वाचार्थ विश्वनाथ कविराज
कृत वात्स्यायिका विषयक सामग्री उपलब्ध है। इसमें पहले कथा की रतुपरान्त
वात्स्यायिका के सदाण बताये गये हैं। वात्स्यायिका के सदाण ये हैं :

” वात्स्यायिका कथावस्यात् कवैर्गणानुकीर्तनम् ।

वस्यामन्थ कवीनां च वृत्तं पथं यवचित् यवचित् ।

कथाशानं व्यवच्छेदं वाशवास उति कथ्यते ।

वायां ववत्रासवत्राणां हन्दसा येन केन चित् ॥

इसके अनुसार वात्स्यायिका का स्वल्प कथा के समान
ही बताया गया है।

कथा की व्याख्या विश्वनाथ कविराज ने इन
शब्दों में की है :

१- कैलास्या

होता है। यह इसकी विषय सूची है। वात्स्यायिका संस्कृत में होनी चाहिए जबकि कथा अपभ्रंश में । भामह ने कथा के लक्षणों को इस प्रकार गिनाया है। कथा में क्वत्र और अपरक्वत्र नहीं हो, उच्छ्वास भी नहीं हो । नायक अपना कुछ कथन नहीं करता वरन् अन्य व्यक्तियों द्वारा कुछ कथन होता है।

अग्नि पुराण में वात्स्यायिका की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

कतुर्वैश प्रशंसा स्याथत्र गधन विस्तगत् ।
कन्या हरण संग्राम विप्रलम्भ विषयः
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत् ९ प्रवृत्तयः
उच्छ्वासश्च परिच्छेदोऽत्र या चूर्ण कोतरा
क्वत्र वापरक्वत्र वा यत्र सात्यायिका स्मृता ॥

- अग्निपुराण १३।१४

इसके बाद कथा का लक्षण इस प्रकार है :

श्लोकेः स्ववैश संक्षेपात् कविष्वै प्रशंसति ।
मुख्यस्थायवितारायः भवेत्त्र कथान्तरम् ॥
परिच्छेदो ४ न यत्र स्याद भवेद्दालम्बकैः ५ ववचित
सा कथा नाम तद् गर्भं निबध्नी याच्च तुष्यदीय ॥ (१५।१६)

अग्निपुराण के पद में वात्स्यायिका और कथा का रूप भिन्न २ था । उक्त मतानुसार वात्स्यायिका में निम्न गुण पाये जाते हैं :

कथा के वैश की प्रशंसा विस्तृत रूप से, कलाहरण संग्राम , विप्रलम्भ आदि विषयों से पूर्ण घटना रीति, वृत्ति और प्रवृत्तियों

का प्रयोग, उच्छ्वास नामक परिच्छेदों की व्याख्या, उत्तर भाग में चूर्णक गय की शैली, वक्त्र या अपरवक्त्र इन्दी का प्रयोग ।

कथा पर अग्निपुराण की कृपा मालूम देती है।
वाख्यायिका पर जितने बंधन थे कथा पर उतनी ही छूट दी गई। इसके लक्ष्मण इस प्रकार हैं : कर्तव्य के बंध की संप्रतिष्ठा। मुख्यार्थ की सिद्धि के लिए अवान्तर कथाओं की सहायता। कभी कभी बालम्बन (लम्बक) नामक परिच्छेद मिले ही हैं, पर प्रायः परिच्छेद विहीन हैं। दण्डी ने वाख्यायिका और कथा के भेद का आधार ही नायकवाचन और नायकेतर वाचन रखा है। भाषा के अनुसार भी वाचन भेद दोनों विधायकों का एक महत्वपूर्ण भेद है। वाख्यायिका के सम्बन्ध में जिसके लिए सभी वाच्य एक मत हैं उसका वाचन नायक द्वारा ही होना चाहिए। वाख्यायिका गद्य प्रधान साहित्यिक रचना है उसमें छंद योजना आगामी घटनाओं का संकेत करने के लिए होती है। उसका विषय महान् होता है, उसमें प्रेम के दोनों पक्ष संयोग वियोग होते हैं तथा उसका कथा भाग संस्कृत भाषा में स्वयं नायक द्वारा वर्णित होता है। वाख्यायिका साहित्य का वह रूप है जिसके कथा प्रवाह और कथोक्तथन में अर्थ अपनी प्रकृत रूप में अधिक विद्यमान रहता है और उसे दबाने वाले भाव विधान या उचित वैचित्र्य के लिए और थोड़ा स्थान बचता है। वाख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नारदीय वाख्यान है।

वाख्यायिका की परिभाषा :

“तत्र नायिका ख्यावत्स वृत्तान्ता भाव्यर्थं शैशिनी
सोच्छ्वासा कन्यकापहार समागमाभ्युदय भूषिता भिन्नादि मुखाख्यात वृत्तान्ता

- १- प्रो० रामचन्द्र शुक्ल का भाषण : २४ वीं हिन्दी साहित्य सम्मेलन पृ० ६
२- साहित्यालोचन- श्यामसुन्दरदास पृ० ११६

वन्तरान्तरा प्रविरसपव बन्धा वास्यायिका । ”

(काव्यानुशासन - वाग्भट्ट द्वितीय)

इसका पश्चात् भाग बतकर कथा का उल्लेख है :

“ धीर प्रान्तानायाकीकृता गयेन वा सर्व भाणानुविदाकथा ।

“ वास्यायिकापन्न स्ववरित व्यावर्णवी पितृ धीर शान्तीनायकः ।
तस्य तु कृत् पन्थेन कविना यः वण्यते सा काचिद्वपमयी कादम्बरीवत ।
काचित्पपमयी । लीलावती वत् । सर्वभाणानुविदासंस्कृत प्राकृतेन भाग-
ध्यासीत्सैन्या शाच्या वपुश्चिन्ना वा रचिता कथा ।

साहित्य दर्पण में वाचार्थ विश्वनाथ कविराज
कृत वास्यायिका विषयक सामग्री उपलब्ध है। इसमें पहले कथा और तदुपरान्त
वास्यायिका के सजाण बताये गये हैं। वास्यायिका के सजाण ये हैं :

“ वास्यायिका कथावस्यात् कर्तृशानुकीर्तनम् ।
वस्यामन्य कवीनां च कृतं परं ध्वनितुं ववक्षितुं ।
कथाशानं व्यवच्छेदं वाश्वास इति वण्यते ।
वायं ववत्रापवत्राणां हृन्दसा येन केन चित् ॥

इसके अनुसार वास्यायिका का स्वल्प कथा के समान
ही बताया गया है।

कथा की व्याख्या विश्वनाथ कविराज ने इन
शब्दों में की है :

१- कथाया

“ कथायां सप्त वस्तु गणैव विनिर्मितम् ॥
 वचनपत्र मवेदार्था वचनद वचना पत्रैर्गणे ।
 वाचोपमेयस्कारः कलादेर्वचकीर्णम् ॥

वाक्यायिका में अन्य कवियों के वृत्त के उल्लेख के
 वसिष्ठत शेष सप्तान परम्परागत हैं। लगभग ये ही सप्तान कथा के गिनाये
 गये हैं। दण्डी की भाँति विश्वनाथ भी नायक की वाक्यायिका के वाचक के
 रूप में स्वीकार नहीं करते, प्रकृत वाचिकार की भाँति कर्वाँ की ही वाचक
 मानते हैं, जो वफा ही नहीं अन्य कवियों का उल्लेख भी करें।

कथा-साहित्य की सीमारे :

“ साहित्य ” के भिन्न भिन्न ढोंगों की रूप व्याख्या
 समय समय पर परिवर्तित होती रही है। यही कथा साहित्य के सम्बन्ध में
 भी है। प्राचीनकाल में जबकि साहित्य के सब ढोंगों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ
 था तथा स्थापत्य की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन काव्य था, साहित्य
 तथा काव्य शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में ही जाता था। वेदों में “ कवि ”
 शब्द का प्रयोग “ जादीश्वर के लिए ” तथा श्रीमद्भागवत में जादि “ कवि ”
 का प्रयोग वेदों के सर्वप्रथम प्रकाशक तथा विद्वान् “ ब्रह्मा ” के लिए हुआ है।
 अतः इन शब्दों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में “ कविता ”
 का अर्थ वाङ्मय का ऐसा रूप लिया गया जिसके अन्तर्गत सब प्रकार की ज्ञान-

१- कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः (हजल यजुः संहिता व० ४० सू० ८)

२- तेने ब्रह्म कृदाय जादि कवये । श्रीमद्भागवत १।१।९)

राशि का समाहार होता था। जब 'वाल्मीकि रामायण' तथा महाभारत की रचना हुई तो वाल्मीकि वादि कवि तथा वेद व्यास कवि विशेषताओं से विभूषित किये गये। वस्तुतः उस समय 'काव्य' का स्वरूप पहले की अपेक्षा कुछ भिन्न हो जाता था। पौराणिककाल में तो काव्य शब्द का प्रयोग पहले की अपेक्षा होने संकुचित अर्थ में हुआ है कि जब उसका सम्बन्ध उसके पहले अर्थ से कुछ भी न रहा। उस काल का कवि एक विशेष चित्तकर्षक तथा रमणीय शैली का रचयिता माने जाने लगा। अग्निपुराण के समय तक काव्य का रूप 'शास्त्र' तथा 'इतिहास' से पूर्णतः स्वतन्त्र हो गया था। 'साहित्य' तथा 'काव्य' के स्वरूप की शास्त्रीय परिभाषा करने वाले आचार्यों में भारद्वाज का नाम सबसे पहले आता है। ऐसे समय में क्या साहित्य की सीमाएँ अपना बड़ा व्यापक रूप धारण कर रही थी।

कथा- साहित्य की प्राचीन कथा आत्मान परम्परा सहस्रों वर्षों के विकास क्रम में संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश वादि भाषाओं के माध्यम से व्यक्त होती हुई कथा- कला ने अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ बना ली हैं और इस प्रकार प्रचुर प्राचीन साहित्य के अन्तराल में भी स्थान स्थान पर अन्वेषक को आधुनिक उपन्यास कहानी के अंगीण अंकित मिल सकते हैं।

कथा साहित्य की सीमाएँ आधुनिक युग से पूर्व तीन कालों में विभक्त हो सकती हैं :

- १- प्राचीन कथा साहित्य
- २- मध्ययुगीन कथा-साहित्य
- ३- लड़ी बोली की उपन्यास पूर्व कहानियाँ

प्राचीन कथा साहित्य का निदर्शन संस्कृत के प्राचीन धार्मिक साहित्य में उपलब्ध होता है। वेद, ब्राह्मण, ग्रन्थ, उपनिषद् और पुराण सबमें संवाद और वात्स्यान भरे पड़े हैं। "रामायण" और "महाभारत" भी कथा काव्य ही हैं। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत ये तन्त्र हितोपदेश हैं। लोक-रत्न कथाओं के अन्तर्गत बृहत्कथा मंजरी, कथा सरित्सागर, कुरु सप्तति, वेताल पंचविंशति और सिंहासन द्वात्रिंशिका आदि हैं। इसी प्रकार पाति साहित्य के तीन ग्रन्थ "धैरा गाथा, धैरीरागाथा और जातक" हैं और प्राकृत साहित्य में लोमैन्द्र ने बृहत्कथामंजरी और लोमदेव ने कथा-सरित्सागर में लिखे तथा वज्रेश साहित्य में "कीर्तिवता" नामक पुस्तक लिखी जिसकी वज्रेश भाषा में संस्कृत प्राकृत भाषाओं का मिश्रण है। प्राचीन भाषाओं के इस कथा-साहित्य पर काव्यशास्त्रियों ने भी विचार किया है और इनकी कथा, वात्स्यायिका, तथा वात्स्यान नाम दिए हैं। इन वज्रेश साहित्य में महाभारत कथा से सम्बन्धित अनेक कृतियाँ मिलती हैं। इसमें यत्कीर्ति का "हरिवंश पुराण" सबसे महत्वपूर्ण है।

सारित्तः प्राकृत और वज्रेश साहित्य में कथा का रूप मुक्तः काव्यात्मक रहा है जिसमें प्रबन्ध और मुक्तक के रूप विशेष ढंग से मिलते हैं। जैसे प्राकृत प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत "सेतुबन्धु साहित्यिक महाकाव्य" है। वज्रेश प्रबन्धात्मक काव्य में "पद्मसिद्धि चरित" के अतिरिक्त "मविषयक कथा" और "विशुद्ध लण्डकाव्य" के अन्तर्गत कौटी कौटी कथाएँ मिलती हैं। कथा का रूप प्राचीन कथा-साहित्य में व्यापक क्षेत्र में बिलर पड़ा है तथा कथा के इन रूपों में लौकिक भावना अधिक है। वस्तु हम कह सकते हैं कि प्राचीन कथा साहित्य की सीमाएँ बड़ी व्यापक तथा विस्तृत थीं।

वर्धन के अस्त होते होते आधुनिक भाषाओं का युग प्रारम्भ होगया । अपभ्रंश और लड़ी बोली के बीच के युग की साहित्य का अध्ययन कहा जा सकता है। इस काल में कला की विलक्षणता और, मण्डित और गुंजार ख की और काल रूप से मुक्ति रही । इस काल में जादू की का प्रभाव, फैसन की " मधुमावती " उचनान की " चिनावती " , नूर मुहम्मद की " झंझावती " और हुसैन की " मुष्मावती " बादि है। उनकी कथा शिल्प प्रायः एक ही भाँति है। मधुमावती के कथा शिल्प पर कथा चरित्रांगर " और हितोपदेश " के कथा शिल्प का प्रभाव है। कतः इन प्रेमास्थानों में कथा-कल्प युग की वस्तु है और उनकी आध्यात्मिकता कवि की अपनी वस्तु रही है जिसका संनयन वह स्वान्तः मुलाय के लिए करता होगा । वाता साहित्य की धार्मिक कथाएँ मुष्टमार्गीय की वस्तु सम्प्रदायी वैष्णव से सम्बन्धित हैं। वाता साहित्य के मुख्यः दो प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं। चौरासी वैष्णवन की वाता और दो सौ वाकन वैष्णवन की वाता ।

चरित । उपाख्यान, कथा और कहानी ये चारों रूप परम्परा से चले जा रहे थे । इनमें से कथा का प्रयोग वाणमट्ट के समय से ही धार्मिक कहानियाँ या सामान्य घटनाएँ के रूप में होने लगा था । मध्य-युग में कथा शब्द का प्रयोग पुराण में आदि की कथाओं के लिए प्रायः होता था, साथ ही कहीं कहीं धार्मिक साहित्यिक के लिए भी इसका प्रयोग है । विष्णु मुहूर्त की कथा, मुष्मावती की कथा, सत्यवती की कथा, इन्दीवरी मटिया-रिन की कथा, मकरध्वज की कथा, सिंहासन कबीरी की कथा बादि इसके प्रमाण हैं। इस समय चरित, कहानी और उपाख्यान ही मुख्य कथा रूप थे । सूफी कवियों ने अपनी कथाओं को लोक, कहानी और प्रेम कहानी कहा है। इनका

काव्य रूप तो 'मसनवी' है, परन्तु इसकी परम्परा 'प्रेम' तथा 'लोक' से सम्बन्ध रखती है। मध्ययुगीन परम्परा लोक जीवन का प्रतिबिम्ब होने के कारण वास्तविक विषय के समीप मानी जा सकती है। इसमें काव्य तत्त्व रक्त प्रतिरक्त है। व्यंग्य के अन्तिम दिनों से लड़ी बोली के प्रथम व्यवहार तक के काल में जिन कथनात्मक काव्यों की रचना हुई है उनके भिन्न भिन्न रूप हैं और कुछ रूप 'उपन्यास' से अवधारित: साम्य भी रहते हैं फिर भी उनका वैयक्तिक अधिक है। का: वास्तविक युग के उपन्यास की उनमें से किसी भी रूप के साथ परम्परा नहीं जोड़ी जा सकती।

लड़ी बोली गद्य का साहित्य में प्रयोग तो मुगल बाद-शाह ज़ाहिर के शासन काल से ही प्रारम्भ हो गया था, परन्तु इसका शुभ से एक साहित्य अनु १८०० के आस पास से मिलता है जब लॉर्ड फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी और उर्दू की व्यवस्था होगई। लड़ी बोली के इस ७० वर्ष के इति-हास में क्या-साहित्य का महत्व कम नहीं रहा। परन्तु ये क्या-हिन्दुस्तानी में लिखी गई है। अधिकारित: इसका उद्देश्य लीखों की देशी भाषाओं का परिचय कराना था। इस युग में क्या प्रभाव प्राचीन परम्परा तथा मध्ययुगीन परम्पराओं की बराबरी नहीं कर सका। प्राचीनक क्या साहित्य में क्याओं के दर्शन अधिक होते हैं और धीरे-२ क्या प्रगति पटती रही। इस प्रकार क्या-साहित्य की भी प्राचीन परम्परारं थीं उनमें क्या-साहित्य की सीमाएं अधिक थी और कम: यह सीमाएं जाने बलकर कम होती गईं।

भारतीय क्या साहित्य की व्यापक प्रभाव सुष्ठिम साहित्य पर पड़ा उसके दर्शन इस काल की रचनाओं में स्पष्ट रूप में ही पाते

है। बमन निरुताती ने संस्कृत 'लुक् सप्तति' के आधार पर 'सुतीनामा' और प्राख्यान की रचना की। तख्तुदीन ने 'कामरूप और कला की कहानी' उपस्थित की। नरुताती ने मुलाने कस्तुर की रचना सन् १६५७ में की। सेयद हैदर बखश ने 'तीता कहानी' हुसेनी ने 'खल्लाके हिन्दी' के नाम से संस्कृत 'सितो-पदेत' का अनुवाद किया। मीर बमन ने 'बागी बहार' की रचना की तथा हाफिजुद्दीन बखमद ने बख्तुल फखर के 'बयारे दीनर' का उर्दू अनुवाद किया। मक़दर खली ने 'पैतास पन्नीसी' और कुवान ने सिहासन बलीसी का रूपान्तर किया।

मुसलिम काल में जिस भारतीय कथा साहित्य का विकास हुआ उसमें देशी और विदेशी सब कथाकारों का योग था। इस काल के कथा-साहित्य में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का प्रतिबिम्ब मिलता है। भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा का निर्वाह मुस्लिम काल से जारी भी बराबर होता रहा। हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों के सम्पर्क ने जिस साहित्य का सृजन किया उसमें वाध्यात्मिक और लौकिक दोनों प्रकार का जीवन चित्रित किया गया। मुस्लिम शासकों की भाषा फारसी और शासितों की भाषा संस्कृत में साहित्य के सब क्षेत्रों का विकास हुआ। मुगल साम्राज्य के विन्न भिन्न ही जाने पर अंग्रेजों ने १६ वीं शताब्दी के वारम्भ से ही अपनी नीति कुशलता के बल पर भारतवासियों की दासता की लोच शूलताओं में जकड़ना वारम्भ कर दिया। मिनिरियों के बड़े स्थापित हुए। हिन्दी गद्य का वारम्भ अंग्रेजों के भारत में जाने के पश्चात् वारम्भ होता है। पौराणिक काल में भी सभी परम्परागत कथाओं की रचना हुई। इनमें ब्राह्मण तथा उपनिषद् काल की

पार्श्विक कहानियों, ऐतिहासिक उपाख्यान, लोक कथाओं तथा ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठाक कहानियों का विशेष स्थान है। इस समय कुछ नई कल्पित कहानियों की भी रचना हुई। वैष्णव धर्म की पौराणिक कथाओं का भी प्रचलन इस समय हुआ। वे संस्कृत भाषा में लिखी गईं। पौराणिक काल की कहानियों में कथा साहित्य, विषय, प्रतिपादन शैली तथा स्वल्प विकास की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ जाता है। प्राकृत तथा अपभ्रंश काल में कथा साहित्य अपनी परम्परा पर चलता रहा।

अस्तु प्राचीन परम्परा से आज तक हिन्दी कथा साहित्य की सीमाएं कम होती रही। कथा साहित्य की सीमाएं प्रारम्भ में अधिक विस्तृत रूप में थी उस समय तिलस्मी, जासूसी, शेरारी, ऐतिहासिक, प्रेम काव्याख्यान की सीमाएं थी, आधुनिक युग में कथा साहित्य की सीमाएं ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी, सामाजिक, रोमान्सी, आदर्शवादी, राक्षसी, धार्मिक, आदर्शानुसृत यथार्थवादी आदि हैं।

कथा- साहित्य के सामान्य तत्व :

कथा- साहित्य बहुत प्राचीन काल से समाज के सम्य तथा असम्य सभी प्राणियों में सुखद काकर मनोरंजन का साधन बनता जा रहा है। मुख्य कथाओं में अपनी भावनाओं का प्रतिबिम्ब देता है। कतख मनोरंजन तथा शिक्षा के बीच उसे कहानियों की घटनाओं में मिलता है, उसे वह अपना अनिष्ट सम्बन्ध समझता है। ऐतिहासिकता के विचार से भारत-

वर्ष कथा- साहित्य का उद्गम स्थान माना जाता है। भारतीय कथा-
साहित्य की मौलिकता तथा प्राचीनता को सब विद्वान् स्वीकार करते हैं।
यहाँ का कथा- साहित्य समय समय पर पश्चिमी देशों से मौलिक तथा लिखित
दोनों रूप में प्रभावित होता रहा है। कथा का प्राचीनतम रूप वेदों में मिलता
है। उसका सर्वप्रथम दर्शन ऋग्वेद की संकिता में मिलता है जिसके संवाद सूक्तों में
कई २ पात्रों के संवाद मिलते हैं, उनमें संवाद तत्त्व की प्रधानता है। ऋग्वेद के
सामान्य स्तुतिपरक सूक्तों में भी निम्न निम्न देवताओं के विषय में उनके मनो-
रूप तथा शिष्याप्रद वास्थानों की उपलब्धि होती है। ब्राह्मण तथा उपनिषद्
ग्रन्थों में कुछ कहानियाँ विस्तार से दी गई हैं। निरुक्तकार यास्क तथा माध्य-
कार सायण ने वेदों में वर्णित कथाओं की अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।
इन कहानियों में वास्थान तथा संवाद दो तत्वों के दर्शन स्पष्ट रूप से होते हैं।
भारतीय कथा- साहित्य का प्रथम उत्थान काल वैदिक कहानियों से आरम्भ
होता है। यद्यपि पुराणों और महाकाव्यों में वैदिक कहानियों के ही रूपान्तर
मिलते हैं परन्तु उपदेशात्मक लोक कथाओं का आरम्भ विशेषतः महाकाव्यों से
माना जाता है। पारियों की कहानियाँ, वन्त कथाएँ और लोक कथाएँ भी बहुत
पहले की मिलती हैं परन्तु महाकाव्य काल की कहानियों में पात्रों की विवि-
धता और उनके कार्य क्षेत्र की व्यापकता विशेष रूप में सामने आती हैं। वैदिक
काल से महाकाव्यकाल तक विशेषतः- विषय वस्तु, संवाद तथा पात्र की प्रधा-
नता थी। कहानी की कथा मनोरंजक तथा शिष्याप्रद दोनों प्रकार की होती
थी। पात्र मनुष्य तथा फल सभी प्रकार के होते थे तथा उनका कार्य क्षेत्र भी
व्यापक था। अतः उस युग में कथा साहित्य के मूल तत्व तीन ही थे :

१- ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर वेद की कहानियों का मूल प्रीत मानना
उचित प्रतीत होता है। (वैदिक कहानियाँ : बलदेव उपाध्याय-भूमिका नाम)
पृ० ७ ।

२- The oldest Aryan fables, dating from centuries before
Christ have according to Dr. Rhys Davids travelled to
different parts of Europe and have assumed various modern
shapes. Otto Keller maintain the Indian origin of fables
common to India and Greece.

-History of classical Sanskrit Lit. pp 412,413

१- विषय- वस्तु (कथानक)

२- संवाद

३- पात्र

विषय वस्तु कथा की मनोरंजक तथा शिक्षा प्रद तो थी ही परन्तु मनुष्यों के चरित्र के ऊपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता था । उस कथानक की पटनाई बड़ी काव्यपूर्ण होती थी । संवाद बड़ी रीति पूर्ण ढंग से तथा वास्तविकता लिए होते थे । पात्र मनुष्यों के तो थे ही वस्तु मनुष्यों के भी थे ।

उस युग के लोग कथा साहित्य का नया युग प्रारम्भ होता है। उस समय हिन्दू बौद्ध तथा जैन धर्मों के अनुयायी वातावरण के आधार पर जीवन के उनके कल्पों में विश्वास करते पाये जाते हैं। अतएव पात्रों में मनुष्य तथा पशु सब प्रकार के पात्र पक्षि की अपेक्षा अधिक संख्या में प्रयुक्त हुए हैं। उस समय धार्मिक वातावरण अधिक अनुकूल था, परन्तु उस युग के कथा साहित्य में साहित्यिकता का अभाव है।

बौद्ध तथा जैन कहानियों को वैदिक कहानियों का नवीन रूप समझना चाहिए । जैन सन्त्र की कहानियाँ उसी काल में लिखी गईं । ये कहानियाँ पौराणिक आधार पर लिखी गईं । वेदकालीन कहानियों की रचना ब्राह्मण रचनाकारों ने राजकुमारियों की शिक्षा देने के विचार से की थी । उस समय की कहानियों में प्राचीन कथा साहित्य के अन्य विविध रूप भी मिली हैं। कुछ कहानियाँ गय

१- And we have a motif which certainly is strongly suggestive of the material which developed the Panchatantra.

- History of Sanskrit Literature-by A.B.Keith

पय दोनों रूपों में लिखी मिलती हैं। उनमें कथा वेश नय में और उसमें मिलने वाली शिखा पय में उपस्थिति की गयी है। ये पयश कथानी की कथावस्तु में बंधर उधर फैले मिलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत में कथा-साहित्य का कभी भी हम विकसित हुआ वह विषय, प्रतिपादन शैली तथा स्वरूप विकास की दृष्टि से सीमित था उसमें वर्तमान कथा साहित्य के सब तत्वों के दर्शन नहीं होते। वैदिक काल, उपनिषद् काल, महाकाव्यकाल तथा पौराणिक काल में कथा-साहित्य ने भी सात्विक विकास किया वह केवल संवाद, कथानक तथा पात्र सम्बन्धी चमत्कार तक ही सीमित रहा। उसमें वाणिज्यिक और प्राचीनिक सभी प्रकार की घटनाओं का विकास ही बना। शैलीगत विशेषताओं में अन्य पुरुष प्रधान पद्धति तथा उसमें पुरुष प्रधान पद्धति का चमत्कार सामने आया। विषय की दृष्टि से कथाओं का सम्बन्ध धर्मशास्त्र, कर्मशास्त्र, नीति तथा उपदेश और सांसारिक कुसुम से हो गया।

चौमिन्द्र की 'वृक्ष-कथा-पञ्चरी' और चौमदेव की 'कथा संहिता' के आधार पर पैताल धर्म विहङ्गिका की रचना हुई। इनमें रहस्यात्मक घटनाओं का चमत्कार विशेष रूप से मिलता है। 'शुभ सन्तति' में तोते की सचर कहानियाँ हैं जिनके कारण और अन्त में विवरणात्मक पण्डित और शेष भाग में नय का प्रयोग हुआ है। ये कहानियाँ भी 'पञ्चतन्त्र' के आधार पर लिखी गई हैं।

गुणादय की 'वृक्षकथा' के आधार पर दण्डी ने 'दशकुमार चरित' की रचना की जिसमें प्रेम तथा सावस की कथाओं का वर्णन है। इनके पात्रों में धार्मिक यथार्थता के दर्शन होते हैं। सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता' में वर्णनात्मक वेशों की प्रधानता है। संस्कृत कथा साहित्य में वाण कृत 'कादम्बरि'

तथा "सर्जित" में ऐतिहासिक घटनाएँ उपस्थित की गई हैं। "कादम्बरी" काव्यात्मक कथा का उदाहरण है। "सर्जित" की गणना वात्स्यायिका के वृत्तान्त और "कादम्बरी" की कथा के वृत्तान्त होती है। दण्डी के समय कथा और कविता के वात्स्यायिका वृत्तान्त समान थे परन्तु बाद में वे अलग हो गईं।

वैदिक काल, उपनिषद् काल, महाकाव्यकाल, पौराणिक काल और तथा बाद काल और राष्ट्रकाल में भारतीय कथा साहित्य में ऐतिहासिकता की दृष्टि से विकास किया, परन्तु स्वरूप की दृष्टि से हमें वर्तमान कथा साहित्य के सब तत्वों के दर्शन नहीं होते। प्राचीन कथानियों में कथानक तथा संवाद का संघर्ष सामने आया। महाकाव्य काल में पात्रों की पारस्परिक विशेषताओं के साथ विषय की एकता सामने आई। पौराणिक तथा बाद और इन कथानियों में वादविवाद साहित्य का विकास हुआ। इसके उपरान्त बाद में कथानीकारों ने भारतीय समाज का यथार्थवादी वातावरण भी उपस्थित किया। कथा-विन्यास की दृष्टि से प्राचीन कथानियों में साधारण तथा अटल सभी प्रकार की कथाएँ सामने आती हैं। प्रतिपादन शैली का अमूर्तता, कथावस्तु की उत्तम पुरुष पद्धति तथा अन्य पुरुष पद्धति में उपस्थित करते समय सामने आने ला।

भारतीय कथा साहित्य की सुष्ठु परम्परा का निर्माण में पात्रों की विविध कथावस्तु का अमूर्तता अधिक वाक्यार्थ है। कथावस्तु में कथानकवादी अधिक है जिनमें अति मानविक, अति प्राकृतिक तथा अस्वाभाविक घटनाओं के प्रति पाठक का दृष्टि सदैव रहता है। स्वरूप विकास

की दृष्टि से इनमें "कहानी" के सब तत्वों के दर्शन नहीं होते। कुरुराज वात्स्यान को छोड़कर इनमें चरित्र, देश काल, शैली तथा संवाद आदि तत्वों के लिए कोई स्थान नहीं मिलता है। इनमें पात्रों की अपेक्षा घटनाएँ अधिक वाक्यार्थक हैं जिनमें तिलस्म तथा जासूसी प्रभृति का स्थान मिला है। सुस्तिम काल में कहानी कला के कितने प्रयोग हुए उनमें स्वल्प विकास की दृष्टि से "कथा" साहित्य के संपूर्ण तत्वों के दर्शन नहीं होते।

बंगला कहानियों में भारतीय तथा पश्चिमी दोनों कथा-साहित्यों का प्रभाव पड़ा। कहानी-कला के दो भिन्न भिन्न विशेषताएँ थी वे ये थी - संस्कृत कहानियों के आधार पर गृहीत कथाएँ जिनमें वात्स्यान, संक्षिप्त ऐसाचित्र, कथावस्तु के विधान में जटिलता तथा घटनाओं की प्रधानता थी।

संस्कृत की भाँति प्राकृत में भी हमें कितने मुक्तक और प्रबन्ध काव्य मिलते हैं। परन्तु इन मुक्तक और प्रबन्ध काव्यों में वात्स्यान या वात्स्यानक काव्य के तत्व बहुत कम मिलते हैं। परन्तु मगधराष्ट्री प्राकृत में "कुसुम" द्वारा रचित "वीरावली" कथा का स्थान वात्स्यानक काव्यों में बहुत है। फलतः संस्कृत कथा शैली से प्राकृत में नाथा का यह विकास स्मरणीय होगा। इस पर प्रबन्ध शैली का स्पष्ट प्रभाव है। इसके अतिरिक्त मुख्य कथा के अन्तर्गत और कथाएँ भी बाँटें हैं, कथा की सुलता देने में स्पष्ट रूप से कवि पर "कथा-सरित्सागर" केतन्त्र" कितोपदेश की कथा शैली का प्रभाव उचित है।

अपौरुष में कला की दृष्टि से केवल अपौरुष का स्थान

सर्वोपरि है। इसमें मुक्तक काव्य और कथारं वार्त्तिक रूप में मिलती है। इसमें किटानी का कहना है कि मनुष्य, देव, पशु पक्षी आदि पात्रों के माध्यम से उनके उपदेशात्मक कथारं हैं। इस पर भी प्रत्यक्ष रूप से पाठक और केवलक का प्रभाव स्पष्ट है। केवलक साहित्य में यक्षगीति का "हरिवंश पुराण" सबसे महत्वपूर्ण है।

सारथि: प्राकृत और अप्रकृत साहित्य में कथा का रूप मुक्तक काव्यात्मक रहा है। जिसमें प्रबन्ध और मुक्तक के रूप विशेष ढंग से मिलते हैं। जैसे प्राकृत प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत "सुबन्धु" साहित्यिक महाकाव्य है। "महावीर चरितादि" के धार्मिक प्रबन्धात्मक स्वरं हैं। मुक्तक के अन्तर्गत गाथा सप्तशती और वज्रसूत्र स्मरणीय हैं। अप्रकृत प्रबन्धात्मक काव्य में "सुमसिरी चरित" के अतिरिक्त "महिसयक कथा" और कुरादि से सम्बन्धित अन्य पपकड़ छोटी छोटी कथारं मिलती हैं। इन सबका प्रभाव परस्पर कथा साहित्य के कथा तत्त्व पर कितना पड़ा इसके लिए मध्यकालीन हिन्दी वाक्यान्वय काव्य की रस समीक्षा है तथा प्राकृत अप्रकृत के कथा तत्त्व की हम सब मध्यकालीन वाक्यान्वय काव्य के कथा तत्त्व में ढूँढ सकते हैं वस्तुतः हिन्दी साहित्य के आदि काल में भी कथा तत्त्व और कथा प्रवृत्ति दोनों अपने सुन्दर रूप में मिलती हैं। कुछ किटानी ने इस काल की प्रेम गाथा और लोभ गाथा कहा है।

चारण साहित्य में दो शैलियाँ मिलती हैं। प्रथम प्रबन्धात्मक शैली तथा द्वितीय गीतात्मक शैली। इस साहित्य में पय की कविता तथा गय की वार्त्ता कहा गया है। कबी वार्त्ता की ही वक्तव्य का वात और त्याग कहा गया है। वात वस्तुतः कित्ते और कथा के रूप में जाया है और त्याग इतिहास के रूप में। कविता के अन्तर्गत "बीरबल्लभ रासी"

मुन्शीराज राखी " बताते हैं। कथा के इन रूपों में लौकिक भावना अधिक है। यही कारण है कि इनमें से कुछ प्रयागों का प्रचलन हमारी लोक भावना में अधिक है और इनका रूप मुख्यतः दन्त कथात्मक हो गया है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, चारण वादि साहित्य में कथा तत्वों का कतना अधिक विकास नहीं हुआ था जितना वाज है। इस प्राचीन कथा-साहित्य में तीन तत्व विषय वस्तु, संवाद और पात्रों के ही चलन होते हैं। भाषा, ऐसी उद्देश्य पर ध्यान नहीं दिया ।

ब- भाग

कथा और उपन्यास

कहानी और उपन्यास दोनों कथात्मक गद्य साहित्य के रूप हैं। कथात्मक गद्य साहित्य कहानी तथा उपन्यास दोनों में भावोत्कर्ष, कल्पना तथा प्रतिपादन शैली के समकारों की अपेक्षा वास्तुव्यय की वर तीव्र भावना रखती है जो पाठक कथा श्रोता का सम्बन्ध कथावस्तु के साथ निरंतर बनाये रखती है। कहानी की कथावस्तु में जब तक व्यं बोध की प्रधानता न होगी तब तक उसके प्रति श्रुतकत्त का बने रहना संभव नहीं। वस्तु कथात्मक साहित्य के सब रूपों में भाव और रचना समकार की प्रधानता उस मात्रा में नहीं होती जितनी "काव्य" कथा "नाटक" में होती है। कहानी तथा उपन्यास दोनों में भाषा विषय वस्तु और पात्रों के संवाद उपस्थित करते समय- अपनी व्यं क्रिया सीधे ही से करती है। इसमें प्रस्तुत व्यं और भावोत्कर्ष तथा उचित-वैचित्र्य गीण रखते हैं। उपन्यास तथा कहानी में कथावस्तु के प्रस्तुत व्यं की कानी प्रधानता मिलती है कि भाव तथा रचना कौशल के लिए गीण स्थान रह जाता है। यद्यपि भाव तथा रचना कौशल की उपन्यास तथा कहानी में रचना अत्यन्त पड़ता है। ऐसा करने पर ही साहित्यिकता तथा रोचकता जाती है। दोनों में कथा की प्रधानता होती है। दोनों की कथा श्रोताओं कथा पाठकों में श्रुतकत्त जगाकर उनको अपनी और वाकचित करती है। दोनों में वस्तु, पात्र, और संवाद वादि का सौंदर्य रहता है। परन्तु वाकार की दृष्टि से उपन्यास विस्तृत और कहानी सघु रचना है। "उपन्यास" में वाधिकारिक कथा के साथ गीण कथाएँ होती हैं जबकि कहानी में एक कथा होती है। उपन्यास में जीवन के एक क्षेत्र की फाँसी रहती है। उपन्यास में पात्रों की

की संख्या अधिक संवाद समूहों और व्यापक प्रभावशील युक्त होती हैं और कहानी में पात्र होने लगे, संवाद संक्षिप्त तथा किसी प्रभावशील युक्त होती हैं। कहानी का एक रूप 'भावार्थक' होता है परन्तु भाव प्रधान उपन्यास प्रायः देखे में नहीं आते।

नामकरण :

संस्कृत में कथा और वात्स्यायिका के नाम बहुत पहले से चले आये हैं और सदाणा-साहित्य में मुख्य रूप से इन्हीं की पर्वां हुई है। वाचस्पत्य नहीं यदि उनकी रचना विश्व भर की अन्य भाषाओं की कहानियों या उपन्यासों की अपेक्षा सबसे पहले हुई हों। जो साहित्य जितना अधिक प्राचीन होता है उसका वादि श्रोत हुँदना उतना ही कठिन होता है। अतः भिन्न भिन्न व्यक्तित्ववाधियों लगाई जाती हैं और उससे अधिक मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं। कहानी के रूप में यह बात पूरी रूप में घटित होती है। कहानी का जन्म वास्तविक रूप में मनुष्य के जन्म के साथ और सिलित रूप में साहित्य के उद्भव के साथ होता है। यदि वेदों की संसार का प्राचीनतम वाङ्मय मान लिया जाय तो कहानी का जन्म उसी वाङ्मय से भिन्न नहीं माना जा सकता। ऋग्वेद जो वेदों में सबसे अधिक प्राचीन है, अनेक कृताओं में हम जिसे कथा वस्तु या घटनाक्रम कहते हैं, जो कहानी का मेरुदण्ड है, उसके बीज मिलते हैं। वैदिक संवादों में जैसे- सम्राट्-पाणि, यम-मयी, पुरुरवा-उर्वशी संवादों और हनुः शेष की कथा में इसका वादि रूप देला जा सकता है।

ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के इन्द्र सूक्त में ऋषि गृत्समद इस बात का संकेत करते हैं कि इन्द्र ने वरि, अतः वादि दोनों को पारकर

गायों की सुहाया और सातों नदियों को प्रवाहित किया -

“ यो हत्वा हि मरणात् सप्त सिन्धून् ।

यो गाङ्ग उदाज पयसी नलस्य ॥ ” १

वेदों में देवताओं से सम्बद्ध उन रूप कथाओं के अतिरिक्त कुछ मानवी कथाएँ भी हैं जो आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के सप्तम मण्डल का दशराज सुक्ति उस समय की मत्स्य-जुर्ण रचना है। प्रश्न यह है कि वेद में उपलब्ध उक्त सामग्री की कहानी का आधार माना जा सकता है यह नहीं। इस सम्बन्ध में विद्वानों के दो परस्पर विरोधी मत हैं। दोनों का विवाद बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। एक की यह मान्यता है कि जो कहानी का आधार निःसंकोच माना जा सकता है दूसरे का यह कहना है कि जो सम कहानियाँ जल्दा इतिहास की घटनाओं का पूर्व रूप नहीं कह सकते। दूसरे पक्ष की मान्यता का आधार यह है कि वेदों में जो पद आये हैं वे सब रूप के वर्ण में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे इन्द्र = दूर्य, वृत्र = मेघ, पिता = सूर्य, दुष्टिता = उष्मा, अश्विन्या = रात्रि, गीतम = चन्द्र, वज्र = बिजली। पुराण साहित्य जो सभी सभी कहानियों से भरा पड़ा है उसके रचयिता की भी यही राय है कि यह साहित्य भी वाग्म्याय कर्णात् वेद के वर्णों की प्रदर्शित करने के लिए निर्मित हुआ था। जिस प्रकार का वर्णन वेदों में है उसी प्रकार का पुराण में है। वेद के इन्द्राहु, वायु, त्रिशु, नहुष आदि ऐतिहासिक न होकर प्रतीक मात्र हैं जो कहीं अन्तरिक्ष-स्थानीय अतिविधियों की ओर दृष्टिपात करते हैं। वेद में आये हुए कतिपय नाम भी राजाओं के नाम नहीं हैं। इस पक्ष के नेता स्वयं निरुक्तकार हैं जो वेदों के उन संकेतों की कहानी जल्दा इतिहास का पूर्व रूप मानने की तैयारी नहीं।

प्राचीनकाल से बहुत बाद तक कहानी और उपन्यास इन दो भिन्न २ रूपों की कल्पना नहीं की गई थी और जहाँ उस काल में हम कहानी के प्राचीन इतिहास की शोध करते जाते हैं वहाँ वही साहित्य उपन्यास या और किसी कथात्मक साहित्य के इतिहास का भी आधार माना जायेगा । इस साहित्य में यदि हमारी कहानी का कोई आधार है तो केवल उसकी कथात्मकता का ही । कथात्मकता कहानी का मेरुदण्ड है। वही कथात्मकता नाटक, उपन्यास और इतिहास में भी पाई जाती है। इस प्रकार वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, उपनिषद्, पुराण, जातक, चितौफरी, पतत्र आदि में किसी न किसी प्रकार से कथा के दर्शन होते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो 'कहानी' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कथानिका' शब्द से हुई है जो केवल अग्नि पुराण में मिलता है। कथानिका के सम्बन्ध में अग्निपुराणकार ने लिखा है :

“ मयानर्क सुतपरा गर्भे च कथणो रसः ।

उद्भुत्यन्ते सुतसार्थो नो दाता सा कथानिका । ”

अग्निपुराण का यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यद्यपि इसे जो महत्व मिलना चाहिए या वह बनेक कारणों से इसे नहीं मिल पाया । यहाँ तक कि कथानिका नाम की जिस काव्य विधा की परिभाषा इसमें की गई है उस महत्वपूर्ण काव्य विधा का उल्लेख केवल यहीं पर है और किसी भी सदाण ग्रन्थ में नहीं आया है। न 'केवल कहानी' शब्द का । यद्यपि यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी में

अनलिखित कहानी नामक काव्य विधा की व्युत्पत्ति संस्कृत काल की रही कथानिका से हुई है, किन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों शब्द का जन्य एक सम्बन्ध बाकी स्पष्ट है (कथानिका - कथानिका - कहानिका - कहानी) और यही कथानिका, प्राकृत और अपभ्रंश के द्वार से बाहर हमारे यहाँ कहानी बन गई। संस्कृत साहित्य में कथात्मक गण साहित्य के लिए "कथा" तथा "वात्स्यायिका" शब्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु उनके द्वारा रचना के जिस रूप की ओर संकेत किया जाता है वह वर्तमान कहानी से मेल नहीं खाता। प्राचीन "कथा" तथा "वात्स्यायिका" की घटनाएँ सम्भी होती थी, जबकि वर्तमान कहानी, संदिग्ध तथा सीमित वाफार की रचना है। जब "वात्स्यायिका" के सम्प्रदाय केवल नाटक तथा कल्पना प्रधान साहित्यिक उपन्यास को लिया जा सकता है। अतएव वर्तमान "कहानी" का बोध कथा "कथा" "वात्स्यायिका" जैसे शब्दों द्वारा नहीं कराया जा सकता। संस्कृत वाचार्थों ने नीति कथा (Fable) तथा मनोरंजक कथा (Fairy Tale) नाम की दो स्वतन्त्र रचनाओं का भी उद्देश किया है। नीति कथा में सांसारिक सुख दुःख से सम्बन्ध रखने वाली परिस्थितियों पर नैतिक शिक्षा दी जाती थी और सदाचार की ओर विशेष ध्यान दिखाया जाता था। मनोरंजक कथा में मनोरंजन करने वाली सामग्री की रचना की जाती थी। वह कल्पना पर आधारित रहती थी। वर्तमान "कहानी" में नैतिक शिक्षा, सदाचार तथा मनोरंजन आदि की उपेक्षा नहीं की जाती। परन्तु जब कहानी का उद्देश्य केवल कन्हीं बातों को उपस्थित करने की ओर नहीं रहता। अतएव वर्तमान "कहानी" के अर्थ में "नीति कथा" कथवा मनोरंजक कथा का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

उपन्यास :

सभी हिन्दी के विद्वान् इस बात से पूर्णरूपेण सहमत हैं कि यह पौधा विदेशों से भारतवर्ष की भूमि में लगाया गया । यह पौधा यूरोप से बंगाल होकर हिन्दी पौध में आया है। फिर भी हिन्दी उपन्यास के अध्ययन में उस कथा साहित्य का महत्व निर्विवाद है जिसे उन प्रवृत्तियों का रक्षण और पोषण किया जो १६ वीं सदी में उपन्यास के लेखकों सुलभ हो सकीं । यदि उस समय में तत्कालीन लेखक सीधी और बंगला के लच्छे पढ़ित होते तो उनके विषय में इस प्रकार की सम्भावना की जा सकती थी परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इसमें पाठकों की मात्रा की रुचि बढि है। साहित्यकार देश की साहित्यिक प्रगति से अपरिचित नहीं थे । परन्तु उस परिचय का प्रभाव कथा- रूप (उपन्यास नाम) पर ही है। वास्तव में कथा- विषयक वस्तु ज्ञानी प्रभुदि थी कि जो तनिक भी सहयोग दे सकता था वह उपन्यास पौध में आगया और उसका स्वागत किया गया । राजनीतिक जागृति के कारण उदासीन हिन्दी प्रदेश के केन्द्रीय नगरों में प्रकाशन केन्द्र हुए गये, उपन्यास पत्रिकाएँ निकलने लगी, और छोटे से छोटे लेखकों के बहिर्लास कर्तव्यी तथा विद्वत् वास नागर उपन्यासकार बन गये ।

उपन्यास शब्द दो शब्दों के योग से बना है, 'उप' उपसर्ग तथा 'न्यास' पद । 'न्यास' में नि उपसर्ग के साथ 'लोपरा' (कर्पात् 'रत्ना' या 'केशना') कर्णवर्ती 'कु' धातु का योग है, 'कृत्तिर' न्यास' पद का व्यवहार रत्ना या स्थापित करना और 'होड़ना' या 'स्थापना' दो कर्मान कर्णों में होता है। प्रथम कर्ण 'सुरन्यास' ,

१- कृत्तुपणी

२- मोनियर विलियम्स : २ संस्कृत शब्दार्थ डिक्शनरी

रैलान्यास , ' बीजान्यास आदि में और द्वितीय कथं ' शरीरान्यास ' ' अन्यास ' का वि शब्दों में देखा जा सकता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में ' न्यास ' शब्द का प्रयोग उक्त दोनों ही कथों में पाया जाता है।

' न्यास ' शब्द के कतिपय और कथं भी हैं। ' कौण्ड ' तथा ' काव्य ग्रन्थों ' में ' न्यास ' का सामान्य कथं ' धरीतर ' है जो धर्म शास्त्र से गुहीत हुआ प्रीति होता है। प्रातिहास्य में स्वर विशेष की और कारिका वृत्ति की ' न्यास ' कहते हैं।

जो ' न्यास ' पद का उप के साथ योग होने से उपन्यास शब्द बनता है। नाट्यशास्त्र में ' उपन्यास ' नाम पताका स्थानक के चतुर्थ भेद और प्रतिमुख सन्धि के एक का है। ' दशरूप ' में भी प्रतिमुख सन्धि का आदर्श का उपन्यास है, धनिक ने इस स्थल की व्याख्या करते हुए ' उपन्यास ' शब्द का कथं ' नियोजन ' माना है। महाभाष्य में कथन भाष्य के काव्याकार में ' विन्यास ' एवं स्थापना काव्यादर्श और साहित्यदर्पण में स्थापना एवं ज्ञापन कथों में ' उपन्यास ' शब्द का प्रयोग है। वभिज्ञान शास्त्र-

१- मीनियर विलियम्स : ए संस्कृत कंगलि डिक्शनरी

२- वग्निवर्ण - न्यैत् पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि । १०५॥

(व्यसकार, कव्याय, सप्तम प्रकरण)

वक्ताप्यन्यन् वेद न्यस्त कर्मा वने पठन् ॥२०४॥ (प्रायश्चित्त कव्याय चतुर्थ प्रकरण)

३- उपन्यासः संयुतश्च तच्चतुर्थमुदाहृतम् ॥ ३५॥ कव्याय १६)

उपपत्तिरुतायो च उपन्यास्तु स स्मृतः ॥७६॥ (वही)

४- उपन्यास्तु सोपायस वक्ता प्रसादनमपन्यासः ॥ ३५॥ प्रथम प्रकाश

५- प्रसादोपन्यासेन बीजोदमदीत उपन्यास इति ॥

६- विष्णुउपन्यास । प्रथम कव्याय ।

७- नायकप्रागुपन्यस्य वेश वीर्यतुताविभिः ॥ २२॥ (प्रथम परिच्छेद)

उपन्यसनमन्यस्य यदार्थस्योदिताते ॥७॥ (द्वितीय परिच्छेद)

न्तलम् में उपन्यास शब्द विन्यस्त के कर्म में वीर उपन्यास शब्द सन्दर्भ के कर्म में प्रयुक्त है। 'वमरुशतक' वीर याज्ञवल्क्य स्मृति में उपन्यास का कर्म कथन है, 'किराताकुंजीयम्' में उदाहरण। वमरुशतककार ने 'उपन्यास' का सामान्य कर्म वाङ्मय माना है, जिसकी उदाह्या 'वागारम्भ' या 'कथन' मात्र स्वीकार की जाती है।

वतः 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग कौन कर्मों में हुआ है। इनमें से मुख्य है- 'कथन' नियोजन, निर्देश, संकेत, घोषणा, परि-
संवाद तथा सुभाषित। 'उपन्यास' शब्द के कथन, नियोजन, निर्देश, कर्म प्रारंभिक है। कौन के 'वाङ्मय' वभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा 'वमरु शतकम्' के 'वमरुपन्यास' में ये ही मुख्य प्रारंभिक कर्म प्रतीत होते हैं। साधारणतः वचन या 'कथन' के नियोजन का नाम 'उपन्यास' है।

१- नियतिः शतैरुक्तीष्वपन्यासमासीजः ।

- काव्यप्रकाश, चतुर्थ उत्तरास ५ उपभूत

२- मृतमप्युपन्यस्तं हीयते व्यसहारतः ॥१६॥

- व्यसहार वचनार्थ, द्वितीय प्रकरण)

३- स तु तत्र विशेषतुल्यं सपुन्यस्यति कृत्यसर्वं यः ॥ द्वितीय सर्ग

४- उपन्यासस्तु वाङ्मयम् ॥

- प्रथम काण्ड, सप्तमः सर्ग)

५- वागी मुनिश्च मुनिः - उपनिषद् :

संस्कृत से 'उपन्यास' शब्द वाधुनिक भारतीय भाषाओं में भी आया। तमिल और कन्नड़ में 'उपन्यास' का अर्थ 'व्याख्यान' है, जिसे 'कथन' से दूर नहीं कर सकते। बंगला में उपन्यास शब्द के दो अर्थ हैं- एक नवीन और दूसरा प्राचीन। प्राचीन अर्थ में 'उपन्यास' का व्युत्पत्ति 'पाव-चारम्प' उत्सव 'उपस्थापन' तथा दान के लिए होता है। इन अर्थों की संगति संस्कृत-परम्परा से ठीक बैठती है। नवीन अर्थ में 'उपन्यास' कथा साहित्य का विशेष रूप है। यह नवीन अर्थ अंग्रेजी के सम्पर्क की प्रासंगिक है।

हिन्दी में भी उपन्यास के अर्थ दो संस्कारों के बीतते हैं। संस्कृत की परम्परा से इसका अर्थ 'कथन' वाक्य का उपक्रम 'वात की लपेट' या 'वात का लहरा' है और अंग्रेजी के सम्पर्क से 'कल्पित वाक्या-वृत्ति' कथा या नायक।

उपन्यास शब्द का नवीन अर्थ में प्रयोग बंगला और हिन्दी में एक ही परिस्थिति में हुआ। बंगाल में यह पहले से और हिन्दी में कुछ पीछे और हिन्दी में इसका वागमन बंगला के स्नेह से ही हुआ था इसलिए हिन्दी बंगला की झुण्टी है। सन् १७७३ में कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना के बाद अंग्रेजी भाषा के ज्ञानार्जन का महत्त्व बढ़ने लगा था, राम राम मित्र नामक ब्राह्मण ने सर्व प्रथम अंग्रेजी में पढ़ाता प्राप्त करके अनेक बाबुओं को अंग्रेजी सिखाई। जब फोर्ट् पिस्सियस कालिब की स्थापना हुई और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य माग तक बंगाल पर पारशास्य सभ्यता संस्कृति का रंग का गया तो नवयुवकों में अंग्रेजी कथा साहित्य का प्रचार हुआ। रोमान्स तथा भिन्दी नायक के प्रति रुचि निरन्तर बढ़ने लगी। साहित्यिकों ने बंगला

१- रामकमल देव : ए डिक्शनरी इन कालिब एण्ड बंगाली-

- आसादेर घोर सुतल की मुक्ति में पृ० ७ पर उद्धृत।

भाषा में "कालाचेर घोर हुलास" इनमें उल्लेखनीय है। इनकी दो विशेषताएँ हैं - कल्पाता भाषाय कल्पातास्य दिग्गज श्लेष सेता तथा व्यंग्य विद्वप वीर सारय एव पूर्ण सामाजिक निद्रा। इनके साथ साथ "कल्पातार कुनोष्टर" (कल्पातिया समाज की कुल द्विपी) भी कथा साहित्य के लिए लोकप्रिय विषय बनी। रोमान्स, मिस्त्री, उपाख्या इन रचनाओं के बादि नाम थे। इनकी संयोग है "उपन्यास" के नाम का प्रादुर्भाव हुआ। "उपकथा" एवं उपाख्यान का उपसर्ग "उप" और रोमान्स (प्राचीन बंगला "रमन्यास") का प्रत्यय "न्यास" "उपन्यास" शब्द के व्युत्पन्न उद्भव के कारण बने। इन सभी परिस्थितियों से "उपन्यास" श्रेणी के नावेल या रोमान्स का समानान्तर बना, इसके "नावेल" है व्यर्थ जीवन का चित्रण और रोमान्स है कल्पितता का समावेश हो गया था। "उपन्यास" के साथ साथ बंगला में "उपकथा" और "मील" (नावेल) शब्द भी चलते रहे। भारत की वाधुनिक भाषाओं में श्रेणी का "नावेल" शब्द और उसका समानान्तर एक देशी शब्द कुछ कास तक साथ साथ प्रचलित रहे हैं। गुजराती में नवल कथा एवं वार्ता मराठी में नवलिका और कादम्बरी तथा उर्दू में नावल और वफसाना इसके प्रमाण हैं। अतः उपन्यास शब्द का नवीन अर्थ में प्रयोग परिस्थितिवन्त्य "नावेल" एवं "रोमान्स" की समवेत अभिव्यक्ति के लिए बंगला और हिन्दी में स्थिर हो गया।

वास्तव में "उपन्यास" नावेल का ही प्रतिरूप है।

१- टेकचन्द धुनियर की रचना विशेष का नाम

२- उपन्यास शब्द का पुराना प्रयोग विविधार्थ संग्रह (श. सं० १७७३ तथा

१७७५) में दो कहानियों के लिए है : ये हैं "सत्तर उपन्यास" तथा पादु-
काकार गणकेर उपन्यास)। डा० जयन्तकुमारदास गुप्ता : ए इटिकल स्टडी
वाव दी साइकल एण्ड नावल काफ बीकिंगन्ड पृ० ५)

नावेल शब्द कीरेबी का है। इसका जन्म कभी हुआ है। कीरेबी में क्या-साहित्य के लिए सामान्यतः "फिक्शन" शब्द से जो कभी भीतर "नावेल" गय रोमान्स तथा "वर्णनात्मक काव्य" का समावेश कर देता है। "फिक्शन" में यथार्थ और कल्पना का संयोग होता है और इसी गुण के आधार पर वह "नावेल" एवं रोमान्स में विभक्त हो जाती है। क्लारोरीव के अनुसार समकालीन यथार्थ जीवन का चित्र नावेल का व्यवस्थित धर्म है, इसके विपरीत रोमान्स में अतिरिक्त कल्पना का वर्णन वस्तु और वर्णन ऐसी में प्राधान्य रहता है।

"नावेल" शब्द का प्रयोग जॉन्स साहित्य में एन १४६० से किया है।^२ कभी पर यह शब्द विश्लेषण है, और कभी संज्ञा। इसके मूल क्रैन्व भाषा के Novella एवं Novae इटली भाषा के Novas एवं Novella तथा स्पेनिश भाषा Novella एवं Novelle शब्द हैं। इटली में ऐसी पद्य कथा को जिसमें यथार्थ जीवन का हल-ह्वम, राग, द्वेष प्रतिभासित हो, वाचनिक कवि Novas कहने लगे - Novas का व्यवहार बहुजन में होता है। उसी के समान परन्तु वाकार

१= The novel is a picture of real life and manners and of the times in which it is written, The romance in lofty and elevated language, describes what never happened nor is likely to happen. (Introduction in the Development of the English Novel : Wilburt Cross- p XIV.)

2. The shorter Oxford English Dictionary

3. For a verse narrative approaching closer to the manners of the real life.... its intrigues and jealousies- The Provencal poets had employed the word ' Novas ' (always plural) for a like narrative imrose, always short, Boccaccio and his contemporaries were using the cognate word Novella(XIII) - Introduction Wilburt Cross- The Development of the English Novel.

में नए कथा की बौकेशियों तथा उनके सम्प्रदायिकों ने Novella कहना प्रारम्भ कर दिया । चौ शताब्दी तक इटली के लेखक बहुसंख्या, बौकेशियों (रचना ' डी ' कैमरान ' सन् १३४८) के अनुकरण पर Novella की पुस्तक लिखते रहे । रजिनावेय के समय ये रचनाएं अंग्रेजी में वागर्ष, वीर उसके साथ उन अनुपित तथा अनुकृत रचनाओं के लिए ' नावेल ' शब्द का व्यवहार भी प्रारम्भ होगया । उस प्रकार सन् १५६६ से ' नावेल ' शब्द का व्यवहार बौकेशियों की व्यापक गप कथाओं के अनुकरण पर लिखी गई रचनाओं के लिए पाया जाता है। सन् १६०० के बाद ' नावेल ' शब्द का व्यवहार अंग्रेजी में पाया जाता है। १६९२ ई० के आस पास इसका रोमन विधि में एक विशेष कथं विधि संविता का पुरक नियम या विधान, विशेषतः सम्राट् जस्टीनियन द्वारा निर्मित । इसके पश्चात् फ्यान्त वाकार की गप कथा नावेल शब्द से समि-
 क्षित होने लगी । बठारखी सदी के प्रारम्भ में नावेल शब्द का कथं ' नवीन ' वीर बहुवचन में यह शब्द समाचार या समाचारिका का फ्यान्त बन गया ।
 ' नावेल्ली ' शब्द अंग्रेजी ' नावेल ' से मूलभाषक संज्ञा बना है। वस्तु नावेल उस गप कथा को कहते हैं जिसमें घटनाओं की नवीन ढंग से योजना हो जिसमें दृष्टि-
 कोण की मूलनता हो वीर जो सफावीन जीवन का मनोरंजक शैली से वर्णन प्रस्तुत करती हो ।

१- During the two centuries following Boccaccio the Italians continued to compose books of Novella and in very great number. In the age of Elizabeth they came into English in shoals, and with then the word 'Novel' as applicable to either the translation or an imitation.

2. Oxford English Dictionary Volume II.

का: " नावेल " फिक्शन का गौरव एवं रोमान्स का कतुष है। उस समय " फिक्शन " दो प्रकार की थी - " रोमान्स " तथा " नावेल " रोमान्स १४ वीं शताब्दी में सामान्य व्यवहार में जाने लगी थी। १८ वीं शताब्दी तक " रोमान्स तथा नावेल दोनों का बीच स्वतन्त्र तथा स्पष्ट था। १९ वीं शताब्दी में, विशेषतः वाल्टर स्कॉट के कथा साहित्य में " रोमान्स और नावेल दोनों के गुणों का मिश्रण हो गया। तब से साहित्य में " नावेल " का बीच व्यापक मान लिया गया और " रोमान्स का संकीर्ण ", नावेल कथा साहित्य के लिए सामान्य नाम बन गया। लगभग तीन शताब्दियों के इस इतिहास में " नावेल " शब्द समय समय पर प्रभाव वैशिष्ट्य के कारण, विभिन्न कथों का पीछे करते हुए, अन्त में पर्याप्त वाक्य की व्यापक मयी गय कथा की सामान्य संज्ञा स्वीकार कर लिया गया है। आधुनिक भारतीय भाषाएँ " नावेल " के संदर्भ में वाक्य रखी नाम रूप से प्रभावित हुई हैं।

साम्य और वैचान्य :

" उपन्यास " तथा कहानी दोनों कथात्मक गद्य साहित्य के रूप हैं। कथात्मक गद्य साहित्य के वर्तमान रूप " उपन्यास " तथा " कहानी " दोनों भावोत्कर्ष, कल्पना तथा प्रतिपादन शैली के समन्वय की अपेक्षा वास्तविक की वह तीव्र भावना विद्यमान रहती है जो पाठक कथका जीता का सम्बन्ध कथावस्तु के साथ निरन्तर बनाये रहती है। " कहानी " तथा उपन्यास " दोनों में भाषा विषयवस्तु और पात्रों के संवाद उपस्थित करते समय अपनी कथं क्रिया सीधे ढंग से करती है। इनमें प्रस्तुत कथं मुख्य और भावोत्कर्ष तथा उचित-

१- दिव्यर १९० श्रृंखला : दि डेवेलपमेंट वाफ दि आरिस्त नावेल , कन्दोडमन

पृ० १४

२- वही

वैचित्र्य गीर्ण होती है। उपन्यास तथा कहानी में कथावस्तु के प्रस्तुत वर्ण को अपनी प्रधानता मिलती है कि भाव तथा रचना कौशल के लिए गीर्ण स्थान रह जाता है। हाँ भाव तथा रचना कौशल को उपन्यास तथा कहानी में रत्ना ज्वरय फड़ता है। उपन्यास, कहानी में वैचित्र्य के साथ साथ व्युत्पत्ति भी मिलता है। दोनों में कथा की प्रधानता होती है। दोनों की कथावस्तु भीतर की कथा पाठकों में छुल्लुल जाकर उनकी अपनी और वाक्यार्थित करती है। दोनों में वस्तु, पात्र संवाद आदि का सौंदर्य रहता है। परन्तु वाक्यार की दृष्टि से "उपन्यास" विस्तृत और कहानी लघु रचना है। "उपन्यास" में वाक्यार्थित कथा के साथ गीर्ण कथाएँ होती हैं जबकि कहानी में एक कथा होती है। "उपन्यास" में जीवन के व्यापक क्षेत्रों पर प्रकाश डाला जाता है और कहानी में जीवन के एक क्षेत्र की कथा होती है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक संवाद लम्बे और व्यापक फटावली युक्त होते हैं और "कहानी" में पात्रों की संख्या संक्षिप्त तथा क्विती फटावली युक्त होती है। कहानी का एक रूप भावात्मक परन्तु भाव प्रधान उपन्यास प्रायः देखने में नहीं आते। वाक्यार्थ की कहानी उपन्यास की ही स्वतन्त्र रूप से विकसित प्रजाति है परन्तु उसका ज्ञान स्वतन्त्र विकास हो चुका है कि वह उपन्यास की कुल की होती हुई भी उससे भिन्न होगी है। "यह वाक्यार्थित भी गल्प कहलाती है, उपन्यास की ही वास्तव जात है किन्तु कुछ समय से वह अपने चित्रण में निवास नहीं करती, बल्कि नवीन कुल की पर्याय प्रवृत्ति करती है।

"उपन्यास" में जीवन का पूरा चित्र होता है और कहानी में जीवन के एक पक्ष की कथा मात्र, परन्तु यह वाक्यार्थ का लघु भेद मात्र ही दोनों का व्यस्योदक नहीं माना जा सकता। उपन्यास और

कहानी के रूप में भी कलम चलाने लगेंगे हैं। वास्तव में कहानी के बाधक मात्र के बाधक पर झट्टी गप कथा को कहानी और बढ़ी गप कथा को उपन्यास नहीं कह सकते। कहानी को छोटा उपन्यास और उपन्यास को बढ़ी कहानी कहना ऐसा ही हास्यास्पद है जैसा कि चौपाए होने की समानता के बाधक पर मैदक को छोटा बैल और बैल को मैदक कहना। कहानी और उपन्यास एक ही वर्ग के हैं परन्तु कहानी उपन्यास से पूर्णतया स्वतन्त्र ही चुकी है, यद्यपि उपन्यास में कथा-तत्व रहता है फिर भी वास्तव की कहानी उपन्यास से कलम एक स्वतन्त्र कथा रूप है।

कहानी जीवन की केवल एक कोण का ही चित्रण करती है, उसमें जीवन की केवल एक कान्ठी रहती है। उसके विपरीत उपन्यास में जीवन का बहुमुखी और व्यापक चित्र पाया जाता है। कहानीकार के समक्ष एक ही सत्य है और उसी के निर्धार में उसकी सफलता निर्भर है, उपन्यासकार जिस जीवन को लेता है उसका व्यापक तथा विवरणपूर्ण चित्र उपस्थित करता है। यदि "कहानी" गद्यात्मक सप्ताहिकाव्य है तो उस सम्बन्ध से उपन्यास को गप का महाकाव्य कह सकते हैं।

कहानी की शैली स्वाग्रता लिए होती है उपन्यास शैली का मुख्य गुण व्यापकता। ऊँ में कार्य व्यापार की शिष्टता रहती है तो दूसरे में विवरणात्मकता। कहानी का शिल्प विधान संक्षेप होता है, उपन्यास का शिष्ट। कहानी में वन्य विषयों की बातचीत-प्रत्यालोचना के लिए स्थान नहीं होता परन्तु उपन्यास के विन्यास में देश कास का विवेचनात्मक चित्रण रहता ही है।

कहानी में चरित्र विकास के लिए अधिक गुंजायमान नहीं रहती। उसमें नदी गढ़ाए चरित्र की एक फलक दिखाई जाती है जिससे

पूरे चरित्र का भी कुछ आभास मिल जाता है। इसके विपरीत उपन्यास की सफलता चरित्र विकास पर निर्भर है। कहानी प्रच्छन्नपि का चित्रण न करके कनीष्ट दृश्य या पात्र की भाँकी मात्र दिखाती है परन्तु उपन्यास जिस तथ्य को सुप्रेम करता है उसका विस्तृत वर्णन करे उसे स्वतन्त्राव्युत्पन्न बना देता है। अतः यह कहना सर्वथा कर्तव्य है कि कहानी उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण है। उपन्यास का संक्षेपण करने पर उसकी विविधता भी का जाती है जो कि कहानी के लिए आवश्यक है। कहानी उपन्यास के एक कोण का कलात्मक रूप है, उसकी एक तथ्यता उसे वैविध्यपूर्ण उपन्यास से पूर्ण कर देती है।

कहानी यदि भावना और कल्पना से जीवन की गति देती है तो उपन्यास उसे चिन्तन की चेतना से चलाता है। कहानी जीवन के एक भाव की उद्भावना है तो उपन्यास उसकी भाव-समष्टि की व्याख्या। दोनों का एक ही है, ध्येय एक है, दोनों जीवन की के एक पर चलते हैं, किन्तु कहानी जीवन की एक क्षीरम भाँकी है और उपन्यास जीवन की पूर्ण प्रतिष्ठा- उपन्यास में जीवन की समस्त भावनाएँ, विचार, विचार धाराएँ और व्यवस्थाएँ अपने स्वच्छन्द रूप में चित्रित होती हैं। कहानी का दृष्टि परक साहित्य है "उपन्यास" संपूर्ण दृष्टि परक साहित्य है। अतः दृष्टि परक साहित्य में कम से कम प्रायः एक संवेदना के लिए स्थान है जबकि संपूर्ण दृष्टिपरक दृष्टिपरक साहित्य में संवेदनाओं की शृंखला चलती है जब तक कि वे स्व एक वृत्त संवेदना का रूप लेकर जीवन की छाँट में परिवर्तित न हो जाये।

पारम्परिक प्रभाव :

हमारे हिन्दी कथा साहित्य पर पश्चिम का अधिक

प्रभाव पड़ा है। पश्चिमी कथा-साहित्य का प्रभाव सबसे पहले बंगला कथा-साहित्य पर पड़ा और यह पाँधा बंगला साहित्य से हिन्दी कथा-साहित्य पर पड़ा। पाश्चात्य कथा साहित्य को समय उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होता है तो भारत का हिन्दी कथा-साहित्य २०वीं सदी के प्रारम्भ से। प्रारम्भ में अनुवाद हुये। १९०० में किशोरीलाल गोस्वामी ने "छन्दुमती" नामक कहानी लिखी जिसे बाचार्पु गुप्त जी ने हिन्दी की पहली कहानी माना है यद्यपि श्रीकृष्ण लाल ने उस पर लेखसपीयर के "लैम्पेस्ट" की छाप ठुलने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार बंकिम चंद्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र चटर्जी पर भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार मराठी कथा-साहित्य पर भी पश्चिम का प्रभाव पड़ा। समाज सुधारक उपन्यासकार हरिनारायण वाष्टे ने कई छोटी-कहानियाँ लिखीं। इन्हीं की परम्परा को वागे बढ़ाते हुये वि०सी० गुर्जर ने बंगला कथा-साहित्य की सी भावुकता के प्रयोग किये जिसका अनुकरण वाष्टे, क्से, कुलकर्णी, बागारी वादि ने की। गुर्जर से अधिक सफल गीतसे हुये जिन्होंने औजी भाषा के बल पर मराठी में अनुचित कथाओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। उस काल के श्रेष्ठ लेखक ना०सी० फडुके हैं।

वास्तव में भारत का कथा-साहित्य पश्चिमी साहित्य से प्रभावित रहा है। अमेरिकन कथा-साहित्य के हार्विंग पो, हार्पे के लेवन, सिडनी पोर्टर वादि लेखकों ने क्रमशः कथा-साहित्य को एक निश्चित रूप दिया जिसका प्रभाव भी हमारे साहित्य पर पड़ा। हर्लेन्ड के प्रसिद्ध

कथा- साहित्यकार स्कॉट, चार्ल्स डिकिनस से हिन्दी- साहित्यकार प्रभावित थे और उनकी के साहित्य को पढ़कर हिन्दी बयबा बंगला में उपन्यास और कहानी लिखी । इस में तुर्गेनैफ, टालस्टाय, चेखव, गौर्की वादि का मुन्शी प्रेमचन्द के जीवन पर प्रभाव पड़ा इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी कथा- साहित्य में यथार्थवादी उपन्यास तथा कहानियाँ को मुन्शी प्रेमचन्द्र ने जन्म दिया । मुन्शी प्रेमचन्द टालस्टाय तथा गौर्की से अधिक प्रभावित थे उनके कथा- साहित्य में कहीं लेखकों की विचारधारा प्रभावित होती रही है । प्रान्स में एमिल जौला, मोंपासा वादि ने कहानी को भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से अपने रत्न से सींचा है । किन्तु बाव न केवल अमरीका में बल्कि बर्षितु इंग्लैन्ड में भी नवीनता की एक विकिरण भूत पिछाई पड़ती है । भारतीय कथा- साहित्य पर छेजी, ली प्रान्स अमेरिकन वादि अनेक विदेशी माचानों का प्रभाव पड़ा है । विदेशी कहानीकारों में टालस्टाय, मोंपासा, चेखव, गौर्की स्टीवन्सन, वात्कर पाइलड, तुर्गेनैफ श्वान, चॉलीय स्टेन, टाम हाडी, डायल वादि की बहुत सी कहानियाँ हिन्दी में अनुवादित हो चुकी हैं ।

अनुवाद- कार्य का क्षेत्र हिन्दी के कुछ अनुवादकों तथा प्रकाशक स्वेनियों को है । " हिन्दी पुस्तक स्वेडी, १२६ हरीसन रोड कलकत्ता " ने टालस्टाय की कहानियों का अनुवाद गल्प सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा कराया । टालस्टाय की प्रसिद्ध कहानी " प्रेम में भगवान " का हिन्दी अनुवाद इस समय उपलब्ध है । " पुस्तक सदन बनाव " से " गौर्की के संस्मरण तथा मोंपासा की कहानियाँ के अनुवाद स्तार्वद जोशी द्वारा " साहित्य

पंडित दिल्ली से कान डाकल की कहानियों का अनुवाद बफीम का कहुता नाम से कृष्ण चरण जैन द्वारा तथा पुस्तक मन्दिर काशी से चौखीय स्टन की कहानी का अनुवाद काता पुरीरित के नाम से बभुतलाल नागर द्वारा किया गया । स्टन की एक दूसरी कहानी वाटिका नाम से गंगा ग्रन्थागार, बलमज्ज द्वारा प्रकाशित हुई । हाथी वौर स्टन की कहानियों का अनुवाद चन्द्रगुप्त विद्यालंकार द्वारा तुर्गेव खान की कहानियों का अनुवाद चरागाह के नाम से विश्व साहित्य ग्रन्थ माला त्र्याहार द्वारा तथा मौपासा की कहानियों का अनुवाद बात्माराम एन्ड उंस, देहली से संतोष गार्गी द्वारा, उपस्थित हुआ । बनेक विदेशी कहानियों के अनुवाद सरस्वती प्रेस बनारस से भी निकले हैं । स्टीवेन्सन की कहानी कसौटी गौकी की कहानियाँ शैलस, टानियाँ गौकी के संस्मरण, मौपासा की कहानियाँ, मानव हृदय की कथार बादि के अनुवाद भी उपलब्ध हैं ।

सात्पर्य यह है कि विकास तथा उत्कर्ष काल के वन्तगत जो कहानियाँ हिन्दी में अनुवाद रूप से बाई वे भिन्न भिन्न मार्गों से होकर बाई । अनुवादकों ने बंगला कहानियाँ से सीधे फ्रान्सीसी तथा रुसी कहानियों के खोजी अनुवादों से, खोजी तथा अमेरिकन कहानियों से समय समय पर हिन्दी अनुवाद उपस्थित किये हैं । इन अनुवादों से हिन्दी कहानीकारों तथा पाठकों ने बहुत लाभ उठाया है ।

वास्तव में हिन्दी कथा-साहित्य पर परिषमी कथा-साहित्यकारों की कला का प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में परिलक्षित होता है । हिन्दी कहानीकारों को बंगला व अंगरेजी माध्यम

से तिली कहानियों से बहुत प्रेरणा मिली है । यद्यपि स्वतः बंगला कहानियों पर पश्चिमी कहानी साहित्य का प्रभाव व्याप्त रूप से पड़ा किन्तु हिन्दी के अधिकारी कहानीकारों ने अपनी कहानियों का आधार सीधे बंगला कहानियों को भी बनाया । पश्चिम में कथा-साहित्य का विकास अमेरिका, फ्रान्स, रूस तथा इंग्लैंड में अपनी स्वतन्त्र विशेषताओं की ओर हुआ । हिन्दी की बहुत सी कहानियाँ में इनका प्रतिबिम्ब उज्ज स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है ।

बंगला कहानियों का प्रत्यक्ष प्रभाव वसंत, जैन्द्र कुमार, श्यामद जोशी आदि लोक कहानीकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है ।

खोजी कहानियों का प्रभाव विषय वस्तु, प्रतिपादन शैली तथा कथा संरचनाकी दृष्टि से हिन्दी अनुचित कहानियों में अधिक स्पष्ट तथा व्याप्त रूप में सामने आता है । प्रेमचंद, विश्वम्भरनाथ कोशिक, सुदर्शन, चन्द्रशुक्त विवालेकार, चतुरसेन शास्त्री, जैन्द्र, वसंत, श्यामद जोशी आदि लोक कहानीकारों पर पश्चिमी कहानी-कथा का प्रभाव पड़ा है । प्रेमचंद तथा अन्य विकास-कालीन कहानीकारों की कहानियों में, जो सप-कालीन समाज का चित्रण सुधारवादी दृष्टिकोण से किया गया है तथा वर्ग संघर्ष के विविध रूपों को स्थान मिला है वह सब रुची तथा फ्रान्सीसी कथा-साहित्य कथा के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप है । विकास काल की अधिकारी कहानियों में जो घटनाओं की प्रगति तथा कथानक निर्माण में इतिवृत्तात्मकता मिलती है उसकी प्रेरणा टॉलस्टाय तथा पौपासॉ

की कहानियाँ से मिली है। विकास काल की भाव मूलक जादूवादी परम्परा की कहानियों में कल्पना और मातृकता के कारण कहानीकार के व्यक्तित्व की प्रधानता थी कतएव उनमें विषय वस्तु, कला संस्थान तथा शैलीगत सब विशेषताएँ प्रायः मौलिक थीं। कतः वस्तु मूलक जादूवादी कथा-साहित्य पर यह विदेशी प्रभाव अपेक्षातः अधिक मिलता है। उत्कर्ष काल में प्रान्तीय तथा विदेशी कहानियों के हिन्दी अनुवाद अधिक संख्या में किये गये जिसे विदेशी कहानी कला का प्रत्यक्ष प्रभाव बड़ा गहरा दिखलाई पड़ता है। इस समय भारतीय जादूवाद तथा वाध्यात्मिकता के वतिरिक्त पश्चिमी मनोविज्ञान-शास्त्र, समाजवाद, साम्यवाद, प्रातिवाद, यौनवाद, दन्तात्मक भौतिकवाद आदि की नवीन विचार धारा का प्राधान्य था। कतएव इनका प्रभाव हिन्दी साहित्यकारों पर विशेष रूप से पड़ा है। जैनेन्द्र, जैय, इलाचंद जोशी आदि की कहानियों में नैदानिकता जगत् मनोवैज्ञानिकता मिलती है उसकी प्रेरणा विदेशी कहानियों से मिली है। जैनेन्द्र पर टालस्टाय का प्रभाव अधिक है जो उनकी दार्शनिक कहानियों में स्पष्ट दिखाई देता है। वैज्ञ की कहानी कला का प्रभाव इलाचंद जोशी, जैय तथा जैनेन्द्र पर बतलाया जाता है। यशपाल की कहानियों में गौकी की कला का प्रभाव पड़ा है। मोपसाँ की व्यंग्य प्रधान शैली के दर्शन उपेन्द्रनाथ बसु व इलाचंद जोशी की कहानियों में मिलते हैं। बौद्धिकता तथा सूक्ष्म विश्लेषण की प्रेरणा भी मोपसाँ द्वारा हिन्दी कहानीकारों को मिली है। उपेन्द्र नाथ बसु, यशपाल, फाही, जैय, जैनेन्द्र कुमार तथा इलाचंद जोशी इसी प्रकार मुन्शी प्रेमचंद, भगवती

चरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा बाबि की कहानी तथा उपन्यासों में कथा विधान तथा कथानक- निर्माण का जो कलात्मक समस्कार है, चरित्र कथारणना, चरित्र- चित्रण, चरित्र- विश्लेषण तथा वासोचना में जिस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता की प्रधानता है तथा प्रतिपादन शैली की जो विविधता है, उन सब पर पश्चिमी कहानियों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। वस्तु हिन्दी कथा साहित्य पर पश्चिमी साहित्य का प्रभाव पड़ा है।

अन्य भाषाओं का प्रभाव-

हिन्दी कथा- साहित्य पर अन्य भाषाएँ जैसे बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलुगू आदि भाषाओं का काफी प्रभाव पड़ा है। बंगला कहानी के प्रसंगिक के रूप में मूदेव का नाम लिया जाता है जिसका कहानी शृंगार 'वैगुरीय विनियम' है। उनके पश्चात् बंगला कथा- साहित्य में बंकिम चंद्र चटर्जी का व्यक्तित्व परमोच्च है। उन्होंने रोमान्टिक स्वप्नलोक की धामा से साहित्य को बहुत बामासित किया है। रवीन्द्र नाथ की मणिनी स्वर्ण कुमारी के बाद रवीन्द्र नाथ ठेका का ही नाम आता है जिनको कीर्ति बंगला साहित्य में कमर होगी। ऐकनिक भाव व्यञ्जना और कवित्वमय वर्णन में रवीन्द्र नाथ का नाम शिरोधार है। उनके पश्चात् शरत चंद्र मजूमदार, प्रभात कुमार मुत्तौपात्र्याय, ललिता कुमार वन्धीपात्र्याय का नाम लिया जा सकता है किन्तु रवीन्द्रनाथ के बाद शरतचंद्र ही टिकते हैं। उन्होंने महिला जाति को एक नवीन गौरव प्रदान किया है। इन सब साहित्यकारों का हिन्दी कथा- साहित्य पर प्रत्यक्ष

कथा व्यक्त्यता किसी न किसी प्रकार प्रभाव अवश्य पड़ा है ।

मराठी साहित्य का भी हमारे कथा- साहित्य पर प्रभाव पड़ा है । मराठी साहित्य में एक और तो बरबी और संस्कृत से अनुवादों की प्रसुता रही दूसरी और छिजी कहानियों से सम्पर्क होने के कारण उनकी सैली अपनाई गई और साथ ही साथ राष्ट्रीयता और जागरण की प्रेरणा के कारण छिजी जाति के प्रति रीझ भी प्रकट किया गया । समाज सुधारक उपन्यासकार हरि नारायण वाप्टे ने कई छोटी कहानियाँ लिखीं । इन्हीं से प्रभावित गुर्वर ने बंगला- कथा- साहित्य की सी भावुकता के प्रयोग किये जिनका अनुकरण बा० ली० वाप्टे, जे. कुलकर्णी, बागारी बादि ने की । गुर्वर से अधिक सफल कुंभे गौसले हुये जिन्होंने छिजी भाषा के चल पर मराठी में अनुदित कथाओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया । अन्य लेखकों में नारायण हरि वाप्टे, बा० ना० देशपांडे, बादी बाई, शिर्के और आधुनिक कहानी के विषय निर्माता दिवाकर कुञ्जा हैं । कुञ्जा जी की कहानियों में खीन्द्र की कथाओं का सा काव्यमय वातावरण, भावुकता और भाव- व्यंजना है । " लान्देकर गान्धी-वाद और समाजवाद के माध्यम से जीवन सुधार में प्रयत्न हुये हैं तो फड़के का ध्यान जीवन के साथ साथ कहानी की कलात्मकता की और विशेष रहा है । मराठी कथा- साहित्य ने १८३५ से १९५० तक विशेष उत्कर्ष प्राप्त किया है । वामन और छे और वरविन्द गौसले अच्छे कहानीकार हैं। स्त्री लेखिकाओं में कमला फड़के, सीता पैलमुल, विभावरी शिरकर, शान्ता, रैल के अधिक प्रसिद्ध हैं । संक्षेपतः मराठी भाषा की हिन्दी- साहित्य पर

कमिट खाप है ।

गुजराती भाषा का भी हिन्दी कथा-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है । गुजराती कहानी के प्रसंगों में गौरीशंकर गोवर्द्धन जोशी हैं । इनके पात्र गरीब और निम्न वर्ग के हैं तथा शैली सरल, वाकबर्क, भावमय और विषयातुल्य है । पन्नालात पटेल की कहानियाँ में ग्राम्य जीवन का चित्रण है । रामनारायण वि० पाटक की प्रतिभा सर्वतोमुखी है । ईश्वर पटेलीकर गुजरात के उत्कृष्ट कहानीकार हैं जिनकी "लौहिनी संगार्ष" विश्व कहानी प्रतियोगिता के लिये स्वीकृति हुई थी । गुजराती भाषा का भी हमारे कथा-साहित्य पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । गुजराती साहित्यकारों के उपन्यासों तथा कहानीयों का हिन्दी कथा-साहित्य पर अनुवाद के रूप में क्या उन ग्रन्थों का अवलोकन करके हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में गुजराती की भाषा तथा शैली का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ा है ।

तमिल भाषा की भी हमारे कथा-साहित्य पर छाप पड़ी है । सुब्रह्मण्यम मारती का "नवान्तर कथेकल" भी हास्य सह प्रधान कहानियों का संग्रह है । डा० वी० सुब्रह्मण्यम व्यूयर नई शैली के लेखकों में गण्य हैं । संस्कृत की फलक के साथ इनकी कहानियाँ में नये विचार भरपूर हैं । कन्नड राजगीपालाचार्य ने भय-निर्बोध, वस्तुस्थिति निवारण आदि सामाजिक समस्याओं को लेकर तमिल भाषा में कहानियाँ लिखी हैं जिनका प्रभाव हिन्दी कथा-साहित्य में पड़ा है । सुब्रह्मण्यम मारती की परम्परा के लेखकों में शुद्धानंद मारती, वेईट रमणी वर राम स्वामी, रा० कृष्ण मूर्ति आदि हैं । नये वर्ग के लेखकों में पुट्टप पुट्टम, पिच्चमूर्ति

रामकथा, विदम्बर सुब्रह्मण्यम्, टी०एन० कुमार स्वामी, रावी, नाठौड़ी, खासूर, सुन्दर रामन, बीलि नाथन, जानकी रामन तथा महिला सेस्कॉ में बहुप्रिया, कुमुदिनी, कौदेनाथ की वस्माल, दु० सावित्री वस्माल, पुष्पा महादेवन, शरीजा राममूर्ती वादि का नाम गणनीय है। कहने का तात्पर्य यह है कि तमिल भाषा में लिखे गये सेस्कॉ का हमारे हिन्दी कथा-साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

तेलुगु भाषा का भी हमारे कथा-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है। श्री० श्री० ब्राउन "ताता चार्जुल कथल" नामक कहानी संग्रह प्रस्तुत किया। वेद वेदंट राय शास्त्री ने "कथा सरित्सागर" का अनुवाद किया। बहुतवाड सीताराम शास्त्री ने "ग्रिम्स फौपरी टैल्स" का छीजी से अनुवाद किया। बान्ध के मास्तेकु वीरेशलिङ्गम की समस्या प्रधान कहानियाँ विशेष कथनीय है। रामानुज शर्मा का "विनोद कथा कल्पवल्ली" चित्र कथा लहरी" कहानियाँ लिखी जो वाकचर्म सैली, बहुलनीय घटना कुतूहल उत्पन्न करण भ्रूंगार वादि के लिए कादम्बरी की भाँति देखे हैं। बाधुनिक कहानीकारों में "बडिभि वापिराडु" नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ, चित्रकार वीर नरक की रचनाओं कता वीर प्रणय के दृष्ट का पनोवैज्ञानिक चित्रण है। सुनिमाणिवय नरसिंह राडु पारिवारिक तथा नारी जीवन के चित्रण सफल सेस्क हैं। विश्वनाथ सत्यनारायण की कहानियाँ सामाजिक है। नाले कैटस्वर राव की कथाओं में साधारण जनता के जीवन के मार्मिक चित्रण है। नये कहानी-कार "थेलुटि शिवराम शास्त्री", जमदग्नि, करुण कुमार, गोपीचंद, चत्म वादि कथाकार अपनी यथार्थवादी रचनाओं से प्रख्यात हो चुके हैं। पालुगम्भ

पचराश्रु की विश्व कथा प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है।
उन सभी रचनाओं का हिन्दी कथा-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है।

कन्नड़ भाषा का भी कथा-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है। कन्नड़ भाषा के लेखक वासुदेवाचार्य केशर, श्री श्रीशराव और एम०एन० कामत हैं। "निष गल्ल की रानी", "मोषी वीणिक", "हेम्पूट के बाधम से वीत पर", "मेरा साला", "मुकसे मारी गई लड़की", "जीवन" आदि कहानियाँ भिन्न भिन्न वर्गों की हैं। शिकारान्त और कृष्णराव की व्यंग्यपूर्ण कहानियाँ यही सुभती होती हैं। कृष्णराव के दो संग्रह "चिनगारी" और "विजली" हैं। बानंद कंद की कहानियाँ कम होती हुये भी उच्च कौटि की हैं। यद्यपि कन्नड़ की कहानियाँ सब मिलाकर बहुत उच्च कौटि की नहीं हैं तब भी हिन्दी कथा-साहित्य पर इसका प्रभाव पड़ा है। कतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी कथा-साहित्य पर अन्य भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है।

स- कथा और उपन्यास के सामान्य तत्व और उनका विवेचन-

कहानी और उपन्यास दोनों ही नए कथा-साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। कथा और उपन्यास के सामान्य तत्व एक ही हैं। दोनों में कथावस्तु, कथोपकथन, अस्त्रित्रण, देशकाल (वातावरण), भाषा शैली, उद्देश्य पाये जाते हैं। सबसे पहले प्रश्न यह आता है कि कथा-साहित्य के तत्वों से क्या अभिप्राय है और तत्वों की गणना का उद्देश्य क्या है। "तत्व" शब्द का निरूपण ही मौलिक दर्शन (मेटाफिजिक्स)

का एक पारिभाषिक शब्द है। हमारे यहाँ उसे ऐसा विभाज्य उद्धारण माना गया है जो किसी वस्तु के निर्माण में लौहा या अन्य वैसे ही उद्धारणों की सहायता से उपयोगी सिद्ध हो सके। चराचर ब्रह्माण्ड के निर्माण में जिन पंचभूतों (अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और वाकाश) का एतय है वे सब हमारे यहाँ ऐसे तत्त्व माने गये हैं जिनका अस्तित्व अपने आप में स्थिर है तथा जिनका विभाजन होना सम्भव नहीं। इन्हीं के निश्चित मात्रानुसार संयोग से ब्रह्माण्ड की रचना हुई और इन्हीं के आप से ब्रह्माण्ड का सत्य व्यक्ता मिल्य होता वाया है। पाश्चात्य मौलिक सांख्यिकों ने अपने अथ पश्चिम के उपरान्त यह सिद्ध किया है वे पंच भूत और चारों कुछ ही विभाज्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ जल हाइड्रोजन और ऑक्सीजन नाम की दो पायुओं के एक निश्चित परिमाण में संयोग कर देने से बन जाता है और निम्न परिस्थितियों में उसका एक उद्भजन तथा वीजजन पायुओं में रूपान्तर किया जा सकता है।

यह सिद्धान्त "तत्त्व" शब्द की व्याख्या में कुछ परिवर्तन अवश्य उचित उपस्थित करता है किन्तु उसकी सर्वथा प्रसिद्ध नहीं ठहरता। व्यावहारिक तर्कों में तत्त्व की एक ऐसा मौलिक विशद उद्धारण मान सकते हैं जिससे किसी वस्तु के निर्माण में सक्रिय सहयोग मिले और जिसके अभाव में उसका संघटन होना सम्भव नहीं है। अनिवार्यता का यह उत्पादन तत्त्व की व्याख्या में विशेष महत्त्व रखता है। इसमें तनिक भी संकोच नहीं कि क्या और उपयोग के तत्त्व भी इसी उपादान के लिये होते हैं।

इस प्रकार क्या- साहित्य के तत्त्व हम क्या के उन

उपकरणों को कह सकते हैं जिनके द्वारा कथा का संघटन होता है और जिनके बनाव में उसका संघटित होना सम्भव नहीं होता। यहाँ तक जाने पर भी समस्या का हल नहीं जान पड़ता कितनी ऐसी जाते हैं जिन्हें कहानियों के विघटन निर्माण में सहायक माना जा सकता है फिर भी उन सब बातों की कहानी के तत्वों के वर्गीकृत मानना इसके बसती रूप को भुलाना होगा। जैसे, भाषा। यह कहानी का अनिवार्य तत्व है किन्तु कौण भी साहित्य बिना भाषा के नहीं लिखा जा सकता। अतः जब हम भाषा की कथा-साहित्य के वर्गीकृत स्वीकार करते हैं तब उसका वही रूप उसकी वैसी ही शैली को लेते हैं जिसका उपयोग कथा-साहित्य में किया जाता है। कहानी साहित्य का ऐसा तत्व नहीं है जो उसके दूसरे वर्गों से विच्छिन्न हो, प्रत्युत उसका उन सब वर्गों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अतः यह मानना कि कहानी के तत्व अपने आप में सम्पूर्ण कथा स्वतन्त्र होंगे कहानी की झूठी वकालत करना होगा। कहानी के सभी तत्व अन्य साहित्यों में अतः कथा पूर्णतः मिल जायेंगे। उपन्यास में उसके सभी तत्व नाम में ज्यों के त्यों उपस्थित रहते हैं। किन्तु वन्तार केवल उनकी मात्रा स्थिति गुण तथा धर्म में होता है। उपन्यास में यदि पुरुष का बीज है तो कहानी में स्त्री का कामार्थ का।

हम का मूल प्रश्न पर आते हैं। तत्व कौन कौन से हैं। उनकी गणना के साधन क्या हैं? बालीबना काल में इन तत्वों के कई नाम हैं, यथा- बीज, उपकरण, भाग, तत्व आदि। कुछ छात्रों पाँच तत्वों में

विभाजित करते हैं और कुछ छः में । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उनके वृत्तगत कथा, पात्र, संवाद, देशकाल तथा उद्देश्य की गणना की है । गुलाबराय सम० २० में वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य और शैली का उल्लेख किया है । विनोद खेर व्यास ने कहानी के छः तत्वों - घटना, खनाक्रम, शीर्षक, प्रारम्भ और अंत चरित्र चित्रण, वातावरण और भाषा-शैली का निदर्शन किया है । पीपति तर्मा कहानी के छः तत्व - कथावस्तु या घटना, पात्र, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण तथा वर्णन शैली । गिरधारीलाल शर्मा गुप्त जीत तत्व - वस्तु, पात्र, दृश्य, कहानी का प्रारम्भ, प्रभाव की खोज, शैली और उद्देश्य मानते हैं । बाबाय नंद दुलारे बाजपेयी ने कहानी के पाँच तत्व - उद्देश्य, कथानक, देशकाल, पात्र स्वीकार किये हैं । कोई कहानी और उपन्यास बिना कथा-वस्तु के नहीं होता । कथा वस्तु का विकास पात्रों द्वारा होता है । पात्रों के संवाद कथावस्तु के विकास में विशेषयोग देते हैं ।

कहानी के तत्वों के वृत्तगत वस्तु, पात्र, संवाद उद्देश्य, वातावरण, शीर्षक प्रारम्भ, अंत तथा भाषा-शैली को स्वीकार दिया है । कुछ आलोचकों ने कहानी के तत्वों में कल्पना, भाव, संवेदना,

१- वाचस्पत्य-विमर्श : लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ६६-७७ ।

२- "सिद्धान्त और कथ्यम" : काव्य के रूप : द्वितीय भाग, पृष्ठ २९० ।

३- "कहानी कला", पृष्ठ १५-७७ ।

४- "कहानी कला और प्रेमचंद" पृष्ठ १४-२८ ।

५- "कहानी एक कला" : ४०-१२६

६- "आधुनिक साहित्य" : भारतीय मण्डार, लीडर प्रेस, कलकत्ता, पृ० १६०१

वस्तुनिष्ठा, वाच्य, प्रेम, सौन्दर्य, करुणा आदि की गणना की है ।
परन्तु ये सम्पूर्ण साहित्य के सब वर्गों के तत्त्व हैं ।

उपन्यास और कहानी साहित्य वास्तव में कथा-
साहित्य के नाम से विख्यात है । उनके तत्त्व एक से होते हुये भी थोड़ी सी
भिन्नता है । उपन्यास मानव जीवन की पूर्णांशी घटना को लेकर चलता
है जबकि कहानी में लेखक का उद्देश्य जीवन के किसी एक वर्ग या किसी
एक मनोभाव को प्रदर्शित करता है । विद्वानों ने कथा-साहित्य के (
उपन्यास, कहानी) छः तत्त्व माने हैं :-

- (१) कथा- वस्तु
- (२) चरित्र चित्रण
- (३) कथोपक्रम
- (४) दैह कास (वातावरण)
- (५) शैली
- (६) उद्देश्य

कथावस्तु -

कथा- साहित्य (उपन्यास, कहानी) के तत्त्वों में
कथा वस्तु का प्रमुख स्थान है । यह कहानी और उपन्यास का वह ढाँचा है
जिस पर कहानी निर्मित होती है जो हम कहानी या उपन्यास का पैरुदंड
कह सकते हैं । उपन्यास की मूल कहानी को कथावस्तु कहा जाता है । इसकी
विशेषता यह होती है बाहिर कि उपन्यास की सारी घटनाएँ वास्तव में ऐसी

सम्बद्ध हों कि यदि उनमें हैं एक को भी पृथक् कर दिया जाय तो वह किञ्चित् निर्मलसिद्धि हो जायगी और उसका रूप टूट जायेगा । इन घटनाओं में जीवनित्य का ध्यान रहना आवश्यक है । व्यर्थ की घटनाओं का समावेश कथावस्तु को शिथिल, विकृत एवं सार्थहीन बना देता है ।

सहजिन 'म्यूर' के अनुसार^१ कथा के वस्तुगत घटनाओं की प्रसङ्गा और उनके नियोजन- सिद्धान्त का नाम कथा वस्तु है । डॉ०एम० फोर्स्टर^२ के मत में संयोगाश्रित घटनावली का प्रसङ्गात्मक नियोजन कथावस्तु कहलाता है । उपन्यास^३ 'मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा' है । उपन्यास जीवन नहीं है, प्रत्युक्त जीवन का सारस्वत प्रकाश है ।^४ उपन्यास की कथा वस्तु पाठक के मन में जीवन की स्वाभाविक गतिविधि और विकास के प्रति विश्वास जगाती है । सफल कथा- वस्तु में जीवन का सत्य निरीक्षण होता है । सफल उपन्यासकार कथा वस्तु में पहलव के अनुसार घटनाओं का विस्तार और स्वाभाविकता का ध्यान रहकर उनका रूप नियोजन करते हैं । व्यक्त्या एवं वस्तुगत कथा- वस्तु के मुख्य गुण हैं, घटनाओं का उपयोगी घटन, सहज विकास, स्वाभाविक गति, कृत्रिम रूप- बन्धन और निश्चेष्ट परिणति कथा वस्तु को सफल बनाते हैं । कथावस्तु के तीन चौथाई के जीवन कह सकते हैं, इसकी सफलता उपन्यास की सफलता है । स्वाभाविकता और रोचकता उपन्यास- शरीर की एक वाहिनी शिराये^५

१- The chain of events in a story and the principle which knits it together.

२- A plot is narrative of events, the emphasis falling on causality. p 116

३- डॉ० श्यामसुन्दरदास : साहित्या जीवन । causality. p 116

है, जीवन की माप भी इन्हीं से होती है। कथा वस्तु पाठक के मन में जितना विश्वास उत्पन्न कर सकेगी उतनी ही वह सफल मानी जायेगी। कथा वस्तु की दृष्टि से उपन्यासों के दो भेद किये जाते हैं :- एक तो वे जिनकी कथा वस्तु संबद्ध या शिथिल होती है और दूसरा वे जिनकी कथा-वस्तु संबद्ध या सुगठित। प्रथम प्रकार के उपन्यास में बहुत सी घटनाओं का घटा टोप मात्र होता है उनमें वाक्य में कौई तर्क संगत संबंध प्रायः नहीं होता। दूसरे प्रकार के उपन्यासों में घटनाएँ एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित रहती हैं कि वे साधारणतः खलग नहीं की जा सकती। कहानी की कथा वस्तु की समाप्ति के विषय में वालोक्कों का मत है कि वह असमाप्त हो। कहानी की कथा वस्तु में शैथिल्यता नहीं होनी चाहिए। कहानी की कथा-वस्तु का निर्माण एक घटना के आधार पर होता है। यदि किसी कहानी में कई घटनाओं का समावेश किया जाय तो उनके बीच एकता तथा वन्तित का होना परमावश्यक है। इसकी कथावस्तु में वस्तु स्थिति और दृश्यों को क्या वाक्य स्थान दिया जाता है परन्तु ये कथा के सदा वाग्मि रहते हैं। स्वरूप की दृष्टि से कथा-वस्तु के तीन प्रकार मिलते हैं :-

(१) घटना प्रधान

(२) चरित्र प्रधान

(३) भाव प्रधान

घटना प्रधान कथा वस्तु में घटना अपना कार्य व्यापार की ईश्वर ही उनके निर्माण में चरितार्थ होती है। चरित्र प्रधान कथा-

वस्तु में घटना और संयोग गौण होता है। चरित्र-चित्रण और विशेषण ही मुख्य हो जाता है। कथा-सूत्र किसी मुख्य पात्र के चरित्र की रेशाओं में अपना विकास पाता है। जैन-ग्रंथों और कौटिल्य की मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियों के कथानक इसका उत्कृष्ट सुन्दर उदाहरण हैं।

भाव प्रधान कथावस्तु में स्थूल पात्र से भी बागे उनकी अनुभूति और भाव ही उसके मुख्य सूत्र के रूप में जाते हैं। यहाँ कथा वस्तु का रूप सबसे अधिक सूक्ष्म और वृक्ष हो जाता है। न इसमें वर्णनात्मकता रहती है न छविवृत्तात्मकता वरन् कथा सूत्र की स्थापना केवल व्यंजना एवं संकेतों के द्वारा की जाती है। ऐसे कथानक मूलतः मनुष्य को किन्हीं शास्त्रगत भावों जैसे प्रेम, घृणा, करुणा और निर्वेद आदि के धरातल से निर्मित होते हैं। वस्तु विकास की दृष्टि से कहानी के कथानक के तीन अंग होते हैं :-

(१) वारम्भ

(२) मध्य

(३) चरम सीमा और अंत

वारम्भ कहानी का आदि भाग है। उसी की कुशल बभिव्यक्ति पर कहानीकार का हस्तक्षेप निर्भर करता है। इस अंग में कहानी के प्रायः समस्त बीज उसकी वास्तविक समस्या का संकेत और मुख्य पात्रों के परिचय किसी न किसी रूप में अवश्य ही आ जाते हैं। दूसरी और कथानक के अन्तिम भाग में कहानी की मुख्य जिज्ञासा का परम वाकचर्क रूप भी अपने कलात्मक रूप से स्वरूपित हो जाता है।

कथानक के मध्य भाग में समस्या का परम विस्तार

तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोह अवरोह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है । कथानक के सम्पूर्ण कर्णों में विस्तार ही उसका मुख्य कर्ण है । इसी कर्ण में कहानी का की वास्तविक आत्मा प्रस्फुटित होती है और कहानी के सत्य की पूर्ण पृष्ठ भूमि तैयार हो जाती है । रचना विधान की दृष्टि से वस्तु विकास का मध्य भाग ही कहानी का विकास भाग है, और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है ।

सफल कहानियों में क्लाइमैक्स का आविर्भाव बनेक बार बनेक कर्णों पर होता है पर उसमें हर बार स्तर भेद होता चलता है, क्योंकि क्लाइमैक्स में तीव्रता बढ़ती रहती है । प्रथम क्लाइमैक्स प्रारम्भ में उत्प्रेक्षा की दृष्टि करता हुआ कहानी को उसकी चरम सीमा की ओर प्रेरित करता है लेकिन चरम सीमा तक पहुँचने के पूर्व उसकी गति में तीव्रता लाने के लिए दूसरी और तीसरी क्लाइमैक्स की दृष्टि करनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप समूची कहानी में भावों और अनुभूतियों की कतनी तीव्रता उत्पन्न हो जाती है कि कौटी सी कहानी अपने स्थानात्मक प्रभाव में परम व्यापक और विलुप्त सिद्ध होने लगती है और चरम सीमा तक पहुँचते पहुँचते उसमें अप्रत्याशित वार्नद और सौन्दर्य उपस्थित हो जाता है ।

क्लाइमैक्स के अन्त में चरम सीमा का जाती है । कथा का वह भाग जिसमें पाठक कच्चा बीता का क्लाइमैक्स अपने चरम उत्कर्ष पर होता है । वहाँ कथा का सत्य हूत जाता है कच्चा किसी सत्य या उद्देश्य की प्राप्ति हो जाती है । वहाँ कहानी समाप्त कर देना पड़ता है । चरम सीमा

पर पहुँच कर उत्सुकता के उग्र रूप की अभिव्यक्ति होती है। अधिकांश कहानियाँ चरम सीमा पर पहुँच कर समाप्त हो जाती हैं।

रूपावस्तु में यह जानना आवश्यक है कि किस उपन्यास की सामग्री कहाँ से ली गई है। अर्थात् जीवन की व्याख्या करने में किन किन उपादानों का उपयोग हुआ है। डा० श्यामसुन्दरदास जी के रूपावस्तु के विषय में इस प्रकार कहा है :—“कतख किसी अच्छे उपन्यास की महत्ता इसी में होती है कि वह उन बातों पर अधिक जोर दे जो जीवन के उत्साहपूर्ण, उथली, दृढ़ और शिक्षामय बनाती हैं। एक कृषक के जीवन की साधारण से साधारण घटनाओं से लेकर एक वीर शिरोमणि की रोमांकारी कृतियों तक में ये गुण विद्यमान हो सकते हैं ---- पर किसी अच्छे उपन्यास की महत्ता इसी बात में होती है कि वह उन बातों को अपना मुख्य आधार बनावे जो मनुष्यमात्र के जीवन संग्राम और उसकी विपत्ति-विपत्ति की घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं कारण हमारे धर्म का रक्षा करने वाली हैं।”

हिन्दी रूपा-साहित्यिक विद्वानों का कहना है कि जिस विषय का स्वयं अनुभव न कर लिया हो उस विषय पर कुछ कहना या लिखना उचित नहीं। यदि आप किसी घटना का वर्णन करना चाहते हैं तो वह घटना आपने स्वयं अनुभव की हो। इसके लिए डा० श्यामसुन्दरदास जी का मत है :-

१- डा० श्यामसुन्दर दास 'साहित्यालोचन' ग्यारहवीं, आवृत्ति संवत् २०११
पृष्ठ १५ ।

“ अनुभव प्राप्त करने की उस प्रवृत्ति के साथ ही साथ लेखक की प्रतिभा भी उस कौटि की छानो बाटिये कि जितने उपाय सबको उपलब्ध हो सके, उन सबसे अपना अनुभव मँडार मारकर वह अपनी कल्पना शक्ति से ऐसा जीता जागता चित्र उपस्थित करे, जो वास्तविकता के रंग से पूरा पूरा रंगा हुआ जात हो । काव्य का आवश्यक है कि उपन्यास लेखक पशुओं और वस्तुओं का जितना अधिक संभव हो, अनुभव प्राप्त करे और अपने उद्देश्य की सिद्धि में उसका उपयोग करे । इस प्रकार जब लेखक की कल्पना- शक्ति अनुभव का सहारा लेकर अपने कार्य में प्रवृत्त होगी, तब उसे अवश्य ही पूरी सफलता प्राप्त होगी । ”

किसी उपन्यास की मूल कहानी या मुख्य मुख्य घटनाओं की श्रृंखला को हम कथा- वस्तु के नाम से पुकारते हैं । उस घटना, श्रृंखला का उदय, विकास और अंत निश्चित हो जाता है । अंग्रेजी में कथा वस्तु को (Plot) कहते हैं । वास्तव में कथावस्तु, उपन्यास साहित्य का ढांचा है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होनी चाहिए कि उपन्यास की सारी घटनाएँ आपस में ऐसी मिली जुली हुई हों कि यदि उनमें से एक को भी छूट कर दिया जाय तो उसका विश्रुतता स्पष्ट रूप से दुष्टिगोचर होने लगे और उसके स्थान पर दूसरी घटना जुड़ ही न सके । इन घटनाओं में वास्तविकता का ध्यान परमावश्यक है । व्यर्थ की घटनाओं का समावेश कथावस्तु को विकृत एवं सार्थक बना देता है । इसमें उपन्यास-कार की प्रतिभा, अनुभव और विवेक ही काम करते हैं ।

१- डा० श्यामसुन्दर दास “ साहित्यालोचन ” ग्यारहवीं आवृत्ति, संस्कृत

२०११, पृष्ठ १६० ।

चरित्र चित्रण -

पार्श्वान्त्य दृष्टिकोण से चरित्र चित्रण उपन्यास की जान है। भारतीय कालौक्य काव्य में जो स्थान इस को देता है उपन्यास में वही स्थान पार्श्वान्त्य कालौक्य चरित्र-चित्रण को देता है, क्योंकि उपन्यास व्यक्ति चेतना-प्रधान समाज का साहित्य रूप है। वस्तु उपन्यासकार अपनी दृष्टि मानव चरित्र के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु पर केन्द्रित करता है तो वह उस कार्य के लिए स्वयं उत्तरदायी है। यदि उसकी रचना में रौप्यता के कार्य काव्यनिक सहस्रिक कार्य मात्र है तो हम उसके सांप्रदायिक कर्तव्य कर्म के सन्देह की दृष्टि से देखने के लिए स्वतन्त्र हैं। उपन्यास एक मानव चरित्र का चित्र मात्र है, मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है। उपन्यास में पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीवता, सत्यता स्वाभाविकता के साथ व्यक्त प्रभावशाली ढंग से होना चाहिए। चरित्र चित्रण की प्रथम विशेषता सजीव पात्रों की दृष्टि है। पात्रों में अपने ही जेठा राग, द्वेष, शोध, करुणा, प्यार, घृणा आदि भाव होते हैं। यदि पात्रों में अपनी स्वच्छंद गति न हो, कोई संकल्प-शक्ति न हो और वे तैलक के संकेत पर ही नाचने वाले हों तो उन्हें हम कठपुतली मते ही कहेंगे, मानव नहीं कह सकते। वस्तु पात्र अगर तभी हो सकते हैं जब उनकी शिराजों में वही सत हो जिससे हमारी हृदय गति संवाजित होती है। चरित्र चित्रण की कुशलाता इस पर निर्भर है कि पाठक

१-१० स्टीफन स्मिथ : दि ड्रेफ्ट ऑफ़ दी क्रिटिक

If a novel throws emphasis upon anything except human character in action, it is summoned before the bar. If the centre of interest is in external adventure. The author is suspected of mistaking the real business of the novelist. (121)

२- प्रसिद्ध : कुछ विचार।

पात्रों की कलाकार कलाकार का निर्माण व समझकर अपनी जानी पहचानी सृष्टि समझें उसे प्रत्येक कलाकार में पाठक का मन सन्तुष्ट होता जाता । कथा वस्तु के विकास के साथ पात्र अपनी स्वयं की शक्ति : शक्ति : बनाकर रहते हैं- मानों कलाकार ने पात्रों की कथा की पारीका के बीच स्वतन्त्र होकर पिया हो और वे अपने क्रिया कलाप द्वारा घटनावली की सृष्टि स्वयं कर रहे हों । कैरे ने कहा है, " वे पात्रों के शासक नहीं, प्रभु उनसे शासित हैं । " पात्रों की सजीवता इसी पर निर्भर है । उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह ऐसे पात्रों की सृष्टि करे जिनके चरित्र, सद्ब्यक्तार और सद् विचार से पाठक की मोहित कर है ।

डाक्टर श्यामसुन्दरदास जी के कथानुसार " उपन्यासों में चरित्र- चित्रण के सम्बन्ध में एक और बात ध्यान देने योग्य है । उप- न्यासकार को अपने पात्रों के विषय में सब कुछ एक ही समय में नहीं रह देना चाहिए । उसे क्या स्थान अपने पात्र के चरित्र के विषय में मुख्य मुख्य बातें कह देनी चाहिए और तब उसे छोड़ देना चाहिए जिससे वह उसी पात्रों के प्रभाव अपनी स्थिति और अनुभव के अनुसार अपने चरित्र की क्रमशः प्रकटित करता जाय । ऐसा करने से भिन्न भिन्न स्थितियों में मनुष्य की मानसिक अवस्था के अनुसार रागादिवाचक प्रवृत्तियों का जो आवृत्ति होता है उसका सुन्दर और जीता जागता चित्र पाठकों के समुत्त उपस्थित न किया

१- I donot control my characters. I am in their hands and they take me where they please.

जा सकता है और वह उन्हें मुग्ध करने में समर्थ होता है। चरित्र-चित्रण के कार्य में संसार के अनुभव तथा मानव प्रकृति के विश्लेषण की बहुत आवश्यकता होती है। इन दोनों के अभाव में चरित्र चित्रण अपूरा वर्णन और अस्वाभाविक हो सकता है। उपन्यास में यह भी विचारणीय है कि जिन घटनाओं का किसी उपन्यास में वर्णन हो उनके संतोषजनक कारण बताने में लेखक कृत कार्य हुआ है या नहीं। पात्र अपनी भूमिका द्वारा वस्तु क्रमशः विकास में जिन राग-हेमात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कोई व्यापार करते हैं। क्या वे व्यापार संतोषजनक और संगत हैं और उनका जो परिणाम या प्रभाव साधारणतः हुआ करता है क्या वही परिणाम हुआ है। वस्तु के निमित्त किसी पात्र को रेशा करने के लिए प्रयुक्त कराया जाता है जो उसके चरित्र तथा स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है क्या जिसकी प्रवृत्ति का कारण सर्वथा वर्णन, अनुपयुक्त और अस्वाभाविक है तो हम कह सकते हैं कि वस्तु और पात्र का संबंध का ध्यान नहीं रखा गया है।

पाठकों का स्वल्प अपने पाठकों के समस्त उपन्यासकारों को प्रकार से उपोक्त कर सकता है। पाठक के समस्त उपस्थित होकर पात्रों के गुण दोष का बाहर से समस्त या निष्पक्ष विवेचन करता हुआ यह कहता चले कि कसूर व्यक्ति का स्वभाव कसूर प्रकार का है। इसमें गुण

१- डा० श्यामसुन्दर दास "साहित्यालोचन" ग्यारहवीं आवृत्ति,

संवत् २०११, पृष्ठ १६५-१६६।

वस्तु है या चीज है। क्या उपन्यासकार उपासीन भाव से पात्र सृष्टि का एक को बन जाय और पाठक की उस चित्रण में स्वयं निष्कर्ष निकालने दे। सामान्य पात्रों के चित्रण में प्रथम विधि अधिक उपयुक्त है क्योंकि इन पात्रों का पूर्ण अनावरण नहीं होता। विशेष का मुख्य पात्रों के लिये चित्रण की दूसरी प्रणाली अधिक समीचीन है। इन्हीं पात्रों का वर्णन उपन्यास का विषय है। प्रायः कलाकार दोनों प्रणालियों को मिश्रित कर दिया करते हैं। पात्र सृष्टि के प्रसंग में उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य "वभिन्नत्व में भिन्नत्व, और विभिन्नत्व में वभिन्नत्व" का चित्रण है।

मानव के ऊपर देवी और ब्राह्मरी दोनों प्रभुधियाँ मिलती हैं। परिस्थितियाँ एक समय उसका देवी रूप धारण करा सकती हैं तो दूसरी समय ब्राह्मरी रूप। मानव चरित्र न नितान्त उज्ज्वल है और न स्कान्त चामल। देव देवविद्वत् रंग विगि ताने बाने से ही जीवन पट का विकास हुआ है। विरोधी गुणों का यह समन्वय वस्तुतः को जन्म देता है, विपरीत चिन्तनधियाँ वस्तुतः संघर्ष नहीं है उसको हम पूर्ण और स्वामाविक नहीं कह सकते। जिस जीवन में दुर्बलताएँ नहीं हैं वह इस लोक का नहीं है, कात्पनिक है। उपन्यास का विषय न होकर काव्य के लिये उपयोगी है। अतः उपन्यासकार विपरीत-बुद्धि का परिस्थिति विशेष में

१- फॉर्स् ह्यूवक : The novelist can either prescribe the character from outside, as an impartial or partial on looker, as he can assume omniscience and describe them from within or he can place himself in the position of one of them and affect to be in the dark as to the motives of the rest.

२- प्रेम चंद : कुछ विचार, पृष्ठ ३८

३- जो सकल चरित्रों पर एक वस्तुतः नाह, विरतिविगुधिर एक संघात नाह, ताहादिके कामरा ठि स्वामाविक जीवन्ता मनुष्य बलिया ग्रहण ग्रहण करिते पारि ना।

चित्रण करता हुआ चरित्र को अधिक सजीव बना देता है ।

उपन्यास की कथा वस्तु वाक्यस्थित परिवर्तनों से समझनीय लगती है परन्तु पात्रों के स्वाभाविकता परीर गति में है । व्यक्तित्व का आवरण न तो एक साथ ही और न क्रमशः ही उपन्यास की कथा पात्रों में विकास में है । चरित्र चित्रण ही उपन्यास का प्रधान ढाँचा माना जाता है चरित्रों के क्रमिक विकास के लिये में बहुत सावधान रहता हूँ । (शरच्चन्द्र) उपन्यासकार पात्रों का चित्रण उनके वास्तविक और वास्तविक व्यक्तित्व को व्यक्त करने के लिए करता है । डॉ० एम० फोर्स्टर ने पात्रों को दो भागों में विभाजित किया है । फ्लैट तथा राउन्ड फ्लैट पात्र अपनी विशेषता के कारण पाठकों के चित्र को एक बार ही प्रत्यक्ष कर लेते हैं । इनका समुचित एवं सर्वांगीण विकास उपन्यास में चित्रित नहीं किया जाता इन्हीं को टायप या वर्ग प्रतिनिधि भी माना जा सकता है । दूसरे प्रकार के पात्र राउन्ड वर्ग प्रतिनिधि हैं । इनका व्यक्तित्व उपन्यास में लम्बे लम्बे फ्रेम और परिवर्तित होता रहता है । उपन्यास कार की ही सिद्ध जन्मा राउन्ड पात्रों के सफल चित्रण में है ।

जिस प्रकार "कथा" और कथा वस्तु में कथा की दृष्टि से अंतर है, उसी प्रकार उपन्यास के पात्रों को "चरित्र" कहना अधिक उपयुक्त है । उपन्यास की "कथा" में जितने व्यक्ति आ जाते हैं वे सभी इस कथा के पात्र हैं, परन्तु चरित्र केवल वे ही व्यक्ति हैं जिनके सहारे कथा वस्तु का निर्माण होता है । उपन्यास कार को जिन पात्रों का वातावरण अभीष्ट है वे ही उसके चरित्र हैं ।

सूत्र रूप से उपन्यासका आधार उसकी कथावस्तु है, परन्तु कथावस्तु का, वाच्यान्तरिक की तौ चरित्र चित्रण है। कथा वस्तु में चरित्रों का विकास होता है और चरित्र- विकास से कथा वस्तु परिणित की और जाती है। अतः कथा वस्तु और चरित्र चित्रण उपन्यास के दो प्रधान तत्त्व - उद्गम, विकास तथा परिस्थिति की दृष्टि से अन्योन्याश्रित हैं।

यही कहानी के पात्रों की विशेषता है। कहानी की कथा- वस्तु के अन्तर्गत जिन घटनाओं तथा परिस्थितियों को गृहण किया जाता है उनकी अभिव्यक्ति पात्रों द्वारा होती है। कहानी की कथावस्तु की उपस्थित करने वाले पात्र सामान्य व्यक्ति न होकर विशेष व्यक्ति होते हैं। वास्तविक इन विशेष व्यक्तियों के विषय में चरित्र चित्रण सम्बन्धी सीमांका उपस्थित करते हैं। "कहानी" में पात्रों के चारित्रिक विकास की स्थान नहीं मिलता, उसमें उनके चरित्र की, किसी परिस्थिति, समय तथा स्थान से सम्बन्धित, फाँकी मात्र होती है। कहानी के पात्रों का व्यक्तित्व स्वतन्त्र होता है। कहानी के पात्र साधारणतया दो प्रमुख भागों - आदर्शवादी, व्यापकवादी - में विभाजित किये जा सकते हैं। यों तो भिन्न भिन्न गुणों के आधार पर पात्रों के बनेक वर्ग हो सकते हैं परन्तु भारतीय साहित्य में पात्रों की तीन प्रमुख भेदिकाएँ - उत्पन्न (सात्विक), मज्जम (राजसिक) तथा अधम (तामसिक) का उल्लेख हुआ है। वर्तमान कहानी के पात्रों का वर्गीकरण इस ढंग से नहीं किया जा सकता। जब अधम पात्रों की कहानी भी उत्पन्न हो सकती है, केवल उसके पात्र सजीव, जाकजिक, फलार्जिक तथा संसार में मिल सकने वाले होने चाहिए। रीतिगति

विशेषताओं के बाधा पर भी पात्रों का वर्गीकरण किया जा सकता है। पात्रों की मानसिक स्थिति तथा अन्य पारिवारिक विशेषताओं का उद्घाटन कभी कहानीकार स्वयं करता है और कभी पात्रों के संवाद तथा व्यापार आदि द्वारा। उसम कहानी में पात्रों संवाद सजीव तथा स्वाभाविक और कार्य परिस्थिति के अनुसार मिले वह कथ्य प्रभावपूर्ण रचना है। कहानी में पात्रों का परिचय वर्णन, संकेत, वार्तालाप तथा घटना द्वारा कराया जाता है। जिन कहानियों में कहानीकार पारिवारिक विशेषताओं का उद्घाटन वर्णन द्वारा किया जाता है, वे साधारण कौटुकी कहानियाँ हैं। पात्रों का संकेतात्मक चरित्र-चित्रण सामयिक माना जाता है। वार्तालाप तथा घटनाओं द्वारा उपस्थित किया गया चरित्र-चित्रण अच्छा तथा प्रभावपूर्ण होता है। वार्तालाप पात्रों की विशेष मनोवृत्ति का स्पष्टीकरण करते हैं। उनके द्वारा कथा भाग की विकास नहीं कराना चाहिये। उसम कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है। उसमें पात्रों का पारिवारिक विकास, न होकर सस्ता परिवर्तन होता है।

कथौकथन-
 क-----

उपन्यास का निश्चित-सम्बन्धी तत्व कथौकथन है। नाटक में तो इस तत्व का स्वाधिकार होता है, परन्तु उपन्यास में आवश्यकता-नुसार ही इसका उपयोग किया जाता है। इसे कथावस्तु में नाटकीयता

१- "कहानी-कला" - विनोद शर्मा व्यास, पृष्ठ ४८

और सजीवता का जाती है। इस तत्त्व के द्वारा हम उसके पात्रों से विशेष परिचित होते हैं और दूर-दूर काव्य की सजीवता और वास्तविकता का बहुत कुछ अनुभव करते हैं। "उपन्यास की वास्तविकता चरित्रावली के कथोपकथन की स्वाभाविकता पर बहुत कुछ निर्भर है, केवल इतना ही नहीं, कथोपकथन की भाषा और मंगी की विभिन्नता के भीतर उपन्यास वर्णित चरित्रावली के व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता प्रकटित होती है और वे "टाइप" न रहकर "एन्टीक्लिप्ट" हो जाते हैं।"

कथोपकथन का पूरा उपयोग पात्रों के मनोवेग, उनकी प्रवृत्तियाँ, उनकी कमितीका तथा राग द्वेष का पात्रों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति द्वारा प्रकटित है। इसके द्वारा लेखक चरित्र का विश्लेषण तथा उसकी व्याख्या कहीं सुगमता से कर सकता है। कथोपकथन विश्लेषण एवं व्याख्या की संयुक्त प्रक्रिया का विकल्प है परन्तु कथोपकथन विश्लेषण एवं व्याख्या का निराकर नहीं करता, प्रत्युत उनकी सक्ति को अधिक बलवती बनाता है। इस प्रकार यह पात्रों के विश्लेषण का साधन भी है। कथोपकथन का उपयोग प्रत्यक्ष कथना परोक्ष भाव से कथा-वस्तु का विकास करना है। उपन्यास में यह तत्त्व जितना वाकबर्क है उतना ही अपनी बलिवाद में विकर्षक भी, क्योंकि पाठक का ध्येय कथा है, संवाद नहीं। जो कथोपकथन न तो कथा की गति प्रदान करे और न पात्रों के रूप को ही अधिक स्पष्ट करे वह निष्प्रयोजन होने के कारण त्याज्य है। पात्रों के सामाजिक स्तर, शिक्षा संस्कृति, प्रकृति एवं संस्कार का एक सर्वांगीण परिचायक

१- डा० जयप्रकाशवर्मा श्यामसुन्दरदास "साहित्यालोचन", पृष्ठ २०५।

२- कथा साहित्य खीन्द्रनाथ : पृष्ठ २०१।

३- हर्बसन : Even where the analytical method is freely used, dialogue will prove of constant service as a vivifying suppliant to it. (154)

कथौफथन है। कथौफथन के द्वारा पात्रों की विचारधारा का परिवर्तन प्राप्त होता है। कलाकार का जीवन दर्शन भी बोध-गम्य बन जाता है। कथौफथन स्वाभाविक, उपयुक्त और अभिनयात्मक होता चाहिए। दूसरा तत्पर्य यह है कि हम किसी पात्र का जैसा चरित्र चित्रित कर रहे हैं और जिस स्थिति में तथा जिस अवसर पर वह जो कुछ कर रहा हो उसी के अनुसार उसकी बातचीत ऐसी चाहिए।

“कहानी” के तत्त्वों में “कथौफथन” (संवाद) का मुख्य स्थान है। वह कथा भाग को पिकसित करता है, भाषा शैली का निर्माण करता है, तथा पात्रों की, चरित्रात्मक विशेषताओं को उपस्थापित करता है। स्वाभाविक संवाद ही पात्रों को किसी परिस्थिति की व्याख्या करवा मनोवृत्ति का उद्घाटन कर सकते हैं। सफल संवाद, कहानीकार के अनुभव, ज्ञान तथा पर्यवेक्षण शक्ति आदि के परिचायक होते हैं। उपस्थापित तथा कहानी के “कथौफथन” में कोई विशेष अन्तर नहीं है। संवाद द्वारा पात्रों का व्यक्तित्व स्वतन्त्र रूप से सामने आना चाहिए। “कहानी” में संवाद के साथ वर्णनात्मक ढंग भी होता है। कहानी के “कथौफथन” की परीक्षा करते समय कालोचक के सामने पात्रों की शिक्षा दीक्षा, रस-सहन, वायु तथा अन्य परिस्थितियाँ रहती हैं। किसी कहानी का वातावरण वैसे स्वाभाविक तथा सम्यक्पूर्ण है क्या नहीं, इसका ज्ञान प्रत्येक पाठक क्या होता ही रहता ही जाता है। भाषात्मक कहानियों का संवाद

१- “कहानी कला” : विबीपट्टकर व्यास, पृष्ठ ५८।

भाग कुछ भिन्न प्रकार का होता है। उनमें घटनाओं की अपेक्षा भाव तथा कल्पना का प्राधान्य होने के कारण संवाद भाग काव्य-मय होता है। पात्रों की बातचीत जतलाती है कि कौन पात्र क्या करता है, दूसरे पात्रों के सम्पर्क में जाकर क्या कहता है या करता है जैसा उसके विषय में अन्य व्यक्तियों की क्या राय है।

कथोपक्रम तत्त्व कहानी कला का सर्वोपम बीज है। इससे कहानी में वार्तचरण, सजीवता और पाठकों की जिज्ञासावृत्ति की प्रेरणा मिलती है। कहानी के विकास क्रम में यह तत्त्व उस कलात्मक प्रसला का कार्य करता है जो एक घटना से कहानी की अन्य जागे वाली घटनाओं से हमारा तादात्म्य जोड़ती रहती है। इस स तत्त्व से कहानी की मुख्य संवेदना और पात्रों में सीधा संबंध जुड़ा रहता है। इस प्रकार कहानी के वन्तर्गत कथोपक्रम की तीन निशानें होती हैं। कथा-वस्तु का विकास, पात्रों का चरित्र-चित्रण तथा समूची कहानी की सुलझता के सहारे प्रवाह और वार्तचरण की सृष्टि।

केवल वर्णना द्वारा सम्पूर्ण कहानी की सृष्टि में जो बात सबसे अधिक कलात्मक सिद्ध होती है वह है कहानी के पात्रों का व्यवक्त हो जाना। ऐसी स्थिति में कहानी में आविष्कृता और संवेदनशीलता वैसे-वैसे दोनों विशेषताएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं लेकिन सम्पूर्ण कहानी की सृष्टि में कथोपक्रमों के माध्यम से कर देना कहानी को कुठित कर देना है क्योंकि इस स्थिति में कहानी, कहानी न रहकर प्रायः रूढ़ी नाटक हो जाती है।

वस्तुतः कथोपकथन और वर्णन विवेचन में सुन्दर समन्वय और अनुपात होना चाहिए तभी कहानी का सम्यक् रूप अत्यन्त कलात्मक हो सकता है ।

कहानी के अन्तर्गत कथोपकथन का सबसे बड़ा गुण जिज्ञासा और क्षुब्ध उत्पन्न करता है । कथोपकथन का तार्किक्य ऐसा हो जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर वायु का सहज संगीत, जिसके सहारे पाठक के हृदय में उपरोपर कहानी फूटने की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहें । कथोपकथन सर्वथा देशकाल, पात्र, परिस्थिति और कहानी की गति के अनुसार होनी चाहिए । कथोपकथन की सबसे आवश्यक विशेषता यह है कि पात्रों द्वारा प्रयुक्त वाक्य कथवा वाक्यांश कति दीर्घ नहीं होने चाहिए तथा उसमें पानव- सुलभ व्यावहारिकता होनी चाहिए ।

देशकाल (वातावरण)

वातावरण से अभिप्राय देशकाल की उन प्रणितियों से है जिनके अन्तराल से कथाकार अपनी कथा और उसके रंग भूत पात्रों का निर्विशिष्ट रूप चित्रित करता है । घटना का स्थान, समय, तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान उपन्यासकार के लिए आवश्यक है । चरित्रों का चित्रण भी उनके अनुसार ही होना चाहिए । ऐतिहासिक कथाओं का तो यह प्रारम्भ है । यदि कोई लेखक चन्द्रगुप्त या चाणक्य को सुट- झूट में चित्रित करे तो उसकी मूर्खता एवं ऐतिहासिक अनभिज्ञता

पर अवश्य ऐसी आवेगी। देश काल और वातावरण का वर्णन वही एक उचित है जहाँ तक कि वह कथा-प्राप्त में सहायक है। देशकाल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित वाचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन सहन और परिस्थिति आदि से है। इस प्रकार वातावरण के दो रूप हुये - सामाजिक जीवन तथा भौतिक परिस्थितियाँ। सामाजिक वातावरण का उपयोग कथावस्तु का रंग गहरा करने के लिये होता है और भौतिक वातावरण अधिक उल्लेखपूर्ण पात्रों के मानसिक परिवर्तन के लिए संयोज्य है। एक दृष्टि से सामाजिक वातावरण अधिक सामान्य वतः कम प्रभाव वाला है, और भौतिक परिस्थितियाँ विशिष्ट वतः अधिक प्रभावोत्पादक। वातावरण की दृष्टि से उपन्यास के दो भेद हो सकते हैं - ऐतिहासिक और सामयिक। ऐतिहासिक उपन्यास न इतिहास और न काल्पनिक वस्तु इन दोनों का समीक्षित मिश्रण है, यद्यपि उसमें घटनाएँ कल्पना-प्राप्त हो सकती हैं तथापि सम्पूर्ण परिवेश और असन्दिग्ध एवं विश्वसनीय होता है। ऐतिहासिक उपन्यास की रचना इतिहास का प्रामाण्य विज्ञान ही कर सकता है। इतिहासकार जिन तथ्यों का आकलन करता है ऐतिहासिक उपन्यासकार उन्हीं का वर्णन करता है। ऐतिहासिक उपन्यास के मन में कथित और वर्तमान का संघर्ष चलता है और असम्भव नहीं कि वर्तमान के प्रबल आकर्षण से कहीं विरक्ति पाकर ऐतिहासिक वातावरण की उपेक्षा कर बैठे।

देशकाल की सफलता कलाकार के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। कथाकार देशकाल की जिन परिस्थितियों, समस्याओं, बान्धुत्वों से प्रभावित होता है, उन्हीं का चित्रण अपनी रचना में करता है। प्रसन्न इस धेणी में सफल कहानीकार सिद्ध हुये। वे ग्रामीण जीवन से प्रभावित

ये । उनकी नसी में मौल्य भाव किसानों की दयनीयता तथा गरीबी व्याप्त थी । उनके उपन्यास तथा कहानियों को पढ़कर पाठक उनके मन के भाव को सहज ही पीध गम्य कर सकता है और किसानों के प्रति सहानु-
भुति तथा प्रेम बढ़ा रखने लगता है । इस सम्बन्ध में डा० श्यामसुन्दर दास जी का मत दृष्टव्य है :-

“ हमें यह भी स्मरण रहना चाहिए कि बहुत से उपन्यास वादि तो केवल छीलिए होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग तथा काल के किसी विशिष्ट क्षण के संबंध रखने वाला ही वर्णन होता है । ऐसी दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही छटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही पढ़ा माना जायेगा । ”

“ वातावरण ” कहानी का भी एक मुख्य तथा आवश्यक तत्व है । इसके अन्तर्गत पात्रों की वास्तव परिस्थिति तथा मनः स्थिति दोनों का समावेश किया जाता है । कहानीकार का सम्बन्ध जिस स्थान तथा समय से होता है, उसका वह समाज के जिस क्षण की व्याख्या करता है उसका स्वाभाविक तथा यथातथ्य चित्रण “ कहानी ” के वातावरण की सफल अभिव्यक्ति का परिचायक है । कहानी में कहानीकार पक्षेक्षण रहित, संसार का देश- काल- गत यथार्थ अनुभव और मनुष्यों के मन का वैज्ञानिक वस्तुवादि का निर्वाह सत्यता के साथ वस्तु तक होनी चाहिए । कहानीकार, कहानी की कथा वस्तु तथा पात्रों द्वारा समाज के जिस क्षण जीवन के जिस पक्ष तथा मन की जिस स्थिति का परिचय देता है उसका प्रत्यक्षीकरण

१- डा० श्यामसुन्दर दास “ साहित्यालोचन ” ग्यारहवीं आवृत्ति २०११,

पात्रों की यही उसी रूप में नहीं हुआ तो उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है। सफल कहानीकार कहीबिह संसार में जगति लौकर चलाता है जिससे वह संसार की कच्ची तरह देकर व्यर्थता का परिचय दे सके। पात्रों की मनः स्थिति की व्याख्या करने के लिए वह मनोविज्ञान शास्त्र का पूरा लाभ उठाता है। तात्पर्य है कि पात्रों की मानसिक तथा देश-कालगत परिस्थितियों से जगत होना कहानीकार के लिए नितान्त आवश्यक है। जिस कहानी का वातावरण अस्वाभाविक तथा अनुपयुक्त होता है वह प्रभाव शून्य हो जाती है। वास्तविक जीवन देशकाल और जीवन की विभिन्न अनुसृत परिस्थितियों से निर्मित होता है अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संक्षेप और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी में न चरित्र के विकास की गुन्थाएँ हैं न कथानक के फौलाद की, क्योंकि उसमें तो केवल एक ही बात व्यपेक्षित है और वह है वातावरण की सम्यक् अभिव्यक्ति। कहानी का यह तत्त्व कतना महत्वपूर्ण है कि इसके होते हुए कथानक, चरित्र चित्रण आदि में से किसी को भी कहानी का तत्त्व नहीं माना जा सकता। "प्रसर" के शब्दों में, "कहानी में बहुत कुछ चरित्र बनाया उमर जाया हो, चाहे कथानक का कोई सूत्र स्वयं उपेक्षित प्रभाव बन गया हो : उसका झीडा-थल, पात्र, कथना रंग सब वातावरण ही है। कहानी वह नाटक है जिसमें यह रंग सब ही एक मुख्य विषय है, वह एक ऐसा स्फुट है जहाँ से एक विशेष रंग की क्लेश छोटी पिकारियाँ छूट रही हों और पात्र अभिनय के लिए सज्ज होकर वहाँ जाता है जो वास्तव जगत उसमें सराबोर हो जाता है। वह रंग कतना उज्ज्वल है कि उसे उसमें अधिकाधिक जानकर जाता है। ज्यों ज्यों बूढ़े श्याम

१- कहानी दर्शन (एक विवेचनात्मक अध्ययन) श्री मालवन्द्र गोस्वामी

"प्रसर" प्रकाशक साहित्यरत्न भंडार, बरहद बागरा सन् ५६, पृष्ठ ३०५।

रंग ल्यों ल्यों उज्ज्वल होय । ”

वातावरण कहानी का मुख्य तत्त्व है । मालवीय गौस्वामी उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं :- “ वाता-
गण भी उस रंग स्वली को देखकर अपने भाव विमोह हो उठते हैं कि वे
उस रास-लीला के वंग बन जाते हैं । यह वह पुरली की तान है जिसकी
सुनकर गौमुख की किशोरियाँ अपना अपना मूल जाती हैं । ” लफुनवी
बाबुन की विचारायी । ” यह वह गिरधर गौपाल है जिसके लिये मीरा
अपने शारीरिक धर्मा का अनुशासन उतार कर फेंक चुकी थी और अपनी
फिरती थी ” मेरी तो गिरधर गौपाल दूसरा न कोई । ” प्रस्ट है कि
कहानी के प्रभाव का आधार होने का कारण वातावरण की महत्ता स्वयं
सिद्ध है । सब बात तो यह है कि प्रभाव के साथ वातावरण यों जुड़ा
हुआ है जैसे जोरों के साथ उसका घर और कभी कभी दोनों के भेद करने में
कठिन बुद्धि परीक्षा ही जाती है । किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से दोनों की
निम्न निम्न मानना चाहिये । ”

वातावरण के लिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा
जा सकता है कि कौन कौन से उपकरण उसका निर्माण करते हैं, वे
उपकरण कहानी में निहित रहते हैं या उसकी कल्पना बाहर से करनी
पड़ती है, वे कहानी के अनुसार बदलते रहते हैं । ” प्रभाव ” के साथ उसका

१- कहानी दर्शन (एक विवेचनात्मक अध्ययन) श्री मालवीय गौस्वामी

” प्रस्तर ”, प्रकाशक साहित्यरत्न भंडार, आगरा एन् ५६, पृष्ठ ३०५-३०६ ।

सम्बन्ध अत्यन्त उत्कृष्ट हुआ है । वातावरण कहानी का जटिल तत्त्व है । वातावरण की परिभाषा विद्वानों ने इस प्रकार से की है :- " हमारा जीवन, देशकाल और युग विशेष की परिस्थितियों से सर्वप्रथम एवं प्रभावित होता है । पात्र भी जीवन के प्रतीक हैं, वनः वे भी इनसे जुड़े नहीं रह सकते । कहानी में देशकाल और परिस्थितियों के संकेतन या समीकरण को शब्दों चित्रों के सहारे पूर्ण रूप देना ही वातावरण प्रस्तुत करना है । "

वातावरण कहानी का अतिरिक्त गुण है, वाह्य प्रकृति नहीं । वातावरण सभी कहानियों में अनिवार्यतः होता है और उसकी मात्रा निर्धारित नहीं रहती या एकती । ठीक उसी प्रकार जिस तरह प्राण प्रत्येक जीवित पदार्थ में होता है और प्रत्येक प्राणी में केवल एक ही प्राण होता है, हाँ यह सम्भव हो सकता है कि किसी प्राणी का प्राण अधिक तेजस्वी, वीर्यवान् तथा जीवपूर्ण हो और किसी का निर्बल, उदासीन । तबल वातावरण वाली कहानी को वातावरण प्रधान कहानी कहना उतना ही उपयुक्त है जितना सबल प्राण वाले व्यक्ति को प्राण प्रधान या श्वास प्रधान कहानी कहना ।

वातावरण कहानी का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है जो कहानी के अन्य तत्वों तथा देश काल के योग से बनता है और वह प्रभाव की सिद्धि करता है क्योंकि उसके द्वारा पात्र पर प्रभाव का केंद्र बनता है । वातावरण कहानी के प्रभाव के अतिरिक्त और किसी तत्व कथना साध्य का साधन नहीं है, वह स्वयं एक मानसिक प्रकृति है जो उक्त उपकरणों

से तैयार होती है। उसका निर्माण करना करना अधिक सब महत्वपूर्ण नहीं किन्तु उसका स्वयं निर्मित होना क्योंकि प्रभाव तो वातावरण का एक अनिवार्य फल है। वातावरण के भेद करना खतरे से खाली नहीं है। इसके तत्त्व अनेक प्रकार के हो सकते हैं। भाषा शैली के आधार पर वह कवित्वपूर्ण और भाषात्मक जादि जादि भी हो सकता है। पात्रों के आधार पर चिन्तन प्रधान और छिछला भी, उद्देश्य के आधार पर कार्यावादी और वादार्थवादी भी। देश काल के आधार सामाजिक और ऐतिहासिक भी जादि जादि। इस वर्ग में एक ही कहानी के वातावरण में अनेक गुणों का समावेश हो सकता है। प्रवाद की की एक ही कहानी की भाषात्मक, ऐतिहासिक, वादार्थवादी, वातावरण वाली कहानी कह सकते हैं। कविता के इस की भाँति वातावरण अपने आप में पूर्ण है परन्तु उसकी कहानी से पूरा नहीं किया जा सकता। इसकी सफलता अथवा असफलता का आधार इसके निर्माता तत्त्व ही हैं, कोई अन्य पादरी पदार्थ नहीं।

उपसृज्य बातों का पूर्ण रूपेण अव्यक्त करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथानक की गतिविधि, पात्रों का व्यक्तित्व, कहानी का देश काल, कहानी की भाषा और शैली तथा कहानीकार के उद्देश्य की पाठक ब्रह्म तात्कालीन रूप में क्या कहानी पढ़ते पढ़ते किस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है उस प्रक्रिया का नाम वातावरण है।

शैली-

साहित्य के अन्य रूपों के समुदाय उपन्यास का एक तत्व शैली है। वास्तव में शैली व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति है - व्यक्तित्व की साक्षिणी अभिव्यक्ति है। एक कालोचक का मत है कि पाठक शैली में ही उस का अनुभव करता है, विचार भी शैली ही है। शैली कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के साथ साथ पाठक को सुगम करने का साधन भी है। अतः कालोचना क्षेत्र में रीति, वाक्य-वादि विशेषणों का प्रयोग किया जाता है। शैली का साधारण अर्थ विचार क्रम एवं गति है। अर्थात् ऐसी गति है विवेच्य वस्तु का परिचय देता है और जिस क्रम से योजना करता है उसे शैली कहते हैं। साहित्य शास्त्र में इसको साक्षिणी अभिव्यक्ति कहते हैं। इसमें शब्द-पिठार, वाक्य-रचना, वर्णन, भाव-योजना, पात्रों का परिचय आदि आते हैं। उपन्यास में शैली से क्या कहने का प्रकार ही प्रायः सम्झा जाता है।

उपन्यास की क्या उच्च गुरुत्व, अन्य गुरुत्व तथा अन्य गुरुत्वों में कही जा सकती है। इन गुरुत्वों में क्या कहने का अभि-प्रायः एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्थापना करना है। प्राचीन उपन्यासों

१- What does the mind enjoy in books ? Either the style or nothing. But ~~xxxxxxxx~~ someone says what about the thought ? The thought that is style too. (An essay on

२- Criticism.

All styles are only means of subduing the reader (T.E. Hulme.)

३- Style consists in the order and the movement which we introduce in our thoughts. (Buttor

४- सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ६२

में पात्रों की अन्य पुरुष में रहकर ऐसक उनके क्रिया-कलाप, संयोग तथा परिस्थितियों का चित्रण करता जाता था। यह हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास की शैली पर लिखे गये थे। उपन्यास ऐसक पाठक तथा पात्र तीनों के तीन व्यक्तित्व क्रमशः उच्च, मध्यम तथा अन्य पुरुष में रहा करते थे और ऐसक पाठक के सामीप्य का स्तना अनुभव करता था कि बीच-बीच में उनसे वार्तालाप करता जाता था और उस वार्तालाप में जो प्रसंग आते जाते थे उनकी जालीबजा भी होती चलती थी।

कथा कहने की दूसरी शैली उच्च पुरुष की है। कथाकार एक पात्र का स्वरूप धारण करके कथा को बख़तर करता है यह शैली वर्तमानकालिक है। वैसे का "शेखर एक जीवनी" और बरक का "गिरती दीवारें" इस शैली का उदाहरण हैं। इस शैली की सबसे प्रमुख यह विशेषता है कि उच्च पुरुष में होने से पाठकों के मन को बलीभूत कर लेता है। हायरी शैली के उपन्यास इसी शैली में आते हैं।

कथा कहने की मध्यम पुरुष की शैली तीसरी ही है। सम्पूर्ण उपन्यास मध्यम पुरुष में लिखा भी नहीं जा सकता, बल्कि इस शैली से वमिप्राय यह है कि उपन्यास में पाठक का भी सक्रिय सहयोग हो। परन्तु जब उपन्यास का कोई पात्र कथा की इस प्रकार बहाने कि दूसरे पात्रों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बात कर रहा हो तो उपन्यास मध्यम पुरुष में लिखा जायेगा। यह शैली पर लिखी गई कथाएँ इसी वर्ग में आती हैं।

शैली का दूसरा तत्व जो काव्य, नाटक, उपन्यास सभी

में समान रूप से व्याप्त रहता है, अभिव्यक्ति का शील है। अभिव्यक्ति के समस्त उपादान - शब्द, वाक्य, अप्रस्तुत-विधान, प्रतीक विधान आदि उपन्यास में भी ग्राह्य होते हैं और उनकी विवेचना उपन्यास के उस और वस्तु के आधार पर की जानी चाहिए। और उस के उपन्यास की शैली शृंगार उस के उपन्यास की शैली से भिन्न होगी ही। वातावरण और देश कास का भी शैली-विन्यास पर बड़ा प्रभाव पड़ना जरूरी है। नागरिक वातावरण के उपन्यासों के पात्रों की अभिव्यक्ति सामान्यतः ग्रामीण वातावरण के अप्रुव किसानों की अभिव्यक्ति की अपेक्षा किसी मात्रा में शिष्ट होगी। भ्रान्त विशेष की किसी जातिवृत्ति वृत्तमिति पर विरहित उपन्यास की शैली में भी दूसरे उपन्यासों से शैली पार्थक्य होना स्वाभाविक है। शैली केवल परिधान मात्र नहीं है बल्कि अभिव्यक्ति का रूप और आकार देने का मनोरम साधन भी है।

का: उपन्यासकार को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल भाषा शैली का प्रयोग करना चाहिए। सम्पूर्ण उपन्यास की रचना शैली एक ही होनी चाहिए। भाषा का प्रयोग तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण से होना चाहिए और अधिक प्रियकर होना चाहिए। परन्तु उसमें सरलता का होना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी में उपन्यास लेखन की चार शैलियाँ प्रचलित हैं :-

- (१) कथा शैली- जो प्रेमचंद की "राग पुमि"
- (२) वाक्म-कथा शैली- इलाहूद जोशी का "घुणापथी"
- (३) पत्र - शैली - उग्र का "हसीनों के खूब"

(४) छठे छायादी शैली - "शोणित तपनी"

एक और छायादी शैली शैलियों में हिन्दी में इस उपन्यास लिखे गये हैं। उपन्यासों के विभिन्न प्रकारों का निश्चित करने के कई आधार माने जाते हैं। इनमें से कुछ तो किसी विशेष तत्त्व कथा घटना चरित्र आदि की प्रधानता के आधार पर दिये जाते हैं और कुछ कार्य और वर्णक वर्ण्य विषय के आधार पर। तत्त्वों के आधार पर उपन्यासों के तीन भेद माने गये हैं :- (१) घटना प्रधान (२) चरित्र प्रधान (३) नाटक प्रधान। वर्ण्य विषयों के आधार पर कौन भेद किये गये हैं, जैसे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, यौन सम्बन्धी, प्राकृतिक आदि। परन्तु तत्त्व, वर्ण्य विषय, शैली आदि सभी विशेषताओं की ध्यान में रखकर विद्वानों ने उपन्यास के चार प्रधान भेद माने हैं :-

- (१) घटना प्रधान।
- (२) चरित्र- प्रधान
- (३) नाटक- प्रधान
- (४) ऐतिहासिक प्रधान

घटना प्रधान उपन्यासों में कथकारिक घटनाओं की प्रधानता रहती है। पाठकों के हृदय और उत्सुकता को निरन्तर जागृत रखने में ही इनकी सफलता मानी जाती है। पाठक व्यक्ति घटनाओं के जाल में उलझता रहता है। इनके पात्रों का महत्त्व कथा की व्यपत्ता गौण रहता है।

चरित्र प्रधान उपन्यासों में पात्रों की प्रधानता रहती है। घटनाएँ गौण रहती हैं। इनका कथानक प्रायः सिद्धि और वर्णन

होता है। पात्रों के चारित्रिक विकास पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पात्र घटनाओं से पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। वे स्वयं परिस्थितियों के निर्माण होते हैं न कि परिस्थितियाँ उनकी। जैसे जैसे पात्रों का चारित्रिक विकास होता जाता है घटनाएँ उनके हाथों पर नाचती जाती हैं। जैन्ड, उग्र, कृष्णभरणा, चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यास इसी वर्ग के हैं।

नाटकीय प्रधान उपन्यासों में कथा वस्तु और पात्र दोनों का धर्म समान समुल्लस होता है। पात्रों की विचारधारा और उनके कार्य भावी घटनाओं की गति विधि को प्रभावित करते हैं। इन उपन्यासों में कारण से अंत तक पात्रों और घटनाओं का पूर्ण समन्वय रहता है। मुन्शी प्रेमचंद के उपन्यास इसी श्रेणी के हैं।

ऐतिहासिक प्रधान उपन्यासों में पात्रों और घटनाओं का समन्वित रूप मिलता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनका देश काल चित्रण है। इन उपन्यासों का यह प्राण है। इतिहास के जिस काल का वर्णन हो वह उचित, यथार्थ और ठीक होना चाहिए। कोरिया की हिमालय पर्वत पर बताना और सिकंदर के समय इस्लामी वैश्वधर्म और रीति-रिवाजों का वर्णन करना देश और काल का विरोध है। अतः ऐतिहासिक उपन्यासकार को वर्णित युग और प्रान्त की संस्कृति, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियाँ रहन सहन, रीति रिवाजों आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

कहानी में भी ऐसी तत्त्व की वही विशेषताएँ हैं जो

उपन्यास में हैं। कहानी कला में रूप विधान का चातुर्य और हस्त साधन का सबसे बड़ा प्रमाण देना पड़ता है। इस प्रकार इस कला में उसके भाव-पक्ष की सफलता और उत्कृष्टता उसके कला पक्ष के बाधोन है और कला पक्ष के अन्तर्गत उसके शैली तत्त्व उससे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कहानी कला में हस्त साधन और विधानात्मक सफलता इसके दो आवश्यक ढंग हैं।

अव्यक्त की दृष्टि से शैली तत्त्व के अन्तर्गत इसके दो पक्ष होते हैं :- प्रथम भाषा पक्ष, द्वितीय रूप विधान पक्ष। भाषा-शैली कहानीकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का सूत्राग्र साधन है। ज्ञात की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है। इसी के आधार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जसुक कहानी साल सुबोध और सरस शैली में है तथा जसुक कहानी गूढ़, कल्पित और सुबोध शैली में है। वतः कहानी की भाषा शैली में गद्य का महत्त्व सबसे अधिक है। गद्य में संयम और वाक्य-योजना की स्वाभाविकता और भाषा के साथ उसका गठन और संयम इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। कहानी के गद्य में शब्द-व्यय और वाक्य योजना ही भाषा की वा. कलात्मकता है जिसके विविध प्रयोग और रूपों से कहानी-कार अपने भाव चित्र को मुक्त करता रहता है।

व्यापक रूप से प्रत्येक कहानीकार की अपनी जगह जगह भाषा-शैली होती है। प्रत्येक के गद्य में अपना स्वतन्त्र संगीत, भाषा सौष्ठव और शब्द संयम होता है। भाषा शैली की दृष्टि से हम निम्न-लिखित भागों में बाँट सकते हैं :-

(१) बोल चाल की भाषा शैली

(२) गम्भीर और परिष्कृत भाषा शैली

(३) वर्तुल, तत्सम भाषा शैली

इसके उपाहरण मुन्शी प्रेमचंद से लेकर राज की भाषा शैली में से कहीं से भी की जा सकती है। परन्तु भाषा शैली की दृष्टि से प्रथम के वन्तर्गत प्रेमचंद, वरक, कलपाल वादि तथा द्वितीय के वन्तर्गत ललित, जैन्त्र वादि तथा तृतीय के वन्तर्गत जयकिशोर प्रसाद वाते हैं।

शैली के उप पक्ष के वन्तर्गत कहानियाँ निर्माण की विभिन्न प्रेरणाएँ प्रणालियाँ जाती हैं :- (१) कथात्मक शैली (२) आत्मचरित्र (३) नाटकीय (४) टॉयरी। जिनका वर्णन उपन्यास के वन्तर्गत कर दिया गया है।

उद्देश्य-

उपन्यास और कहानी का मुख्य साध उद्देश्य है। उपन्यासकार किसी उद्देश्य को ही लेकर और रचना करता है। यदि कोई उपन्यासकार बिना कुछ सोचे हुये और उसका परिणाम बिना ज्ञात किये हुये अपनी और रचना करता है तो वह अपने कला-साहित्य में सफल नहीं हो सकता। अतः पहले ही उद्देश्य सोच लेना चाहिए। उपन्यास के उद्देश्य कक्षा बीज से सात्त्विक जीवन की व्याख्या कक्षा बालीचना से है। उपन्यासकार अपनी दृष्टि द्वारा पाठक के सामने कौन सा संदेश भेजना चाहता है, उपन्यास की समस्याएँ कौन कौन सी हैं, और लेखक ने उनका विवेचन और समाधान किस ढंग से किया है। संक्षेप में उपन्यास का मूल प्रति-पाद

रचयिता का कृतिगत जीवन-दर्शन ही है, यही उपन्यास का उद्देश्य माना जाता है ।

उपन्यास का प्रथम उद्देश्य जगत और जीवन का चित्रण है । कहानीकार अपनी अनुभूतियों के सहारे पात्रों के माध्यम से कथा में वक्ति करता है । इस कार्य में वह जितना योग्य होगा उतना ही अपने उद्देश्य में सफल कहलायेगा । प्रत्येक कृति में कोई न कोई दृष्टिकोण अवश्य रहता है । इसलिए सफल कथाकार उसका उद्देश्य सूचकर ही लेखनी उठाता है ।

वास्तविक उपन्यास में जीवनाभिक्यक्ति के स्थान पर जीवन दर्शन की स्थापना होने लगी है । कथाकार प्रत्यक्षतः सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं जोर देते हैं कि वे सत्य माने हैं जो उस दर्शन के पूर्ण रूप मात्र हैं । यह एक दोष है । जीवन दर्शन जितना प्रत्यक्ष न हो कि वह पग पग पर अवरोधक बन जाय और कला में विकृति जाने लगे । सफल उपन्यासकार अपने ध्येय में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक वह अपने युग की ऊँची से ऊँची विचारधारा को वक्ति न करे । कोई भी कहानी-कार जब तक महान नहीं हो सकता तब तक उसका उद्देश्य मानू न ए ।

कुछ विद्वानों का मत है कि नैतिक उपदेश का साग्रह

- १- It should be implicit not palpable, any attempt to preach in fiction must inevitably destroy the integrity of a work of Arts. (Neill p. 230)
- २- in the long run, the quality of a work of fiction depends upon the quality of thought of the times in which it is written. (P.H. Newby : The Novel. p 40)

सन्निवेश उपन्यास एवं उपन्यासकार दोनों को ही गिरा देता है^१। परन्तु यह कथन ठीक-ठीक सत्य है क्योंकि नैतिकता और कला में अन्योन्याय्यता भी है। अतः उपन्यासकार नैतिकता के प्रतिवृत्त न चले। प्राचीन साहित्य में सत् की जय और असत् की पराजय होती थी बाण के युग में जीवन का संघर्ष और मूल्य का महत्त्व कलाकार के प्रभावित को चिन्ता देते रहते हैं फिर भी कलाकार नैतिक चित्रण द्वारा पाठक की बन्धनता में नैतिकता को प्रोत्साहित तो कर ही सकता है। यदि कलाकार प्रचार का विरोधी है तो भी उसका अपना निजी दृष्टिकोण तो होगा ही जिसमें प्रचार की भावना छिपी होगी। कलाकार अपने अनुभव के आधार पर पाठक से कहता है कि मेरे निष्कर्षों को मत स्वीकार करो अपनी जाँचों से देखो और फलानो। नैतिकता, प्रचार, उपदेश, दृष्टिकोण का ज्ञान उपन्यासकार को होना चाहता है। उपन्यासकार को असत् से दूर रहकर सत् का प्रतिपादन करना चाहिए - यथापि जीवन में दुःख और वेदना का अस्तित्व वैसे ही क्या कुछ कम है। जो काल्पनिक दुःख चित्रित किया जाय। कौन-कौनसे ऐसे हैं जो जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने पर भी उपन्यास में वर्ण्य नहीं हैं।

१- the studied presence of a moral intention spoils the novel as well as the novelist.
- History of English Literature Vol. VII pp 390-391.

२- The moral sense and the artistic sense lie very near together. (Neill).

३- It is probably near the truth to say that art can not exist without propaganda, that the lack of formulated belief will lead to sterility or at the best a literature of mindless sensation. (The novel p 11)

४- Do not take my valuation. He seems to say 'See for yourself.'

५- Why write imaginary unhappiness when there is so much real unhappiness in the world. (Robert Liddell p.60)

६- There are senses in life that can not be written even if they can be proved to have happened.

-George Moore-

उपन्यास के द्वारा राजनीतिक और सामाजिक मतवादों का भी प्रचार होता है। राजनैतिक प्रभाव साहित्य का विकृत कर देता है और उसकी फलन के गर्त में डुबो देता है। इसलिए कमर कौच के जिज्ञासु उपन्यास को प्रचार के कीकड़ में न धसाकर बरन् उसके क्याह जल में बार बार डुबकी लगाकर उसमें से रत्न कौच दो हूँ जो अपनी बाधा में मनमोहक तथा बहुसुखीय हो। दार्शनिक व्याख्या मनोवैज्ञानिक सत्य एवं वैज्ञानिक और भौगोलिक अनुसंधान भी उपन्यास के वर्ण्य विषय हो सकते हैं। जीवन के प्रति उपन्यासकार अपना दृष्टिकोण दो प्रकार से व्यक्त कर सकता है। व्यापक जीवन का चित्र चित्रित करके तथा नैतिक मूल्यों का प्रत्यक्ष प्रतिपादन करके। उपन्यासकार जीवन के जिस ढंग को लेकर चलता है वह उसका कारण उसकी अपनी प्रकृति या स्वभाव ही है। क्या वस्तु की रूपरेखा से ही उपन्यासकार की मनोवृत्ति का ज्ञान हो जाता है। दूसरा रूप यथा- वस्तु के संघातन में नैतिक मूल्यों का प्रत्येकन है वह अपनी क्या वस्तु में उत्थान फलन विकास, हास जिन वस्तुओं का महत्त्व देता है वे ही उसके उद्देश्य की पुष्टकद्वियां हैं।

उपन्यासकार प्रतिपादन से सावाधान रह सकता है परन्तु प्रतिक्रियाओं से उदासीन नहीं। उपन्यास जीवनदृष्टि से बच नहीं सकता परन्तु साम्प्रदायिक मतवादों की दल दल में फँसकर या अपना कबेनर कलुषित न करे, उपन्यासकार की सफलता इसी में है।

१- Politics is a stone tied to the neck of literature which sinks it in less than six months.

- Liddell p 108.

जतः हम कह सकते हैं कि उपन्यास उद्देश्य- विहीन रचना नहीं हो सकती । किसी मुख्य उद्देश्य की दृष्टिपूर्वकता ही उपन्यास कला सार्थक बन सकती है । सफल कलाकार वही है जो उद्देश्य का चयन जगत और जीवन के शाश्वत मूलों के आधार पर करता है । उपन्यासकार अपने उद्देश्य को सोचते हुये समाज तथा व्यक्ति को उसके कर्तव्य पर ले जा सकता है जैसे महाकाव्यकार युग दृष्टा कवि से जाता है । उद्देश्य को सोचते हुये समाज तथा व्यक्ति को उसके कर्तव्य पर ले जा सकता है जैसे महाकाव्यकार युग दृष्टा कवि से जाता है । उद्देश्य से हमारा तान्त्रिक जीवन की व्याख्या से है। उपन्यासों में मुख्यतः यही दिखाया जाता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विचार, भाव और पारस्परिक संबंध वादि कैसे हैं वे किन किन कारणों वषा प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कैसे कैसे कार्य करते हैं, अपने प्रयत्नों में किसे प्राप्त सफल वषवा विफल होती हैं । उपन्यास ज्ञान का साहित्य नहीं ज्ञान का साहित्य है। उसमें ज्ञान के बदले एक ऐसा ज्ञान होती है जो लोगों को कुछ विशेष बातों का ज्ञान कराती है ।

किसी ने कहा है - " उपन्यासों में नाम और तिथियों के उत्तिरिक्त और सब बातें सच्ची होती हैं और इतिहास में नामों तिथियों के उत्तिरिक्त और कोई सच्ची बात नहीं होती । उपन्यास- लेखक कुछ सच्ची वषवा संभावित घटनाओं को लोड़ परोड़ कर किसी नये और विलक्षण ढंग से हमारे सामने उपस्थित कर सकता है । उपन्यास में जो सत्यता होती है वह वास्तव में उसकी वास्तविकता वषवा संभावना से संबद्ध होती है । जो बात सम्भव हो और जो प्रतिदिन किसी रूप में वास्तव में होती है उसी

को उपन्यास में स्थान मिलना चाहिए। डाक्टर श्यामसुन्दरदास जी के कथानुसार :- कवि, लेखक या चित्रकार वादि की सत्यता, वास्तविकता और कल्पना का मेल मिलाना पड़ता है। उसका अर्थित चित्र वास्तविक भी होता है और कल्पित भी। वह वास्तविक तो इसलिए होता है कि सम्मुख होने वाली घटनाओं से बहुत कुछ मिलता जुलता है और कल्पित ऊँचे इसलिए होता है कि वास्तव में उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। तात्पर्य यह है कि वास्तविकता और कल्पना दोनों ही समान रूप से आवश्यक होती हैं। न तो कौरी कल्पना से ही काम चल सकता है और न निरी वास्तविकता है। वास्तविकता में कल्पना का और कल्पना में वास्तविकता का सम्मिश्रण ही जानन्ददायक और शिक्षाप्रद हो सकता है।^१ इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्देश्य से हमारा तात्पर्य जीवन की व्याख्या तथा आलोचना से जो है :

कहानी का भी यही उद्देश्य है जो उपन्यास का। हमें भी कलात्मक प्रयत्न, हस्तलाभ्य और विधानात्मक कुशलता के परिचय देने होते हैं। स्पष्ट रूप से समूची कहानी कला का यह तत्व वह अन्तिम सत्य है जिसकी प्राप्ति के लिए कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है। समाज की नाना परिस्थितियों, समस्याओं के प्रति कहानीकार का अपना दृष्टिकोण और उसने प्रति उसके निदान, उसके निर्णय वादि कहानी के उद्देश्य बनते हैं। डा० गुलाबराय^२ कहानी के उद्देश्य के विषय में लिखते हैं :-

१- डा० श्यामसुन्दरदास "साहित्यालोचन", पृष्ठ १७६

“ कुछ कहानीकार उद्देश्य की पहचान देते हैं तो कुछ देवत जीवन के विश्लेषण और मन की अन्तर्मन गुफाओं में प्रकाश की रेखा पहुँचाने की । मनुष्य को मसी प्रकाश समझना देना ही उनका उद्देश्य ही जाता है । ” कहानी-रचना द्वारा शिक्षा, उपदेश, कौतूहल-शान्ति कथना संसार का यथार्थ ज्ञान एवं कुछ प्राप्त किया जा सकता है। कहानी-रचना का सत्य पाठक या श्रोता पर स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति होना चाहिए । कहानी की सही कहानी के रूप विधान में कतनी बात कहने हस्तलाभ केवल व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के लिए ही किये जाते हैं, अन्य सत्य से नहीं । कहानी का यह व्यक्तित्व कतना व्यापक और महान है कि उसकी इस सीमा में समस्त मानव व्यापार उसकी समस्त समस्याएँ, निदान और भाव स्वीकृत होती है । कहानीकार इसी व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के अन्तर्गत कहानी में यथार्थवाद वादि का कर्मा जाती है । कभी कभी उद्देश्य के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अनुसूति ही प्रधान रूप से समझता है और जो धरातल पर पूरी कहानी प्रतिष्ठित होती है । समस्त साहित्य की भाँति कहानी का भी उद्देश्य होता है जो मनोविज्ञान से निश्चित रूप से भिन्न होता है । दार्शनिक दृष्टि से इसका महत्त्व अपना होता है । मनोविज्ञान तो उस उद्देश्य या सत्य तक पहुँचने का एक औपान है जैसे विस्तृत एवं कठिन दुर्गम मार्ग के लिए सुरली की मधुर ध्वनि । कहानी का उद्देश्य किसी स्थायी कथना अनुवागिक सत्य की खोज । कहानी का उद्देश्य सार्वभौम

१- डा० गुलाबराय * सिद्धान्त और व्ययम : काव्य के रूप, पृष्ठ २२६

२- The purpose of all these tricks or conventions is to communicate personality which appearing only to tell a story 'Dean, o' Foulani'

होता है। यतः उद्देश्य वरु तत्त्व है जिसे लेखक का कहानी लिखने का मन्तव्य प्राप्त हो। सब बात तभी यह है कि कहानी के उद्देश्य को लेकर लेखक के व्यक्तिगत सैधान्तिक स्तर को निर्धारित करना सारे से सारी नहीं है। कहानी में वादार्थ और यथार्थ दोनों ही अपने अपने स्थान पर प्रयुक्त होने चाहिए। कहानी कला के मूल तत्वों के विषय में डा० लक्ष्मीनारायण लाल का मत उल्लेखनीय है :- "कहानी कला के मूल तत्वों और कहानी के वर्गीकरण के निरूपण में जो सबसे विशेष बात है, वह है कहानी कला का निरन्तर विकास और उसकी मान्यताओं में परिवर्तन।" कहानी के इस आधार पर हम यह कहते हैं कि एक तत्त्व, एक संवेदना, एकार्थी प्रेरणा, एक प्रयोजन, एक स्वरूप तथा एक प्रकार की सर्वत्र मनोव्यवस्था कहानी की विशेषता है। (सद्गुरु शरण अवस्था) कहानी में किसी भी सशक्त विचारधारा का प्रभाव या किसी विचार का समन्वय मिल सकता है परन्तु जहाँ उसे प्रकार भावना ने छू लिया वही उसकी कला की क्षीण हो जाती है। ऐसी स्थिति में चाहे टालस्टाय हो, चाहे प्रेमचंद, सफल कहानी नहीं लिख सकते।

डा० श्यामसुन्दर ने वात्स्यायिका के उद्देश्य इस प्रकार कहे हैं :- "वात्स्यायिका की मूल मूल भावना निर्विकार रूप में बिना किसी बाधा के व्यक्त हो जाती है - यह एक ऐसा उद्देश्य है जिसकी पूर्ति उपन्यास से कदापि नहीं की जा सकती।"

१- हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास : डा० लक्ष्मीनारायण लाल
पृष्ठ २५६।

२- "साहित्यालोचन", डा० श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ १८६

कथा और उपन्यास तत्वों में वैभिन्न्य और उसके कारण-

उपन्यास और कहानी के सामान्य तत्व एक से होते हुए भी उनके तत्वों में विभिन्नता भी है। इस सम्बन्ध में एक बात स्पष्ट करती है, वह है साहित्य के विभिन्न वर्गों की वृत्तियाँ तथा उनसे उनके द्वारा जीवन का कितना पक्ष कितना चित्रित किया जाता है। इस दृष्टि की ध्यान में रखकर साहित्य के स्पष्ट भेद कर लेना चाहिए - साहित्य के स्पष्ट भेद दो हैं :-

(१) सम्पूर्ण वृत्ति - परक साहित्य।

(२) वैयक्तिक वृत्ति - परक साहित्य।

प्रथम प्रकार का साहित्य जीवन की समष्टि को लेकर चलता है, जबकि दूसरे प्रकार का साहित्य जीवन को स्पष्ट उद्देश्यों की उसके छोटे छोटे कणों की अभिव्यक्ति करता है। सम्पूर्ण वृत्ति- परक साहित्य में महाकाव्य, उपन्यास, बड़ी नाटक आधार आदि जाते हैं। वैयक्तिक वृत्ति साहित्य में लघु काव्य, लघु नाटक, परिहास, स्तंभ आदि से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ होती हैं। कहानी भी इसी वर्ग का साहित्य है। वैयक्तिक- परक साहित्य में कम से कम प्रायः एक संवेदना के लिए ध्यान है जबकि सम्पूर्ण वृत्ति- परक साहित्य में संवेदनाओं की श्रृंखला चलती है जब तक कि वे सब एक बृहद् संवेदना का रूप लेकर जीवन की झलक में परिवर्तित न हो जायें।

कहानी का सीधा सम्बन्ध उस काव्य से जिसका आधार

घटना है। उपन्यास और कहानी में साम्य की उल्लेखनीय बात ऐसी ही है कि दोनों का मेरुदंड एक व्यवस्थित कथानक है। अन्य सब बातें जैसे चरित्रों की दृष्टि आदि उसी का अनुगमन करती हैं। उपन्यास सम्पूर्ण दृष्टि परक साहित्य है। कहानी की दृष्टि-परक। इस दृष्टि से जहाँ कहानी में एक ही संवेदना का अवकाश है, वहाँ उपन्यास में अनेक संवेदनाओं का। उपन्यास में कई घटनाओं को मिलाकर एक कर दिया जाता है, यद्यपि उपन्यास की मूल घटना एक ही होती है, उसमें अनेक छोटी छोटी कथाओं में बिन्हें उपकथा कहनी चाहिए वा सकती हैं। ये उप कथाएँ ऐसी होती हैं कि उनके बिना भी उपन्यास की मूल घटना भी सकती है। कहानी में ऐसा कदापि नहीं होता। न उसमें उप कथाएँ होती हैं न अनेक घटनाएँ। उसमें तो एक व्यक्तिगत तुलनी हुई कथा होती है जो अकस्मात् ही प्रारम्भ होती है और अकस्मात् ही अन्त। किसी उपन्यास की वाणीपान्त पढ़ लेने के बाद हमें यह नहीं मासुम लगता कि कोई चीज रही पर कुछ नहीं है जबकि कहानी में प्रायः मासुम पड़ता है कि कहीं कोई चीज नहीं है। किसी स्थान पर कोई चीज जानी चाहिए थी जो बाँध नहीं। किन्तु इससे कहानी के प्रभाव पर कोई अन्तर नहीं आता। उपन्यास के प्रत्येक चरित्र की विकास की पूर्ण गुन्वाक्षा है जबकि कहानी में कोई चरित्र पूरा विकसित नहीं हो पाता। उपन्यास के बीच में हमें अनेक मूल मुल्लियायें, अनेक विमान्ति स्थल, अनेक रमणीक प्रदेश मिलते हैं जिनमें कहीं हम खी जाते हैं, कहीं बैठकर वाराम करना चाहते हैं, कहीं उस मनोहारी पुरयावली का हा पान करने को लास्यित होते हैं। कहानीकार पाठक की राँस रोक कर उसे मगाये जाता है और गन्तव्य स्थान पर पहुँकर ही उसकी कुछ सोचने का कुछ हँसने

का, कुछ रीने का आवकाश देता है ।

उपन्यास में लेखक प्रायः पात्र के जीवन की किसी महत्वपूर्ण अवस्था को लेकर ही चलता है और किसी महत्वपूर्ण अवस्था ही में उसका पर्यवसान कर देता है । प्रायः उसमें पात्र के जीवन का अधिकांश वा जाता है । कहानीकार के लिए पात्र के जीवन की कोई भी घटना महत्वपूर्ण है, वरतों कि वह उसको कहानी की गति देना जानता ही ।

पात्र संख्या -

कहानी के पात्रों की संख्या प्रायः सीमित होती है जबकि उपन्यास में इस पर कोई बंधन नहीं है । उपन्यास के कुछ पात्र तो ऊपर से थोड़े जान पड़ते हैं जिनका न घट घटना है न पाठक के हृदय में पड़ने वाले प्रभाव है लगाव होता है । कहानी के सभी पात्र घटना की गति के साथ चलते हैं, सभी पात्रों का लेखक के उद्देश्य की पूर्ति में उपन्यास के कुछ पात्रों के साथ वाप हो सकते हैं, कहानी के पात्र वापसी तिला देगे, अपने साथ वापसी लेने नहीं देगे । किन्तु उपन्यासकार अपने पात्रों को वर्णनाधिक्य से एक वजीब गम्भीरता प्रदान कर सकता है । जिसका आवकाश कहानी में नहीं होता । उपन्यास अपने पात्रों के जीवन में न जाने कितने ही परिवर्तन ला सकता है जबकि कहानी उसी में बसती सकलता होती है कि पात्र के जीवन में कम से कम परिवर्तन लाकर भी वह उसके

चरित्र को किस कौशल से गुन्फित कर सकती है ।

पंच-परिवर्तन -

उपन्यास को पढ़ते पढ़ते कभी हम यह देखते हैं कि पुरा का पुरा दृश्य पंच पर से यकायक गायब हो गया और उसके स्थान पर बिल्कुल नवीन कोई अन्य दृश्य आ गया, फिर थोड़ी देर तक उस दृश्य के पात्रों से हमें परिचय करना पड़ता है । हम उनके चरित्रों की विशेषताओं को समझ ही नहीं पाते हैं किसे पात्र भी ककस्मात् विलीन हो जाते हैं, और फिर हमारे पुराने परिचित पात्र हमारे बीच में आ घुसकते हैं । यह बात केवल पात्रों तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि घटनाओं, स्थानों एवं समयानुसूच घटती है । इसे हम देशकाल का व्यतिक्रम कहते हैं ।

जैसे संवेदना की लहर पर आघात पड़ता है ।

कहानी की संवेदना निभाने के लिए यह देखा पड़ता है कि उसका कोई भी तत्त्व, घटना कथना पात्र की कोई बातचीत, भाषा का एक भी वाक्य निष्क्रिय कथना उपयोगहीन तो नहीं है । कहानी पाठक के मस्तक पर भार बनकर नहीं बैठती बल्कि उद्देश्य पूर्णरूपेण सफलता के साथ प्राप्त करती है । संवेदना की दृष्टि से यह उत्तर महत्वपूर्ण है ।

तथ्याहं -

कहानी की तुलना में उपन्यास विस्तृत होता है । उपन्यास लिखने वाले को हूट होती है कि वह चाहे जितना लिखे अपनी रचना

का कलेवर जितना चाहे बढ़ावे तो वह क्यों अपनी मक्कीपूस कृषि का परिचय देगा ? वह तो अपने प्रत्येक वर्णन को सूब बढ़ा-बढ़ा कर लिखेगा ताकि पाठक उसे कलम तोड़ने का समझा दे सकें । उपन्यासकार पाठक के मस्तिष्क की सिलवटों को मही महींति पीकता है, उनसे भय खाता है और उनकी रुचि के अनुरूप ही प्रवर्तन करता है । किन्तु उसका सिद्धान्त रूप से विस्तार का अवकाश है । यदि वह उसे प्रयुज्ज करना जानता है तो उससे पूरा लाभ उठाता है कतः उपन्यास साधारणतः लम्बे तथा विस्तृत होते हैं ।

परन्तु कहानी का भारी होना पाठक के लिए भार स्वरूप है । वह झोटी होती है । उसके सारे तत्त्व पर्याप्त होते हैं । कहानी के पात्र किसी रेस्तराँ की धूमिल सन्ध्या में धुंध उधर की गप शप नहीं करते, वरन् न किसी ऐसी ही जगह पर जहाँ वे अपने वाली व्याख्यानवाजी ही । वे तो न जाने किस लोक के प्राणी हैं कि बातें हैं तो दिस्तार्व नहीं करते और कुछ देर ठहरकर अपना कानों में कुछ आवश्यक बात कहकर जो वापसे हट गिरे बहुत समय तक गूँझते हैं, चले जाते हैं ।

जिस प्रकार कहानी का प्रत्येक अनुच्छेद लेखक को हाँसे जाने वाला प्रभाव की ओर संकेत करता है उसी प्रकार उपन्यास का प्रत्येक प्रकरण लेखक के उद्देश्य में सहायक होता है । मूल रूप में दोनों की घटना एक दिशा में ही बढ़ती है और कुछ दूर जाने पर एक ऐसा स्थल जाता है जिसे पराकाष्ठा कहते हैं । यहाँ हमें उपन्यास और कहानी में बड़ेका छोटा सा भेद मालूम पड़ता है । कहानी की पराकाष्ठा फाड़ की चौटी

है तो उपन्यास की पराकाष्ठा एक फौला हुआ पठार। चरमावस्था तक जाने के उपरान्त घटना की सम्पूर्ण रोककता एक पूर्ण विराम की प्राप्ति ही पाती है उसे या तो अविलम्ब मुड़ना पड़ता है या तत्काश समाप्त होना पड़ता है। उपन्यास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसकी घटना चरमावस्था तक जाने के साथ ही समाप्त हो जाय। उपन्यासकार अपनी रचना की चरमावस्था के उपरान्त उस स्थल तक ले जा सकता है जहाँ वह सम्मत्ता है कि उसका उद्देश्य पूर्ण होना चाहिए।

स्व०जी० वेल्स ने उपन्यास तथा कहानी के सम्बन्ध में एक मत प्रकट किया है। वे मानते हैं कि उपन्यास में वादार्थ तत्त्व का होना अनिवार्य है जबकि कहानी में ऐसा नहीं है। यदि उपन्यासकार निष्पक्ष होने की चेष्टा करे तो भी वह अपने पात्रों की वादार्थ उपस्थित करने से नहीं रोक सकता और जब कि जीवन ज्यों है कि पात्रों के चरित्रों में विचार ऐसे वगैर नहीं रह सकता। इसका कारण यह है कि जीवन का क्षेत्र क्षान्ता व्यापक है कि उसे केवल उपन्यासकार उसके प्रभाव वसमर्कानों पर, कुन्दर, अविल पक्ष पर, विचार किये बिना सफल नहीं हो सकता। बातः यह अनिवार्य है कि उपन्यास में वादार्थ तत्त्व का प्रस्फुटन अनिवार्य ही किन्तु विषय प्रतिपादन की दृष्टि से कहानी का क्षेत्र क्षान्ता संकुचित है कि उसे इन विषयों पर गम्भीरतापूर्वक विचारने का समय नहीं मिलता बल्कि उसके सम्बन्ध में वादार्थ यथार्थ का प्रश्न उत्पन्न करने परस्पर का नहीं।

कहानीमें अनिश्चितता (Suspense) का एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें कहानी का वातावरण धीरे धीरे

संक्षुब्ध हो जाता है। जबकि उपन्यास में वातावरण क्रमशः प्रकटित होता जाता है। कहानी और उपन्यास का एक महत्वपूर्ण अन्तर - जैसे हम धीरे धीरे किसी ऊँचाई पर चढ़ने जा रहे हैं - किनाऊँचा हम जाते हैं उतना ही हमारा मन फूलता जाता है। "न जाने क्या होगा" यह वाक्य यदि सबसे अधिक तीव्रता के साथ तात्पर्य के किसी क्षण में पटित हो सकता है तो वह कहानी ही है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यास में अनिश्चितता (*Suspense*) की स्थिति नहीं है। किन्तु जिस ढंग से जिस छोटे व्यास के वर्णित कहानी में अनिश्चितता का उपकार होता है उसी ढंग से उपन्यास में नहीं होता। उपन्यास की अनिश्चितता किसी स्थान से प्रारम्भ होती है और उपरीयर अवस्थाओं में फैलती जाती है, क्योंकि अनिश्चितता में किमस्ति" से सौ है में परिवर्तित हो जाती है। कहानी की अनिश्चितता ठीक इसके विपरीत केन्द्रोन्मुख होती है। वह धूम धात की माँति होती है जो किसी प्रज्ञान के बंदर कुछ काल के लिए एक वृत्त बना देता है। जो क्रमशः परिधि से केन्द्र की ओर लीन हो जाता है और अन्त में केन्द्र मात्र रह कर स्वयं समाप्त हो जाता है। नवीनतम प्रणाली के कहानी के लिये कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि उसमें घटना की प्रधानता नहीं होनी चाहिए। आधुनिक कहानीकार मुख्य का मनीविश्लेषण करने में अधिक महत्व समझते हैं और घटना केवल नाम मात्र की ही जाती है। इसके विपरीत उपन्यास में घटना का एक प्रमुख स्थान है और उसके वाक्यार्थ निष्पत्ति के लिये यह चेष्टा करेगा कि उसमें वह अनिश्चितता का पूरा विकास करे।

तृतीय अध्याय

कथा साहित्य में प्राचीन परम्पराएँ और नवीन प्रयोग-

व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कथा साहित्य का स्थान आधुनिक हिन्दी- साहित्य के समस्त प्रकारों में एवोंपरि है। इस कला की, आधुनिक युग की प्रतिनिधि धारा कही जाय तो कोई वाशचर्य की बात नहीं। कथा, लघु कथा, जास्यायिका, कहानी और जास्थानक आदि रूपों में प्राचीन भारतीय साहित्य का शृंगार है। इसकी परम्परा प्राचीन भारतीय साहित्य में वैदिक साहित्य से आरम्भ होकर बौद्ध जातक, जैन कथाओं, संस्कृत कथा साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के आरम्भ काल और मध्य युग तक पहुँचती है। कथा के इस भारतीय स्रोत में समस्त विश्व की प्रेरणा दी है।

कथा-कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य मात्र में पाई जाती है। मानव जीवन में जितने विकास तथा परिवर्तन होते गये, उतने ही परिवर्तन और विकास कथा कहानी की शिल्प विधि में भी देखे जा सकते हैं इस प्रकार मानव जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति, इस कथा के विस्तृत क्षेत्र में समाविष्ट होती है। परन्तु बौद्धिक तथा प्राकृतिक विकास के अनुसार इसके रूप विधान और शिल्प विधान में भी परिवर्तन होते जाते हैं, यह सत्य तथा पूर्णतः निर्विरोध है। इसके उदाहरण ऋग्वेद से लेकर, कर्म सूत्रों, बौद्ध जातकों, जैन कथाओं, पौराणिक आस्थानों तथा संस्कृत के लोक प्रसिद्ध कथा तरिस्तागर से लेकर पंचतंत्र, हितोपदेश, प्राकृत- अपभ्रंश की कथाओं तक में हम देखते हैं और सर्वत्र हमें कथा- कहानी के रूप और विधानों में परिवर्तन और विकास मिलता है। कथा-साहित्य का ऐतक इस देश की प्राचीन कथा- आस्थान-परम्परा

की उपयोग नहीं कर सकता । कारण उसकी वहाँ के विकास क्रम में संस्कृत, पाणि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं के पाध्यम से व्यक्त होती हुई क्या कला ने अपनी स्वतंत्र विशेषताएं बनाली हैं और इस प्रचुर प्राचीन साहित्य के अन्तराल में भी स्थान स्थान पर अन्वेषक की आधुनिक उपन्यास-कहानी के दोगेण संकेत मिल सकी हैं । काव्य ही क्या धर्म ग्रन्थ, आख्यायिका ही क्या नाटक, व्यंग-विद्रूप- गर्भ कविता ही क्या कीतुक क्या जहाँ भी लेखक जाने अनजाने समाज का चित्र अंकित करता है क्या सामाजिक विषय का आन्तर- बाह्य संघर्ष प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है वहाँ पर क्या-साहित्य का बीज देता जा सकता है । आदि काल से लेकर वर्तमान युग तक इस देश का साहित्यकार किन-किन रूपों में क्या काल की सहज एवं प्रबल मानव-प्रवृत्ति की स्वर देता रहा है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारतवर्ष का साहित्य का उद्गम स्थान माना जाता है । भारतीय क्या- साहित्य की मौलिकता तथा प्राचीनता की सब विद्वान स्वीकार करते हैं । यहाँ

१- ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर वेद के कहानियों का मूल स्रोत मानना उचित प्रतीत होता है । वैदिक कहानियाँ ; बल्देव उपाध्याय श्रूमिका भाग पृष्ठ ७ ।

की कहानियाँ समय समय पर पश्चिमी देशों से मौखिक तथा लिखित दोनों रूप में फैलती रही हैं। कथा का प्राचीनतम रूप वेदों में मिलता है। इसका सर्व प्रथम दर्शन ऋग्वेद की संस्कृति है जिसके संवाद सूक्तों में कई कई पार्श्वों के संवाद मिलते हैं। कथा के प्रधान तत्वों में "संवाद" का विशेष स्थान है। वस्तु कथा का वारम्भिक रूप जिन संवाद सूक्तों में मिलता है उनमें संवाद तत्व की प्रधानता है। ऋग्वेद के सामान्य स्तुतिपरक सूक्तों में भी मित्य मित्य देवताओं के विषय में कीक मनीरंजन तथा शिवा प्रव वात्स्याना की उपलब्धि होती है। ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों में कुछ कहानियाँ विस्तार से दी गई हैं। निरुक्तकार यास्क तथा माध्यकार सायण ने वेदों में वर्णित कथाओं की अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। भारतीय कथा साहित्य का प्रथम उत्थानकाल वैदिक कहानियों से वारम्भ होता है। उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की रूपक कथाओं में तथा महाभारत में मनुष्य तथा पशु पार्श्वों का घनिष्ठ सम्बन्ध विस्तारपूर्वक प्रतिष्ठित किया गया है।

ऋग्वेद मानवता का प्राचीनतम साहित्य माना जाता

- १- The oldest Aryan fables dating from centuries before Christ have according to Dr. R. David's 'Travel to different parts of Europe and have assumed various modern shapes. Otto Keller maintains the Indian origin of fables common to India and Greece.

- History of Classical Sanskrit Literature-
Krishnamacharian pp 412-413.

This is in fact the most original department of Indian literature. It is also the one that has exercised a greater influence on foreign literature than any other branch of Indian writing. It is not a case of single stories finding their way by word of mouth, through the agencies of merchants and travellers from India to other countries but of whole Indian books becoming through the medium of translations the common property of the world.

- India's Past- A.A. Macdonnell - p. 460.

- २- संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय पृ० ३७७

है। इसमें विभिन्न याज्ञिक क्रियाओं द्वारा इन्द्र, वरुण, सविता, परुत
अग्नि आदि तार्यों के देवताओं के स्तुतिपरक मन्त्र संगृहीत हैं। ऋग्वेद के
“संवाद सूक्तों” में दो या अधिक पात्रों के कथनीपकथन मिलते हैं। विद्वानों
ने भारतीय साहित्य के अनेक शांति का उद्गम इन्हीं संवाद-सूक्तों का
माना है। इनमें तथा सामान्य स्तुतिपरक सूक्तों में जिनका उद्देश्य देवता
विशेष को महत्ता प्रतिपादित करना है, अनेक वात्स्यान बीज रूप में
मिलते हैं। इन्हीं का वागे चलकर ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों
में विकास हुआ। प्रातिम ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत, वाध्यात्मिक ज्ञान के
सागर उपनिषदों में अनेक वात्स्यान उपलब्ध होते हैं। “नीति मंत्रों” के
लेखक ने अधिकांश वैदिक कहानियों का इस ग्रन्थ में व्यवस्थित ढंग से उल्लेख
करके उनसे प्राप्त नीति-उपदेशों को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।
ऋग्वेद की कुत्तों में हम जिसे हम कथावस्तु कहते हैं कथा-कहानियों के बीज
मिलते हैं। वैदिक संवादों में जैसे कथा-कहानियाँ, गण-गणो पुराता उर्वशी संवादों
वीर वृत्तः शेष की कथा में इसका वादि रूप देखा जा सकता है। ऋग्वेद
के द्वितीय मंडल के इन्द्र सूक्त में ऋषि गृत्सम्व इस बात का संकेत करते हैं कि
इन्द्र ने वरि, बस वादि दोनों को मारकर गायों को छुड़ाया वीर पातों
नदियों का प्रवाहित किया -

“यो हत्वा हि मरणात् सप्त सिन्धुः ।

यो गा उदाज पयसा बलस्य ।” (ऋग्वेद २।२३।३)

ऋग्वेद २।२३।५ के “वृत्रं कंसमिन्द्रो ब्रूया” पद से भी इसी कथा का सूत्रपात
हुआ है जिसमें वृत्र की सहायता से इन्द्र द्वारा वृत्र का वध दिखाया गया है।

उसी प्रथम मंडल में “पिता पुष्टि गर्भायात्” (२।२५।३३ वीर तृतीय

मंडल में “ पिता यत्र दुहितुः सः पञ्चन ” (३।३१।२) पद मिलती है
जिनके आधार पर ब्रह्मा और सरस्वती के सम्भोग का कथानक वात्स्यायिका
का रूप धारण करता है । कुम्भेद १०।११।६ में वाये इत्ये “ वार वा
मगय ” पद का आधार मानकर गीतम कहल्या को क्या निर्मित हुई है ।
इन रूपक कथाओं के अतिरिक्त कुछ मानवी कथाओं में भी है जो वायों
के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालती हैं । उदाहरण के लिए कुम्भेद के
सप्तम मंडल का कुरुराज सूक्त उस समय की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना
का उल्लेख करता है ।

उपनिषदों में कुछ- शान्तिवायिनो बुजियों के
बीच- बीच में कथायें जानि लगती हैं । लेकिन ये कथायें क्या साहित्य की दृष्टि
से नहीं वाई हैं वरन उपनिषदों के भिन्न भिन्न प्रतिपाद्य तत्त्वों की लेकर
उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गई है - ठीक उसी प्रकार जैसे वाचस्पति में
ईश्वर ईश की महान सत्ता और ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास और वाचस्पति
के धरातल पर जीव कथारं मिलती है । इन कथाओं का सम्बन्ध हमारे वात्स्यिक
जीवन से है, तथा कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णनात्मक और कथात्मक है ।
इन कथाओं के पात्र प्रायः कृषि, बृहस्पतरी, राजा तथा पुरोहित के रूप
में मिलते हैं तथा इन कथाओं का मूल विषय भी वात्सा और परमात्मा के
धरातल से चला है । ये कथारं वादई और शिक्षाप्रद हैं । प्रत्येक कथा में
कथानक का विकास गहन तत्त्वों के प्रवर्धन के बीच तथा प्रायः समस्त कथाओं
का वारम्भ प्रश्न और जिज्ञासा से हुवा है । यही कारण है कि उपनिषद
की मुख्यतः कथारं अत्यन्त मनोरंजक है ।

वेदों के बाद ब्राह्मण व उपनिषद् लिखे गये ।

ये दोनों वेदों के ही ज्ञान माने जाते हैं । इनमें से ब्राह्मणों में तो वेदों के गूढ़ व गुरुत्व का ही लीलाकार व्युत्पत्ति: कथाओं द्वारा स्पष्ट करने की निश्चित चेष्टा की गई है । उपनिषद् बाद की रचना है किन्तु इनमें भी कथाओं के द्वारा वेदों के ज्ञान की स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इस प्रकार इन दोनों प्रकार के साहित्यों में कथाओं की परंपरा है । इनके विषयों में यह संका करने का अवसर नहीं है जो वेदों के विषय में की जाती है क्योंकि इनकी कथाएं स्पष्ट और निश्चित हैं । ब्राह्मणों में उत्तम ब्राह्मण कहानियों की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है । जलप्तावन को प्रसिद्ध पटना, जो पारश्वत्य साहित्य में भी पाई जाती है, जितने मानवता का पुनर्निर्माण हुआ, उत्तम ब्राह्मण में भी जाई है । ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान की लोकप्रियता प्रसिद्ध है, जो जीवन का एक महत्वपूर्ण उपाख्यान है, जिसमें कहणा और माभिक्ता के साथ साथ सत्य दर्शन के लक्ष्य प्राप्त पुरीये हुए हैं ।

उपनिषद् में छान्दोग्य, कठ, ऐन, तीरथीय, मुक्तधारण्यक आदि में लोक उपाख्यान और प्रसिद्ध संवाद मिलते हैं । इनमें यम और नपिक्ता की कथा, इक्ष्वाकु की कथा, यज्ञ की कथा प्रसिद्ध है । इन कथाओं में तत्कालीन सरल और निष्कप्ट जीवन की झुर्रि-झुर्रि कांक्षियां मिलती हैं ।

ऐंस्तो, ब्राह्मण-ग्रन्थ और उपनिषद् दोनों के कथा-राज्य के संयोग से जागे लोक कथाएं प्रचलित हुईं और उनका विकास लोक-भावना में इतना हुआ कि तत्कालीन मनोविषयों की कथाओं के महासंग्रह प्रस्तुत करने

पड़े लेकिन उस समय तक कवि कवि कर्म, लोक भावना और साहित्यिक रुचि तीनों एक दूसरे से सादास्य स्थापित करने लगीं थीं । अतः उस काल के साहित्यिक मनीषियों की एक महान और व्यापक क्या दुहनी पड़ी परन्तु उस समय की सामग्री के अन्तस्तल में दुहने से उन्हें जो रामकृष्ण की क्या मिली होगी वह बहुत छोटी रहनी । अतः बाल्मीकि और वेद व्यास की कुछ मूल क्या और बहुत कुछ कल्पना के संयोग से एक वात्स्यान बनाना पड़ा होगा जो अपनी पूर्ववर्ती क्याओं से महान और व्यापक सिद्ध हुआ होगा और ऐसी ही वात्स्यान के षष्ठ्यंश पर उन मनीषियों ने क्रमशः रामायण और महाभारत वात्स्यानक काव्यों की सृष्टि की होगी तथा इनमें अन्योन्य क्याओं क्याओं की सुन्दर लड़ी गुंथकर उन काव्यों की महा-काव्य बनाना पड़ा होगा । इन महाकाव्यों में पितारा और धार्मिक पिपासा की शान्ति के लिए मनीषियों ने कितने प्रश्नोत्तरों की प्रस्तुत किया होगा । बाल्मीकि की रामायण में सरयू नदी की उत्पत्ति की क्या इसका उदाहरण है तथा महाभारत में विभिन्न पात्रों के सम्वाद, प्रश्न तथा उत्तर गीता के प्रबलन इसके साक्षी है ।

काल की दृष्टि से रामायण और महाभारत का समय बीढ़ जातक क्याओं से बहुत पहले पड़ता है । रामायण की ५०० ई० पूर्व से पहले की रचना मानना न्याय संगत है । महाभारत भी कुछ के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे कुछ के पीछे प्राप्त हुआ है । इस प्रकार

१- पांचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धमीश महाभारत और रामायण की कहते हैं । "वाक्सानंति भारत रामाणादि (सी० नि० अ० १-८४)

२- संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, गीरीशंकर उपाध्याय पृष्ठ ४५

३- वही पृष्ठ ५७ ।

रामायण और महाभारत के माध्यम से वात्स्यानकों और पौराणिक कथाओं का धार्मिक जातक कथाओं से बहुत पहले ही जुड़ा था ।

रामायण में मूल-कथा के साथ विभिन्न वर्तकधार, प्रासंगिक और अप्रासंगिक ढंग से गुथी हुई हैं । वाल्मीकि ने राम-कथा की अपनी काव्यात्मक दृष्टि द्वारा इतना शाश्वत और चिरन्तन बनाया कि इससे कथा तत्त्व और मानव तत्त्व, दोनों लोक-भावना में व्याप्त हैं । यहाँ नाटकीय परिस्थितियों का गुञ्ज तथा सजीव पात्रों की अवतारणा ने परवर्ती संस्कृत कथा साहित्य के लिए एक नवीन युग का मार्ग प्रशस्त किया ।

वात्स्यान और पौराणिक कथाओं की दृष्टि से महाभारत का स्थान प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य में अग्रणी है । कथा-तत्त्व की दृष्टि में इसकी कथाओं की परम विशेषता यह है कि इनमें इतिहास, धर्म और कल्पना का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि वे अविच्छेद्य हैं । स्वभावतः पौराणिक कथाओं के रूप में सभी परवर्ती संस्कृत नाट्य साहित्य की उपजीव्य बनी हैं । इसके उपाख्यानों से ही कथा वात्स्यायिकाओं बम्पू आदि की दृष्टि की है । दूसरी ओर महाभारत की ये अंत्य कथायें मूल वात्स्यान से इतनी कलात्मकता के साथ जुड़ी हुई हैं कि इनके सामूहिक कथा-तत्त्व में हमारा सम्पूर्ण जीवन अपनी विस्तृत रूप में समा गया है । यही कारण है कि महाभारत जहाँ एक ओर वात्स्यानिक काव्य है, वहाँ दूसरी ओर पुराण भी । संस्कृत में पुराण शब्द का अर्थ पुराना वात्स्यान है -----

पुराणवात्स्यानम् । पुराणों के सम्बन्ध में यह धारणा, वस्तुतः महाभारत पुराण के आधार पर निश्चित हुई है, क्योंकि महाभारत में प्रायः समस्त

प्रसिद्ध वात्स्यानीं को सृष्टि हुई है : वेद अनुन्तलीपात्थान, वन पर्व में "मत्स्योपात्थान" और रामोपात्थान "शिवि उपात्थान" सावित्री उपात्थान आदि । सभी पुराणों में क्या साहित्य के हजारों उदाहरण विद्यमान हैं और प्रत्येक पुराण एवं उप पुराण क्या कहानियों का एक बड़ा भंडार है । रामायण, महाभारत और श्री मद्भागवत इनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध पुराण हैं ।

इस प्रकार वात्स्यानीं और पौराणिकों कथाओं का प्रारम्भ यहीं से होकर आगे जाने वाला तमाम पुराणों में विकसित होकर ये कथाएं भारतीय कथा-साहित्य में अपनी पूर्णता तक पहुंच गईं । ये पौराणिक कथाएं विभिन्न अवतारों, सूर्य चन्द्र वंशी, पर्व, महीत्यव आदि की कथाओं के आधार पर प्रस्तुत हुईं । भाव और कला पक्ष की दृष्टि से पुराण के पांच तत्वाणों में इन कथाओं में विद्यमान हैं ।

महाकाव्य काल से आगे कथा साहित्य का नया युग प्रारम्भ होता है । इस समय हिन्दू बौद्ध तथा जैन धर्मों के अनुयायी आवागमन के सिद्धान्त के आधार पर जीवन के लोक जन्मों में विश्वास करते पाये जाते हैं । अतएव इस काल की कहानियों में मनुष्य तथा पशु- सब प्रकार के प्राण पक्षी की अपेक्षा अधिक संख्या में प्रयुक्त हुये हैं । उपदेशात्मक कहानियों की रचना के लिए इस समय का धार्मिक वातावरण अधिक अनुकूल था । इस काल की कहानियों में साहित्यिकता का अभाव है । बौद्ध तथा

१- मत्स्य, विष्णु तथा ब्रह्माण्ड आदि महापुराणों में पुराण का तत्वाण बताते हुये लिखा है-----

"सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशी मन्वन्तराणि च ।

वंशानुवर्तितं चैव पुराणं पंच तत्वाणाम् ॥

येन कहानियों की वैदिक कहानियों का नवीन रूप सम्पन्न हो जाय। पंचतन्त्र की कहानियाँ उसी काल में लिखी गईं। मेकडोनल, कीथ, ब्रह्मदेव, उपाध्याय आदि विद्वानों ने पंचतन्त्र के चार भिन्न-भिन्न संस्करणों का उल्लेख किया है। इनमें वर्णित कहानियाँ पौराणिक कहानियों के आधार पर लिखी गई हैं। इनमें स्वरूप सम्बन्धी कोई नवीनता नहीं मिलती। इनमें नैतिक शिक्षाएं हैं। इस काल तक जति जति सीढ़ कथा का सम्बन्ध एक और तीर्थयात्री से और दूसरी और कथालेख तथा नौति शास्त्र से हो गया है। पंचतन्त्र की कहानियों की रचनाएं ब्राह्मण रचनाकारों ने राजकुमारियों की शिक्षा देने के लिये की थी। इन कहानियों में प्राचीन कथा-साहित्य के अन्य विविध रूप मिलते हैं। इनमें अधिकारिक तथा प्रासंगिक कथाओं और अन्तर्कथाओं का जाल बिछा मिलता है। डाक्टर कीथ ने "संस्कृत साहित्य का इतिहास" में संस्कृत कहानियों की प्राकृत कहानियों से स्वतन्त्र माना है। उसमें उपदेश के स्थान पर धार्मिक भावना की प्रधानता मानी है। एक और पुराणों में है रामायण, महाभारत एवं भागवत दूसरी और जातक तथा तीसरी और पंचतन्त्र- इनमें कौन साहित्य पहले का है और कौन सा उसके अन्त का। इनमें से किसी का भी रचनाकाल अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। जातकों की इनमें से सभी प्राचीन कथाएँ वास्तविक समालोचकों की कमी नहीं हैं। पंचतन्त्र पर तो निश्चय हो जातकों का प्रभाव है। रामायण, महाभारत और भागवत में भी जातकों की बातों का उल्लेख है। भागवत तो पौराणिक रचना निर्विवाद रूप से है अतः उस पर

२- And we have a motif which certainly is strongly suggestive of the material whence developed the Panchantra.

- History of Sanskrit Literature-A.B. Keith

जातक का प्रभाव है ही । पंच तन्त्र में जो बीच में इसीक दिये गये हैं उनके पीछे जातक गाथाओं की प्रेरणा है । इसके विपरीत रामायण महाभारतादि का उपनिषद् काल के ठीक बाद की रचना मानते हैं और जातकों के उन पर प्रभाव की स्वीकार नहीं करते । पंचतन्त्र में, उनकी दृष्टि में पहले से चली आई हुई परम्परा जिसके अनुसार पशुपक्षियों को पात्र बनाना प्रारम्भ कर दिया था, एक कड़ी है । जातक यदि कहें हैं तो वह एक स्वतन्त्र रचना है । रामायण, महाभारत, श्री मद्भागवत और अन्य पुराणों का कथा-साहित्य की दृष्टि से बड़ा महत्व है । रामायण सार्य जाति का जादि काव्य है । डा० रामधितास शर्मा के शब्दों में “ उसमें पहले पहल मानव चरित्र की काव्य का विषय बनाया गया । ” रामायण एक सुवर्ण प्रबन्ध काव्य है । इनमें कीद कथार्य या उपाख्यान हैं जिन्हें किसी न किसी कृत्रिम सूत्र से जोड़ दिया गया है । इस युग में कथा की अभिव्यक्ति का आधार श्रुत काव्य रह गया है । वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् उपनिषद् की विशुद्ध रूप मानना ठीक नहीं है । वह एक प्रकार का प्राचीनतम गद्य काव्य है । पंचतन्त्र, जातक शिलीपदेश की बाद की रचनाओं में गद्य का ही बीत जाता रहा ।

यद्यपि रामायण में मानव चरित्र का छेकन पहले पहल हुआ किन्तु अन्य पुराणों के साथ वह भी एक अपूर्व चार्मिक रंग लिये हैं । सब तो यह है कि रामायणकार के शब्दों में “ राम ” भी उतने ही ईश्वरावतार हैं जिनने महाभारत के नायक कृष्ण और अन्य पुराणों के देवता । दृष्टिकोण बाहे जो ही, इन पुराणों का कथा-साहित्य अत्यन्त

समृद्ध है। रामायण में मुख्य कथा के अतिरिक्त अनेकों छोटी-छोटी कथाएँ संग्रह की गई हैं। महाभारत में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ काल्पनिक तत्वों का पूरा मिश्रण किया गया है।

पुरुष पुराणों के पाँच तत्वाण स्वयं विष्णु पुराण में इस प्रकार दिये हैं :

“ सशिवः प्रातः सशिवः वंशी मन्वन्तराणि च
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्च तत्वाणाम् । ”

श्री मद्भगवत् में पुराणों के दस तत्वाण गिनाने गये हैं जो अधिक युक्ति संगत प्रतीत होते हैं :-

सर्गात्स्त्रियाय विसर्गश्च ध्रुवि रक्षन्तराणि च
वंशी वंशानुचरितं संस्था स्तुरयात्म्यः ॥ (११।७।६)

पौराणिक साहित्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

सम्पूर्ण कथानक इन्द्रों में स्थित गये तथा कल्पना और ऐतिहासिक तथ्यों का क्लृप्त मिश्रण है। कहानी के पात्र, अभिजात वर्ग तथा क्षत्रिय मुनि लोग अधिक हैं। चरित्र विकास सुन्दर है तथा प्रासंगिक कथाओं का उपयोग चरित्र की उत्तम कथा मिलाने के लिये ही किया गया है। इ तथ्य विशिष्टता और निष्कर्षण की अपेक्षा वृत्त वर्णन की प्रधानता और भक्त की प्रेम की अपेक्षा अधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति का सूचकांक है।

१- पाठभेद : “ ध्रुव्यादिरिव संस्थानम् - (अश्वमेध)

बीड जातक-

बीड जातक-कथाओं के रूप में भारतीय कथा-परम्परा में एक नवीन पीढ़ी थी । ये कथाएँ अपने वर्तमान रूप में दो हजार वर्षों पुरानी हैं^१ । जातक कथाओं का स्थान परवर्ती संस्कृत कथाओं के पहले आता है । निश्चय ही, ये कथाएँ ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी से भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गयी होंगी^२ । बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व गौतम बुद्ध की अनेक जन्म धारणा करने पड़े थे । जातक में बीडि सत्त्व के पाँच ही सैतासीस जन्मों का उल्लेख है । जातक शब्द का अर्थ है जन्म उत्पत्तियों । विकासवाद के अनुसार एक फूल की विकसित होने में, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में जाने में लाखों वर्षों लग जाते हैं । तब क्या कोई प्राणी साठ-सत्तर या सौ वर्षों के जीवन में बुद्ध बन सकता है ? उसकी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारणा करने पड़े होंगे । गौतम बुद्ध की भी धारणा करने पड़े । बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बीडि सत्त्व रही । "बीडि" का अर्थ बुद्धत्व और सत्त्व का अर्थ प्राणी- बुद्धत्व के लिये प्रयत्नशील प्राणी^३ । हर जातक कथा चार भागों में विभक्त है । १- पञ्चुपत्त की कथा, जिसका अर्थ है वर्तमान कथा अर्थात् मावान गौतम बुद्ध के समय की कोई घटना २- अतीतवत्थु- जिसका अर्थ है पुनर्जन्म की कथा ३- अत्यवणराना अर्थात्

१- भरन्त बानन्द कीर्तित्थायन- जातक, प्रथम संद, पृष्ठ २५ ।

२- जातक प्रथम, मुनिका, पृष्ठ २४

३- वही पृष्ठ १२

४- भरन्त बानन्द कीर्तित्थायन जातक- प्रथम संद, पृष्ठ १२ ।

इन गाथाओं की व्याख्या ४- समीधान- यह वन्त में जाता है और इसमें बुद्ध बताते हैं कि उन्होंने कतीत क्या पुनार्ह उसके प्रधान पात्रों में कौन कौन था । ये स्वयं उस समय किस्म योनि में पैदा हुये थे ।

इन जातक कथाओं से तीन बातें प्रकट होती हैं । ये कथार्य बौद्ध धर्म के प्रकाश और प्रचारार्थ लिखी गई हैं । इनमें पिछली पीढ़ी के कथाओं और वात्स्यानी की विलक्षण अधिक कलात्मकता आई है । ये कथार्य सीधे वर्णनात्मक या वधात्मक न होकर वर्तमान कथा, कतीत कथा, गाथा की व्याख्या और समीधान कथा की सुन्दर श्रृंखला है तथा फिर भी इनमें कथा का छुट सुरक्षित है । स्वतन्त्र कथा का जन्म और उस कथा से अन्य कथा का जन्म होने की कला सम्भवतः इन्हीं जातक कथाओं से वारम्भ हुई तथा इस कला की चरम सीमा हमें बागि चतकर संस्कृत के सुप्रसिद्ध कथा संग्रह " कथा सरित्सागर " और पंचतन्त्र " में मिलती है ।

जातक कथार्य प्राचीन हैं जसा रामायण या महाभारत इस पर विद्वानों में तीव्र मतभेद है । रामायण और महाभारत के कौन-कौनसे वात्स्यान किसी रूप में जातक कथाओं में भी मिलते हैं । इससे यह बात तो प्रकट होती है कि कथा कहानी की प्राचीन परम्परा बौद्ध तथा बौद्ध साहित्यों में समान रूपों में प्रवाहित रही है । जातक में यह परम्परा लोक-रुचि के अधिक समीप आई और इसमें महान व्यक्तित्वों के व्यक्तियों एवं घटनाओं तक ही सीमित न रहकर सामान्य जन समुदाय के जीवन की साधारण घटनाओं की वर्णन करने का भी प्रयास किया गया । मनुष्यतर, जीव जन्तु, पशु-पक्षी आदि की भी मानव की भाँति प्रदान करके उनकी

कथा के माध्यम से लोक हितकारी उपदेश व्यंजित किये गये हैं । ज्ञापन युद्ध ने किस प्रकार अपने उपदेश के लिए लोक भाषा को ग्रहण किया उसी प्रकार लोक जीवन को ।

जातक कथाओं में जितनी वर्तमान कथाएं जाती हैं उनमें प्रायः कल्पना तत्व मुख्य है और उनमें जितनी कृतित कथाएं जाती हैं, उनमें प्रायः ऐतिहासिक तत्व मिलते हैं । इस प्रकार यथार्थ कल्पना और व्याख्या तत्व का एक साथ सापेक्ष कथा की दिशा में जातक कथाओं की प्रथम स्तरात्मक देन है । प्रायः सभी जातक कथाओं के प्रारम्भ में " पूर्वकाल में वाराणसी से मैं राजा हूँ ब्रह्मदत्त राज्य करते थे " से होता है । जैसे उर्दू की प्रत्येक कहानी " एक बफा का जिकर है " से प्रारम्भ होती है और छोड़ी की (" वन्त जपान ए टाहम ") से उसी प्रकार की जातक कथाओं का प्रारम्भ उपयुक्त वाक्य से होता है । वर्तमान कथा कहते कहते पूरा कथा का प्रारम्भ कर देना और अन्त में दोनों कथाओं की संगत बैठाने का कौशल का जातक में सुन्दर विकास हुआ है । ये जातक कथाएँ बहुत ही व्यापक और मानव तत्व के समीप हैं इनमें राजा, सेठ, साहूकार से लेकर दरिद्र और चाँडाल, नदी, पहाड़, पेड़ पौधे आदि ज्वर तथा सब प्रकार के जीव जन्तु, पशु पक्षी आदि सभीव जगत् में रूप में प्रसृत हुए हैं ; और इन सबके माध्यम से हमारे जीवन के व्यापक रूपों का बाँकी का प्रयत्न किया गया है । इनका समान प्रभाव परवर्ती संस्कृत कथा- साहित्य के निर्माण

१- अन्त वानन्द कौशल्यायन जातक, प्रथम सं०, पृष्ठ ३१

वीर वन्त कथाओं पर इतना पड़ा कि वातक कथार्थ कभी भुलाई नहीं जा सकती । इस प्रकार भारतीय कथा-विकास में वातक माता का एक महत्व-पूर्ण स्थान है ।

संस्कृत का परवती कथा-साहित्य

कथा- कहानियों की उपयोग परम्परा परवती संस्कृत में भी प्रचलित रही । इन कहानियों की स्मृत रूप है तीन भणियाँ में विभाजित किया जा सकता है :-

- १- मनोरंजक
- २- उपदेशात्मक
- ३- काव्यात्मक

प्रथम श्रेणी में वे कथारे वाती जिनमें मनुष्यों के क्रिया कलाओं का वर्णन है । इनमें आश्चर्यजनक एवं कुतूहल वर्धक घटना विन्यास के द्वारा- श्रोता या पाठक के मन को तल्लीन करने की क्षमता सम्पन्न है । इनका प्राचीनतम संग्रह "बृहत्कथा" है । "सिंहासन दात्रिस्तिका" तथा "वैताल पंच विधित्तिका" भी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं । उपदेशात्मक कहानियों में "पंचतन्त्र" तथा "हितोपदेश" प्रमुख हैं । इनमें पशु पक्षियों की कहानियों के द्वारा उपयोगी नीति उपदेश दिये गये हैं । काव्यात्मक कथाओं के वर्णन "वाल्मीकि" तथा "पद्मकुमार चरित" आदि साहित्यिक वाङ्मयिकारों वाती हैं । इनकी रचना-प्रणाली अत्यन्त क्लृप्त एवं रसात्मक है ।

संस्कृत के परवती कथा- साहित्य में "बृहत्कथा" का स्थान सबसे महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि प्राचीन संस्कृत-कथा-साहित्य में यह

कति प्राचीन और कष्ट संग्रह माना गया है। ईसा की प्रथम शताब्दी में वाञ्छ राजाजी के समय गुणादय नाम के किसी पंडित पैशाची वाचना में इस कथा ग्रन्थ की लिखा था। इसका समय ईसा की छठी शताब्दी से पूर्व ही माना जाता है। लेकिन वर्तमान समय में यह ग्रन्थ एकदम अप्राप्य है। केवल इसका प्रमाण हमें वाण के "हथ" चरित" दंडी के "क काव्यादर्श" दामिन्द्र की "बृहत्कथा पंजरी" और सीमदेव के "कथा सरित्सागर" में मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि दामिन्द्र की "बृहत्कथा पंजरी" सीमदेव का "कथा सरित्सागर" और कुछ स्वामी का "बृहत्कथा श्लोक संग्रह" बृहत्कथा के आधार पर लिखे गये कथा ग्रन्थ हैं।

इस प्रकार पार्वती संस्कृत कथा साहित्य के अन्तर्गत "बृहत् कथा श्लोक" कथा सरित्सागर" "वैताल पंच विस्तारिका" "शुक स्मृतिक", "चिंहासन द्वात्रिंशिका" पंचतन्त्र" और "क्षितीपदेश" ही मुख्य कथा-ग्रन्थ हैं। वैसे लोग पार्वती संस्कृत कथा साहित्य के वाण की कादम्बरी-मसुवंधु की "वासवदत्ता" और दंडी का "दशकुमार चरित" भी लेते हैं। परन्तु ये काव्य-ग्रन्थ कथा और उपन्यास की अपेक्षा कथकाव्य अधिक और कथा कम है। जैसे दंडी गद्य काव्य की ही कथा कहते हैं। वाण का "हथ" चरित" तो निश्चित रूप से कथा-ग्रन्थ के बहुत ही समीप है। इसके कथा तत्व में यथार्थ और कल्पना का कलात्मक समन्वय है।

वदितान के महाराजा राज के राज पंडित गुणादय पैशाची में "बृहत्कथा" की रचना की, जिसकी कुछ विद्वान प्रथम शताब्दी की रचना मानते हैं। मूल ग्रन्थ तो अप्राप्य है किन्तु इस आधार तीन ग्रन्थ

मिलती है :-

- १- बुद्ध स्वामी कृत "बुद्ध कथा श्लोक"
- २- श्रीमच्छ्रुत कृत "बुद्धकथा मंत्रो"
- ३- श्रीमद्देव कृत "कथा सरित्सागर"

कथा-वर्णन कला की दृष्टि से "कथा सरित्सागर" का स्या परवर्ती कथा-साहित्य में तृतीय है। इसमें २४००० श्लोक हैं। इसका समय ग्यारहवीं सताब्दी है। इस विद्याल ग्रन्थ में अनेक कथारं संगृहीत है तथा पारी कथारं विभिन्न "लोकों" से विभाजित होकर अन्यान्य तरंगों के माध्यम से वार्त्त है। प्रत्येक "सर्ग" क्रमशः कथा की संवेदनाओं के अनुसृत जाये हैं। एक कथा से लोक कथारं निकलती जाती गई हैं। मूल कथा तो शिवजी के द्वारा पार्वती से कही गई यत्तारं जाती है किन्तु वास्तविक भक्त वर रुचि है, और भीता विन्ध्याचल के जंगलों में रहने वाला कर्णभूति। प्रत्येक कहानी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। इसमें कल्पित पात्रों के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक पौराणिक पात्र हैं राजा वत्सराज, नरवाहन वर, राजा सूर्य प्रभ, विष्णुवादित्य, चन्द्र कुंवर आदि भी जाये हैं। स्थल पर वर रुचि कालीन भारत की वास्तविक भाविकां देखने की मिलती है। वास्तव में यह ग्रन्थ कथा का सागर ही है।

"कथा सरित्सागर" की कथाओं की पद्धति से स्पष्ट है कि ये सभी कलात्मक रूप में पुराणों की कथाओं की प्राप्ति हैं- ज्योति

१- भाषा कथा सरित्सागर- प्रथम द्वितीय भाग, डा. रामकृष्ण द्वारा संपादित। भारत जीवन प्रेस, काशी, १९०५ ई०

एक जीता है और एक वक्ता कथाकार जो एक झूत झूत कथा वारम्भ करता है तथा उसी झूत झूत कथा से धीरे धीरे वन्यान्व कथारं स्वतः निकलती रहती है । वस्तुतः कथा की यह शैली मुक्तः पौराणिक कथा शैली और जातक तथा जैन कथाओं की शैलियों की मिश्रित शैली है ।

“ वीरास पंच विशतिका ” पञ्चीस कथाओं का संग्रह है । विद्वानों का मत है कि इसके लेखक “ शिवदास ” थे । “ मुहूर्त्तकथा पंजरी ” तथा “ कथा सरित्सागर ” में इसका उल्लेख है । इसमें प्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य से सम्बन्धित पचीस रोचक कहानियाँ सात संस्कृत में वर्णित हैं ।

झुफ सप्तति कथाग्रन्थ में सत्तर कहानियाँ संग्रहीत हैं । एक तीस ने (वक्ता) अपनी स्त्री मैना (जीता) से सब कथारं कहीं । इसमें अधिकतर तीस ने उन स्त्रियों की कथारं ली है जो दुष्टा और कुलटा हैं तथा जो अपने प्रपंनों और इसमें से पुरुषों की हलती रहती है । लेकिन इन कथाओं का उद्देश्य स्त्री वर्ग की नीचा दिसाना नहीं बल्कि उनका सुधार करके वर्ग पर से उत्पन्न पर लाना है ।

सिंहासन काव्यश्रिका कथा-संग्रह में विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी बत्तीस पुस्तिकाओं द्वारा कही हुई कथाएँ जिनमें राजा भीम सुनते हैं और उस बत्ती सिंहासन पर नहीं बैठ पाते । क्योंकि राजा भीम सिंहासन पर बैठने की उपाय होते तो एक पुतली विक्रम के शौर्य, साहस, उदारता, प्रजावत्सलता, वादि की कहानियाँ सुनाकर उन्हें बैठने से रोकती । इस प्रकार इन बत्तीस पुस्तिकाओं द्वारा कहीं गई बत्तीस कहानियाँ इस पुस्तक में संग्रहीत हैं ।

उपयुक्त नारों कथा-संग्रह परवर्ती संस्कृत कथा-

साहित्य के विशिष्ट स्तम्भ हैं। इनका प्रभाव जहाँ एक ओर जन चरित्र की कथा-प्रवृत्ति पर पड़ा दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश कथा धारा पर भी पड़ा। ये सब ही कथाएँ वागि दन्त कथाओं के रूप में प्रचलित हुईं तथा जन समुदाय में इनके आधार पर अनेक कथाएँ गढ़ी गईं। वस्तुतः वागि बतकर हिन्दी क्षेत्र में जितनी भी दन्त कथाएँ और लोक कथाएँ प्रचलित हुईं उन सबके वादि स्रोत यही उक्त कथा संग्रह हैं जो अपने विभिन्न विकसित रूप में क्रमशः "कथा सरित्सागर" से कथा सागर" वैताल पंच विशतिका" से वैताल फकीरी " "शुक सप्तति" से तीता मैना किस्सा" और सिंहासन दात्रिशिका" से सिंहासन बत्तीसी की कथाओं के रूप में आईं।

नीति सम्बन्धी कथा संग्रह -

सम्पूर्ण परवर्ती संस्कृत-कथा साहित्य में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं, एक मनोरंजन प्रधान और दूसरी शिक्षा और नीति प्रधान। संस्कृत कथा-साहित्य में पहले प्रकार की कथाएँ बहुत ही सीमित और मानव सापेक्ष हैं परन्तु दूसरी प्रकार की कथाएँ संस्कृत कथा-साहित्य में असीम हैं। इसमें बार-बार पशु पक्षी सबकी कथा-साधन बनाया गया है जैसे "शुक सप्तति", "पंचतन्त्र", "क्षितीपदेश" आदि की कथाएँ।

"पंच तन्त्र" और "क्षितीपदेश" क्रमशः तराव्यों और चौदण्डी उताव्दी के वासपात्र की रचनाएँ हैं। लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनों नीति संबंधी कथानक संग्रह हैं और संस्कृत साहित्य की दो अमूल्य निधियाँ

है । इनका उच्च उद्देश्य नीति का स्पष्टीकरण है । इनके पात्र पूततः पशु पक्षी हैं और सभी मानव समवेदनाओं से युक्त हैं ।

भारतीय कथा परम्परा में "पंचतन्त्र" का विशेष स्थान है । समूचा "पंच तन्त्र" पाँच विभिन्न तंत्रों में १- मित्र भेद २- मित्र प्राप्ति ३- काकीसूचीय ४- सख्य प्रणालि ५- अपरीक्षित कारक" में संकलित है । ये प्रत्येक तन्त्र अपने में स्वतन्त्र हैं और प्रत्येक तंत्र के अपने उपदेश और अपनी नीति हैं । यह समूह नीति, कर्मादेश और कूटनीति, विभिन्न कथाओं के माध्यम से वाह्य हैं तथा प्रत्येक तन्त्र से अधिक से अधिक बीस कथारं तक वाह्य हैं । जैसे मित्र भेद तन्त्र में मूर्ख बानर कथा, बंगाल बुन्दुभि कथा, दन्तिरूप कथा, देव रूप परित्राजक कथा, वकबोर कथा, धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा, बानरचरक दम्पती कथा आदि कुल बाइस कथाएँ वाह्य हैं । इस ग्रन्थ का प्रमुख सपथ उपदेश देना है किन्तु इसके लिये पशु पक्षियों की कथा की जो प्रणाली जनार्ण गई है वह बड़ी ही प्रभावपूर्ण एवं मनोरम है । सब कथाओं के कथाकार पशु पक्षी हैं और कथाओं के पात्र बहु भेद हैं । ये कथारं अपनी शिल्प विधि के रूप में कथा सरित्सागर की मूर्ति हैं । अर्थात् कथा में कथाओं का कुशल जाना और एक कथा से दूसरी कथा की उत्पत्ति और विकास होना वही की शैलीगत विशेषता है । सम्पूर्ण कथाओं का मुख्य देश दक्षिण प्रान्त में महिलारोष नामक एक नगर और तंत्रों की उपकथाओं के देश, उसी के समीपस्थ वन, पहाड़ और नुहादि हैं । ये कथारं मानव जीवन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित न रहकर पशु पक्षियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन की नीति शिक्षा में प्रकाश डालती हैं । सब कथारं उपदेशात्मक शैली में कही गई हैं , यद्यपि कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णनात्मक है । वस्तुतः पंच तन्त्र

१- विष्णु शर्मा का "पंच तंत्र", संपादक- मन्नासात अभिमन्यु और पं०

सीताराम भट्टा, प्रकाशक शैलाङ्गीसात एण्ड सन्स, कबीड़ी गली, बनारस सिटी

सन् १९३१

की क्यारें क्या तथ्य की ध्यान में रखकर नहीं लिखी गई है वरन् इनका ध्येय इन कथाओं के साधन मात्र से कमर उठि राजा के दुष्ट भूत राजकुमारों की नीति कुशल और व्यावहारिक बनाना था। इस दिशा में पंच तन्त्र की क्यारें पूर्णतः सफल हैं। पंच तंत्र की कहानियां विभिन्न माथाओं में खुदित होकर सम्पूर्ण विश्व में फैली। सन् ५३३ में क्लोम बुरजीर्ड ने सर्वप्रथम पहलवी में इसका अनुवाद किया। विद्वानों का मत है कि "असिक सैता" की कहानियों का आधार भी पंच तन्त्र की कहानियां ही हैं।

पंच तंत्र की ही भांति हितोपदेश भी नीति-ग्रन्थ है तथा जिस उद्देश्य की लेकर पंचतंत्र की क्यारें आई हैं उसी उद्देश्य से हितोपदेश की भी क्यारें आई हैं। बंगाल के राजा फलतुन्द के आश्रित नारायण पंडित ने चौदहवीं शताब्दी में हितोपदेश की रचना की। इसमें चार प्रकरण हैं - पित्र लाभ, सुहृद् भेद, विग्रह और सन्धि। इन चारों प्रकरण में सब मिलाकर षड्भासोस क्यारें हैं जिनके द्वारा विभिन्न प्रकार की नीति सिद्धांत दी है। इसका मुख्य उद्देश्य उपदेश देना है। क्या कथन की शैली पंच तंत्र के सदृश है। प्रत्येक प्रकरण के मूल भाव या मुख्य उद्देश्य को केन्द्र बनाकर क्या वारम्भ होती है और उसी से अनुरूप प्रासंगिक क्यारें निकलती जाती जाती हैं। इसमें भी अचिरांत पशु पक्षियों द्वारा कही गई क्यारें हैं। क्या कथन अधिक साहस है यही कारण है कि यह ग्रन्थ अधिक लोक प्रिय है।

उक्त कथाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि एक मूल क्या समूह प्रकरण में जाति से अन्त तक चलती है। इसकी एक निश्चित शिष्टा होती है। इसकी परिपुष्टि में अन्य उपक्यारें और अन्त-क्यारें जाती हैं। समस्त कथाओं के पात्र प्रायः पशु पक्षी हैं तथा सम्पूर्ण

देव और क्षेत्र पात्र उपदेव और शिष्याग्रप कथाएं कही रहते हैं । फलतः पंचतन्त्र तथा शिष्याग्रप की कथाएं विशुद्ध रूप से नीति कथाएं हैं । इनका मुख्य लक्ष्य शिक्षा है और क्या तत्व इनके तात्पर्य मात्र हैं । फिर भी परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में ये दोनों नीति ग्रन्थ सदा ऊपर रहेंगे ।

काव्यात्मक कथाएं-

इस कोटि कथाओं में से सुबन्धु की "वात्सवदत्ता" वाणामट्ट की "हर्ष" चरित" तथा कादम्बरी और दंडी की "दशकुमार चरित" प्रमुख हैं । विद्वानों का मत है कि ये तीनों ही सतक कालों के शताब्दी में हुए । सुबन्धु की "वात्सवदत्ता" में श्वेत नायिका की का नाम प्राचीन है कथा विलुप्त सतक के मरिचक की उपज है । वाणामट्ट के "हर्ष" चरित की विद्वान लोग संस्कृत की प्राचीन वात्स्यायिका मानते हैं । हर्ष महाराज हर्ष की जीवन कथा सरस शैली में वर्णित है । वाणामट्ट की "कादम्बरी" संस्कृत साहित्य की अनुपम कृति है जिसमें जादुई प्रेम की सुन्दर भाँकियाँ दिखाई गई हैं । कादम्बरी काव्यात्मक कथा का उदाहरण है । "हर्ष" चरित में ऐतिहासिक घटनाओं की उपस्थिति किया गया है । "हर्ष" चरित की गणना वात्स्यायिका के अन्तर्गत तथा "कादम्बरी" की गणना कथा के अन्तर्गत होती है । कादम्बरी की अन्तीक्याएं उसकी मुख्य कथा के विकास में स्वाभाविक योग देती हैं । जयदेव की "गय चिन्तामणि" में कादम्बरी का अनुकरण किया गया है । दंडी के "दशकुमार चरित" में दश राजकुमार अपने अपने परीक्षणों का विविध अनुभव तथा प्रसंगीय पराक्रमों का मनोरंजक वर्णन करते

है । बंदी में तत्कालीन समाज की पैनी दृष्टि से देखा या इसलिए तत्कालीन समाज का चित्र व्यंग्य और विनीय से युक्त बड़ा ही सुन्दर तथा यथार्थ चित्रण कवि ग्रन्थ में किया है । तत्कालीन समाज की विविध प्रथाओं का भी बमत्कारी सकेत स्थान स्थान पर किया गया है ।

प्राकृत और अपभ्रंश में कथा का स्वरूप

संस्कृत की भाँति प्राकृत में भी उमें कवि कतिन मुक्तक और प्रबंध-काव्य मिलते हैं परन्तु इन मुक्तक और प्रबंध काव्यों में वात्स्यान या वात्स्यानक काव्य के तत्त्व बहुत ही कम मिलते हैं परन्तु महाराष्ट्री प्राकृत में "लीलुष्य द्वारा रचित" लीलावती कथा का स्थान वात्स्यानक काव्यों बहुत है । इसकी कथा भी गनीरंजक है । गीदावरी तट पर प्रतिष्ठान के राजा वात्स्यानक और सिंहा के राजा वात्स्यानक और शिलमघ की पुत्री लीलावती के प्रेम और विवाह का चित्रण कवि ने गाथा बद्ध रचना में किया है । यह गाथा बद्ध रचना प्राकृत की सबसे बड़ी देन है । फलतः संस्कृत कथा शैली से प्रक प्राकृत में गाथा का यह विकास स्वरणी रहित । इस कथा का कवि ने दिव्य मानुषी कथा कहो है । सम्पूर्ण कथा कर्तक काव्यमय शैली में प्रस्तुत की गई है तथा इस पर प्रबंध शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव है । इसके अंतर्गत और कथारं भी बाई है तथा कथा की एक सुत्रता देने में स्पष्ट रूप से कवि पर "कथा सरित्सागर" और "पंच तन्त्र" शिलीपेय की कथा शैली का प्रभाव लक्षित है ।

१-संस्कृत साहित्य का इतिहास- अत्यंत उपाध्याय, पृष्ठ ३६४

विद्वानों की शीघ्र से अपभ्रंश में लिखित बड़ा ही समृद्ध साहित्य प्रकाश में आया है। यद्यपि इसका अधिकतर काव्य है परन्तु इसके कथा काल के स्वरूप एवं उसकी परम्परा पर यथार्थ प्रकाश पड़ता है। बाठवों छताबूदी से लेकर पन्द्रहवीं- सोलहवीं छताबूदी तक की अपभ्रंश रचनाएं मिलती हैं यद्यपि पूर्ण उत्कर्ष १० वीं से बारहवीं छताबूदी के भीतर ही दिखाई पड़ता है। अपभ्रंश की सम्पूर्ण रचनाएं मुख्यतः तथा प्रबंध इन दो रूपों में मिलती हैं। मुख्य रचनाएं अधिकतर सूक्तिं बहुत एवं कई वाचार्थ के प्रचार के लिये लिखी गईं किन्तु इनके बीच बीच गुंजार एवं पोर रस की रमणीय मुख्य रचनाएं मिलती हैं जिनके द्वारा तत्कालीन लोक कथाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अपभ्रंश में साहित्य की रक्षा की दृष्टि से जैन, अपभ्रंश की स्थान सर्वोपरि है। आत्मानन्द काव्य की दृष्टि से इसमें प्रेम कथा "मठमिथिरी बरिउ" पदम भी बरिउ "धारित कवि की ७००७७७० एकमात्र कृति मिलती है। इसमें पदम भी के पूर्व जन्मों की कथाएं हैं। इसके अतिरिक्त भी बंद के एक कथा-शीर्ष का भी पता मिलता है। इसमें विद्वानों का कहना है कि कुरुष्व देव, पशु, पक्षी आदि पात्रों के माध्यम से अनेक उपादेशात्मक कथाएं हैं। इस पर भी प्रत्यक्ष रूप से वास्तव की रचना का प्रभाव स्पष्ट है।

जैन अपभ्रंश साहित्य में कथा रूप मूलतः काव्यात्मक रक्षा है तथा महाभारत की कथा से सम्बन्धित अनेक कृतियां मिलती हैं। इसमें बलकीर्ति का "हरिवंश पुराण" सबसे महत्वपूर्ण है। प्राकृत प्रबंध काव्य के अन्तर्गत "सुवचन्व" साहित्यिक महाकाव्य है। "महावीर चरितादि" जैन धार्मिक प्रबंधात्मक रचनाएं हैं तथा बहुदेव हिन्दी की सम्राट् कथा गय

पय मिश्रित कथा कृतियाँ हैं। मुक्तक के अन्तर्गत "गाथा सप्तशती" और "वज्र सग, स्मरणीय है। वपग्रंथ प्रबंधकाव्य में "पठमशिरी वरिठ" के अतिरिक्त "मधिसयत कथ" और विशुद्ध संत काव्य के अन्तर्गत "संवेस रासक" और वृत्तादि से सम्बन्धित कौन-कौनसे पद्यबद्ध शीटी शीटी कथारं मिलती हैं।

इन सबका प्रभाव परवर्ती कथा-साहित्य के कथा तत्त्व पर कितना पड़ा इसके उत्तर में हम मध्यकालीन हिन्दी वात्थान काव्य की रस सक्ती हैं तथा प्राकृत वपग्रंथ कथा- तत्त्व की हम उस मध्यकालीन वात्थानक काव्य के कथातत्त्व में ढूँढ सकते हैं। परन्तु हिन्दी के वादि-युग चारणाकास कथा वीरगाथा काल में इसका क्या प्रभाव पड़ा है, यह चिन्त्य है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के वादिकास में भी कथा तत्त्व और कथा-प्रवृत्ति दोनों अपनी सुन्दर रूप में हमें प्राप्त होती है। कुछ विद्वान तो इस काल की प्रेम गाथा और लोक- गाथा काल कहा है।

चारणा साहित्य में कथा-तत्त्व -

सम्पूर्ण चारणा साहित्य में दो शैलियाँ देखने की मिलती है। प्रथम प्रबन्धात्मक शैली तथा गीतात्मक शैली। प्रबंध काव्य साहित्य के अंतर्गत या और मुक्तक काव्य जनता की वस्तु थी इसमें वन्त कथाओं की थोड़कर अपनी मनार्जन में लाते थे। और नाच सम्प्रदाय और जैन धर्मावलम्बी अपनी धार्मिकता के प्रचार में समुपयोग करते थे। चारणा साहित्य, इतिहास, नाच, प्रबंध और दास्तान चार विधियाँ में विभाजित हैं। चारणा में इनकी परिभाषा इस प्रकार है दो है :-

जिण तिला में दराजी रहे तिली इतिहास कहावे ।

जिण तिला में कय दराजी सी तिली बात कहावे ।

इतिहास की कयय प्रसंग कहावे ।

जिण बातन में एक प्रसंग होय बपत्कारिक होय तिनका बात
वास्तान कहावे ।

इस प्रकार चारण साहित्य में कय की कविता वीर गय की वार्ता कहा गया है । इसी वार्ता की ही "वचन का" बात वीर स्थात कहा गया है । इन कथाओं की एक ही मूलभूत संवेदना है - कि कोई राजा किसी रानी से प्रेम करता है, इससे उसका विवाह होता है, पिरह की स्थिति वाली है एबीन होता है आदि ।

कथा के इन रूपों में लौकिक भावनाएं अधिक हैं ।

फलतः ग्यारहवीं से आठवीं शताब्दी के कथाओं वीर कथात्मक लोक रूपि ने लोक लोक गायकों की सृष्टि की है । डा० रामकुमार वर्मा ने चारण कास के उपरान्त ही इस सृष्टि कास की स्वतन्त्र लोक गायिका कास माना है ।

वपग्रंथ में पिछनाय सम्प्रदाय बात जयावना में वीराग्य कथा धार्मिकता के अन्य स्वरूपों की प्रतिष्ठित करे करने के लिये लोक कविगुणात्मक सृष्टि करते थे । दूसरी वीर प्रकृति, वपग्रंथ वीर बाद की चारण साहित्य के कथात्मक काव्य वीर वीर कय पवित्रवृत्त परिचरित वपरिचरित रूप में लोक रूपि में पुनः पित रहे थे । इन लोक-गायकों में गीतात्मकता

A descriptive catalogue of Bardic and Hist. ofical
1- manuscripts section- prose chronicle Pt.1 -Dr.L.P.Tassitory
page 6

2- हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन- डा० रामकुमार वर्मा, तीवरा
प्रकरण पृष्ठ १३४। १४७, साहित्य मन्त्र-५, फनेस रोड, लाहौर

ही प्रमुख विशेषता है। इसके अतिरिक्त इनमें जातीय सांस्कृतिक परंपरा, प्राकृतिक, सौन्दर्य, जीवन की सरसता और सरसता, वास्तविक प्रभाव तथा मानव और अमानव का संबंध इनकी अन्य विशेषताएं हैं। समस्त लोक गायारों तीन रूपों में मिलती है। पहला रूप पयात्मक दूसरा गयात्मक और तीसरा मिश्रित है।

पयात्मक रूप में सबसे प्रसिद्ध लोक गायारें डोला मारुरा दुध और माधवानल कान कंदला हैं। इनके अतिरिक्त "होर रांका" कुतुब सतक, सिंहासन बत्तीसी, पंच सहेली राहघ, मैनासत, चन्दन मलियागिरी की बात, त्रिया विनीव भी सुन्दर पयात्मक लोक-गायारें हैं।

गयात्मक रूप में "वैताल पञ्चोसी" सिंहासन बत्तीसी की कथा "जंगल हंसिणी की कथा" और "फुटकर वाताही संग्रह" हैं।

मिश्रित रूप में "मदन उत्तर" चन्द्र कुंवर की बात "बोबा सीरठ की बात" "सदा बह राव लिंगा की बात" इनके सुन्दर उदाहरण हैं। वस्तुतः इन सबके निर्माण में संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य, दन्त कथाएँ, इतिहास और कल्पना का सामूहिक हाथ है। 'डोला मारु' और -

- १- डोला मारुरा दुध- काशी ना० प्रका० सभा से प्रकाशित १९६९ वि०
- २- सम्पादक, एम० वार० मजूमदार : वीरियन्ट इन्स्टीट्यूट, गडोपा
- ३- राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, प्रथम भाग, पृष्ठ १५२, १५३ पं० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी विभागीय, उदयपुर १९४२
- ४- वही पृष्ठ ५०
- ५- बार्डिक एण्ड हिस्टो० सर्वे ऑफ राजपूताना सेक्शन, २ पार्ट १ पृष्ठ ३६
- ६- राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) पं० मोतीलाल मेनारिया पृ० ३६

रांफा पर प्राकृत, अपभ्रंश और चारणकास के कथात्मक काव्य की छाप है ।

इस प्रकार इन लोक गाथाओं ने अपना समस्त पूर्ववर्ती कथा साहित्य के प्रकारों का अपने रूपों में इतनी सुन्दरता से सम्मेलन किया है कि उनमें जहाँ एक ओर विभिन्न कथा शैलियों का समावेश है तो दूसरी ओर उपदेश, नीति, शिक्षा, इतिहास व्यक्ति और समाज संबंधी सादासाध स्थापित हुआ है । इसका मुख्य कारण है कि साहित्य का कला-पक्ष बहुत सरलता से जन रुचि में स्थान कर लेता है ।

“ झोला मारु ” और मांझानत काम कंवता ”

इस सबका धरातल मुख्यतः प्रेम है । इन प्रेम गाथाओं का स्थान जन-भाषना में इतना है कि अन्य जनपदीय शैलियों में इसके दर्शन होते हैं । अतः यही लोक-गाथा कास हमारे जनपदीय साहित्य का विकास कास है । लौकिक प्रेम कथाओं में इनका पूर्ण उत्कर्ष हुआ और प्रेमास्थानक काव्यों में इनका पटविसान हुआ ।

बहु मध्यकालीन हिन्दी वास्थानक काव्य -

हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक दिनों में एक ओर तो पश्चिमी हिन्दी में वीर एवं प्रेम काव्यों का निर्माण हुआ और दूसरी ओर पूर्वी हिन्दी में सहजिया सिद्धों की साक्षात् परक रचनाएं प्रणीत हुई । राजस्थान वीर-प्रभु भूमि के चारणों ने इतिहास लोक परम्परा तथा अपनी कल्पना के आधार पर लोक कथा काव्यों का विशाल निर्माण किया । इन सबका वर्ण्य विषय प्रायः एक ही होता था । इन चारण काव्यों में रासी

१- हिन्दी साहित्य का इतिहासिक व्युत्पत्ति, पृ० २४५, डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य मन्त्र, लाहौर ।

ग्रन्थों का प्रमुख स्थान है। ये ग्रन्थ अपभ्रंश के "रास" की परम्परा में आते हैं। इसमें "वीरसतदेव" तो प्रभाव प्रेम काव्य है। इसमें राज स्तुति, दरबार वर्णन, शीर्य प्रशंसा तथा युद्ध, तत्कारों की कनकनाष्ट, हाथियों की चिन्हाड़, घुसवारों की वरिता आदि का वर्णन है। इनमें कथा एवं वास्थान वर्णित हैं।

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रेमास्थानक काव्य सबसे अधिक मिलते हैं। प्राकृत वीर अपभ्रंश में आये हुए प्रबंध काव्य या वास्थान काव्य विशुद्ध प्रेम के धरातल पर मिलते हैं। हिन्दी के चारण काल में भी उसकी प्रायः वही स्थिति रही लेकिन लोक गाथाओं में वह प्रेम विशुद्ध लौकिक धरातल पर आया तथा उप पर अन्याय लोक गाथाएं वीर प्रेम-कथारं प्रतिष्ठित हुईं। मध्यकालीन हिन्दी वास्थानक काव्यों में इन्हीं लौकिक-कल्पित कथा मिश्रित प्रेम कथाओं में वाध्यात्मिकता जोड़ी गई और इसके सम्पर्क से हिन्दी में जो वास्थानक काव्य आये, उनमें कथा शिल्प वीर भावात्मिकता दोनों बपूर्व ढंग से सिद्ध हुए। ये मध्य कालीन हिन्दी वास्थानक काव्य जैसे कुतुबन की "मुगावती" बायली का "पयावत" मंकन की "मधुमास्तो उमन की" चित्रावती "मूर मुहम्मद की" इन्द्रावती "वीर सुतहरन की" पुष्पावती "आदि जहाँ एक वीर वर्णनों चित्रणों वीर काव्यात्मक रसात्मिकता में उत्कृष्ट हैं : वहाँ दूसरी वीर कथा का शिल्प भी परम आवश्यक है। "पयावती, मुगावती, मधुमास्तो, इन्द्रावती" आदि प्रेमास्थानों का कथा शिल्प प्रायः एक ही भाँति है। इन सबकी मूल कथा वारम्भ से अन्त तक विभिन्न वारीह अवरोधों के साथ चलती है। इनके पात्र, कथानकों की संघियाँ तथा इनके वर्णन सब प्रायः एक ही प्रकार के हैं। परन्तु मंकन की "मधुमास्तो" के कथा-शिल्प

पर "कथा सरित्सागर" और छितीपदेश "के कथा शिल्प का प्रभाव है।
इस प्रकार उक्त सभी प्रेम कथात्मक कृतियों में कथा-तत्त्व और कथा-शिल्प
दोनों के वर्णन होते हैं।

यहां कथा - तत्त्व इतनी कलात्मकता से प्रस्तुत
किये गये हैं कि उस समय जन्मा उत्तम बड़े- बड़े प्रेमाख्यानों की अधिकतर कथा
की खिताबा और वाग्वृत्त से पड़ती और गुलती रही होगी, वाक्यात्मिकता
के वाग्वृत्त से नहीं। इन प्रेमाख्यानों में कथा-तत्त्व युग की बहुत वस्तु है और
उनकी वाक्यात्मिकता कवि की अपनी वस्तु रही, जिसका संयोजन वह स्वान्तः
सुखाय के लिये करता रहा होगा तथा इस विकास के पीछे प्राकृत और अपभ्रंश
कथा तत्त्व की प्रेरणा संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य के तत्त्वों की प्रेरणा
से अधिक रही है।

चारण साहित्य में छेली के तो वर्णन ही जाते हैं
परन्तु उस कास में बात मुख्यतः पय ही के लिये प्रयुक्त होता था। यहाँ
बाताँ साहित्य मुख्यतः प्रभाषा गय की वस्तु है और इस बाताँ पर प्राचीन
संस्कृत की कथा बाताँ छेली की पूरी छाप है। यह साहित्य विशेषकर पुष्ट
वागीश की बल्लभ सम्प्रदायी वैष्णव से सम्बन्धित है। इसमें वैष्णव भक्तों
के जीवन सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन कथाओं के माध्य से हुआ है। इन
कथाओं का पय बल्लभ सम्प्रदाय के प्रति वाक्या उत्पन्न करता है। बाताँ
साहित्य के मुख्यतः दो प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं १-चौरासी वैष्णव की बाताँ^१
२- दो सौ वाक्य वैष्णव की बाताँ।

चौरासी वैष्णवन की बाताँ में वैष्णव के जीवन
सम्बन्धी चौरासी बाताँ संगृहीत हैं। इन बाताँओं में वैष्णव भक्तों के जीवन

१- गोकुलनाथ, लक्ष्मी वैकुण्ठेश्वर, कल्याण बम्बर, सं० १९८५

सम्बन्धी किसी एक घटना से अधिक का विवरण इनमें नहीं मिलता केवल एक हीटो से बात पर कथात्मक के पुष्ट में जाता है । इनमें न कोई कथा तत्त्व न जीवन का कोई संतुलित पता ही । दो ही वैष्णव की बातें मिलती हैं : धार्मिक धरातल से बाहर है लेकिन इनकी संवेदनाओं में कुछ अधिक कथा-तत्त्व जाये हैं । भाव-पदा में मानव अनुभूतियाँ और उनके चरित्र चित्रण की और वाग्द्वय भी है जैसे वेश्या की बेटी, दो ठग, दो प्रेत, एक वेश्या ; एक और जाति बातें नीराखी वैष्णव की बातों में से लगती हैं उनमें अधिक से अधिक क्या तत्त्व जाये हैं इनमें घटना, आरोप, अवरोह तथा इनके विकास की सुझाव भी है परन्तु फिर भी वैष्णव की सर्वात्मकता है और श्री ठाकुर जो परम महान हैं । ऐसी की दृष्टि से ये बातें वर्णनात्मक ढंग से कहें नहीं हैं इनमें कौतुक और कितासा दृष्टि पर कोई विशेष बात नहीं पड़ता । फलतः इन बातों में क्या तत्त्व केवल इतनी ही है कि यहाँ जीवन की किंचित घटनाएँ विवरणों की अभिव्यक्ति क्या के माध्यम से हुई है । यह हिन्दी गद्य में प्रथम प्रयास है जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बातें क्या तत्त्व में दृष्टकर हमारे साहित्य में आई हैं ।

भारत में मुस्लिम साहित्य का प्रभाव हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक तथा व्यापारिक फलित पर बहुत पड़ा है । भारत में मसूद गजनवी के समय से मुस्लिम साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । यद्यपि अफगानिस्तान, फारिस तथा पश्चिमी एशिया के अन्य देशों में

इतिहास कविता तथा साहित्य के अन्य प्रेमी रचना स्वतन्त्र रूप से हुई । भारतवर्ष की कहानियों के अनुवाद फारसी, उर्दू, तुर्की आदि अन्य भाषाओं में हुए हैं । हिन्दी साफारसी के उस रूप से जो मुसलमानों के भारत में आने के बाद विकसित हुआ, विशेष सम्बन्ध है । भारत में ईरानी भाषा का प्राचीनतम लेखक बत्तरुनी फारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं का विद्वान था । ११ वीं सदी के उत्तरार्ध में लू सलह तथा बसुस हसन जैसी ने महाभारत का अनुवाद फारसी भाषा में किया । फुल काल में फारसी राजाजय प्राप्त होने के कारण फारसी साहित्य की अभिवृद्धि व्यापक रूप में हुई । अक्षर के शासन काल में बदाउनी, नसीब खाँ, फौजी आदि ने महाभारत की कथा के फारसी अनुवाद उपलब्ध किये । बदाउनी, नसीब खाँ तथा हाजी सुल्तान ने रामायण की कथा का अनुवाद फौजी ने नल दमयन्ती की कथा का अनुवाद किया । तात्पर्य यह है कि मुगलकालीन अनेक अनुवाद कर्तव्यों का उत्कृष्ट इतिहासकारों ने किया है । इस समय की संस्कृत तथा हिन्दी-कहानियों का समुचित प्रभाव मुसलिम जनता पर पड़ा । सूफ़ी मुसलमान कवियों ने भारतीय हिन्दू कथाओं के आधार पर बीस बाल की कविता में कुछ कहानियाँ लिखी । इस सम्बन्ध में मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंज़न आदि रचनाकारों का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

भारतीय कथा-साहित्य का भी व्यापक प्रभाव मुसलिम साहित्य पर पड़ा उसके दर्शन इस काल की रचनाओं में दृष्टिगोचर

१- This shows at glance what different groups of scholars were employed in the work of translations. Thus the deep hold that Sanskrit and Hindi love had taken on the Muslim taste. is without a parallel in the history of the Mughal rule in India.

-A history of Persian language and literature at the Mughal court pt. III - Mohd. Abd'ul Ghani, pp 34, 35.

होते हैं। हर्षनिशासी ने संस्कृत "शुक सप्तति" के आधार पर "सूतीनामा" और फुलवान को रचना की। नशतरत्ती ने "गुलशन हरक" रीयूयद स्वरबल्ल ने "तोता कहानी" तथा हुसैनी ने "कलताके हिन्दी के नाम से संस्कृत "हितोपदेश" का अनुवाद किया। कलन का तात्पर्य यह है कि मुसलिम काल में जिस भारतीय कथा साहित्य का विकास हुआ उसमें देशी और विदेशी सब कथाकारों का योग था। इस काल की कहानियों की कथा वस्तु तथा वातावरण में हिन्दू तथा मुसलिम दोनों संस्कृतियों का प्रतिबिम्ब मिलता है।

संक्षेप में हम यह कह सकती हैं कि भारतीय कथा परम्परा का विकास इस प्राचीन देश में वादिकाल में ही हो गया है। वैदिक काल से लेकर हिन्दी के मध्य युग तक कथा साहित्य के वर्धन होते हैं। इस प्राचीन काल में वैदिक, संस्कृत, पासी, प्राकृत, अपभ्रंश, चारुणकाल तथा मध्ययुगीन हिन्दी आस्थानक वादि में कथा की विभिन्न शैलियाँ मिलती हैं तथा यह भी विदित होता है कि कथा और चरित्र के रूपों के परिवर्तन के साथ साथ जिस भाँति कथाओं, आस्थानों के विषय और तथ्य में भी परिवर्तन होते गये।

वैदिक काल में कथारं अपने बीच रूप में, देवताओं की स्तुति, वाघ्यात्म जिज्ञासा, और यज्ञादि के मंत्रों के बीच में किसी हुई थी और उनका धर्म विभुद धार्मिक कथा उपनिषद काल में कथाओं की मुख्य संवेदनारं वाघ्यात्म ज्ञान के स्थि, पौराणिक काल में जीवन अपने सम्पूर्ण रूपों में अभिव्यक्त हो उठा है। धर्म, समाज, राजनीति का एक समावेश साहित्य में हुआ है फलतः यहाँ से वन्त कथारं प्रारम्भ होती हैं। जीवन और

साहित्य में कथा ने महत्वपूर्ण स्थानग्रहण किया है। इसका उदाहरण हमने सम्पूर्ण परवर्ती संस्कृत - कथा साहित्य में देखा है। पाणि साहित्य में कथाओं का वाक्यार कुब्र हीटा है। प्राकृति और कथप्रंश में कथारं लीकिक तथा जीवन और यथार्थ के बराबर पर वार्ड है फलतः मनोरंजक कथाओं के साथ ही प्रमास्थानी की पुष्टि हुई। चारणाकात एवं गाथा कात में कथा का उत्कर्ष हुआ तथा मध्य युग के प्रमास्थानी और वात्तावी में उसका पर्यवसान हुआ।

द्वितीय युग -

वायिकात में कथाओं का उद्देश्य ज्ञान-विज्ञान के गम्भीर तत्त्वा और उनके सिद्धान्ता का स्पष्टीकरण करना रहता था। दार्शनिक तथा धार्मिक गूढ़ विषयों की गल्प, कहानियों पर दृष्टान्तों के द्वारा जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। जैसे कुम्भेद में देव-कथार्थ प्रतीकात्मक शैली में तथा दंत-कथार्थ संवाद शैली में मिलती है। इनका मुख्य उद्देश्य अपने प्रतिपादित विषय की इन कथाओं के माध्यम से सरल और सुबोध रीति से पाठकों की धृदयंगम करा देना। अतएव इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इन कथाओं की भाषा, शब्द-व्यय, वाक्य-विकल्पा विन्यास वादि की विशेष रूप से बीकाम्य और प्रभावशाली बनाया जाता था। भारत में वज्ञात कास में सहस्रों कथाओं, वात्थानी एवं दृष्टान्तों की स्वस्थ परम्परा जन-मुलम तथा सुबोध भाषा में उपलब्ध होती है। संस्कृत साहित्य में जैसे हम पहले कह चुके हैं देव कथाओं के परचात् मनुष्य तथा ऋषि पणियों की वाधार बनाकर

वाक्याधिकारों की बात के छोड़े गये थे प्रस्तुत की गई । अवतारवाद के स्थापन से पौराणिक कथारं तथा अन्तः कथारं बड़े सुन्दर और मनोहारी ढंग से व्यास शैली में लिखी गई । इसके बाद कथा साहित्य नीति- कथारं तथा ऐल कथावी में स्फुट हुआ । नीति- कथावी का उद्देश्य नैतिक शिक्षा था तथा लोक कथावी का उद्देश्य रसिक जीों की वाह्लादित करता था । इनमें रसिकता एवं शृंगारिकता के साथ शौर्य-वीर की मिलाकर राजा महाराजावी के चरित्रों की आलंकारिक शैली में सुन्दर ढंग से संजयिया गया था । राजा मोज, वीर विक्रमादित्य इत्यादि लोक प्रिय राजावी के सम्बन्ध में कई कहा-नियां प्रवर्तित हुई ।

भारतन्धु के पूर्व उपदेश तथा गम्भीर विषयों के स्पष्टीकरण के उद्देश्य के अतिरिक्त मनोरंजन के लिये भी बैताल पच्चीसी " शिंहासन पच्चीसी " और " समा विलास " आदि कहानियां की रचनाएं हुई । जन साधारण इनका कार्य क्षेत्र तथा जीवन में विभिन्न रतों का संवार इनका अभीष्ट रहता था । अतएव इस युग में कथा कहानियां की भाषा तथा शैली की अत्यन्त बीकाम्य और सरल बनाया गया । न ती वाक्य ही लम्बे थे न सामासिक शब्द हो कठिन थे ।

कथा की प्रथणीयता या दूसरों की प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर रहती है । अतएव कहानी में शब्द चयन, पद-पित्री, सुसंगठित वाक्य विन्यास, फलती हुई अंकार परिकल्पना, योजना, सजावट, व्यंजना, शक्तियों के सफ़ल प्रयोग के अतिरिक्त वर्णन शक्ति व प्रबंध-लयन-शक्ति अत्यन्त आवश्यक है ।

१- गुलाबरायः सिद्धान्त और वचन- काव्य के रूप : पृष्ठ २१७

२- वही वही : पृष्ठ २१६

वास्तविक युग में कथा, कहानियाँ गल्प तथा वास्तव्यायिकाओं की सख्त सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। साहित्य का कोई ऐसा इतना अधिक कासाधारण द्वारा नहीं अपनाया गया जितना कि कथा-साहित्य। जन जीवन और विश्व का कोई ऐसा चक्र नहीं जहाँ कथा-साहित्य दिव्य मुन्वारी न बजी हो। इस स्थिति में जन जीवन की समीक्षा कथा-कहानियों की सफलता की प्रश्न उत्पन्न है। आजकल जीवन-संघर्ष के अधिक विषय हो जाने से मानव-जीवन अत्यधिक संकुच हो गया है। न्यून-नम समय में अधिकतम आह्लास की प्राप्ति आज के साहित्यकारों का इच्छा है। काः इस दृष्टिकोण से वास्तविक कथा साहित्य की लोकप्रियता तथा लोकप्रियता है। स्थान संकीर्ण में अधिकतम प्रभावोत्पादकता लाने के लिये विशेषतः कहानियों में तीव्रता, घात और उत्सुकता का पूर्ण निर्वहण अपेक्षित है। इसमें व्यर्थ की कल्पनाओं की उड़ान और भ्रूषादम्भ के लिये कोई स्थान नहीं। एक वाक्य ही नहीं, एक शब्द की भी अपेक्ष्यता वहाँ बांझ नहीं है। यहाँ हिन्दी कथा-साहित्य के सम्राट मुन्शी प्रेमचंद का कथन दृष्टव्य है।

एक शब्द और एक भी वाक्य ऐसा नहीं होना चाहिए जो गल्प के उद्देश्य को स्पष्ट न करता हो। उसके अतिरिक्त कहानी को भाषा बहुत ही सरल और सुनीय होनी चाहिए। वास्तव्यायिका जन साधारण के लिये लिखी जाती है। उन्हास के तीन पदों हैं जिनके पास

१- साहित्य का उद्देश्य : पृष्ठ ३८

रूपया है, और समय भी उन्हीं के पास रहता है जिनके पास धन होता है । कहानी यह ध्रुवपद की तान है जिसमें गायक महफिस शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिता देता है, एक राण में विघ्न की हतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता । वाधुनिक डायरी पत्र या टिप्पणियों की शैली द्वारा जो कहानियाँ प्रस्तुत की जाती हैं उनमें कहानियों का मुख्य उद्देश्य जन-सुखता की पूर्ती नहीं कर पाता । इस सत्य का प्रतिपादन मुन्शी प्रेमचन्द ने इस प्रकार किया है :- “ यह लैजी आस्थाविकावी की नकल है । इनसे कहानी बनायास ही जटिल और दुर्वाच ही जाती है । यूरोप वातों की देसा देती यन्त्रों द्वारा डायरी या टिप्पणियों द्वारा भी कहा... याँ लिखी जाती है। मैं स्वयं भी इन सभी प्रयासों पर रचना की है, पर वास्तव में इससे कहानी की सरलता में बाधा पड़ती है । ”

हिन्दी साहित्य में द्वितीय युग के पूर्व तक क्या साहित्य में वर्णनात्मक शैली सर्वाधिक उपयुक्त रही । यह बीच बीच में प्रसंगानुसार भाषात्मक एवं क्वचित मात्रा में विवेचनात्मक शैली के भी दर्शन हो जाते हैं । फिर भी मुख्यतः भाषा की भाषात्मक शक्ति का कार्यक्षेत्र कहानियाँ रहती हैं । कहानियों में भी उनके विषय तथा प्रकार के अनुसार परिवर्तनीय वांछनीय है ।

वाधुनिक कहानियों के द्वितीय वर्ण में बहुत सी कहानियों में सम्पादक शैली का सुत्रपात हुआ । इस युग में कहानियाँ

१- साहित्य का उद्देश्य : पृष्ठ ३८

२- यही : पृष्ठ ३८

में कलात्मकता के साथ समीपता की भी कमीदि हुई । जयशंकर प्रसाद (ग्राम १९११) विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक (रत्नावंधन १९१३) चन्द्रधर शर्मा गुप्तरी (सुखमय जीवन : १९११) प्रेमचन्द (पंन परमेश्वर : १९१६) इत्यादि कलाकारों ने कहानियों की भाषा-शैली में नवीन आविष्कार किये । इनके अतिरिक्त राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (कानों में काना : १९१३) चतुरसेन शास्त्री (गृह लक्ष्मी : १९१४) रायकृष्ण दास (१९१७) बंड़ीप्रसाद कुपेस (१९१६) सुवर्धन (१९२०) इत्यादि उत्कृष्टतम कहानीकार तथा शैलीकारों की अवतारणा भी हुई । निःसन्देह यह द्वितीय उत्थान कहानी कला तथा शैली में वर्णित व्याख्या और चित्रण हो जाने से नाटकीयता का वा जाना भी स्वाभाविक है ।

द्वितीय-युग में ही कहानी के क्षेत्र में तृतीय उत्थान सन् १९२२ में जेहन शर्मा उग्र के पदार्पण से हुआ । उग्र उत्कापात की तरह राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों की समस्याओं की छाव में लेकर आये । उनके पश्चात् ही भावतीप्रसाद बाजपेयी (१९२४) विनीतशंकर व्यास (१९२५) वाचस्पति पाठक आये । द्वितीय युग के लगभग पटाक्षौप के समय १९२८ में जैनन्द्रकुमार की " सत और फांसी " कहानी प्रकाशित हुई जिसमें सूक्ष्म मनो-विश्लेषण की भाषा शैली स्फुटित हुई । निःसन्देह, द्वितीय जी की प्रदत्त भाषा की पृष्ठभूमि पर हिन्दी कहानियाँ ने सामन्य-गुणक युगों से पुनः प्रवर्तन किया और तरुण कहानीकारों के साथ नई शैलियाँ सामने आई ।

इस प्रकार द्वितीय युग के अवसान तक कहानियों के क्षेत्र में तीन प्रमुख भाषा शैलियाँ पृष्ठगत होती हैं । वर्णनात्मक शैली,

मावात्मक शैली तथा सम्भावनात्मक या नाटकीय शैली । १९वीं शताब्दी का उतरार्ध वाष्पनिक हिन्दी-उपन्यासों का शिखरकाल था तथा तत्कालीन हिन्दी पाठकों की रुचि भी वही दिशु- सुलभ, मनोरंजक, कल्पना प्रधान, रोमांचकारी, इतिवृत्तात्मक उपन्यासों की ओर थी । वाष्पनिक युग में सामन्तशाही पटाभ्र एवं लोक जीवन की प्रतिष्ठा से सहानुभूति तथा मनोरंजन का प्रमुख साधन नाटकों की ओर सर्पितः दृष्टपथ हुआ । नाटकों के लिए रंग मंच की व्यवस्था कष्ट साध्य ही नहीं ; द्रव्य साध्य प्रतीत होने लगी । इस स्थिति में जन साधारण में कहानियों तथा उपन्यासों की गौरव प्राप्त हुआ । उर्ध्वः शून्यः क्या साहित्य में भी नाटकों की कविता के रागात्मक एवं कल्पना-सत्त्वों की कलात्मक रंग से प्रस्तुत किया जाने लगा । फलतः इन परिस्थितियों में उपन्यासों की अक्षुप्तपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई ।

उपन्यास के क्षेत्र में नये लघुकाव्य का बीजणीश भारतेन्दु युग में देवकीनन्दन खत्री तथा किशोरीलाल गोस्वामी के द्वारा हुआ । अतः उन दिनों "देवारी, जातुसी, तिल्ली", उपन्यासों के द्वारा भाबू देवकीनन्दन खत्री (चन्द्रकान्ता, बन्धुकाव्य, बन्धुकाव्य सन्तति) किशोरीलाल गोस्वामी (कुसुम कुमारी, राजकुमारी, चपला, सारा) गोपाल गहमरी (बहुर बंधला, मानुसती) ने उपन्यास लिखे । इसी के साथ १८८६ में लाला भीमियासदास फत "परीक्षा गुरु" प्रथम मौलिक उपन्यास प्रकाशित हो चुका था ।

उपन्यासों का नया युग सन् १९१८ से प्रारम्भ होता

है। मुन्शी प्रेमचन्द का प्रथम सामाजिक उपन्यास "सेवा सदन" समाज की प्रमुख नारी समस्या की लेकर नवीन चेतना गर्म-स्फूर्ति से होती तथा चित्रण-कला के साथ हिन्दी उपन्यास जगत में उपस्थित हुआ। "सने हिन्दी उपन्यासों के द्वितीय उत्थान की सूचना दी। प्रेमचन्द पर रुसी साम्यवाद तथा देश के राजनीतिक वादों-तर्कों का प्रभाव पड़ा। वास्तव में मुन्शी प्रेमचन्द किसानों, मजदूरों, विधवाओं, पीढ़ियों, कंगालों और कंगालों की अपनी कहने सुनने का कवसर मिला और वे मुन्शी प्रेमचन्द के माध्यम से बोले। मुन्शी प्रेमचन्द जो किसानों, मजदूरों के पूर्ण रूपेण हिमायती थे। प्रभाव, कर्म धूमि, रंगधूमि, निर्मला, गीदान में उनके सुलकर दर्शन होते हैं।

प्रसाद जो "कंकाल" सितली "हरावली (वपुण्)" यथार्थता के साथ संस्कृत गर्भित काव्यमयी नहीं होती की उद्भावना की। उसके वित्तिरिक्त शिव पूजन सहाय, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक," चंडीप्रसाद द्विवेदी, वृन्दावनलाल वर्मा आदि उत्तेजनीय हैं।

आधुनिक बुद्धिवादी तथा आर्थिक महत्ता प्रधान युग में हृदय के साथ मस्तिष्क की भी चटुआ-तृप्ति की वांछा की जाती है। सामाजिक जीवन के विग दर्शन में उपन्यास समाज शास्त्र का ग्रन्थ बनता जा रहा है। उसमें उपयोगिता और गम्भीरता का भी समावेश हो रहा है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और आर्थिक विवेचनों की स्थान मिला है। अतएव चट्टोपाध्याय एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के मनोवैज्ञानिक चित्रण और विश्लेषणों के स्फुरण तथा प्रभाव से वैज्ञानिक तर्क वितर्क पुरा विश्लेषणात्मक होती का

१- डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन : पृ० १६०

२- डा० रामरतन मटनागर : कबली उपन्यास समाज की वास्तविकता की वांछा का ग्रन्थ बन चला है।
से बढ़कर

"- साहित्य- समीक्षा : पृ० १३६।

प्रादुर्भाव हुआ। द्विवेदी युग के अवसान पर हिन्दी-साहित्याकाश के पितृतिज पर प्रथमतः जैनन्द्, जीश्री, कौम्य आदि कलाकारों के रूप में उन शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। इससे वाङ्मय जीवन के वर्ण्य तथा चित्रण के साथ वर्त्तमानों की मार्मिक विवेचना का सूत्रपात हुआ। उग्र ने "चन्द स्त्री" के सतत से हिन्दी संसार की गर्वणा नवीन पत्र शैली से परिचित कराया। द्विवेदी युग में पाठक इतना सीधा साधा नहीं रहा कि लेखक की प्रत्येक बात पर अंध विश्वास करे। पाठकों के ज्ञान की सीमा गहन तथा गम्भीर हो गई। मानस के सूक्ष्म भावों का उद्घाटन करने में अक्षराल बहु प्रभावों से नन्द भी प्रसाद, प्रमोद, सुदर्शन आदि की कल्प की कारीगरी से परास्त हो गये। भगवतीचरण वर्मा, जैनन्द्, हस्ताचंद जीश्री, कौम्य आदि ने उस परम्परा को आगे बढ़ाया।

वाङ्मयिक उपन्यासों में जापनीयान्त एक ही शैली प्रवाहित नहीं होती। वस्तु पात्र तथा परिस्थितियों के अनुसार शैलियाँ में परिवर्तन होती रहती हैं। कथा-सूत्र एवं अन्य तत्त्वों (पात्र, कथापद्धति, देशकाल, शैली, उद्देश्य) की परम्परा संगति का ध्यान रखने के दायित्व में कथाकार का व्यक्तित्व अधिक उमर नहीं पाता। यही कारण है कि शैली में कोई विशेष स्थान नहीं है। कतिपय महाप्राण व्यक्तित्व ही शैली के रूप में निरंतर पाते हैं। शैली की विविधता, जीवन-विषमता सापेक्ष होने के कारण कथा-साहित्य विशेषतः उपन्यासों की मानव-जीवन के चित्र की संज्ञा प्राप्त है। ज्ञातः स्वाभाविकता का यथा साध्य निर्वहण करने के लिये

१- श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन : पृ० १६२

२- यशो : पृ० १६३

वस्तु, देश-काल और परिस्थिति के अनुसार शैलियों में विविक्तता आ ही जाती है। गद्य शैलियों के निर्माण में तथा विकास में कथा-साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। द्विवेदी जी के कालान के पूर्व ही प्रेमचन्दोपर उपन्यास-कारों में कई महान प्रतिभाएं उदित हुई, जिनमें जेन्द्रकुमार, सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन "वीर्य", इलाचंद्र जोशी, मावतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ बसक आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग के प्रमुख कथाकार और उनके नवीन प्रयोग -

पं० किशोरीदास गोस्वामी भारतन्तु युग के उपन्यासकारों की परम्परा का द्विवेदी युग में कुशलता पूर्वक निरवाह करने वाले अग्रगण्य हिन्दी के प्रारम्भिक मौखिक उपन्यास-कार हैं। उन्होंने १८६० में 'सवर्ग कथा' उपन्यास से इस क्षेत्र में प्रारंभ किया और अन्त तक वे उपन्यास ही लिखते रहे। उन्होंने ६५ उपन्यास लिखे। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद तथा गोपातराम गहमरी की छोड़कर इनका ही स्थान आता है। गोस्वामी जी के प्रमुख उपन्यास- द्विवेदी युग में - भ्रिणी, कुसुम कुमारी, तारा, राजकुमारी, चपला, ललनऊ की कन्न, तरुणा तपस्विनी, सीतिहा ठाह, वै प्रेम मयी, पन्ना दाई, हनुमती, सावण्यमयी, चन्द्रावती, रजियां बेगम आदि हैं।

गोस्वामी जी ने सामाजिक, ऐतिहासिक तथा शैक्षारी - ऐसे सभी कोटि के उपन्यासों की रचना की है। फिर भी इनके उपन्यासों की मूल ध्वनि शैक्षारी ही है। उनके जीवन और वृत्तियों का पूर्ण प्रतिबिम्ब उनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। घूम फिर कर वह नारी चित्रण

पर ही जा जाती है। इन्होंने पात्र तथा वातावरण का ध्यान न रखकर विभिन्न भाषा शैलियों का प्रयोग किया है। मुसलमानी वातावरण में फाँसकर उनके हिन्दी पात्र भी उर्दू-फारसी दा हो जाते हैं। उनके उपन्यासों में ज़रबो फारसी के शब्दों के साथ संस्कृत के उर्दू भी मिलते हैं। फिर भी यह सत्य है कि उनकी भाषा की वैयक्तिकता का रूप गुणठिल नहीं हो सका है^१।

गोस्वामी जी की भाषा शैली व्यावहारिक शब्दों तथा घरेलू जीतबाल की भाषा पर आधारित है। नाटकों की भाँति उपन्यासों में भी रंग मँव होता है। अन्तर यही है कि प्रथम में वह बाह्य और द्वितीय में अन्तः रहता है। गोस्वामी जी अपने उपन्यासों में स्वयं सूत्रधार बनकर पाठकों का निर्दिष्ट एवं मार्ग दर्शन करने तथा उनका मत जानने के लिए साथ साथ चलते हैं। हिन्दी उपन्यासों में कला सूत्र की सम्भावनाओं के द्वारा वागें बढ़ाने की प्रक्रिया का भीगणेश जी गोस्वामीजी ने ही किया था। चुहुत, वाक्यदम्पता और परिहास इन सम्भावनाओं का वैशिष्ट्य है। उनकी इस शैली में उनके उपन्यासों में सप्राणता लाने में योग दिया है। गोस्वामी जी की वर्णनात्मक शैली उर्वी एक ही नहीं रहती है। उनकी रसिक वृत्ति के अनुसार जहाँ सख्य सरस सुन्दर और भाव विभीरु कारक प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं, वहाँ उनके वर्णन में गति और शक्ति जा जाती है। हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू - फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता होने के कारण गोस्वामी जी की इन भाषाओं का विभिन्न मिश्रण हो गया है। हिन्दी-व्याकरण की वृत्ति

देकर गोस्वामी जी ने विदेशी शब्दों का राष्ट्रीयकरण करने का बृद्धि पूर्ण प्रयत्न किया है। संस्कृत के वस्तु और विसर्ग वरबी फारसी के शब्दों में लगाये हैं। उनके ये शब्द रूप विचित्र, मृदु तथा सविधा लगते हैं।

निःसंदेह गोस्वामी जी ने उपन्यास क्षेत्र में ब्रूम मवा दी तथा उत्तर भारतेन्दु युग की भाषा की वराज्जता, वस्थिरता और व्याकरण की उपेक्षा से सब भाषा शैली में बृद्धियां थीं परन्तु हिन्दी कथा-साहित्य में गोस्वामी जी ने तो भी ब्रूम मवा दी।

द्विविदी-युग से भारतेन्दु-युग की कड़ी की पीढ़कर दोनों युगों में अपनी कीर्ति कटुण्य रखने वाले हिन्दी साहित्य भारतीय हीम एवं दीर्घकालीन साहित्य सेवा गहमरी जी का जाता है। गहमरी जी में उपन्यासों के प्रणयन की आवश्यकता समझी थी। जासूसी उपन्यासों की परम्परा न उनके पूर्व थी और न परवात वैसी बन सकी। इस क्षेत्र में वे जैले ही रहे। उन्होंने अंजो के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासों का गम्भीर अध्ययन कर उनका हिन्दी में एक भाषान्तर करने का कार्य उन्होंने किया। उनके उपन्यास वस्तुतः मस्तिष्क की कारीगरी तथा दिमागी गौरव ग्रन्थ हैं। इनमें कुतूहल की विशेषता है। जासूसी कथाकार अपनी तीव्र बुद्धि के प्रकाश में निर्मीकता तथा साहस के साथ, किसी दलील सूत्र की पकड़कर अंधकारमयी भूत प्रतीतों में से होकर, पाठक के साथ गुच्छी के पर्व में प्रविष्ट होता है। रहस्योद्घाटन के साथ ही एकाएक वे प्रकाश के द्वार पर वा पड़ते हैं और तब समाप्त हो जाता है। गहमरी जी वे देहाती ढंग के वाक्य धिन्यासों का प्रयोग किया। गोपाल राम गहमरी की सामान्य कथनात्मक शैली का स्वरूप वति व्यावहारिक है।

वाक्य विकास में भी सरलता है । विवेचनात्मक तथा व्याख्यात्मक शैली का प्रायः क्भाव रहने के कारण उनके वाक्य छोटे छोटे हैं ।

भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता के प्रबल पीछक हरिवीथ जी भी द्विवेदी युग में जाते हैं । " ठेठ हिन्दी का ठाठ " और " लघु लिता पुस्त " में उन्होंने हिन्दी-एतर किसी अन्य भाषा के सहारे बिना सुन्दर तथा जीवन्ती हिन्दी लिखने का सफल प्रयत्न किया है । वे साधारण से साधारण व्यक्ति को भी अपने विचार सुझावों को दना चाहते थे । डाक्टर सर ग्रियसन ने इस प्रयास की बहुत सराहना की और बधाई दी । उन्हें संस्तुत होकर " ठेठ हिन्दी का ठाठ " भारतीय लिखित संविधि परीक्षा में स्वीकृत हुआ । हरिवीथ जी ने सरलता तथा स्पष्टता पर विशेष ध्यान दिया । वर्णनात्मक शैली में हरिवीथ जी ने सरल वाक्य और भी छोटे छोटे हो जाते हैं । हरिवीथ जी रागात्मक कृति के जाग्रत होने पर कहीं प्रेरणा की कड़ी लग जाती है । उस समय " कवि सत्राट " का कवि हृदय ही अधिक चेतन्य रहता है ।

हरिवीथ जी शुरुवात की दृष्टि से उदार प्रकृति के थे । उन्होंने हिन्दी के राष्ट्र रूप को बनाया था । ठेठ हिन्दी में लिखने का निश्चय करके उन्होंने हिन्दी के शुद्ध और परिष्कृत स्वरूप की उपस्था की है ।

द्विवेदी युग और उनके परिवर्ती युग में अपनी कीर्ति-

विभा की अधिकाधिक उज्ज्वल करने वाली महान ऐतिहासिक कथाकार एवं नाट्यकार वृन्दावनवास वर्मा का नाम जाता है। वर्माजी ऐतिहासिक उपन्यास-कार के रूप में केबीड हैं। उन्होंने कहानियाँ भी अपनी दृंग की क्यूठी है जिनमें ऐतिहासिक एवं सुजीव चित्रण मिलता है। गढ़ कुंठार, संगम, लगन, प्रेम को भेंट, विराटा की प्यपिनी, प्रत्यागत आदि में उनकी ऐतिहासिक ज्ञान का पुट स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वर्माजी के उपन्यास तथा कहानियाँ मित्रों की माँति है। उनमें उनकी सहृदयता, मात्र भूमि प्रेम एवं स्व- संतुष्टि का अभिमान सदैव सका रहता है। प्रकृति के प्रति उनकी प्रगाढ़ आत्मीयता ने भी उनकी भाषा शैली में सरलता और स्वाभाविकता प्रतिष्ठित की है। डा० जान्नाथ प्रसाद वर्मा के मत से प्रेम चन्द्र जी के उपरान्त वर्मा जी की भाषा उपन्यास-रचना के सर्वोत्तम उपयुक्त है। वर्मा जी की भाषा-शैली प्रौढ़ तथा ललित है। वीर-भूमि बुन्देल खंड की गौरव कथाओं ने उनकी भाषा और शैली में स्वभावतः जीव एवं जागीर की प्रतिष्ठा की है। एक एक वाक्य उनके शुद्ध चित्र की रेखा बनकर बू बैठ गया है। प्रसाद गुण उनकी भाषा में सदैव रहता है। कथा साहित्य के उपयुक्त उनकी भाषा सरल, सुजीव तथा स्पष्ट है फिर भी उसमें प्रान्तीय और स्थानीय शब्दों का प्रयोग लटका है।

द्विपदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं नाटककार के रूप में तो उनका खीर्ब स्थान है ही, मुताः एक कथाकार के रूप में भी उनकी देन क्यूठी है। प्रसाद जी की प्रथम प्रौढ़ रचना कहानी "ग्राम तथा प्रथम उपन्यास" "कंकाल" प्रकाशित हुआ। काव्य की क्षीप्त कान्त पदावली, प्रतीकात्मकता एवं

साप्ताहिकता की बाँकी भाँकी क्या साहित्य की उपलब्ध हुई । प्रसाद जी ने अपनी क्या-साहित्य की जनता जादू के हाथों सीपते हुए भी अपना संस्कृतमयी भाषा का जाग्रत दृढ़ता से निभाया । कवि का व्यक्तित्व अपेक्षा-कृत अधिक प्रसर एवं प्राणवान होने से उसने गय रूपों की भी अपनी में समाप्ति कर लिया । इससे गय भाषा के का प्रति जो में माधुर्य एवं कमनोरता घुल गई है । प्रसाद जी जीवन में आनंद के उद्वीकृत तथा सौन्दर्य के उपासक थे । प्रेम उनका छवि प्रीत था ।

कथाकार प्रसाद ने समाज की आत्मा, हृदय एवं मस्तिष्क का चित्रण बड़ी बारीकी से किया है । समाज की विभीषिकाओं तथा रुढ़ियों पर उनके कटाक्ष अत्यन्त मार्मिक हैं । उपन्यासों में उन्होंने स्वतन्त्रता से अपनी हृदयोदगारों की निकासी है । "कंकाल" समाज का कंकाल रूप है । यथार्थवादी चित्रण में उनकी भाषा शैली की यथार्थ कला प्रदर्शन करने का अवसर मिला है ।

प्रसाद का व्यक्तित्व रोमान्टिक आध्यात्म की आया में रहकर पुष्ट हुआ है । उनके गय काव्य में हृदय में गुदगुदी होने लगती है । ज्ञान की विभा की ताल होकर हृदय की और गतिवान हो जाती है और बाणी से वाह की हल्की ध्वनि उठाने से फूट पड़ती है । प्रसाद जी ने शब्द चयन संस्कृत के अत्यंत मंदार से किया है ।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुप्तरी केवल तीन कहानियाँ - "सुलभ जीवन", "बुद्ध का कांटा" तथा "उसने कहा था" हैं । इन्हीं तीनों कहानियों की सिलकर गुप्तरी जी ऊपर कथाकार हो गये । उनका व्यक्तित्व

बड़ा विशाल तथा महान था । "उसने कहा था" कहानी कला एवं भाषा शैली की दृष्टि से हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ में है ।

कहानियों के लिए उनकी भाषा शैली व्यावहारिक है । उसमें सरलता और सुवीक्षता के साथ प्रवाह और प्रभाव भी है । शब्द चयन में उदारता होने के कारण उर्दू-फारसी व संस्कृत के प्रचलित शब्दों ने भाषा के रूप की संवारा और सजाया है तथा उपयुक्त अवसर पर मुहावरों ने वाक्य उसे अनुप्राणित किया है । गुलरी जी की कहानियों की सफरता उनकी वर्णनात्मक शैली में है । यत्र तत्र वे अपने सरल शब्द-चयन और वाक्य विन्यास से पनीपुष्पकारी शब्द विघों की पुच्छमूमि संकित करके उस पर कथा-वस्तु को संजीते हैं । गुलरी जी की प्रभावपूर्ण एवं व्यंजक भाषा का श्रेष्ठ उनकी उक्तियाँ तथा मुहावरों की भी प्राप्त है । वामुखणों में नगीने की भाँति वे उनकी भाषाओं में उपयुक्त स्थलों पर जड़े हैं । साधारणतः गुलरी जी की प्रायः सभी रचनाओं में कृत्रिम वैयक्तिकता मितती है । गुलरी जी की कहानियों की भाषा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनके शब्द चयन में है । वाङ्मय तथा कृत्रिम वाक्य-विन्यास उनकी कहानियों में नहीं है ।

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" का नाम भी इसी युग में जाता है । कौशिक जी कथा-साहित्य की दोनों विधाओं में सफल कलाकार हैं । प्रेमचन्द जी की भाँति कौशिक जी ने भी सामाजिक जीवन की अपनी रचनाओं का विषय बनाया है । कल्पना जल की कीरी उड़ान उन्हें पसंद न थी । उन्होंने जीवन की साधारण घटनाओं और परिस्थितियों को लेकर ही कलात्मक ताना बाना सजा दिया है । गल्प अनुसृतियाँ और

व्यापक सम्वत् के आधार पर पारस कलाकार के स्पर्श से साधारण वस्तु स्वर्णिम कूटासिकाओं में परिणित हो गई है। सम्भावना शैली क्या-साहित्य में इन्होंने ही सूत्रपात किया। कौशिक जी ने उर्दू के क्षेत्र में अपने हाथ बाजमा कर अपने शैली की व्यवस्था और स्थिरता दे रखी थी वैसे हिन्दी में पदार्पण के साथ ही उनकी प्रतिभा चमक उठी।

कौशिक जी ने क्या साहित्य में व्यावहारिक भाषा के वादर्थ का निवारण प्रायः वापसी-पान्त किया है। कौशिक जी ने शब्द चयन में कभी कुदरत दृष्टिकोण नहीं अपनाया। शब्द ग्रहण करने की उदारता में, मोड़-भाड़ में सरल शब्दों के साथ उर्दू फारसी के सुन्दर शब्द भी आ गये हैं।

राजा राक्षारमण प्रभाव सिंह मूलतः कहानी-कार हैं। सन् १९१३ में उनकी कहानी "कानों में काना" उर्दू में प्रकाशित हुई। उस क्षेत्र में क्यापि त्यागित अर्जित करके ही उपन्यास की ओर वृत्त हुए। सामाजिक चित्रण का उनका मुख्य विषय रहता है। पातावरण निवारण की निपुणता के साथ परिष्कृत और उच्चकोटि की कला के दर्शन भी एक ही स्थल पर ही जाते हैं। "तरंग," गल्प कुसुमावली, राम रहीम, टूटा तारा, सुरदास और गान्धी टीपो" प्रसिद्ध रचनारं हैं। परिस्थिति की गम्भीरता भी राजा साहब की प्रकृति के रंग में रंगकर रंगीन हो जाती है। कठिनाई से उनकी विवेचना, वर्णन की अपेक्षा संयत, शान्त, गम्भीर रह पक पाती है कि उनके व्यक्तित्व की अति रसिकता भावुकता, आह्लाह और मस्ती का प्रवाह आकर उसे प्लावित कर देता है। उसमें नवीन सौन्दर्य, कूटी पिठास और बुद्धि की कला विकसित हो उठी है। राजा साहब की

भाषा में काह- काह शब्दों की वृत्ति मारिक व्यंजना क्लंकार विधान,
सादाणिक- प्रयोग एवं कूठा उद्ब चयन मिलकर गद्य काव्य का सा वानंद
प्रदान करते हैं । वे चेतना के वन्तःपाशों, वृत्तियों, प्रवृत्तियों का हि हो
चित्रण नहीं करते वरन् जड़ प्रकृति के मानस के मानवीयित सम्बन्धों की सुन
समझकर मानव से उनका तारतम्य और एकत्व साम्य स्थापित करते जाते
हैं । निःसंदेह उन्होंने वन्तः की व्यंजना वाक्य कार्य- कलाओं का चित्रण अधिक
किया है ।

राजा साहब ने पात्र तथा वातावरण के अनुकूल
परिवर्तन करके अधिकतम प्रभाव उत्पन्न करना उनका अभीष्ट था । उनके उद्ब
चयन की विशेषता है कहीं कहीं उर्दू फारसी क्लम का ही स्तंभात्त किया है ।
अत्यधिक भासुक एवं रसिक हृदय राजा साहब की भाषा में भावातिरेक के
कारण व्याकरण की दृष्टि से सामान्य त्रुटियाँ मिलती हैं । ऐसी त्रुटियाँ
वाक्य की अपूर्णता सम्बन्धी ही अधिक हैं । फिर भी अपनी विशिष्ट शैली
में बेबीठ है । इसमें सन्देह नहीं । द्वितीय युग में जनक जीवन के सर्वाधिक सफल
कलाकार एवं लोक नायक, उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचंद का नाम आता है ।
मुन्शी प्रेमचंद शरीर से कुछ, वृत्ति में कुछ तथा कृति में एकनिष्ठ इस पदार्थ
को हड्डियाँ पचीस की अवस्थियाँ ही सुदृढ़ तथा त्यागपयी थी, इन्हीं हड्डियों
से यह क्लम का मजदूर, वारिष्ठ, प्रवचना, प्रतारणा का हि दानवी से
वर्तनीय सज्जन रहा । उसे ईश्वर का भी भरोसा नहीं था । वे धर्म की दृंग
मानने पर, मानवता की पूजा की दृष्ट बनाये थे । उनकी दृष्टि में वह धर्म
धर्म नहीं जो मानव मानव में भेद उत्पन्न करे । वे कलह, क्लेश, मानव पात्र की
संप्रवृत्तियों में ही अपनी अतांजलियाँ भेट करते थे । उनके ईश्वर का निवास

मन्दिर, मस्जिद जैसा गिरने में नहीं धरन मानव के सत्य, श्रम, सुन्दरपन में व्याप्त थे। अतः वे वास्तविक तथे में जन समूह के चित्ते थे। इसी से उनकी भाषा में सरलता है और व्यवहारिकता है। वे ज्ञाता की भी जानते थे और उसकी भाषा की भी, वही से उनकी शक्ति मिली थी^१। भाषा के क्षेत्र में संकुचितता उन्हें कदापि फंसे नहीं थी। उनके मत से जीवित भाषा तो जीवित रहने की तरह बराबर बनती रहती है। शुद्ध हिन्दी तो निरर्थक शब्द है। जब भारत शुद्ध हिन्दू होता तो उसकी भाषा शुद्ध हिन्दी होती। जब तक यहाँ कुछ मुसलमान, सिल, ईसाई, पारसी, बफगानी आदि सभी जातियाँ मौजूद हैं, हमारी भाषा भी व्यापक रहनी। अगर हिन्दी भाषा प्रान्तीय रहना चाहती है और केवल हिन्दुओं की भाषा रहना चाहती है तब तो वह शुद्ध बनायी जा सकती है^२। यही कारण है कि काशी में रहकर प्रसाद जी की संस्कृत-निष्ठ भाषा की न अपनाकर बोल चाल की भाषा को अपनाया। साहित्य के इस महान तपस्वी ने अपने जीवन के अन्तर्गत की विदग्ध मट्टी में सतत प्लाति हुये, देश के कोटि कोटि निरीह एवं मानवी का यथा तथ्य वर्णन करके साहित्य की अमूल्य भेंट प्रदान की। भारतीय सामाजिक जीवन के चित्रण की अपूर्व परम्परा का सूत्रपात तथा सदियों के उपेक्षित मजदूरों और किसानों की, जो अभी तक साहित्यिक अज्ञात बने थे सरस्वतीके पवित्र मन्दिर में प्रतिष्ठा की। हिन्दी में व्यक्ति के स्थान पर वर्ग का चित्रण प्रारम्भ हुआ। अज्ञान-अज्ञान कला का साथ ही साथ सत्य के बने।

प्रमचन्द जी ने साहित्यिक गगन में भाषा की

१- डा० रामविलास शर्मा : प्रमचन्द : पृ० १७५

२- प्रमचन्द : साहित्य का उद्देश्य : पृ० १५५

दृष्टि से एक लम्बे मंजिल से की । वे उर्दू के बीच से हिन्दी में जाये ।
वर्णनात्मक शैली में प्रमचन्द जी ने स्थान, घटना कथा परिस्थिति के बड़े
सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं । बड़ी सुलभ दृष्टि से कलाकार क्रमशः अपनी कमीष्ट
प्रसंग की सरल सुवीध और स्पष्ट ढंग से रसता है कि बातों के आगे एक दृश्य
उपस्थित हो जाता है । संक्षेप में या संक्षेप रूप में अपनी चित्र की सारी
रसावों की स्पष्ट कर देते हैं और पाठकों की बुद्धि पर कुछ नहीं छोड़ते ।

प्रमचन्द अपने कर्णों में कलाकार थे । उन्होंने
मानव-मानस की भांति प्रकृति की फाड़डियों में भी खूब यात्रायें की थी, उसमें
मानव के भाव, विचार, अनुभूतियाँ, क्रिया कलाप आदि सभी प्रक्रियायें हैं ।

प्रमचन्द केवल सामाजिक जीवन के चित्रकार ही न
थे वरन् स्वयं अनुभूत जीवन पृष्ठा, मनोवैज्ञानिक एवं समाज शास्त्रों भी थे ।
उन्होंने सामाजिक जीवन में सतत संघर्ष भी किया न था अपने आसपास के
किशन मजदूरों की भी खूब ध्यान से देता । नगरों में भी रहे कतः वहाँ के
जीवन से भी भली भाँति परिचित थे तथा ग्रामोण भाष्यों से । मानस जगत
के प्रत्येक भाव एवं उच्छ्वासों में भली भाँति परिचित थे । स्वतन्त्रता के साहि-
त्यिक सेनानी एवं अहर्निश चिन्तक प्रमचन्द में सरल भावात्मक शैली की धारा सतत
संघर्ष की आत्मा में शुष्क प्रायः ही नहीं ।

प्रमचन्द ने नाटकीय शैली का निवृत्ति करने के लिये
संतापों की सफ़स योजना की है साथ ही प्रभावोत्पादकता एवं स्वाभाविकता

की व्यतारणा हेतु पात्रानुसृत भाषा का प्रयोग किया है ।

प्रमचन्द का क्या साहित्य कला फुलका साहित्य नहीं और न इसका एकांगी उद्देश्य मनोरंजन ही है । समाज की वृत्तः दशा वर्णन करते हुए उन्होंने स्याद पर ऐसे सुक्ति-वाक्य प्रस्तुत किये हैं जिनमें उसकी जाय अनुसृतियाँ और भावनाएं प्रतीभूत हो गई हैं । इन वाक्यों में जीवन के अनुभव का निचोड़ है जो पाठकों के मार्ग-दर्शन के लिये उपयोगी है । इन सुक्ति या नीति वाक्यों ने उनकी भाषा को अपेक्षाकृत सरल एवं गम्भीर बना दिया है । प्रमचन्द जी का वाक्य चिन्हास सरल और सीधा होता है यद्यपि उसमें व्यतिरेक या व्याकरण के विपरीत विकार उत्पन्न करके प्रभावीत्पादन भी किया गया है ।

प्रमचन्द जी मध्यम-पार्श्व साहित्यकार हैं । उनका शब्द चयन बहुत ही उदार है । उर्दू-फारसी के द्वार से हिन्दी के प्रागण में अवतरित होने के कारण इन भाषाओं पर सरल और व्यावहारिक शब्दों का व्यापक प्रयोग उनकी भाषा में हुआ है । वर्ण्य वस्तु का सम्बन्ध बहुलांश में ग्रामीण जीवन होने से ग्रामीण तथा दृष्ट शब्दों कक्षावर्ती, पुहावरों की भी स्वीकार किया है । सरलता तथा सुवीक्यता के लिए उन्होंने निर्दिष्ट चिन्हां या कोष्टकों में कुछ कठिन शब्दों को स्पष्ट किया है । पात्र कथा वातावरण के अनुसृत इन पुरातन शब्दों को प्रस्तुत करना पड़ा, पर सुवीक्यता के जाग्रह ने वहां इन सहायक चिन्हां की नियोजना अवश्य कर दी ।

क्या-सम्राट मुन्शी प्रमचन्द जी को हिन्दी साहित्य की देन है - इस दृष्टि से उनके साहित्य का पर्यावलीकन करने पर, सैकड़ों कहानियाँ और उपन्यास उनके हात में जमा होकर उन्हें उतना अधिक

गौरव प्रदान नहीं करते, जितना कि उनकी भाषा शैली करती है। उनकी सर्वश्रेष्ठ धरोहर उनकी शैली है। हिन्दी में ऐसे कई कथाकार हैं जिन्होंने उनसे अधिक कहानियाँ और कई गुने उपन्यास लिखे हैं परन्तु देश विदेशों में जितने वे लोक प्रसिद्ध हो प्राप्त कर चुके हैं उसना कोई कथाकार नहीं कर सका। प्रेमचंद की भाषा मृत्युंजय की व्यावहारिक सजा का चित्र थी। उनकी भाषा में उन्मुक्त उन्माद एवं विरुद्धता दिखाई पड़ती है। उनके कथानक का वारम्भ कुतूहल और चमत्कार के साथ प्राकृतिक विधान का वाधार लेकर उत्पन्न होता है और इनका ज्ञात स्थूल विवेचना एवं नित्य की अनुभूतियों के वाक्य पर उठा होता है। "प्रसाद" की भाव व्यञ्जना में काव्य-कल्पना का उत्साह दिखाई पड़ता है। यदि प्रसाद स्वर्ग का आस्तावपूर्ण जीवन था तो मुन्शी प्रेमचंद हमारे साथ दिन रात रहने वाला मृत्युंजय का सहचर^१। वास्तव में इसी गुण के वाधार पर उन्हें लोकप्रियता प्रदान कर जन-जीवन के हृदय का सफाई बना दिया।

हिन्दी के प्रति मौखिक गप-काव्यकार राय कृष्णदास की धोखे भरावनाएं उनके कथा साहित्य में भी उतर आई हैं और उसी व्यक्तित्व एवं मानव-प्रभुता होने के कारण उनकी कहानियों में रस व्यापित अधिक हुई है। राय जी भी द्वितीय युग के वन्द्यता के होते हैं। राय जी की वर्णनात्मक शैली में प्रकृति के नाना रूपों का प्रभाव मिलता है। प्रकृति उनकी जीवन सहचरी है कतः वह मानव जीवन सामान्य चित्रण में भी उसकी सहायता एवं उपायिता मानकर यदा कदा वे उसका स्मरण अवश्य कर लेते हैं।

क्या- कहानियों में राय जी की गय काव्य की प्रतिभा एवं उनका महान व्यक्तित्व उभर आया है । राय साहब ने पात्र तथा वातावरण के अनुसार व्यवस्थित अपनी शैली में परिवर्तन किया है । ये उनकी भाषा शैली के नियामक तत्व हैं । पात्र परिस्थिति अनुसार भाषा-शैली में जहाँ प्रभावी अभिव्यंजना हुई है, वहाँ एक वातावरण भी बन गया है । उनके ग्रामीण पात्र ठेठ देशी भाषा का प्रयोग करते हैं । अत्यन्त कीमल एवं भावुक प्रकृति के कारण राय साहब की भाषा शैली में प्रसाद माधुर्य और कान्ति गुण की प्रधानता है । बीज गुण भी कहीं कहीं स्फुटित हुआ है । इसके लिये उन्होंने प्रश्नों एवं आवृत्तियों की नियोजना की है । विशिष्ट शब्द या पर्यायवाची शब्दों की आवृत्ति ने उनकी भाषा की सरल और प्रभावी बना दिया है ।

राय जी कहानियों में गय- काव्यकार की आलं-कारिकता एवं रस-प्रापित मार्मिक उक्तियों की बहुतायतता है । कहीं कहीं तो वे उपमाओं पर उपमार्थ केंद्रित चलते हैं । जैसे-

“रमणी माया की तरह रहस्यमय, कुत्त की तरह बमत्कारपूर्ण शिशु हृदय की तरह की सरल, चन्द्रिका की तरह निर्मल कला की तरह मंजुल और प्रकृति की तरह कृत्रिम थी । किन्तु वातप की सरसी की तरह वह सूत गई थी ।”

साधारणतः राय साहब की शैली शुद्ध तथा व्याकरण-सम्पन्न है । उर्दू- फारसी के शब्दों काग्रह स्वीकार नहीं किया गया है । भाषा के प्रवाह में तथा वातावरण के अनुसार उर्दू, फारसी, अंग्रेजी देशी भाषाओं का शब्द भी आ गये हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक

नहीं है। रायजी की भाषा के व्याकरण सम्पन्न प्रयोगों और अन्याय भाषाजी के शब्दों की स्वीकृति का मुख्य कारण उनकी वृत्ति भावुकता है।

चंडीप्रसाद द्विवेदी द्वितीय युग के उन कतिपय कथा-साहित्यकारों में स्थान रखते हैं जिन्होंने काव्यात्मक एवं काल्पनिक शैली का वाणीपान्त एकल निर्वहण किया है। निःसन्देह वह द्विवेदी हैं उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में एकदमता एवं रागात्मिका शक्ति ही ही कला कारिता है। धैर्य-धैर्य की दृष्टि भी उसमें नहीं है। कसलस्वरूप प्रकृति का विराल प्राणन उनका चिर-परिचित था है और उसके अंतर्गत प्रिया कलाओं में वे मानवोद्य व्यापार, वृत्तियाँ, प्रवृत्तियाँ आदि के दर्शन कर सकते हैं। उनके लिये प्रकृति अधिक एवेदनशैली भावोत्पादक, सौन्दर्यगार, चिर परिचिता एवं आनंदमयी है। अतएव उन्होंने अधिकांश रचनाओं में मानव जीवन के किस्से भी वर्णन के साथ अपने उत्साह पूर्ण हृदय से नाना काल्पनिक से सुसज्जित पर प्रकृति की ही रखा है। उन्होंने अपनी प्रज्ञा शक्ति का उपयोग केवल बाह्य चित्रण की साम्य या वैसम्य मूलक उपमायें, उत्प्रेक्षाएं अथवा रूपकों की प्रस्तुत करने में किया है।

सौन्दर्य के अनन्य उपायक तथा सरस हृदय के स्वामी द्विवेदी जी की कला का पूर्ण परिपाक, सौन्दर्य स्थितियों के पुनराव और उनके विशेष मनोयोग-पूर्वक वर्णन में मिलता है। चंडीप्रसाद जी की भाषा शैली को लोकप्रियता और सफलता का श्रेय उनके शब्द चयन तथा उद्द विन्यास की है। वास्तव एवं रसात्मकता में वाक्य परिस्पष्ट द्विवेदी जी की व्यंग्य और कटाक्ष के लिये अकाश कम मिलता है। इससे उनके कथा साहित्य में हास-परिहास, व्यंग्य विनीत के वर्धन प्रायः नहीं होते। फिर भी जहाँ कहीं उन्होंने

व्यंग्य वाणों का कुसंधान किया है वे हनुमायुध के पुष्प वाणों की भांति, चिर परिचित वात्कारिक भाषा में हो किये हैं ।

वात्कीज्य युगीन कथा-साहित्य में उपन्यास-

सम्राट प्रमनंद के पञ्चात लोक प्रियता वर्धन करने में सुदर्शन जी का नाम वाता है । प्रमनंद जी की भांति उन्होंने भी पहले उर्दू के क्षेत्र में साथ जायमाकर, राष्ट्रभाषा के वावाहन पर हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रवेश किया था । प्रथम रचना १९२० में सरस्वती में प्रकाशित हुई । उसने उतने गौरव और संजीवन शक्ति प्रदान की । उसके पञ्चात ही हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ उनकी रचनाओं से सुशील होने लगी । हिन्दी में प्रमनंद और कौशिक की भांति वे लोकप्रिय भी छोड़ ही गये ।

सुदर्शन जी ने भारत के प्राचीन कथा-कीका पुराणों में प्रेरणा तथा आधार-भूमि ग्रहण करके उसे नवीन युग के प्रकाश में प्रस्तुत किया । मानव जीवन के चिरन्तन सत्य का वादात्कार कराने के लिये उन्होंने अत्यन्त कलात्मक ढंग से अपनी कहानियों का प्रणयन किया है । उनका उद्देश्य वाच के क्लृप्ति ज्ञेय एवं विकृत पस्तिष्क मानव की महान मानव बनाना है । वे शाश्वत सत्य की फाँसी की उस सहज, सरल एवं हृदयस्पर्शी भाषा में चित्रित कर देते हैं कि हमें कि विश्व-विख्यात रुखी कहानीकार काउन्ट लिवी टालस्टाय के समीप बैठे पृष्ठिगीवर होते हैं । उनके ज्ञेय में मानव के वास्तव्य रूप की प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं, जन्तु की पूजा की साक्षात्ता है । अतः उनकी प्रायः सभी कहानियों में यही उद्देश्य इतने कलात्मक ढंग से प्रतिष्ठित किया है कि कहीं भी शुष्क उपदेशात्मकता का वाधा नहीं मिलता । उन्हीं की नवत कलिका

की मुस्कराहट से उनकी कहानियाँ रहस्यमय ढंग से कुछ मधुरमय पराग विकीर्ण करती हैं और मन की उदात्त वृत्ति को जागृत करती हैं। "हार की जीत" रथेन्द्र का स्वामी, "कमल की बेटा", "कवि की स्त्री" आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उत्कृष्टनीय हैं। गुदरैनजी की भाषा शैली कथा-साहित्य के अत्यन्त उपयुक्त एवं जन हृदि के अनुकूल है। प्रेमचन्द जी की तरह बहुतों उर्दू की थाती को संजोकर और छेड़कर ही उन्होंने हिन्दी के प्राचाप में प्रवेश किया था। ज्ञातः संस्कारजन्य उर्दू-फारसी के शब्द और फु विन्यास उनकी भाषा के प्राचीन स्मारक चिन्ह की भाँति सुरक्षित हैं। उनमें स्मित हास्य और आक्षेप है, पर झूटा हँस और प्रसरता नहीं।

कहानियों में पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिये गुदरैन जीने सम्भावना शैली की भी सहायता ली है। यद्यपि कौटिल्य की एवं प्रेमचन्द जी ने भी सम्भावनात्मक शैली का प्रयोग किया है, परन्तु गुदरैन के सम्भावनाओं में विशेष रोचकता के साथ तीव्रता और कीर्तिका है। परस्पर वातावरण से शैली में जीवन की प्रतिष्ठा हुई है।

कथा-कहानियों में गुदरैन जी ने पत्र शैली का भी सफल प्रयत्न किया है। यद्यपि पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से अन्य सर्वत्र समुद्र भारतीय भाषाओं में कहानियों में पत्र शैली का प्रचार हो जाता था। हिन्दी में इस शैली का प्रयोग नहीं हुआ था। गुदरैन जी ने इस शैली का प्रयोग करके उत्कृष्टनीय कार्य किया है।

विषयवस्तु के अनुकूल शैलियों में परिवर्तन भी गुदरैन जी की कहानियों में उपलब्ध रहता है। रसानुकूल भावाभिव्यंजना करने

में कई निपुण हैं। इनके विदग्ध प्रयोगों तथा व्याख्यात्मक वाक्यों में बड़ी ऊष्मा एवं मार्मिकता रहती है। इनके छोटे छोटे वाक्य "सतसैया के बड़ेबड़े पोहरे ज्यों नाविक के तीर" की भाँति गहरे घाव करने वाले होते हैं परन्तु कुछ पाण के पश्चात् उनमें शीतलता जा जाती है और प्रभाव परलप का होता है।

सुदर्शन जी भूततः उर्दू के लेखक होकर हिन्दी क्षेत्र में जाये तब भी उनकी भाषा में उर्दू-कारसी के लक्ष्यों की अधिक परमार नहीं है। उर्दू-कारसी के विशेष अध्ययन के कारण लिंग, काल और वचन में त्रुटियाँ हो जाना स्वाभाविक है।

केवल उमाँ "उग्र" आधुनिक कथा साहित्य में सबसे अधिक विपरीत की भावना उत्पन्न करने वाले हैं आप भी द्विवेदी युग के अन्तर्गत जाते हैं। "मत्वाला" के सम्पादक के रूप में भी उन्होंने अपनी व्यक्तिक विदग्ध, हृदयस्पर्शी तथा सशक्त भाषा के द्वारा हिन्दी साहित्य में अमूल्य वैतन्य की उद्भूत भावना की है। उमाज की रोमांचकारी पृष्ठित, गति एवं क्लृप्त वृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए जिस निर्द्वन्द्व महाप्राण व्यक्तित्व की आवश्यकता थी उग्र जी के रूप में कथा साहित्य की प्राप्त हुई। सदियों पुराने दम्भ, पातक और साम्प्रदायिकता का उन्मूलन करना उग्र जी का ही कार्य है। काँटे की काँटे से निकालना तथा विष की विष से पारना यही उग्र जी का सिद्धान्त है।

उग्र जी ने मात्र शैली में व्यक्तिगत चर्चों की प्रति अवाप्नीयता के साथ विना जीपवारिकता के एवं कथित शिष्टता का ध्यान रखकर ठेठ मरमासी भाषा का प्रयोग किया है। निर्द्वन्द्वता तथा स्पष्टता उग्र जी के

विशेष गुण है। द्विवेदी युग की पूर्व-सीमा १९०० ई० निश्चित करने में प्रायः विशेष विवाद उपस्थित नहीं होता। तात्कालिक परिस्थितियों में जैसे महान व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। द्विवेदी जो के रूप में जैसे व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव हुआ था उसके विवादास्पद विषय द्विवेदी युग की उत्तर-सीमा है और यह युग १९३० तक निर्धारित किया जाता है। बाचारी महावीर प्रसाद द्विवेदी परम्परावादी प्रवृत्ति के प्रवृत्तियों के कृ गामी नेता थे, उन स्वच्छन्दवादी प्रवृत्तियों के पुष्ट होते ही उनका नेतृत्व समाप्त हो जाता है।

मुंशी प्रेमचंद की अन्तिम रचनाएं तथा जैनन्द् की प्रारम्भिक रचनाओं में अन्तः भाव व्यंजक शैलियों के प्रयोग साहित्यिक क्षेत्र में प्रस्तुत हुए। सन् १९३० में ही जैनन्द् की प्रथम उपन्यास रचना "पराग" प्रकाशित हुई जिसकी भाषा शैली पश्चात्त्य ढंग पर स्वाभाविक, सरल तथा उत्तम विहीन थी। इसके पश्चात् ही अन्य निराशावादि लेखकों ने इन नये प्रयोगों को परिपुष्ट किया। इस प्रकार द्विवेदी युग की अन्तिम सीमा पर ये प्रयोग बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के अन्त तक ही स्पष्टतः प्रकट हुए हैं।

उपन्यास- साहित्य के समान ही सन् १९२६ में कहानियों के क्षेत्र में एक मोड़ उपस्थित हुआ। इस समय चन्द्रगुप्त विपासंकार, जैनन्द् कुमार, मावलीचरण वर्मा आदि कथाकारों ने उपस्थित होकर द्विवेदी युग का पट्टादाप तथा नव युग का प्रारम्भ किया।

द्विवेदी जो ने मुद्रा: "सरस्वती" के ही माध्यम से युग नेतृत्व किया। युग की कई प्रमुख लेखक पत्र सम्पादक थे। प्रेमचन्द, प्रसाद गणेश शंकर विद्यार्थी, रायकृष्ण दास, मातनताल चतुर्वेदी, शिव प्रसाद उषा

वादि विशेष उल्लेखनीय हैं । "सरस्वती" के अतिरिक्त द्वितीय उत्थान युग की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ "उपन्यास", समाजीक, भारतेन्दु, जम्बुद्वय, गुरु तपनी, हं दु, कर्मयोगी, कर्मवीर, स्वराज्य, ऐनिक, "मयादि, विश्व मित्र" प्रकाशित हुये ।

द्वितीय युग के तृतीय दशक के प्रारम्भ में, हिन्दी-पत्रकारिता में, महात्मा गान्धी के राजनीति-प्रेरित के पश्चात् एक नवीन चेतना विकीर्ण हुई और एक नवीन पीढ़ आया । प्रायः सभी पत्र पत्रिकाओं का उद्देश्य राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने में था "आज", स्वदेश, "हिन्दू पत्र, मतवाला", विशाल भारत, "चांद", जयपुर माधुरी, "सुधा", "मनीरमा, त्याग भूमि", युवक, "हंस" आदि पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई ।

द्वितीय युग में कथानियों तथा उपन्यासों में परिवर्तन हुये तथा नये नये प्रयोग हुये । कथा-साहित्य वास्तव में जनता का साहित्य है और उसका प्रधान उद्देश्य भी जन-रंजन रहा है । यद्यपि कथा-कथानियों और वास्तविकाओं के द्वारा गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण भी प्राचीन काल में किया जाता था, परन्तु आधुनिक कथा-साहित्य पूर्ववर्ती युग में जनरंजन तथा सोपित ही गया था । द्वितीय युग में कथा-साहित्य में गम्भीर उत्तरदायित्व के निवाह की अपेक्षा की गई । कुछ वृद्ध समाज की अनेक सामाजिक समस्याओं- ब्रह्मोद्धार, स्त्री शिक्षा, जाति प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, अंध विश्वास इत्यादि तथा कई राजनीतिक समस्याओं को लेकर कथानियों और उपन्यासों की रचनाएँ हुई । परिणतः कथा साहित्य की भाषा शैली में भी भावविचारानुकूल परिवर्तन

हुआ । कथा- कहानियों में परम्परागत वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक शैलियों के साथ साथ अब विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक शैलियों का प्रवृत्त हो गया । विशेषतः पश्चिमी साहित्य के अनुकरण पर कथा- कहानियों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की ओर ध्यान गया । अतएव शैली का फुकाव और भी अधिक विवेचन तथा विश्लेषण की ओर हुआ । युग के विभिन्न विविध तथा संश्लिष्ट विचारों के प्रकाशन का कार्य कथा-कहानियों ने प्रारम्भ किया ।

हिन्दी- साहित्य में जायावादी की प्रवृत्तियों के पदार्पण करने पर जो और धैर्य तत्त्वों की दूरी भी समाप्त हो चली । जड़ प्रकृति और पशु- पक्षी सभी मानव के प्रति संवेदनशील एवं सहृदय हो गये । कथा- साहित्यकारों ने उन्हें मानव प्रकृति के चित्रण में स्थान स्थान पर उपमान तथा प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया ।

कथा- कहानियों में संजीवता एवं सप्राणता की प्रतिष्ठा करने के लिए नाटकीय शैली का अनुकरण पर कथोपकथन वक्ता सम्भाषण प्रधान भाषा शैली का भी प्रादुर्भाव इस युग में हुआ । पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा "कीर्ति", "प्रेमनन्द", "सुन्दरी" आदि ने इस शैली सुन्दर प्रवर्तन किया । कथा- सम्राट मुंशी प्रेमनन्द युग के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रतिनिधि शैलीकार तथा कथाकार हुये । उनकी भाषा-शैली में कथा साहित्य की वर्णनात्मक, विवरणात्मक तथा विवेचनात्मक शैलियों की समन्वित विशेषताओं का स्फुरण हुआ । यही कारण है कि उनके उपविर्तियों एवं परवर्तियों ने उनकी शैली का अनुकरण किया । प्रेमनन्द जी की शैली परत, गुणीय, मुहावरे- कहावत

युक्त, प्रशस्तान्मिन्नित्त्वं व्यावहारिक है । द्विवेदी कल्ल जी के शासन
 काल में द्विवेदी टक्याल से हुसकर " सरस्वती " की छाप वंक्ति होकर हिन्दी
 कथा साहित्य में नवीन विचार चारा दृष्टिगीचर हुई !

हायावादी युग-

द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन तथा कति-

वृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया भी हुई। यद्यपि यह प्रतिक्रिया उनके शासन काल में ही प्रारम्भ हो गई थी; परन्तु द्विवेदी के सशक्त एवं संप्राण व्यक्तित्व के समक्ष यह युग पर अपना विरुद्ध प्रभाव प्रगट नहीं कर सकी थी। द्विवेदी युग उत्तरार्द्ध में ये हायावादी प्रवृत्तियाँ हिन्दी के साहित्याकाश में स्पष्टतः दृष्टिगोचर हुईं। यह द्विवेदी जी की "कलासीक्त" शैली के विपरीत रोमांटिक हायावादी शैली स्पष्टित हुई। इसमें उन्मत्ता, आवेश, कल्पना, कल्पनायता, प्रतीकात्मकता, लापान्गिकता, वक्रता आदि की सब सज्जा की जाने लगी। चूल्ह तर्कों ने वृक्ष स्थूल तर्कों के प्रति विद्रोह का झंडा तहरा दिया। वस्तुतः हायावाद का भीमणीय काव्य में ही हुआ था तत्त्वज्ञान गद्य के क्षेत्र में भी उसका प्रभाव क्रमशः ही गया। प्रवाद, पंथ और निराशा इस क्षेत्र में कट गण्य रहे। द्विवेदी जी यद्यपि इस हायावादी शैली की "कलाधु, अव्यष्ट" आदि शब्दों से कटु आलोचना की; परन्तु नये युग के प्रवाद की वे नहीं रोक सके और उन्होंने के सामने १९३० तक ये प्रवृत्तियाँ गद्य के क्षेत्र में भी परिपुष्ट हो गईं। अतः उनके युग का अन्तान भी यहीं हो जाता है।

द्विवेदी जी के वापस के प्रतिकूल होते ही हायावादी बारा ने धिर उठाया और वह अन्तर्लीनता सफल भी हुई परन्तु उसने भी हिन्दी भाषा की समृद्धि की उस उच्च सम भूमि पर अवस्थित किया, जहाँ से वह अपनी शैलियों की लेकर लोक दिशाओं में प्रवाहित हो सकी। उन्होंने हिन्दी की व्याकरण-सम्पत्त करके उसके स्वरूप की परिष्कृत एवं परिमार्जित

किया। उनके प्रोत्साहन और प्रयत्नों से एक विशाल शब्द भंडार, युग-निधि के रूप में तैयार हो गया। इस प्रकार प्रौढ़ता प्राप्त हिन्दी में विभिन्न विचारों एवं भावों की सकल अभिव्यक्ति की क्षमता का गई तथा उसमें कीक शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस पृष्ठभूमि के सामने उभरा ही द्वितीय युग के अख्यान पर राष्ट्र भाषा हिन्दी की स्वर्णमय उभार का उदय हुआ। विशेषतः हिन्दी गद्य के क्षेत्र में दो कीक सर्वतोन्मुखी प्रतिभाओं और शैलीकारों का प्रादुर्भाव हुआ। गद्य लेखक कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निरासा, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, समीपक तथा निबंधकार, पं० नंददुतार बाजपेयी, डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० जगन्नाथ शर्मा, नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, पं० गीविन्द बल्लभ पंत उन्मत्तकर प्लेट, डा० रामकुमार वर्मा, कलाकार जैनद्र कुमार, हीरानंद सच्चिदानंद वात्स्यायन" कीय "उपेन्द्रनाथ अक्षर, वादि महाप्राण विभूतियां इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं। इन विभावों के उदित होते ही भारत के भव्य भाल की हिन्दी हिन्दी का भाल जगमा उठा।

कायावादी कथा साहित्यकारों में अशंकर प्रसाद सुमित्रानंदन पन्त, निरासा तथा महादेवी वर्मा का नाम विशेष रूप से आता है। प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। कविता, नाटक, कहानी तथा उपन्यास, साहित्य के इन सभी प्रमुख क्षेत्रों की उन्होंने नवीन रूप दिया। "कंकाल" उनका प्रथम उपन्यास है। इसमें वर्तमान के एक विशेष पक्ष का विशेष दृष्टि से चित्रण किया है। इसमें सामाजिक बंधनों एवं व्यक्ति की सख्त प्रवृत्तियों के संघर्ष से उद्भूत विनमताओं का मार्मिक वर्णन किया गया है। "कंकाल" प्रसाद जी का एक अत्यंत प्रधान उपन्यास है। अर्थ का प्रधान उद्देश्य

किसी न किसी प्रकार का सुधार होता है। प्रसाद जैसे तटस्थ एवं सहृदय कलाकार के साथ पढ़ कर यह व्यंग्य परिपाटी बड़ी प्रभावपूर्ण सिद्ध हुई है। व्यंग्य घटनाओं में भी है, व्यक्तियों के संवादों तथा वाचरणों में भी। इन व्यंग्यों में संवेदना तथा सुधार का भावना है। "कंकाल" में समाज के दलित बुद्धि क्लेशों का भी चित्रित कर प्रसाद जी ने समाज की चेतावनी भी दी है। कंकाल समाज का विघटन नहीं करता, वरन् वह समाज के नवीन संगठन का वाकांक्षी है। रचना की दृष्टि से यह उपन्यास शुद्ध चरित्र प्रधान है। पात्रों की स्थानों पर लेखक के संकेत पर घूमते फिरते हैं। यह बात तो सत्यतः ठीक है कि "कंकाल" में प्रसाद का दृष्टिकोण वादहीन नहीं है परन्तु साथ ही उसे यथार्थवादी भी नहीं कहा जा सकता, कम से कम उस जहाँ में जिसमें "उग्र" तथा कुचनरन्ध्र हैं ने यथार्थवाद की समझ है। कुछ लोगों का कहना है कि "कंकाल" में अस्तीत्य का प्रचार है, विलुप्त ही तथ्यरहित है।

पात्र "तितली" प्रसाद का दूसरा उपन्यास है। इसमें वर्णित जीवन "कंकाल" से विलुप्त विभिन्न है। यही दुर्बलताओं पर ही अधिक वाग्रह रहने के कारण "कंकाल" का समाज दर्शन एक पदातीय सा लगता है। "तितली" में प्रेम के वादर्थ स्वरूप एवं वात्सल्य संयम के वर्णन का प्रतीक है। विषय वचन की दृष्टि से इस उपन्यास में प्रसाद ने प्रेमचंद मार्ग को अपनाया है। इसमें ग्राम-सुधार तथा ग्राम संगठन की ओर भी संकेत है। इस उपन्यास में भी विद्यार्थी-व्यवस्था नियति एवं समाज के साथ मानव का संबंध चलता है। इसमें भारतीय दृष्टि की प्रशंसा है और इसी कारण यह उपन्यास सुलान्त है। सत्य की विजय तथा वर्म का व्यापार करने वाले पापियों का कष्ट में अन्त होता है।

यदि "कंकाल" यथार्थवाद पर आधारित है तो "तितली" पूर्णतः वादर्थवादी उपन्यास है। "कंकाल" में प्रसाद जी ने मानव की यौन दुर्बलता या स्तन पर अधिक आग्रह है। "तितली" दुस्तान्त नहीं है। वास्तव में "तितली" भारतीय नारीत्व का प्रतीक है जिसके रूप में प्रसाद का नारी वादर्थ प्रतिकल्पित हुआ है। वस्तु विन्यास की दृष्टि से यह उपन्यास फ्याँस सुगठित है। दो विन्म-विन्म कथाओं को लेकर भी प्रसाद ने उन्हें बड़े बड़े बन्धनों से सम्बद्ध कर दिया है। "क्या-वस्तु" का चयन, उसका संघटन तथा निवारण की दृष्टि से प्रसाद जी के उपन्यास निर्दोष ठहरते हैं। प्रसाद जी के पात्र बड़े समाज के हैं तथा विकास-स्वातंत्र्य उनमें अधिक है तथा भावुकता की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। ७० प्रसाद जी के पात्र व्यक्ति होते हैं; प्रसाद जी के इन दोनों उपन्यासों का पढ़कर हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि उन्होंने नाटकीय और काव्य भाषा की कृत्रिमता को बहुत कुछ हटा दिया है। उनके ऐतिहासिक नाटकों की भाषा बड़ी विस्तृत और बोधिल है परन्तु "कंकाल" और "तितली" दोनों में ही भाषा समशीलन हटाकर वास्तविक जीवन के अधिक निकट आ गई है। दूसरी विशेषता प्रसाद जी की यह है कि वह समाज के बन्धनों से उन्मुक्त केवल मानव हृदय का मर्म स्पर्शों चित्र त्रिचने में प्रसाद बहुत सफल रहे हैं। तथा तीसरी विशेषता उनका दृश्य वर्णन है। उपन्यासों के चित्र त्रिचने में दृश्यों की संश्लिष्ट योजना द्वारा बिम्ब ग्रहण कराने का बड़ा सुन्दर प्रयत्न किया गया है। दृश्य प्राकृतिक, सामाजिक, नगर तथा ग्राम के भी हैं। इसके अतिरिक्त चित्रमय सुक्तियों का प्रयोग आधुनिक समस्याओं का प्रतिबिम्ब कला तथा संस्कृति विषयक विचार आदि बहुत सी बातें हैं जो इन दोनों उपन्यासों में स्थान

स्थान पर घिसरी पड़ी है। उनके उपन्यासों में भाव-प्रवणता के दर्शन होते हैं।

प्रसाद जी के निधन के बाद उनका अधूरा ऐतिहासिक-उपन्यास "हरावती" निष्काशित हुआ। इसका संबंध जुगजाल से है। इसकी वर्णन प्रणाली अपनी रमणीयता में "करुणा" और सशक्त से भी बाग बद्ध गयी है। यदि यह पूरा हो गया होता तो भारतीय उपन्यासों में अपना प्रमुख स्थान रखता परन्तु दुर्भाग्य से यह न हो सका।

भाव मूलक आदर्शवादी परम्परा की कहानियाँ ही रचना करने वाले साहित्य छात्रों में प्रसाद का प्रमुख स्थान है। ये समूह विकास काल का प्रतिनिधित्व करने बहस करने वाले कलानीकारों में से है। सन् १९११ में "हन्दु" के प्रकाशन के साथ ये कहानी क्षेत्र में आये। इनकी सर्वप्रथम कहानी "ग्राम" और अंतिम "सात्वती" है। "ग्राम" कहानी "हन्दु" पत्रिका में सन् १९११ में निष्काशित। इसी पत्रिका का प्रारम्भिक प्रतियों में इनकी कुछ और भी कहानियाँ निष्काशित^१।

प्रसाद जी ने कुल मिलाकर ६६ कहानियाँ लिखी जिनका प्रकाशन छाया, प्रतिध्वनि, आकाशवाणी, आंधी तथा हन्दुजाल में किया गया है। इनकी अधिकांश कहानियाँ भावमूलक आदर्शवादी परम्परा के अन्तर्गत आती हैं। विषयवस्तु के आधार पर, प्रतिपादन शैली के आधार पर, रचना के आधार पर, उद्देश्य के आधार तथा रागात्मक तत्वों के आधार पर हम वर्गीकरण कर सकते हैं। इनकी कहानियाँ में भावात्मकता, कल्पना, नाटकीयता तथा ऐतिहासिकता का छुट अधिक है। इनमें मानव-चरित्र के अंतर्गत जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण आकषेण तथा मनोरंजक ढंग से किया गया है।

१- पंचायत : कला २, किरण १, भावण १९६७ पृष्ठ १२।

प्रसाद ने अपने कवित्वपूर्ण तथा जादूवादी कहानियों में जीवन की भिन्न भिन्न परिस्थितियों के बीच मानव चरित्रों के रहस्य का उद्घाटन किया है। इनकी अधिकांश कहानियाँ में प्रेम की विरुद्ध व्याख्या की गई है। इन्होंने पुरुष-स्त्री के बीच विकसित होने वाले प्रेम के भिन्न भिन्न रूपों का उद्घाटन किया है। इनकी सामाजिक कहानियों में पुरुष पात्रों की अक्सर स्त्री पात्रों का चरित्र प्रायः अधिक जाँच-पछाड़ तथा उज्ज्वल है। "सुजाता", "ममता", "मधुसूता" आदि में सामाजिक दृष्टि दर्शन होती है। इनकी प्रेम-प्रधान कहानियों में ऐसी प्रेम-प्रतिकारियों की संख्या अधिक है जो वारम्बर में एक दूसरे से अपरिचित हैं। सामाजिक दृष्टि से ही उनमें प्रेम का उदय होता है और फिर वह संयोग अथवा वियोग में परिणत हो जाता है - "पाप की पराजय", "दुस्निया", "बाकाऊनीन", "अपराधी", "हन्ड्रवाल" के अधिकांश पात्रों का चरित्र चित्रण इसी प्रकार का प्रदर्शित किया गया है। ऐसी कहानियाँ, जिनमें मयादावी का उत्सर्जन करके भी उच्चवर्गीय प्रेमियों ने निम्न वर्गीय प्रेमिकाओं की अपने प्रेम जाल में फँसाया है बड़ी मार्मिक तथा अत्यन्त वाक्यार्थक है। "अपराधी", "बूढ़ी वाली", "समुन्द्र सन्तरण" कहानी इसी के अन्तर्गत आती है। प्रसाद ने विधवाओं का भी चरित्र चित्रण किया है जैसे "गुदड़ी", "प्रति धनि", "ममता" आदि में इसकी दर्शन होती है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक कहानियों में इन्होंने मध्यवर्गीय तथा निम्नवर्गीय पात्रों का चित्रण किया है। प्रसाद ने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय मानव स्वभाव का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके पात्रों के प्रति पाठकों के हृदय में सहानुभूति तथा करुणा का भाव बनायास उत्पन्न हो जाता है।

उनमें प्रेम की पीठा के साथ दन्ध की भावना वाह्य तथा वाच्यन्तरिक दोनों मिलती है। इनके स्त्री पात्रों में कहीं कहीं प्रतिक्रिया की यक्ष्मिणी ज्वाला उग्र रूप में दिसताई गई है। इनके अधिकांश पात्रों का चरित्र चित्रण साधारण तथा सजीव तथा स्वाभाविक हुआ है परन्तु कहीं कहीं उनमें हतनी रहस्यात्मकता है। प्रसाद की कहानियों के कथानक संक्षिप्त तथा विस्तृत दोनों हैं। "हाया" तथा प्रतिध्वनि" की कहानियाँ वाक्य में संक्षिप्त और "वाक्याश्रय दीप", बाँधो" तथा "हन्द्रजात" की कहानियाँ विस्तृत हैं। प्रसादजी संक्षिप्त वाक्य की कहानियाँ लिखने के पक्षपाती थे परन्तु बाँधो बतकर उनकी कहानियाँ रचना-विकास की दृष्टि से विस्तृत हो जाती हैं। विस्तृत वाक्य की कहानियों में कथा भाग के सब तत्त्व-प्रस्तावना, मुत्थांश चरमसोमा तथा पृष्ठभाग मिलते हैं। इनको भावसूक्त कुछ कहानियों में घटनाओं के क्रमिक विकास के स्थान में केवल एक भावना का विकास होता है। पाठकों में कुतूहल जगाने के विचार से उन्होंने कहीं कहीं कथा-वस्तु का प्रस्तावना अंश कुछ बाँधो बतकर दिया है। किसी कहानी में पात्रों को संस्था अधिक हो जाती है। इनके पात्रों का चरित्र चित्रण घटना, वातावरण, संकेत तथा वर्णन सब पद्धतियों में किया गया है। इनके पात्रों के संवाद प्रभावपूर्ण हैं तथा उनके द्वारा कहानी का कथा भाग बढ़ता है, पात्रों की पारस्परिक विशेषताओं की ओर संकेत मिलता है तथा रचना शैली का निर्माण होता है। इनकी कहानियों के अन्त के विषय में प्रसन्न संकेत है :-

"प्रसाद की कहानियों का अन्त" अर्पण दंग

१-"उत्कृष्ट कहानियाँ" लेखक रायकुण्डादास : भूमिका भाग

का निरासा होता है ----- वहाँ ही प्रभावपूर्ण ध्वन्यात्मक और सस्था---
पाठक का मन फकफोर उठता है ----- वह एक समस्या को पुनः सुलझाने
लगता है । **

इनकी कहानियाँ की इस दुर्ग से समाप्त होती
हैं कि पाठक का मन घटना के फल या पात्र की मनोदशा की ओर सिंग जाता
है और वह उसकी अपनी दुवय में बहुत समय तक के लिये बनाये रहता है । प्रसाद
की कहानियाँ की अन्त प्रभावीत्पादक, मनोवैज्ञानिक, ध्वन्यात्मक, विचारात्मक
तथा कल्प कलात्मक होता है । सम्बन्ध निवृत्ति का ध्यान प्रसाद जो ने अपनी
कहानियों की घटनाओं में बराबर रखा है । प्रत्येक कथा के पार्श्विक वर्णों का
अंतर्लिखित करने में ये रचना कौशल का अद्भुत व्यक्तिकार दिखता है ।

प्रसाद जी की गद्य ऐसी में उनके व्यक्तित्व
की पूरी छाप मिलती है । वे स्वभावतः गम्भीर तथा दार्शनिक थे अतएव इनकी
कहानियों में जीवन का गम्भीर वातावरण विद्यमान रहता है । इनके गद्य
में बीज, अनुपम चित्रोपमता, काव्यात्मकता तथा संस्कृत की तत्त्वमता वादि
अनेक गुण हैं । इनकी ध्वन्यात्मक कहानियों में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों
वर्णों का आनंद मिलता है । " वाकाशब्दीप ", कहानी में मन (बम्पा) और
बुद्धि (बुद्धगुप्त) के संयोग से इन्द्रियों का यमन किया जाता है । इस भाँति
कहानी में वाक्यात्मिकता का फुट आ गया है ।

अतएव प्रसाद के वार्षिकीय ने हिन्दी कथा
कहानी कला के वारम्भिक विकास के लिए एक अद्भुत स्वस्थ युग द्वार की शुरुआत

सीस दिया । इन्होंने अपनी बहुमूल्य कलाकृतियों द्वारा "कहानी" के जितने प्रयत्न एवं कलात्मक प्रयोग उपस्थित किये उनमें हिन्दी कहानी साहित्य विकास मार्ग पर ऊँसर ही चला तथा भविष्य के कहानीकारों के लिए भी एक प्रशान्त एवं समतल राजमार्ग का प्रदर्शन हो गया । तात्पर्य यह है कि प्रसाद की भिन्न भिन्न कहानियों द्वारा जो कलात्मक प्रयोग उपस्थित हुए उनसे हिन्दी कहानी कला के प्रारम्भिक विकास में समुचित योग मिला । इस प्रयोगों से कहानी के विधान में एक निश्चित दिशा मिली । इनकी कहानियों के कथानक निश्चित घटनाओं की शृंखला होते हैं । उनमें संयोग का विशेष स्थान रहता है । इनके पात्र भावुक, कल्पना प्रधान, प्रकृति प्रेमी हैं । ये शक्ति-हासिक होकर भी काल्पनिक हैं । पात्रों के भावों की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रसाद की कहानियों में मिलती है । इनके पात्र वादहीन अधिक यथार्थवादी कम हैं । वस्तुतः प्रसाद एक महान कलाकार हैं । इनकी साहित्य सज्जा के कारण हिन्दी कहानी कला अपने विकास मार्ग पर बहुत आगे बढ़ गई है ।

प्रसाद की कहानियों का मुख्य सत्य, सत्य, दर्शन, त्याग, उत्सर्ग तथा करुणा है उसका मुख्य कारण उनके व्यक्तित्व पर गीत दर्शन और भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव था । इसके साथ प्रसाद भावुक और संवेदनशील व्यक्ति थे । प्रसाद की कहानियाँ फलतः एक अनुभूति के परावर्तन पर लिखी गई हैं जहाँ उनके निर्माण में एक निश्चित अनुभूति की ही प्रेरणा है सत्य की नहीं । प्रसाद की इस अनुभूति का केन्द्र बिन्दु, सौन्दर्यानुभूति और प्रेम प्रेमानुभूति है । प्रथम काल की कहानियाँ परिस्थिति प्रधान हैं। द्वितीय काल "वाकाश दीप" की कहानियाँ मुख्य रूप से संवेदनात्मक कहानियाँ हैं । तृतीय काल प्रसाद की कहानी कला का चरम उत्कर्ष काल है । इस काल

में प्रसाद जी अपनी सृष्टि के प्रयोग कात से जागे बढ़कर जीवन की गहराई से देखकर जीवन के क्लेशान्तरिक भाव मंगिमाओं का जितना गम्भीर और पूर्ण चित्र उपस्थित किया है वह स्तुत्य है। "छाया" प्रतिष्ठा की कहानियाँ सरुण रोमान्टिक हैं।

प्रसाद जी की सम्पूर्ण कहानी साहित्य में वापसी की प्रतिष्ठा उनके लय की सबसे बड़ी विशेषता है। यह वापसीवाद समाज, दर्शन और व्यक्ति तीनों क्षेत्र में समान रूप से व्यक्त हुआ है। उनका व्यक्तित्व वाधुनिक हिन्दी कहानीकारों में सर्वथा अनूठा है। उनकी वात्पिका की सच्ची वातावरण उनकी "पत्थर की पुकार" नामक कहानी में स्पष्ट है। क्लेश और करुणा का जो अंश साहित्य में है वह भी हृदय की वाक्यभित्त करता है। प्रसाद जी अपनी वात्मा की इस पुकार से बहुत ही पिपासित थे। फलतः उन्होंने अपनी कहानियों में सरुण प्रेरणा के प्रति विश्वास-पात नहीं किया। दूसरी बात प्रसाद जी ने कहानी की कहानी के सात्विक परातल से बहुत कम लिखा है। उनके मन में जो भाव उठे उसी के स्वरूप उन्होंने इतिहास से कोई कथानक हट्ट निकाला या कल्पना लोक से उसकी सृष्टि की। यही कारण है कि उनकी सम्पूर्ण कहानियाँ भावात्मक ही गई हैं। पट्टा की प्रस्तुत करने में प्रसाद ने अपनी कहानियों में नाटकीयता और अंतर्द्वन्द्व की सृष्टि की है। परित्रों का निर्माण कल्पना, क्लृप्ति और वापसी के साक्षात्कार से किया है। वातावरण का निर्माण ऐतिहासिक और भावात्मक कहानियों में हुआ है। इस प्रकार प्रसाद जी की मौलिकता कहानी के भाव पक्ष में ही सीमित न रहकर कहानी के कला पक्ष में विशिष्ट रूप से अपनी प्रेरणा दी है।

हायाबादी युग के कथा साहित्यकारों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निरासा का नाम जाता है। निरासा जो ने "अप्सरा" "ऊँकड़ा," "निरुपमा," "प्रभावती," "घोटी की पकड़" आदि लोक उपन्यास लिखे हैं। निरासा जो की "अप्सरा" नामक उपन्यास काव्यत्व से भरा पड़ा है। रूप वर्णन में उपमा उत्प्रेक्षा के बिना एक पंक्ति भी खाली नहीं बढ़ता। संयोग तत्त्व का अधिक सहारा लिया गया है। अधिकांश घटनाएँ कल्पित हैं। वेश्या-पुत्री भी हृदय रसती है और उपयुक्त अवसर मिलने पर पत्नीत्व की मर्यादा मानकर चलने में उसे अधिक सुख मिलता है। यही तथ्य इस उपन्यास में व्यंजित है। निरासा जो का कथन है कि उन्होंने किसी विचार से अप्सरा नहीं लिखी, किसी उद्देश्य की इसमें पुष्टि नहीं। अप्सरा उन्हें जिस वीर से गर्व है सोफ़ा पतंग की तरह उसके साथ रहे। अपनी ही इच्छा से अपने मुक्त जीवन प्रसंग का प्रांगण छोड़कर प्रेम की समित दुःख बाँझों में सुरक्षित कैद रखना उसने पसंद किया। इस उपन्यास में एक सामान्य कथा का कवि ने अपनी सम्पूर्ण काव्य प्रतिभा से बड़ी रमणीयता, मधुरता प्रदान कर दी है। रूप एवं भाषनाली के वर्णन में बड़ी ही उत्कृष्ट, सांकेतिक एवं ध्वनिमयी भाषा का प्रयोग हुआ है।

इसके उपरान्त निरासा जो ने "ऊँकड़ा" का सम्बोधित करते हुये जाये कि जिन्होंने "अप्सरा" को देखकर चुन-चर वाचार्थ कही थीं वे एक बार देखें कि उनके सप्राटों द्वारा अनधिकृत साहित्य की स्वर्ण-भूमि से वेने कितने हीरे मोती उन्हें दान में दिये। ऊँकड़ा की ऊँकों में कितने हीरे मोती हैं, इसका जीहर तो साहित्यिक जीहरियाँ द्वारा ही हुल्ला परन्तु

यह तथ्य है कि अपनी त्रुटियों के होते हुए भी यह ब्रह्मा उपन्यास है। यह सुदृढ़ चरित्र-प्रधान उपन्यास है। "शीमा" जो बाद में "कस्तूरी" के नाम से विख्यात हुई उसकी नायिका है। उपन्यास स्पष्टतः वादशैवादी है। स्थान स्थान पर व्यंग्य के मार्मिक छोटें हैं।

कथा- सीधे, भावानुभूति, सामाजिक यथार्थ तथा रमणीयता की दृष्टि से निराला जी का "निरुपमा" नामक उपन्यास श्रेष्ठ है। इसे पढ़कर बंगला के श्रेष्ठ उपन्यासी जैसा रस मिलने लगता है। प्रेम की गम्भीरता, भाव प्रवणता एवं नाटकीय स्थितियाँ इस उपन्यास में परिचलित होती हैं। इसमें कीक स्थल रमणीय एवं प्रभावपूर्ण है जिसकी स्मृतियाँ बहुत दिनों तक सजीव रहती हैं। इस उपन्यास के जितने भी पात्र हैं सभी सजीव तथा जीवनवत हैं। "अपलरा" की भाँति यह उपन्यास दर्शन एवं काव्य के मार से अधिकृत नहीं बन पाया है। भाषा बड़ी ही परिष्कृत होने पर भी व्यावहारिक तथा पात्रानुकूल है। व्यक्ति एवं समाज पर व्यंग्य की बड़ी ही शिष्ट-शालीन रीति इस उपन्यास में देती जा सकती है।

"प्रभावती" निराला जी का ऐतिहासिक उपन्यास है। "बिल्लसुर-बकरीहा" में गाँव का सास्य व्यंग्य गम्भीर चित्रण है। "चोटो की फुड़" में बंगाल के जमींदारों की श्याही, प्रजा पर उनके व्यवहार, धन के हूत पर बड़े से बड़े बड़ा अपराध पचा जाने की उनकी दाम्भता, पक्षी मस्त की स्त्रियों की श्याही एवं दुश्चरित्रता आदि का वर्णन किया गया है। विषय एवं वर्णन दोनों ही दृष्टियों से उपन्यास में नवीनता है। सांसारिक भाषा एवं व्यंग्य का जीता जागता ऐसा प्रयोग किया गया है जो साधारण

पाठक के लिये उत्पन्न हो जाता है। फिर भी उपन्यास में नवीनता का वाक्यांश है।

उपन्यास के अतिरिक्त निराला जी ने कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ "मतवाला" नामक पत्र में समय समय पर प्रकाशित होती रही हैं। उन्होंने लगभग बीस कहानियाँ लिखी होंगी। जिनका संग्रह "लिली", "सली", "सुस्त की बीबी" तथा "चतुरी चमार" शीर्षक पुस्तकों में हो चुका है। "लिली" इनका प्रथम कहानी संग्रह है। "सुस्त की बीबी" संग्रह की कहानी "क्या देता" सर्वप्रथम सन् १९२२ में "मतवाला" में निकली। निराला जी इसके विषय में लिखते हैं- "इसमें कुछ परिवर्तन मैं कर दिया है। पर इदयगत भाव वही है। ----- यह कहानी उत्तम पुरुष में होती है बाद में तृतीय पुरुष में बदल गई है, यह किताब दोष है, उतना ही गुण। मेरा विचार है, कहानियाँ से पाठक पाठिकाओं का मनोरंजन होगा। "कम कीर लिली", "ज्यातिपयी", "कमला", "श्यामा", "वर्ष", "प्रमिका परिचय", "परिचय", "परिवर्तन", "हिरनी", "सुस्त की बीबी", "गजानंद शास्त्रीजी", "कला की रूप रेखा", "क्या देता", "इनकी कहानियाँ में हैं। "चतुरी चमार" इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

विषय दृष्टि से निराला जी की अधिकांश कहानियाँ सामाजिक हैं। किसी किसी कहानी के व्युत्पत्ति रूप से राजनीति,

१- गंगा-ग्रन्थागार ३६ लादूरा रोड, सनऊ

२- सरस्वती पुस्तक भंडार, सनऊ

३- भारती भंडार, लोडर प्रेस, उलाहाबाद

४- "सुस्त की बीबी" - निवेदन करें

धर्म, कृता वादि की चर्चा की गई है। इनकी कहानियाँ में विधवा विवाह, बहूतीदार, वैश्यावी का क्लृप्ति जीवन और उनका उदार, नवयुवक तथा नवयुवतियों के अनियन्त्रित और उच्छ्वस्त प्रेम तथा पति पत्नी का प्रेममय जीवन वादि विषयों की ग्रहण किया गया है।

“पद्मा और तिली” कहानी में अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न उठाया गया है परन्तु उसकी स्पष्ट रूप से न सुलझाकर बीच में छोड़ दिया गया है। कलकत्ता कहानीकार पद्मा और राजेन्द्र का विवाह न करा सका। “स्त्रीतिथियों में विधवा विवाह की समस्या पर विचार हुआ है। “कमला” कहानी में समाज के ढोंग पर व्यंग किया है। “रामा” में निम्न वर्गों के सुधार के लिये जायें समाजी कार्यक्रम की प्रशंसा की गई है। “प्रमिका का परिचय” इनकी हास्य प्रधान कहानी है।

निराला की कहानियाँ में रचना चमत्कारका विशेष आकर्षण नहीं। इनमें भाव पदा की अपेक्षा कला पदा पदा हुआ है। इनकी कहानियाँ में कथावस्तु के सब भाग स्वाभाविक रूप से न बाहर बागे पोके जाते हैं जिसके कारण कथा भाग आकर्षक नहीं बन पाये। इनके अधिकांश पात्र मध्य तथा उच्च वर्गीय हैं जिनमें गुण अगुण दोनों मिलते हैं। ये पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते समय उनकी मनः स्थिति का विश्लेषण नहीं करते। पात्रों के गुण-अगुण का संकेत घटनाओं द्वारा स्वयं होता है। इनके पात्रों के सामने कोई ऐसी आश्चर्य परिस्थिति नहीं आती जिसके परिणामस्वरूप उनकी विचारधारा बदल जाती हो। इनके पात्रों का परिचय वर्णन, वातावरण तथा घटनाओं द्वारा होता है। इनके संवाद “आकर्षक

तथा बमत्कार पूर्ण नहीं । वे स्वाभाविक तथा परिस्थिति या समय के अनुसार नहीं होते । उनसे न तो कहानी का कथा भाग बाँट बढ़ता है और न पात्रों की चरित्रिक विशेषताओं की और ही संकेत मिलता है । इनकी कहानियाँ में वर्तमान अत्यन्त समाज का चित्रण यथार्थवाद के आधार पर किया गया है। इनके द्वारा सामाजिक समस्याओं का कोई सुसंगत उपस्थित नहीं होता । अनियंत्रित तथा स्वच्छन्द प्रेम, परस्परविरुद्ध सामाजिक अंतर्भाव तथा विद्रोह भावना की कहानियाँ द्वारा मानव जीवन का विश्लेषण इनकी कहानियों का लक्ष्य रहा है । "चतुरी" बमार" इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है । विकास कालीन यथार्थवादों परम्परा की कहानियों के अन्तर्गत विशेष रूप से निराला जी की गणना होती है । निराला जी की कहानियाँ कला पदा की अत्यन्त भाव पदा की और अधिक फुकी हुई हैं । रचना विधान में वर्णनात्मकता, कथा-विधान में कृतिवृत्ति तथा शैली की दृष्टि से, ऐतिहासिक शैली इनकी कहानी कला के मुख्य पक्ष हैं । द्रष्टुतः निराला जी कहानियाँ इस दृष्टि में उच्च कीटि की हैं क्योंकि ये समाज के सभी पात्रों को छूती हैं मुख्यतः उनकी जहाँ शोषण है, संघर्ष है । इनकी कहानियाँ अपनी मार्मिकता और संवेदनाके सहारे मानव विश्लेषण और अध्ययन में सफल हुई हैं ।

सुमित्रानंदन पंत-

सुमित्रानंदन पंत ने भी अपनी असीमित कल्पना, सौन्दर्य प्रेम तथा भावुकता का परिचय दिया है । इनकी कहानियों का संग्रह - "पाँच कहानियाँ" - सीडर प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हो चुका है । काल्पनिक लोके में विवरण करने वाला कवि इनकी रचना करते समय यथार्थ जगत के

सन्निवृत्त जाकर उसकी एकलताओं की वीर पनीविज्ञानिक दृष्टिकोण से देखता है ।

पंत-जी की कहानियाँ में प्रेम की प्रधानता है । प्रायः सब प्रेमी अपनी पारिवारिक तथा सामाजिक मर्यादाओं के कंगति रहकर प्रेम व्यापार में संलग्न होते हैं । " पान वाला " कहानी में साधारण स्थिति के नवयुवक के दुःखपूर्ण तथा वार्धक्य कष्टमय जीवन को व्याख्या की गई है । " दम्पति " में आदर्श पति-पत्नी के सुखमय जीवन की झलक दिखलाई गई है । " बन्धू वीर " उस भार " कहानियों में नवयुवकों के प्रेम का वर्णन हुआ है । इनकी " कमगुंठन " कहानी पढ़ाई प्रथा के ऊँह पुनः स्टाका है । प्रायः पंत जी की सब कहानियाँ यथार्थवाद के धरातल पर जा गई हैं । पंत जी ने कहानी के जिस कलात्मक रूप का प्रयोग किया है उसमें नवीनता का छुट नहीं दिखाई देता । इनका कथानक निम्न कीटि का है । कहानीकार की घटनाओं की अपेक्षा दृश्य चित्रण की वीर ही अधिक रुचि है । इनकी कहानियों में घटना की अपेक्षा पात्रों की प्रधानता है । इनके अधिकांश पात्र यथार्थवादी हैं । " कमगुंठन " कहानी का अन्त प्रभावपूर्ण है । इनकी सब कहानियाँ अन्य पुरुष प्रधान शैली में वर्णित हैं । कथा वस्तु के बीच बीच में कहानीकार का व्यक्ति-त्व भाव प्रधान हो जाता है ।

वस्तुतः भावपूर्ण परम्परा की कहानियों के विकास में पंत की कृतियों द्वारा कोई विशिष्ट योग नहीं मिलता । विषय, प्रतिपादन शैली तथा कला विधान की दृष्टि से वह ने प्रभाव परम्परा की कहानियों के अन्तर्गत रहती है ।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा की भी कहानियाँ भावमूलक परम्परा के अन्तर्गत आती हैं। कथा-साहित्य में इनकी दो रचनाएँ - "कलित के चतुर्चित्र" तथा "स्मृति की रेतारें" - प्रसिद्ध हैं। इनमें उन स्मृति-चित्रों का संग्रह किया गया है जिनका रचनाकार के जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है। इसमें उनका जीवन का गया है। इन रचनाओं में चिन्तन की उत्पत्ति है, भावना का स्पन्दन है और कल्पना की कारोگری है। ये संस्मरण प्रदर्शनों की वस्तु न होकर ऐतिका की कदाय ममता के पात्र हैं। इनके पात्रों की कल्पना के परिधान में न लपेटकर वास्तविकता की नींव पर सटा दिया गया है। इनके संस्मरण व्यक्तियों की जीवनियाँ भी नहीं हैं इनमें कहानी के सज्ज गुण मिलते हैं तथा साहित्यिकता, सजीवता, रीचकता तथा भावात्मकता और अभिव्यक्ति शैली के चमत्कार के कारण इनका भाव मूलक परम्परा की कहानियों के अन्तर्गत विशेष स्थान है।

महादेवी वर्मा ने अपनी संस्मरण में अपने चिर परिचित व्यक्तियों के जीवन की झंझरी उतारी है। जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में उनके चिन्तन की विद्या और संवेदन की गति दी है, उनका चित्रण इन संस्मरणों की विषय वस्तु है। उन्होंने अपनी भावात्मक कहानियों में पात्रों के जीवन के विशेष दृश्यों की भाव प्रधान व्याख्या की है। इनकी भावात्मक कहानियों के कथानक इतिवृत्तात्मक तो हैं किन्तु उनमें श्रमबद्धता तथा एकसूत्रता का अभाव है। इनके अधिकांश पात्र निम्नवर्गीय प्राणी हैं, जिनमें चारित्रिक गुण अगुण दोनों हैं। इनका चरित्र-चित्रण सुन्दर, प्रभावपूर्ण

तथा यथार्थवादो है। पात्रों का चारित्रिक परिचय कलात्मकता तथा विस्तार के साथ दिया गया है। इनके संवादों में नाटकत्व का चमत्कार नहीं मिलता। पात्रों का चरित्र चित्रण करने और घटनाओं की गतिशील बनाने में कहानीकार का व्यक्तित्व प्रमुख स्थान धारण कर लेता है। इनकी कहानियाँ में पात्र नहीं भीती इस कभाव की पूर्ति स्वयं कहानीकार के द्वारा होती है। इनकी कहानियों का उद्देश्य काल के प्रति संवेदना जाग्रत करना है। इन्होंने इनमें यथार्थ का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है किसी आदर्श की प्रतिष्ठा नहीं की। इनकी कहानियाँ पात्रों की परिस्थिति के वर्णन ज़रूरी घटना द्वारा चारम्भ होती है तथा का बड़ी मार्मिक तथा प्रभावपूर्ण ढंग से होता है। प्रत्येक कहानी समाप्त होकर, पात्रों के प्रति पाठकों के हृदय में भाव विशेष छोड़ जाती है।

इनकी कहानियाँ उत्तम पुरुष तथा अन्य पुरुष दोनों शैलियों में वर्णित है जिनमें भाषा-चमत्कार विशेष उल्लेखनीय है। महादेवी वर्मा कवियत्री होने के नाते उनमें संवेदनशीलता भावुकता तथा कल्पना की ऊँची उड़ान है। विषय वस्तु में व्यक्ति, परिवार तथा समाज की भाव चिन्तन तथा संवेदना प्रधान व्याख्या यथार्थवाद के आधार पर ग्रहण हुई है।

प्रगतिवादी युग

हायावादी कथा साहित्य का इस एवं फलन का कारण उसका व्यक्तिगत दृष्टिकोण था। महादेवी वर्मा ने स्वयं कहा कि

झायावाद व्यक्तिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षा में क्षुब्धी रहता था ।
 पंत ने भी कहा था " झायावाद के शून्य सूक्ष्म ब्रह्माक्ष में अति काल्पनिक उड़ान
 मारने वाली कथा रहस्य के निर्जन क्षुरुर्य छिन्न पर विराम करने वाली कल्पना
 की " जन जीवन का संध्या चित्र संकित करने के लिये " एक हरी भरी ठोस जन
 पूर्ण धरती " की आवश्यकता थी । प्रातिवाद उपरोक्त व्यक्तिगत भावना की
 व्यस्तता कर समष्टिगत स्वरूप की लेकर जागे बढ़ा और उसने " अति काल्प-
 निक उड़ान मारने वाली कल्पना की " एक हरी भरी ठोस जन पूर्ण धरती "
 पर उतार कर उसे जन जीवन का चित्रण करने की प्रेरित किया । जिस समय
 झायावाद अपने व्यक्ति की साक्षा में तन्मय, ज्ञात की वास्तविकता की और
 से जैसे बंधकर वास्तव विभीर जागे बढ़ा जा रहा था उसी समय ज्ञात की नग्न
 वास्तविकता, " रोटी का राग " और प्रान्ति की जाग " लिये प्रातिवाद जागे
 जाया और उसे फक्करी के कर साहित्यकार की एक नवीन समस्या, एक
 नवीन चेतना का साक्ष्य दिखाया । उसने झायावादी अति सूक्ष्म काल्पनिक
 भावनाओं का विरोध कर उसे स्थूल ज्ञात की कठोर वास्तविकता के सम्मुख ला
 सठा किया ।

प्राति का साधारण अर्थ " जागे बढ़ना " या
 उत्थिति करना है । परन्तु आज साहित्य में " प्रातिवाद " शब्द से केवल प्राति
 का ही अर्थ न लेकर एक विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित साहित्य
 लिया जाता है जिसका सूत्रधार मार्क्सवादी दृष्टिकोण है । अतः प्रातिवादी
 क्या साहित्यकारों में राणिय राय, राजेन्द्र यादव, यशपाल, अमृतलाल,
 नागाजैन, राजुल साकुत्यान आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

समाज के यथार्थवादी चित्रण की दृष्टि से यज्ञपाल के उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। जीवन के प्रति उनकी एक निश्चित दृष्टि है और सामाजिक व्यवस्था के चित्रण में उन्होंने अपनी इस दृष्टि को समाज दर्शन का माध्यम बनाया है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनकी कृतियों में पूंजीवादी व्यवस्था के वैधान्य से उत्पन्न मानवीय उत्पीड़न की कथा वर्णित है। जीवन की प्रकृति की असांदिध्य सत्य मानकर उन्होंने अपने उपन्यासों में यौन-लाक्षणिकता की मनुष्य की सबसे सख्त, स्वाभाविक तथा तीव्र अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। राजनीतिक विषयों पर उपन्यास लिखने वाली यज्ञपाल अग्रणी हैं। यज्ञपाल ने उपन्यास की सिद्धान्त-प्रकार का साक्ष्य बनाया है। यज्ञपाल में उच्च कोटि की विषयक प्रतिभा है; उनकी कहानियाँ इसकी साक्ष्य हैं। कहानियों में कला के जिस उत्कृष्ट रूप का दर्शन होता है वह उपन्यासों में नहीं मिलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि उपन्यास के माध्यम से वे एक निश्चित ध्येय की सिद्धि चाहती हैं। जिन प्रबल भावनाओं ने उन्हें "गान्धीवाद की उस परीक्षा" लिखने की प्रेरणा दी थी वे ही ही भावनाएँ उनकी कला का भी नियंत्रण कर रही थीं।

यज्ञपाल जी ने "दादा कामरेड" सन् ४९ में लिखा था। इसका मुख्य उद्देश्य इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उनके लिये वास्तव निर्णय का अधिकार प्राप्त करना। इस प्रकार दादा कामरेड लिखकर यज्ञपाल ने अपने राजनीतिक एवं कुछ सामाजिक विचारों को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। अपने इस उद्देश्य में तो वे पर्याप्त सफल रहे किन्तु

इससे उच्चतर कलाकार का उद्देश्य रहता है उसकी पूर्ति उसमें पूरी तरह नहीं हो पाई। यह क्लेश है कि उपन्यास पर्याप्त मनोरंजक है, वर्णन प्रणाली आकर्षक है तथा वातावरण का बड़ा सजीव चित्रण है। इस उपन्यास में यशपाल ने ऐसा पात्र बना जो हिन्दी के लिये जन्मा था।

यशपाल का दूसरा उपन्यास 'देह ड्रीमी' है।

'देह ड्रीमी' की योजना बहुत ही कम साध्य है। उसमें अपनी कोई गति नहीं। घटनाएँ, परिस्थितियाँ एवं पात्रों सभी का नियन्त्रण तथा परिचालन लेखक के ही द्वारा होता है। लेखक का प्रभाव हमारे मन में बाण मात्र के लिये भी घटने नहीं पाता। क्या का जमानेवाले खन्ना नायक है उसका व्यक्तित्व बड़ा ही निर्बल है। लेखक अपने मन के अनुसार उसे एक वातावरण में घटाकर खीन वातावरण में रहता बता गया है। वातावरण क्षीण है। इस प्रकार पात्र घटना एवं परिस्थिति सभी में एक प्रकार की कुत्रिमता से प्रतीत होती है। इस उपन्यास के पात्रों की यदि कुछ स्वतन्त्रता दी गई होती तो इसका अंत किस रूप में हुआ है न होता।

लेखक अपने उपन्यास में जितना ही अपने की वक्तव्य रहता है उसकी कृति उतनी ही कलापरक होती है। यशपाल ने अपने कथनों अथवा वर्णनों तथा पात्रों के संवादात्मकता की ही सिद्धान्त-प्रतिपादन का माध्यम बनाया है। कहीं कहीं तो लेखक अपनी इस प्रवृत्ति से बिल्कुल इतिहासकार सा बन बैठे हैं और वे वर्णन अथवा संवाद नितान्त नीरस हो उठे हैं। गांधी-वाद, समाजवाद, साम्यवाद आदि की व्याख्या के साथ साथ पिछले पाँच सप्त वर्षों का राजनीतिक इतिहास सा देने का प्रयत्न किया गया है।

यह पाठ में उच्च कोटि की प्रतिभा है ।

“दशहारी” उपन्यास उनका उच्च कीर्ति का है । केवल पुस्तकीय ज्ञान तथा काल्पनिक प्रतिमा के बाजार पर वकीरस्तान तथा रुस के कुछ प्रदेशों बाजार विचार धार्मिक तथा सामाजिक भावनाओं का बड़ा ही विस्तृत चित्रण किया है । यद्यपि उनकी पर्याप्त विज्ञान स्वातन्त्र्य नहीं मिला है फिर भी जितनी कसक प्राप्त हुई है उसमें प्रमा है । यदि यशपाल हाथ धीकर साम्यवाद के प्रतिपादन में न लग जाते तथा उसे प्रधानता देकर कला की गौण स्थान न देते तो “दशहारी” अपने ढंग का एक बड़ा सुन्दर उपन्यास होता ।

यक्षपाल ने दिव्या 'उपन्यास' भी लिखा है ।

यह उनका ऐतिहासिक उपन्यास है । जिसमें बौद्धों की चित्रण का प्रयत्न किया गया है । इस दृष्टिकोण से यद्यपि इस उपन्यास में फर्पात सफल रहे हैं । कहानी में कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते । प्रभाव सहज है, संवाद पात्रों के अनुकूल हैं, वातावरण वेश विन्यास, दृश्यविवेचन आदि रीति नीति सभी के वर्णन में सतर्कता है । प्रारम्भ और अंत दोनों ही पाठकों के ऊपर प्रभाव डालते हैं ।

“मनुष्य के रूप” में यशपात सामाजिक विभक्तता से उत्पन्न भानव के भावनागत एवं बाह्य जीवन- सम्बन्धी परिवर्तनों का यथार्थ वर्णन किया है। इस उपन्यास में जीवन के प्रति एवं मनुष्य- निर्मित संस्थाओं के प्रति लेखक का दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक है। परिस्थितियाँ मनुष्य में अज्ञातपूर्व परिवर्तन ला देती हैं। शारीरिक सुख की अभिलाषा ने सीपा किसी लगीसी, स्नेहील स्त्री को भी तब तक रूपर परिवर्तन के लिये बाध्य किया। वर्तमान समाज की ऐसी स्थिति है कि नारी उसमें या तो पत्नी बनकर ही सुरक्षित

रह सकती है या वैश्या बनकर । नारी के लिये मनुष्य कभी कभी पिशाच से भी नीचे गिर जाता है । इस प्रकार यह उपन्यास वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रचण्ड विद्रोह है । उत्पन्न जावरण हातकर मनुष्यों की पृथ्वी के स्तर पर सानि वाली पुंजीवादी सभ्यता के ऊपर ऊँची के धिनीन स्वरूप का बड़ा ही यथार्थ उद्घाटन किया गया है । एक प्रकार से यह उपन्यास जाधुनिस्तम समस्याओं पर प्रकाश डालने वाला है । मनुष्य की वर्तमान विकृतियों का एकमात्र समाधान साम्यवाद है यह तथ्य भी उपन्यास में ध्वनित है । " वामिता " भी " दिव्या " के समान ही ऐतिहासिक उपन्यास है । उसमें कलक के कलिंग पर जाक्रमण तथा वहाँ की घोर नृशंखता तथा क्रूरता के परिणामस्वरूप कलक के हृदय परिवर्तनशील ऐतिहासिक घटना की आधार पर प्रस्तुत कथानक की कल्पना की गई है । युद्ध का अंत परस्पर सौहार्द तथा प्रेम तथा वसिंता से ही सम्भव है इस उपन्यास में यही संदेश निहित है ।

" दिव्या " और " वामिता " के द्वारा बीद युद्ध की चित्रण-भूमिका में कल्पित कथा प्रसंगों के द्वारा लेखक ने जीवन सम्बन्धी अपनी धारणाओं की कला माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है ।

यशपाल ने कुल मिलाकर लगभग १२५ कहानियाँ की रचना की है । उनकी कहानियों का पुं धरातल मुख्यतः निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ हैं जिनका मूल केन्द्र दन्त्यात्मक भाँतिज्ञात है । अतः यशपाल ने अपनी कहानियों में समाज के बीनों पक्षधरों पर विचार किया है, शोषित और शोषक । साथ ही साथ समाज का सांस्कृतिक पक्ष भी लिया गया है जहाँ पुरातन धार्मिकता और परम्परा की कटु आलोचना की गई है और उनके स्थान पर जाधुनिक आर्थिक शक्तियों पर विचार किया गया है । इनकी

कहानियों में मनीषण और व्यक्तियों की की प्रेरणाओं के दर्शन बड़े सुन्दर ढंग से किये हैं ।

यज्ञपाल की कहानियों के मुख्यतः दो रूप हैं :- या तो वे समस्या प्रधान हैं या वे यथार्थवादिता के ऊपर आधारित हैं । इनकी वे कहानियाँ जिनके कथानक छोटे हैं जैसे "काला बावली", "रोटी का मास" इनमें एक दो ही घटनाएँ हैं परन्तु कलात्मक वाग्वच बहुत हैं । दूसरी वे कहानियाँ जिनके कथानक अपेक्षाकृत लम्बे, दृष्टिकोण-आत्मकता लिये हुये हैं उनमें जीवन संघर्ष और मनुष्य के कार्यों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है । "उत्तराधिकारी", "फूलों का कुत्ता", "दास धर्म", "छिन्ना", "पराई", आदि कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं ।

यज्ञपाल की सम्पूर्ण कहानियों में चरित्र-व्यवस्था मुख्यतः आर्थिक संघर्ष और वर्ग-भेदना के धरातल से हुई है । इनके चरित्र सर्वथा सर्व साधारण, यथार्थ और मानव संघर्षों के प्रतीक होते हैं । इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने अपनी कहानियों में अधिक से अधिक वर्गों, जातियों के चरित्रों को लिया है । चरित्र चित्रण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा इनके चरित्रों में प्रायः सर्वत्र हुआ है । इनके चरित्र प्रायः संघर्ष और विद्रोह के धरातल से निर्मित हुये हैं । इनकी कहानियों की रचना शैली में कथा-विचारण, कथोपकथन और चरित्र चित्रण मुख्यतः यही तीन तत्व हैं । सम्पूर्ण कहानी कथोपकथन, विकास और अन्त में इसकी कलात्मकता से गुंथी रहती है कि इन पात्रों को एक दूसरे से जोड़ कराना कठिन हो जाता है।

यज्ञपाल की समस्त कहानियाँ लक्ष्मण-आत्मक हैं । इनके निर्माण में लक्ष्मण की ही प्रेरणा प्रधान है । लक्ष्मण में आर्थिक संघर्ष और

वर्ग-भेदना में पुंजीपति और श्रमिकों का संघर्ष ही दृष्टिगोचर होता है।
कहीं कहीं इनकी कहानियों में अस्वाभाविक उग्रता और नरमता का गढ़ है।
अनुभूति की प्रेरणा मुख्यतः चरित्र विश्लेषण और उनके कई प्रेरणाओं के
अध्ययन है।

“ पिंजड़े की उठान ” की कहानियों में प्रेम के
भिन्न भिन्न रूप प्रस्तुत किए गए हैं साथ ही उनमें दार्शनिकता का छुट भी दिया
गया है। “ दो दुनियाँ ” की बारह कहानियों में गार्हस्थ्य जीवन, नवयुवकों
तथा नवयुवतियों का वाचरण, दरिद्रों तथा पुंजीपतियों का संघर्ष आदि
का चित्रण किया गया है। “ दास की ” तथा सत्य का मूल्य ” ऐतिहासिक
कहानियाँ हमकी कम संख्या में मिलती हैं। इन्होंने हालीय तथा व्यंग्य प्रधान
कहानियों में मनुष्य की झूठी मान्यताओं और उसके नैतिक ढोंग पर प्रहार
किया है।

इनकी कहानियों का मुख्य लक्ष्य आर्थिक संघर्ष
और वर्ग भेदना की अविव्यक्ति तथा पुरुष स्त्री के भिन्न भिन्न सम्बन्धों एवं
नैतिक मान्यताओं का विश्लेषण करना है। “ पिंजड़े की उठान ” का उद्देश्य
स्पष्ट करते हुए ये लिखती हैं “ हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस
वास्तविकताएँ ही होती हैं। इसलिए कल्पना का रूप में कल्पना का
महत्व है। हमारी कल्पना या तो जीत चुक चुक की अनुभूति के चित्र बनाकर
उससे मुक्त उठाना चाहती है या आदर्श की ओर संकेत कर समाज के लिये नया
नक्शा तैयार करने का यत्न करती है। ” “ दो दुनियाँ ” की कहानियाँ

१- पिंजड़े की उठान- “ दो दुनियाँ ” ।

में वर्तमान जात की यथार्थता का उद्घाटन किया गया है तथा वादर्थ की सामने रखकर ही किया गया है। "तर्क का सूफान" संग्रह की कहानियों की रचना जात और उसके जीवन के प्रति पीढ़ के उद्देश्य से की गई है। "मस्माकति बिंगारी" की कहानियों का उद्देश्य मनव्य में ऐतिहासिक और कर्तव्य की प्रवृत्तियों की बिनगारियों की भावना की छूँक पारकर सुलगाना है। काल्पनिक ने इनमें नारी समाज की पुराणों से स्वतन्त्र रखकर उनकी अपनी जायिक, राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं की सुलफान में अपनी बुद्धि का प्रदर्शन किया है। इनकी अधिकतर कहानियाँ ऐतिहासिक शैली में किसी भाव विवेक की जाकर समाप्त होती हैं जो बहुत प्रभावपूर्ण तथा भाषिक हैं।

सामाज्यादी यथार्थवाद की कहानियाँ

और उनके कहानीकारों की संख्या बहुत है किन्तु दर्शन और कला-विधान सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर ही यद्यपि ही इस वर्ग के प्रमुख प्रतिनिधि कलाकार हैं। इस वर्ग के कहानीकार प्राचीनता से असंतुष्ट होकर नवीनता का निर्माण करते हैं। ये यथार्थ का नग्न चित्रण इसलिए करते हैं कि उसके मनुष्य की मरिच्य वातावरण विस्तार दे सके। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इन कहानियों की प्रवृत्ति अपेक्षातर सध्यमर्ग की दरिद्रता और दयनीय परिस्थिति का चित्रण करने की और अधिक है।

रागिय राक्ष-

रागिय राक्ष में उपन्यास लिखने की बहुता प्रतिभा है। "घरीप, पुर्वी का खीला, बिन्हाव मठ, कब तक पुकारूँ" वादि

उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। "घराने" इनका पहला उपन्यास है। इसके प्रकरणों के नाम से एक प्रकार की नवीनता है। यह नवीनता उनकी सादा-णिक्ता एवं व्यंगात्मकता में है। यह उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इससे पहले फासिज के वातावरण का इतने व्यर्थ वार चित्रण हिन्दी के कौन-से उपन्यास में न मिलेगा। यथार्थ के साथ-साथ इसमें कुछ वाद्यों की वीर भी सुन्दर संकेत है। पूँजीवाद व्यवस्था उत्पन्न विषयताओं की व्यञ्जना में भी नूतनता है। समाज के पहियों में फिसल चुके व्यक्तियों की पुनर्जागरण की चित्रण में भी सहाय्य प्रदान मिल गई है। सम्पूर्ण उपन्यास में नियति, कर्म एवं समाज व्यवस्था के प्रति एक प्रबल व्यंग्य है।

"मुर्दा का टीला" एक पिछला उपन्यास है जिसमें मोहनजीपट्टी की सम्पन्नत सम्पत्ति उसके बिलास वैभव आदि के वर्णन के साथ-साथ अन्त में देवी प्रक्षीप के द्वारा उसके विनाश की कहानी संकेत है। "विजयपट्ट" में बंगाल के काल में हुए नर नारियों का यथार्थ चित्रण है। भूत की ज्वाला जिनकी चर्च होती है और वह मानव की कितना दयनीय बना देती है इस उपन्यास में इसका जीता जागता चित्रण मिलेगा। पेट की वाग के वागे स्नेह एवं नीतिशक्ता के बंधन होते पड़ जाते हैं और मनुष्य के मनुष्यता समाप्त हो जाती है। यथार्थवादी परम्परा का यह एक सफल उपन्यास है।

"बीबर" इतिहासिक उपन्यास है जिसमें सम्राट हर्षवर्धन एवं उनकी पत्नी राज्यकी की प्रमुख जीवन घटनाओं का वर्णन है। "सीधा सा रास्ता" लेखक की अपनी नवीन शोध है। इसमें लेखक अधिक यथार्थ भूमि पर उतरा है और विचारों के संघर्ष की, भावों के उत्थान पतन की अपेक्षा-कृत अधिक दृढ़ता की दृष्टि से देखा है।

“ सीधा सादा रास्ता ” उपन्यास भी

वर्षों दूर की नहीं बीज है । यह स्वतन्त्र उपन्यास है । मायतीव्रता इसकी समाप्ति के “ ठेठ में ठेठ रास्ता ” उपन्यास की प्रतिष्ठाया मात्र है । किसी उपन्यास के पाठों की लेकर कहानी के सूत्र की वागें बढ़ाने की दृष्टि से यह उपन्यास एक नया प्रयोग कहा जा सकता है । पाठों के उतार-चढ़ाव की अनिष्टताओं को अतिरिक्त अधिक सुन्दरता से वागें का प्रयत्न किया है । “ कब तक पुकारें ” उपन्यास भी वृद्ध सामाजिक उपन्यास है जिसमें बुराईयों के सामने जाने वाली नटी की रम्य उपजाति के जीवन का चित्रण है । उपन्यासकार की दृष्टि से इस जाति में कोई नैतिकता नहीं होती । इस कृमि के नदी जल की वेश्या बनाकर उसके द्वारा का कमाते हैं । सम्पूर्ण उपन्यास में छोटी जाति वालों पर बड़ी जाति वालों के व्यवहार का वर्णन है । सम्पूर्ण वातावरण स्त्री हरण, बलात्कार, बीमारी, पारपीट, गर्भपात, पुलिस के व्यवहार आदि से विभाजित है । लेखक ने मानव दुर्दशा के प्रति संवेदना उपाड़ने का प्रयत्न किया है ।

राज्य राक्षस के उपन्यासों पर जब हम दृष्टि-

पात करते हैं तो इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि लेखक के पास उपन्यास-लेखन के लिये ऐतिहासिक एवं सामाजिक जीवन की पर्याप्त सामग्री है । इनका कुशल विश्वास तथा संवेदना तीव्र है ।

कमलाल नागर-

कमलाल नागर के कथा-साहित्य में बड़ी नीति प्रेरणा, सूक्ष्म परीक्षा शक्ति, गहन अनुभूति, मानव मनोविज्ञान में

गम्भीर पैठ तथा विषयानुसार नूतन रूप विधानों की साम्यता है। उन्होंने सामाजिक समाज का क्षेत्र पकड़वाँ से अध्ययन किया है और सामाजिक समस्याओं का निर्मीकता से चित्रण किया है। "नवाबी मसनद", "सेठ बाँकेमत", "महा-कात", तथा बूंद और समुन्द्र उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

"नवाबी मसनद" में ससनऊ के नवाब और उनके मुसाहिब तथा साधारण जी की बातचीत का सजीव चित्रण किया है। नवाब शाहज के रहन सहन, वैभवा, धन, पान एवं विचार-व्यवहार के चित्रण में हास्य-व्यंग का पुट देकर लेखक ने उसमें प्राण डाल दिये हैं। पुरानी सम्प्रदाय में पले नवाब शाहज नवीन मीतिस्वादी के टिमटिमाते सन्ध की देखने समझने का प्रयास तो करते हैं परन्तु उनके पास पास सुलामदी एवं बाटुकारी व्यक्तियों का जमघट है वे उन्हें अंकार से प्रकाश में आने नहीं देते और उन्हें पुरानी शान-शीला, विलासिता एवं किञ्चित् सबी के लिये उफ्ला कर अपना स्वायं सिद्ध करना चाहते हैं। इस प्रकार पतनीन्तुल सामन्ती सम्प्रदाय के चित्रण का यह एक बड़ा ही सफल प्रयत्न है।

दूसरा उपन्यास नागर जी का सेठ बाँकेमत है। यह तृतीय उपन्यास एक अतिशय प्रयोग है। इस उपन्यास में नागर के सेठ बाँकेमत तथा बीम जी की मस्ती, जिन्दादली का वर्णन है। इसमें हास्य-व्यंग का लब्धा पुट है। "महाकात" उपन्यास में बंगाल के अज्ञातका वर्णन है। इस उपन्यास में लेखक ने बंगाल के अज्ञात पीछित, गाँव की वाथीय, सामाजिक अवस्था का यथा तथ्य चित्र वर्णित किया है। लोग दाने दाने की मुहताब हो रहे हैं, भूत की ज्वाला में ठठरी मात्र रह गये हैं। धनी भाड़े

वीर स्त्री के लज्जा-वसन तक के वर्णन की नीवत वा गई है। यह उपन्यास महाजन तथा कर्मीन्दार के स्वार्थ-बहुत में कराखती कंकाल-शून्य जनता का लक्ष्य विचारक चित्र है।

“बुंद वीर समुन्द्र” एक बृहत् उपन्यास है।

इसमें लेखक ने “जपान देश के मध्यमगीय नागरिक समाज का गुण दोष भरा चित्र” कहा है। वास्तव में विभिन्न मानसिक एवं सामाजिक अवस्था के स्त्री पुरुषों के बीच बाल, एकाग्र रहन सहन, वाधार व्यवहार तथा कार्य कलाप आदि के वर्णन की लक्ष्य बनाकर लिखा गया उपन्यास यथार्थ के चित्रण का एक उत्कृष्ट साहित्यिक आयोजन है। इसमें लेखक समाज के विभिन्न दृष्टि-कोणों से फटी लिखा गया है। यथार्थ जीवन के इतने अधिक चित्र अन्यत्र ही शायद मिलें। लखनऊ के बीच मुहल्ले या पुराने लखनऊ के सामाजिक जीवन की आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है।

यह उपन्यास हमारे समाज में व्याप्त दुःख,

दयनीयता, घुटन, बेवसी, अव्याचार, अनाचार, पाशविकता, बीभत्सता, आदि की कनावृत्त कर हमारे सामने रख देता है। अतृप्त प्रेम एवं वासना में घुटने वाली अव्याचारिता बधुरं-मनुष्य की स्वार्थ संकीर्णता एवं भोग सिखा का शिकार बनी तिरस्कृत नारिका, रोज पाउडर, क्रम बिन्दी, फैशन, सिनेमा आदि में बंभटने वाली आधुनिकार्थ, वंश विश्वासों में फंसी हुई टोना टोटका, जन्तु मन्तर आदि में रमने वाली स्त्रियाँ - जो न कतिन प्रकार के नारी चित्र इसमें संक्षिप्त हैं। पुरुष वर्ग में भी स्वाधी, दम्भी, एक शराबी, वैश्यागामी, रूपी बल पर न्याय, धर्म कला सब की तरीदने वाले

धनिक, सुवर्त चरित्र वाले सुधारक तथा कलाकार आदि के सजीव चित्र इस उपन्यास में विद्यमान हैं। उनके पात्रों की व्यथा से हमारा मन बाहुल हो जाता है। उनके पाप, उनके रस, उद्विग्न करने की क्षमता उपन्यास में है। इनके वर्णन के जादू से उनके गलियाँ चोल उठी हैं, उनके मुहल्ले सति जाग पड़े हैं। वास्तव में नागरजी में वातावरण प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। नगर के गली सूँची उनकी चोल चाल का नागर जी की उतना ही सामोप्य का अनुभव है जितना मुन्ही प्रेमचंद की सेताँ सलियानी का। वास्तव में नागर जी ने यथार्थवादी शैली की उत्कृष्ट प्रतिमा है।

नागार्जुन -

सांघतिक उपन्यास- लेखकों में नागार्जुन ने पर्याप्त स्याति प्राप्त की। नागार्जुन ने उत्तरी बिहार के जन जीवन को आधार बनाकर अपने उपन्यासों की रचना की है। उनका प्रथम उपन्यास "रति नाथ की बाबी" है। इसके उपरान्त "बलवनमा", "नई पीप", "बाबा बटसर नाथ" आदि उनके उपन्यास लिखे हैं। निम्न वर्ग तथा मध्यम वर्ग की जनता की सामाजिक आर्थिक संघर्षों में फूटते हुए उन्होंने देखा है। देखा ही नहीं स्वयं उन संघर्षों का भीता है। उन्होंने विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की कार्य-प्रणाली एवं व्यक्तिगत जीवन की संरचना की भी निष्कट से परखा है। अपने राजनीतिक विश्वासों में वे साम्यवादी हैं। उनकी उपन्यास शैली यथार्थवादी एवं व्यंग्य विद्रूप से पूर्ण है।

"रतिनाथ की बाबी" उपन्यास में मेथिल ब्राह्मणों के सामाजिक स्वरूप एवं समस्याओं- कुलीन- कुलीन से उद्भूत समस्याएँ कमल विवाह, बिक्रीका घर, युवती शिक्षा, विधवा, दूजाकृत आदि का वर्णन कण्ठ वर्णन मिलता है। विभिन्न रूप- स्वभाव वाली ग्राहीण स्त्रियाँ,

बोपहर में किसी के जंगल में जुटने वाली ज्ञान गीष्ठी, एक दूसरी की सुल-दुल की बर्षा, कथं, धर्म, काशी-प्रयाग, गंगा, यमुना की बर्षां कादि की बड़ी सफलता की यथार्थ परिवेष्ट में वंक्ति किया गया है ।

“ बलनमा ” पाश्चात्तैली की दृष्टि से एक नया प्रयोग है । इसने “ बलनमा ” की विभिन्न परिस्थितियों में रहकर तथा भिन्न केशी - स्वभाव वाली व्यक्तियों के सम्पर्क में लाकर एक विशेष साम्यवादी दृष्टिकोण से कर्मीवारी एवं राजनीतिक नेताओं के स्वभाव-संस्कार तथा स्वार्थ संबंधों की देखने दिखाने का प्रयत्न किया है । यह उपन्यास यथार्थवादी चित्रण शैली का एक उत्कृष्ट नमूना है । बलनमा के स्वयं अपने मुल से अपनी जीवन कथा वर्णित की है । उसके वर्णन में उसकी जनपदीय बोली का पर्याप्त पुट है ।

व्यक्तियों के रूप-वाकार शीस स्वभाव, विचार व्यवहार तथा घटना प्रसंगों कादि के चित्रण में पर्याप्त स्वाभाविकता है । जहाँ कर्मीवारी की नृसंघता, दुराचरण, क्रूरता, हृदयहीनता, रीयत की बुरे की बर्षां कादि का वर्णन लक्ष्मणकृत है वहाँ सेखती बड़ी तीसी हो उठती है । जहाँ तक यथार्थ चित्रण का प्रश्न है यह उपन्यास बड़ा सफल उतरा है । इसमें सुखी एवं सुखी वर्ग की जीवन बर्षां तथा पक्षी के द्वारा दूसरे के शीघ्रता उत्पीडन कादि के वर्णन बड़े प्रभावपूर्ण हैं । जीवन के प्रति एक नितान्त भीति-क दृष्टिकोण ही परिलक्षित होता है ।

“ नई पीढ़ी ” में भी मिथिला के एक गाँव का सामाजिक जीवन चित्रित है । गाँव का वातावरण पुराना है । यथित ब्राह्मणों

का पारिवारिक जीवन विचार सम्बन्धी झुरीतियाँ आदि सभी उसी रूप में चित्रित किये गये हैं जिस रूप में सैकड़ों वर्षों से वहाँ प्रचलित हैं ।

नागाजुन का यह उपन्यास भी यथार्थ जीवन चित्रण की दृष्टि से उत्कृष्ट है । इसका कथानक सुगठित तथा वर्णन प्रवाह-पूर्ण एवं मनोरंजक है । वैयक्तिक तथा सामाजिक विकृतियों के प्रति प्रखर व्यंग्य से उपन्यास और भी सरस हो उठा है ।

“ बाबा बटसर नाथ ” भी नागाजुन का एक नवीन प्रयोग का उपन्यास है । इसमें एक बट बुद्ध ने रूप धारण कर स्वयं में एक व्यक्ति से अपनी कहानी कही । यह कहानी गाँव के उत्थान पतन की, सामाजिक, राजनीतिक, दाँव पेन की है । इसके वस्तुनिष्ठ कांग्रेसी शासन एवं कार्य कर्ताओं की तीव्र व्यंग्यात्मक आलोचना का भी कवसर बूँद दिया गया है । नागाजुन के उपर्युक्त उपन्यासों का पढ़कर हम उस वृत्त पर पहुँचते हैं कि उन्होंने मिथिला के गाँवों का सुप्तता से निरीक्षण किया है । वहाँ के स्त्री पुरुषों की मन स्थिति, उनकी पुरानी परम्पराओं, जमींदार किसान संघर्ष, नई राजनीतिक चेतना आदि का सुन्दर चित्रण किया है । समाज के प्रति व्यक्ति के संकुचित स्वार्थों के प्रति उनकी दृष्टि व्यंग्यात्मक है। उन्होंने कांग्रेसी, समाजवादी आदि कार्य कर्ताओं की वैयक्तिक कमजोरियों का अधिकारिक वर्णन करने का प्रयत्न किया है ।

राजिन्द्र यादव-

राजिन्द्र यादव भी प्रातिकार लेखकों में आते हैं । उनकी तीव्र वस्तुनिष्ठ, कुल्ल कल्पना, तथा प्रतिभा के सादर आकार दर्शन

“उल्लेख हुये लोग” तथा “प्रेत बीकरी हैं” उपन्यासों में दर्शने की मिलती है। ये दोनों उपन्यास यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय समाज एवं व्यक्ति के अन्तःमात्रुय जीवन में बहुतपूर्व परिवर्तन हो गये हैं। मनुष्य का स्वार्थ इतना प्रसृत हो गया है कि नैतिकता के परम्परागत मार्ग बिलुप्त हो चुके हैं। सर्वत्र क्रीडा, पाखंड, झूठकपट तथा यौन-कुंठा का प्राधान्य है। “उल्लेख हुये लोग” में लेखक ने एक बड़े पूंजीपति के भिखारि-दल का चित्र खींचा है। चरित्र वर्णन की दृष्टि से यह उपन्यास बड़ा सफल है। वर्तमान सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों उनकी दुर्बलताओं उनके वास्तवों और यथार्थ जीवन स्थितियों के संघर्ष से उद्भूत उसकी विचलताओं के चित्रण में लेखक ने बड़े कौशल का परिचय दिया है। नवीन परिप्रदेश में प्रेम तथा यौन-सम्बन्धों के लोक प्रसंगों का वर्णन करके उनकी अन्तर्गत दुर्गति को प्रकाशित कर दिया गया है।

राजिन्द्र यादव का दूसरा उपन्यास “प्रेत बीकरी हैं” में भी मध्यमगीय जीवन का यथार्थ वर्णन करता है। इसमें भी वर्तमान आर्थिक-सामाजिक जटिलताओं में उद्भूत मध्यमगीय कुंठाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है।

राहुस सांकृत्यायन-

राहुस सांकृत्यायन हिन्दी के पुराने लेखकों में से हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। आपने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं। “लौन की दास”, “बाबू का मुल्क”, “विस्मृति के गर्भ में”, “जय योध्य”,

“सिद्ध सेनापति”, “पथुर स्वप्न” आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में से हैं। इनमें “सिद्धसेनापति तथा जय योध्य” अधिक प्रसिद्ध हुए। ये दोनों ऐतिहासिक उपन्यास हैं। अपने ऐतिहासिक ज्ञान के वाशर पर राहुल जी ने इस उपन्यासों में सत्कालीन समाज का अच्छा चित्रण किया है।

राहुल सांकृत्यायन ने उपन्यासों के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं जिनका संग्रह “बीला से गंगा तथा” सम्पत्ती के बच्चे” छोटी पुस्तकों में ही जुड़ा है। “बीला से गंगा” में 20 कहानियाँ हैं। जिनमें प्राचीन काल से लेकर उन् 42 के आसपास तक की भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के विकास क्रम का इतिहास बताने वाली कहानियों का चित्रण हुआ है। “सम्पत्ती के बच्चे” संग्रह में 10 कहानियाँ हैं जिनमें ऐतिहासिक भारतीय समाज के भिन्न भिन्न वर्गों तथा उनकी समस्याओं का चित्रण है।

उन्होंने कहानी के जिस क्लासिक रूप का प्रयोग किया, उसकी स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं। इनका कथानक-निर्माण वादही तथा यथार्थ दोनों के घरातल से जुड़ा है। इनकी कहानियाँ घटना प्रधान हैं जिनमें पाठकों का कुतूहल वन्त तक बना रहता है। इनके पात्र समाज के भिन्न भिन्न वर्गों, जातियों तथा समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

राहुल जी की कहानियों में भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के विकास क्रम का इतिहास उपस्थित किया गया है। कार्य संस्कृति का भिन्न भिन्न विदेशी संस्कृतियों से जो सम्पर्क प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान समय तक हुआ तथा मानवता ने जो विकास किया उन सबका

चित्रण इनकी कहानियों में हुआ है। इनका चरित्र चित्रण यथार्थ और वास्तविक के धरातल का है। इनके अधिकांश पात्र पारिवारिक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रयोगवाद-

हिन्दी कथा-साहित्य में पिछले लगभग पन्द्रह वर्षों से एक ऐसी नवीन प्रवृत्ति के दर्शन होने लगे हैं जिस उसके उन्मायकों एवं धातुनिकों ने प्रयोगवाद की संज्ञा दी है। यों तो समयानुसार प्रत्येक युग में वर्ण्य-विषय ऐसी वादों के क्षेत्र में नई उद्भावनाएं होती रहती हैं। वेष्ठ कथाकार नवीन प्रयोगों द्वारा माधी-मय की प्रवृत्ति बनाते रहते हैं। हिन्दी कथा-साहित्य में भी उसके प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक विभिन्न विभिन्न प्रकार के शब्दों की व्यापकता का परिचायक न होकर एक प्रवृत्ति विशेष के लिये रुढ़ हो गया है। जिस प्रकार "प्रगतिवाद" शब्द सामान्य प्रगति का परिचायक न रहकर साम्यवादी विचार धारा से प्रभावित साहित्य का परिचायक बन गया है उसी प्रकार "प्रयोगवाद" भी विकासोन्मुख एवं स्वस्थ कल्याणकारी साहित्यिक प्रयोगों का परिचायक न रहकर एक प्रतिक्रियावादी संकीर्ण एवं रुग्ण विचारधारा के लिये प्रयुक्त होने लगा है।

हिन्दी में प्रयोगवादी शब्द शीघ्र, प्रभाकर माधव वादि वाते हैं। सन् १९३६-३७ के लगभग छायावाद का फलन हुआ और प्रगतिवाद नवीन युग भेदना की लेकर आगे बढ़ा। यह समय भारतीय साहित्य केकारी और पुस्तकरी का युग था। जनता में मारी अंतर्दीप्त या फलस्वरूप पूंजीवादी शीघ्रकों और उनके द्वारा शीघ्रित वर्ग में संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

हायावाद एक प्रकार से यत्नीन्तुत सामन्तवाद और विकासोन्तुत पूंजीवाद
 की ही अभिव्यक्ति करता रहा था । प्रगतिवाद ने शीघ्रित वर्ग का समर्थन
 किया और प्रगतिवादी साहित्यिकों की वाणी में सामान्य दुःखी, दलित
 जनता का जाँघ मुखरित हो उठा । पूंजीवादियों की यह परम्परा रही है
 कि वे कभी और साहित्य की ओर धन के बल से तरीयकर जनता के विचारों
 को सदैव गुपराह करने का प्रयत्न करते आये हैं । हायावादी कथाकार
 अपनी कल्पना के लोभ में ही मग्न रहते थे । जनता उनके लिये अपरिचित
 थी । वे जनता को प्रभावित नहीं कर सके । अतः पूंजीवाद उसे प्रथम देता
 रहा क्योंकि उसे इन कलाकारों से कोई फायदा नहीं था । प्रगतिवाद में जनता
 का स्वर, जनता की भावनार, जनता का जाँघ और विद्रोह मुखरित हो
 रहा था । इसलिये पूंजीवाद सतर्कित हो उठा कि कहीं उसे साहित्य के पक्ष
 से अपना विस्तार न बाँधता पड़े । अतः उसने कभी सज्जम सुत्कर और कभी
 अप्रत्यक्ष रूप से विरोध प्रारम्भ कर दिया । उसने प्रगतिवाद की उठती हुई
 बेतना पर प्रकारात्मक होने का अभियोग लगाया । उसे रुस की कूटन,
 रौटीवाद, फंडावाद आदि की संज्ञा दी । यहाँ तक तो पूंजीवाद और पूंजी-
 वाद के समर्थक कलाकारों का रुस नकारात्मक रहा । परन्तु नकारात्मक रुस
 बेतना की प्रगति की रोकने में सदैव असफल रहता है । पूंजीवाद का यह प्र
 प्रयत्न भी ऐसा ही रहा । इस प्रयत्न में असफल होकर पूंजीवादी और
 प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ ने दूसरे एकडे अपनाये । हायावाद हिन्दी- साहित्य
 की " शास्त्रवाद " का बड़ा आकर्षक खिलौना है चुका था । इस " शास्त्रवाद "
 के आकर्षण में पड़कर हम वर्तमान की झूठकर कल्पना के कल्पना लोभ में उड़ने
 लगते हैं । पूंजीवाद ने पहले तो आत्माभिव्यक्ति एवं व्यक्तित्व प्रकाशन की

प्रायश्चित्तादी शब्दावली के बाढम्बर द्वारा जनता की सुभाना वाचा परन्तु जनता के चित्तवर्ती आलोचकों ने इसका भी पर्दाफाश कर इसकी निस्तारता प्रकट कर दी। आज साहित्यकारों की सम्पूर्ण अजि टैक्नीक के नवीन प्रयोगों की तरफ लगे गये हैं। हिन्दी का प्रयोगवाद भी पश्चिम की बूझ है। डा० देवराज ने प्रयोगवादी साहित्य के विषय में इस प्रकार लिखा है :- " हिन्दी प्रयोगवाद भी ऐतत्त युग से प्रभावित नहीं है - वह बहुत लम्बे तक इलियट-पाउण्ड वादि की शैली के अनुकरण में उपस्थित हुआ है। प्रयोगवाद का मुख्य उद्देश्य प्रातिवाद से हटाकर सहजता कलाकारों और पाठकों को अपने आकर्षण में फँसाकर दूर हटा ले जाना।

प्रेमचन्द के शब्द हिन्दी में जो मनीविश्लेषण-वादी कहानियाँ की एक संपूर्णधारा बनी, उसके पीछे उर्दू कहानी संग्रह "आँखों की चिनगारी" का व्यावहारिक हाथ रहा है। इसके उपरान्त हिन्दी कहानी जगत में जो श्रेष्ठ कवि उनमें जैन्द्र, वीर्य, यशपाल, प्रतापचन्द जोशी और उपेन्द्रनाथ अग्रवाल आदि थे। ये सबसे सब विदेशी कथा साहित्य उर्दू की कहानी कला के ज्ञान के साथ पूर्ण सजा और सम्पीरता के साथ हिन्दी कहानी क्षेत्र में उत्तरित हुए। मुन्शी प्रेमचन्द का सर्वत्र ग्रामीण सामाजिकता थी वहाँ नये चरण के कहानीकारों ने शहरी मध्यम वर्ग तथा उसकी समस्याओं को अपने कथा साहित्य का विषय बनाया। जैन्द्र की कला का वाचक व्यक्ति का वर्तमान और उसका मनीविश्लेषण - जिस व्यापक अर्थ में जैन्द्र ने "कलीक", "कलौन्ड्रिय", "दर्शन" आदि की संज्ञा देकर अपनी इस चारणा की प्रामाणिकता करने का प्रयत्न किया। वीर्य कवि की भावना लेकर सामाजिक

१- प्रयोगवादी कवि - एक शतावली - डा० देवराज, नई कविता, प्रथम संस्करण

और राजनीतिक सम्मेलनों की अभिव्यक्ति देने लगे और उनमें मनो-
विश्लेषण, सामाजिक संघर्ष की गहन चेतना और कवि-दृष्टि इन तीनों
के सम्बन्ध से इनकी महत्त्वशाली बनी । कृतार्थ जीशी ने अपना लीमित क्षेत्र
चुना " मनोविश्लेषण " वह भी केवल में और जहाँ के ही विवेचन विश्लेषण
में जर्न का समर्पित कर दिया । उपेन्द्रनाथ त्रिपाठी की हम किसी विशिष्ट
धारा से प्रभावित नहीं पाते । मावतीचरण वर्मा, निराला, सियाराम
शरण गुप्त और लक्ष्मणी आदि कहानीकारों में नवीन कहानी का जाकास
जामाक उठा ।

मनोविज्ञान का प्रयोग मुन्शी प्रेमचंद तथा
प्रसाद के सभी समकाली कहानीकारों ने किया था परन्तु उस युग में जाकर मनो-
विज्ञान की उन्मत्ति तथा नई विश्लेषण पद्धति का प्रयोग उस काल के लिये
नहीं शक्ति-शाली थी ; पर विशिष्ट कर उस चरण में स्त्री पुरुष सम्बन्धी
उद्घाटन इस काल में मुख्य रूप से हुआ । उपेन्द्र की " एक रात " तथा
" राजीव और मामी " इसके उदाहरण हैं । " पहाड़ी " की कहानियों में
काम बच्चा प्रेम वाचना और उसकी विकृतियों का विवेचन भी हुआ तथा
माकड़ पत की प्रगति से समाज पर जो प्रकाश पड़ा वह यशपाल तथा मैत्रप्रसाद
गुप्त का है ।

साहित्यवाद और दर्शन के व्यापक वर्गों का
समकाली कहानीकार ने मानव समाज की नैतिक मान्यताओं की नई जाँच की
है । इससे अन्तर्जात की मीमांसा कहानी के पुस्तक का वर्तमान होना तथा
प्रतीकों का सहारा लेकर प्रारम्भ हुआ । प्रेमचंद, प्रसाद, मुदगल, कौशिक

वादि की कहानियों में कहानीकार की संवेदना और उसका सद्य स्पष्ट रहता था लेकिन वैभन्त्र, कौश, यशपाल के युग में हर चीज, हर स्तर की मान्यताओं के विषय में संकाय उठने लगीं । कभी ऐद्वान्तिक ढंके तो कभी व्यावहारिक पक्ष पर सोचना पड़ता था । दृष्टि अधिक व्यापक हुई , सहानुभूति उत्तर्की हुई और निर्णय एक प्रस्थापी स्थिति अवस्था में झोड़ दिये गये । इस पूरे काल में एक और कौशल और दूसरी और यशपाल । ये कहानीकार अपने समय इतिहास, नवीन धारा तथा नवीन विचारों के अभिप्राय को जानते थे । कहानी का स्तर तथा व्यापकता दोनों की उन्नति हुई ।

इस युग में दो प्रकार की विचारधारा के कहानीकार थे । एक तो पश्चिमी क्या साहित्य से प्रभावित थे तथा दूसरे स्वच्छन्द प्रवृत्ति के थे । पश्चिमी धारा से प्रभावित यशपाल, उदयनाथ वरक, मुत्सतः उर्दू क्या साहित्य की धारा के बन्तर्गत चमके । इताचन्द जोशी, और कौशल बंगला क्या साहित्य के रस में डूबे हुये थे । परन्तु कौशल ने पूरव पश्चिम अपनी भाषा तथा बंगला भाषा, काल तथा वर्तमान का समन्वय ठिक किया । यही कारण है कि उनमें सबसे अधिक विविधता, व्यापकता चेतना और कहानी शिल्प का इतना उत्कृष्ट परिष्कार और सफल प्रयोग है। इन कहानीकारों पर फ्रांसीसी और रूसी कहानियों के सुवादी का सीधा प्रभाव पड़ा है । इस वर्ग के कहानीकारों ने सदस्यता, वस्तु सापेक्षता और भाव प्रवणता इन नये तत्वों को प्राप्त किया । आशय इस काल की कहानियों में नग्न वर्णन और भीड़ों की भी डूब प्रणय मिता । "सुक्ति पाषाण", "पाट की बात", "कुत्तारी" वादि टैगोर की कहानियों की कौशल पर स्पष्ट हाव है ।

कतः इन सब तत्त्वों, युगोप युगोप प्रवृत्तियों एवं कहानीकारों की जागरूकता का परिणाम इस युग में पड़ा तथा कहानियों की परिभाषा भी बदल गई। कहानियाँ शिल्पकला होती हुई भी विषय, भाव, चरित्र प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व विशेषणों वादि तत्वों में अधिक गहन होती गई।

वैन्दु अपनी दार्शनिक तथा वैज्ञानिक कहानियों के लिये प्रसिद्ध हैं। इसके साथ ही साथ कल्पना तथा भाव प्रधान कहानियाँ भी मिलती हैं जिनमें कला के दर्शन स्वतन्त्र रूप से हुआ है। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में दार्शनिक भाव स्पष्ट है। हिन्दी जगत में वैन्दु की इस दार्शनिकता की सिलसिल्याँ उठाई गई क्योंकि कहानी कला में यह तत्व पूर्ण पौष्टिक तथा क्रान्तिकारी था। इन कहानियों में धर्म, नीति, शिक्षा, और वाक्य की प्रतिष्ठा हुई है। इनमें वातावरण तथा दृष्टान्त के तत्व फँसक बाने हैं। इनकी "जय संघ" ऐतिहासिक संवेदना की प्रतिनिधि कहानी है। "वातिपथ", "साधु की छठ", "बलिष्ठ चित्र" इनकी कल्पना तथा भाव-प्रधान कहानियाँ हैं जिनमें न तो केवल यथार्थ का चित्रण है और न किसी वाक्यात्मिक तत्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। इन कहानियों में भी बसाधारण परिस्थिति की मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

वैन्दु की रचनाओं में अंतर्गत की कथा है। इनकी कला का क्षेत्र परिमित है। उन्होंने व्यापक जीवनानुभूतियों के विस्तृत वर्णन की अपेक्षा कतिपय वैयक्तिक समस्याओं एवं जीवन स्थितियों के चित्रण

को ही अपनी कला का ध्येय बनाया। उनके अधिकांश उपन्यास छोट्टे हैं जो घटना - घट्टत न होकर समवेदना प्रधान हैं। उन्होंने शिक्षित वर्ग एवं सुलसुकुत मध्यम वर्ग की विशिष्ट प्रेम- समस्या को अतिरिक्त भावुकता एवं आदर्शात्मकता से समन्वित करके चित्रित किया। जैनन्द के उपन्यासों में घटना का आकर्षण अत्यल्प है। "सुतोता", "सुतदा", "विवर्त", और "व्यक्तीत" की कथा- वस्तु प्रायः एक ही ही है। चारों उपन्यासों में एकचरण एकचरण पत्नीत्व तथा प्रेम के साथ साथ विवाह का आग्रह है।

जैनन्द की कला की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि जब तक उपन्यास का अंत नहीं हो जाता, तब तक पाठकों में कथा के प्रति एक व्यग्रता और उत्सुकता बनी रहती है पर ज्योंही कथा की समाप्ति होती है त्योंही हम विस्मय से अभिभूत होकर सोचने लग जाते हैं कि ये सब घातें कैसे हो गईं। जब तक पाठक कला में उत्कर्षत रहते हैं तब तक तो कथा में कोई विलम्बावस्था नहीं प्रतीत होती, पर कथा के अंत होते हुये ही उसकी सारी बातें बड़ी विचित्र और बड़ी रहस्यमयी हो जाती हैं। योंही से पात्रों का चरित्र- अध्ययन ही जैनन्द की कला का लक्ष्य है। ये पात्र जीवन की विस्तृत भूमिका में नहीं स्थापित किये गये हैं। उनका संसार अत्यधिक संकीर्ण है वह उसमें मनः संवरण की भूमि भी नितान्त परिमित है। चरित्र वर्णन में मनोविश्लेषण की ओर हिन्दी में सर्वप्रथम जैनन्द ने ही पदार्पण किया किन्तु उनका टेक्निक आधुनिक मनोविज्ञानिक सा नहीं है। वह मनोविज्ञान की वस्तुगत पदार्थ मानता है।

जैनन्द ने अपनी युग की व्यापक सामाजिक

समस्याओं के चित्रण का प्रयास नहीं किया। उन्होंने समाज के जिस को को लिया है उसका सीमा परिमित है। केन्द्र एक बड़े सजा एवं सतर्क कलाकार है और मानव मन में उनकी गम्भीर पैठ है। उनके जीवन दर्शन के मूल में भव के भीतर ज्ञान का शाश्वत भारतीय भाव है। वह वास्तव में गान्धीवादी है। उन्होंने गान्धी की अहिंसा या मानव प्रेम से भी प्रेरणा ली है और निरव्यय से ऊपर उठकर अन्य के लिये सर्वस्व समर्पण के वाद्यों पर ही उनकी सम्पूर्ण कृतियाँ निर्मित हैं। अपने सुन्दर जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति में उन्होंने सुन्दर उपादानों का सहारा भी लिया है। पात्रों तथा उनकी मनोवृत्तियों के वर्णन में अत्यधिक मार्मिकता है। केन्द्र ने वैयक्तिक समस्या एवं व्यक्ति जीवन की ऐसी विशेष स्थितियों की उद्भावना की तथा उन स्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप मन की सुदमातिसुदम गति का अंकन किया। उनके उपन्यासों में रमणीयता अधिक है। रमणीयता की लाने में पात्र, प्रसंग एवं संवाद तीनों ही का योग है। कहानी में प्रभावान्वित का अभाव कहीं नहीं लटकाता। कथा बड़ी गुणवत्ता, सुनियोजित एवं प्रभावीत्पादक है। संवादों की भाषा में एक विविध मंगिमा है। पारिवारिक एवं प्रेम-प्रसंगों के यथार्थ चित्रण में उनकी भाषा बड़ी समर्थ रही है।

कौम्य विशिष्ट मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। "छतर : एक जीवनी" हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में एक नितान्त नूतन प्रयोग है। जीवन दृष्टि तथा शिल्प प्रयोग दोनों ही दिशा में इस कृति के द्वारा नये संकेत मिले हैं। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की छोटी छोटी घटनाओं, दैनंदिन जीवन व्यापारों के द्वारा गान्धीय व्यक्ति-मन की

की विभिन्न पिछा धर्तिनी विचार ऊर्मियों के सुलभतम स्पन्दनों की कलात्मक अभिव्यञ्जना की यह बड़ी ही सजा, सतर्क योजना है। यह उपन्यास एक व्यक्ति के आत्मानुभूत जीवन-तथ्यों के जंजन का प्रयास है। इसकी कहानी आधुनिक एक प्रकार व्यक्तित्व के विद्रोह की कहानी है। अक्षय का दूसरा उपन्यास 'नदी के दीप' है। इस उपन्यास की प्रमुख सबसे समस्या प्रेम, यौन सुप्ति और विवाह की है। ऐसी समस्या तथा पशुपति की पशु-प्रवृत्ति उसका मुख्य उद्देश्य है।

यह उपन्यास सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से विलान्त विच्छिन्न कुछ व्यक्तियों के एकान्तिक जीवन की समस्याओं एवं संघर्षों के चित्रण को ध्येय बनाकर चला है। इन व्यक्तियों पर सामाजिक नैतिकता का नियन्त्रण नहीं है।

अक्षय की कहानी, कला की आत्मा व्यक्ति चरित्र के केन्द्र-बिन्दु से निर्मित हुई है। चरित्र-विवरण, चरित्र मनी-विज्ञान इनकी वे आधार शिलायें हैं जिन पर कहानीकार अक्षय के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। उन्होंने अपनी कहानियों में जितने भी सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक समस्याओं को उठाया है, उन सबका अध्ययन उन्होंने व्यक्तिगत पहलुओं से किया है। व्यक्ति चरित्र की ही कहानी कला का मूलधार बनाने के कारण अक्षय के चरित्र विशेषतः व्यक्ति-वादी हो गये हैं। 'क्यदास', 'कवि प्रिया', और बसंत कहानियों में नई कला-वस्तु की अवतारणा हुई है।

प्रतीकात्मक ऐसी जीय की कहानी कला का एक लक्षित पक्ष है। "चिड़ियाघर", "पुरुष" का मान्य", "कोठरी की बात", "पठार का घोरव" और सांग्र वादि ऐसी की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। जीय की कहानियों में लक्ष्य और व्युत्पत्ति की प्रेरणा समान रूप से है।

संग्रान्ति युग में कहानीकार जीय का मूल्य सर्वाधिक है। इनमें रचना कीशत की नवीन प्रतिमा नये नये प्रयोगों का सफल सफल वाग्रह इतना है कि उनकी शिल्प विधि में वास्तविकता विविधता जा गई है। लेकिन कला-शिल्पी जीय की उत्कृष्टता शिल्प विधि की ओर है, इनका भाव पक्ष शक्ति ही गया है। जीय ने अपनी कहानी कला में कुछ विकास और परिस्थिति का चित्रण इतने व्यापक और विस्तृत ढंग से किया है कि इनका स्थान सर्वाधिक सिद्ध होता है। वैज्ञानिक तथा मनोविज्ञानिक कहानीकार हैं।

हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रथम प्रयोजन इलाचन्द जीशी हो हैं। उन्होंने अपना "सन्ध्यासी" उपन्यास सन् १९४१ में लिखा और इसी के द्वारा उन्हें वास्तविक स्थापित मिली और मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति उभर कर ऊपर आई। इसके अतिरिक्त "पूणा-पयी", "फँदी की रानी", "प्रेत और हाया", "निर्वासित", "तज्जा", "सुबह के धूल" वादि उपन्यास लिखे हैं। इन सभी उपन्यासों में जी प्रवृत्तियाँ तथा चेतना दबी हुई थी उनके संस्कारों तथा वाचरणों का चित्रण किया है। उनका "सन्ध्यासी" अतिरिक्त प्रधान उपन्यास है। "फँदी की रानी" में मनोविश्लेषणा के निवर्तन की प्रवृत्ति और भी स्पष्ट हो गई है। पूर्व-वर्जित संस्कारों का मनुष्य के क्रिया कलापों पर किनारा सबसे प्रभाव पड़ता है इसकी दिखताने का प्रयत्न इस उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास

में भी आत्म कथा वाली प्रणाली का वसुकरण किया गया है। जीशी जी ने अवलोकन मन की क्रियात्मक शक्ति का निदर्शन करने का इसमें पूरा प्रयत्न किया है। "प्रेत वीर हाया" में लेखक ने पारसनाथ की विभिन्न परिस्थितियों में हासकर उसके क्रियाकलापों एवं भावना-ग्रन्थियों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

उपयुक्त उपन्यासों में एक प्रकार की पारिवारिक वसुता है। इनकी कथा एवं इनके पात्रों में भी समानता है। अधिव्यंजना प्रणाली भी एक ही ही है। ये उपन्यास नारी-पुरुष सम्बन्ध की ही ध्येय बनाकर ही लिखे गये हैं जिनमें सामाजिक परिस्थितियों तथा जन्मजात संस्कारों से उत्पन्न कुंठित व्यक्तित्व की विकृतियां एवं संघर्ष चित्रित हैं। एक प्रकार से इन उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण नगण्य है। जीशी जी कहानी की पर्याप्त महत्व देते हैं और उसी के माध्यम से ही मनी-विश्लेषण वाले अपने उद्देश्य को सिद्ध करते हैं।

"जहाज का पंखी" जीशीजी के साहित्यिक विकास पथ का एक नितान्त नवीन तथा वांछनीय मोड़ है। इसमें पिछले उपन्यासों से भिन्न जीवन की एक कवीन दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न है। अन्य उपन्यासों के पात्र समाज से किंचित निर्पेदा रहकर नितान्त वैयक्तिक बतना लोक में ही निवास करते हैं और अपनी ही निराशा कुंठा और पीड़ा में घुटते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में सामूहिक पीड़ा से विभाजित व्यक्ति के अन्तर्गमन की उत्फर्नों की शब्द बद्ध करने का प्रयत्न है। यहाँ जीशी जी

सामाजिक यथार्थ के नवीन धरातल पर उतरते हुये दिखलाई पड़ते हैं ।

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अन्य उपन्यासों की अपेक्षा प्रस्तुत उपन्यास में जीशी जी यथार्थ जीवन के अधिक समीप जाये हैं । उनकी रुचि मानव भावनाओं तथा विचारों के वर्णन की ओर अधिक रहती है । भाव विचारों के वर्णन में ही उनकी शैली अपनी सम्पूर्ण काव्यात्मक दीप्ति में प्रकट होती है । जीवन की झोटी झोटी घटनाओं के यथार्थ विवरण से वास्तविकता का प्रेम उत्पन्न करने वाली यथार्थवादी शैली का जीशी जी में अभाव है । यही कारण है कि "जहाज का पंख" यथार्थ जीवन स्थितियों को वर्णन विषय बनाकर भी यथार्थ का प्रेम उत्पन्न करने में असफल रहा है ।

जीशी जी की प्रथम कहानी "सज्जन" है । इनकी कहानी का मुख्य आधार मनोविज्ञान है । जीशी जी के दृष्टिकोण में अंतर्जात और बहिर्जात का सुन्दर धारणत्व है । "चरणों की दासी", "जीशी", "अनाश्रित", "रक्षित धन का अभिशाप", "रागी", "परित्यक्ता" आदि कहानियों में रूप रसित्वात्मकता है तथा ये कहानियाँ मध्य वर्ग और हासीन्युल जीवन की विशेषणतात्मक आलोचना के धरातल से लिखी गई हैं।

जीशी जी की कहानियाँ में क्या विधान स्पष्ट और कथा सत्व की शक्ति निर्मित हुआ है । रचना की शक्ति की दृष्टि से जीशी जी की कहानियों में सबसे कम विविधता है । उसमें मनोवैज्ञानिक यथार्थवादता है । जीशी जी की अधिकांश कहानियाँ व्यक्तिपरक हैं, उनमें निश्चित रूप से जीवन के मूल्यों पर नैतिक प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है।

निष्कष" रूप में लक्ष्य की प्रतिफलित करने की पद्धति जोशी जी की कहानियों में कम है। व्यापक रूप से जोशी जी की कहानियाँ कला विश्लेषणात्मक है। उनकी कहानियों में मनोविज्ञान शास्त्र का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। कहानीकार पात्रों का वाह्य संघर्ष चित्रित न करके उनके अंतर्जाति में प्रवेश करते हैं तथा उनकी अन्त प्रेरणाओं के अध्ययन, विश्लेषण तथा आलोचना उनके वाह्य जगत उनके कार्य व्यापार की सूक्ष्म व्याख्या अपनी कहानियों में उपस्थित करते हैं।

उपेन्द्रनाथ अरक प्रेमचंद का सा सूक्ष्म निरीक्षण एवं यथार्थ जीवनानुभव लेकर हिन्दी कथा साहित्य में अवतरित हुए। "अरक" जी में निम्न मध्य वर्ग की जीवन-रीति, स्वभाव संस्कार, विचार-पद्धति तथा विभिन्न प्रकार की कुंठाओं एवं उनके प्रभावों की परतों की उनमें पैनी दृष्टि है।

अरक का प्रथम उपन्यास "सितारों के खेल" है। इसमें आधुनिक ढंग के रोमान्टी प्रेम की कथा वर्णित है। "गिरती दीवारें" उनका दूसरा उपन्यास है। इसमें लेखक की यथार्थ वर्णन प्रतिभा अपने उत्कृष्ट पर पहुँची है हुई दिखाई पड़ती है। यह उपन्यास यथार्थवादी परम्परा पर आधारित है। अरक जी का तीसरा उपन्यास "गर्म रात" है जिसका कथानक अधिक सुगठित एवं ठोस सुनियोजित है। पात्रों के चरित्रांकन में पूर्ण सजीवता है।

अरक जी के उपन्यासों की पढ़कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अरक जी में समाज की ऊपरी सतह के फीटी ग्रेफिक वर्णन की अत्युत्त दायता है। उन्होंने समाज की बुराईयों की अत्यधिक

निष्कट से देता है। निम्न मध्य वर्गीय जीवन की परेशानियाँ, उत्तमनों कुंठाओं आदि का विशिष्ट स्तुम्भ प्राप्त किया है। अरक के दो उपन्यास वीर हैं - "बड़ी बड़ी बातें", "पत्थर क्लपत्थर"। "बड़ी-बड़ी बातें" में प्रकृति के सुन्दर दृश्य एवं हृदय की निर्मलता वर्णित है। "पत्थर क्लपत्थर" में काश्मीर के एक गाँव की कथा केन्द्र तथा उस गाँव के एक झूठे वासिस्तनवीन को नायक बनाकर कथा अग्रसर हुई है। इसमें काश्मीर की वर्तमान सांस्कृतिक, सामाजिक उत्थल-पुथल का वज्रका चित्रण है। उपन्यास में मध्य वर्ग के सम्भ्रान्त लोग हैं, सरकारी अधिकारी हैं, कंजूस सेठ साहूकार हैं, आमीद प्रमीद में संतुष्ट यात्रियों का समूह है। कथानक के संस्कार एवं परिस्थितियन्त्र चरित्र चित्रण में पर्याप्त उजोघता है।

अरक कहानीकार भी है। प्रेमचंद की यथार्थवादी परम्परा उनकी कहानियों का गीत है। जिस प्रकार प्रेमचंद की कहानी कला व्यक्ति-समाज के यथार्थ जीवन वीर मनीषिज्ञान का सामूहिक प्रतिनिधित्व करती थीं। ठीक वही धरातल अरक की कहानियों का है। इनकी कहानियाँ समाज की आलोचना के साथ साथ व्यक्ति के मनीषिज्ञान की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

अरक की कहानी कला में चरित्र सीमित हैं। अरक का यथार्थवादी दृष्टिकोण मुख्यतः उनके चरित्रों के ही माध्यम से व्यक्त हुआ है। इनकी कहानी कला में सीद्दश्यता सबसे अधिक स्पष्ट है। विशेषतः जितनी कहानियाँ समाज व्यक्ति की आलोचना के धरातल से छिड़ी गई हैं उनमें चरित्र गत, नीति गत वीर सामाजिक मान्यतागत कोई न कोई सत्य

निश्चित रूप से होता है। साथ ही साथ हास्य तथा व्यंग्य प्रधान कहानियों में कला-संस्थान का वही समस्कार मिलता है जो उनकी जायशी-मूल यथार्थवाद तथा विगुह यथार्थवाद की कहानियों में विद्यमान है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी कथा-साहित्य का जितना विकास गत ५० वर्षों में हुआ उतना उससे पूर्व नहीं। वैदिक काल में कथायें देवताओं की आराधना तथा यज्ञादि के मंत्रों के बीच में छिपी हुई थी और उनका ध्येय विगुह धार्मिक था। उपनिषद् काल में कथाओं की रचना का आध्यात्मिक ज्ञान ही मुख्य उद्देश्य था तथा उनका विषय आध्यात्मिक ज्ञान ही सम्प्रेषित था। पौराणिक काल में जीवन अपने सम्पूर्ण रूपों में अभिव्यक्त हो उठा। धर्म, समाज, राजनीति का समावेश साहित्य में हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन तथा साहित्य में कथा ने अपना प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया। उसके प्रभाव का उदाहरण हमने सम्पूर्ण परिवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में देखा है। पाणि साहित्य में कथाओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया है और कथा के द्वारा ही धर्म की प्रवारात्मक नींव पड़ी है। नाकृतिक तथा अप्रमत्त में कथायें सांकेतिक एवं जीवन और यथार्थ धरातल पर आयी हैं, फलतः मनोरंजक कथाओं के साथ प्रमास्थानों और वास्थानों की भी सृष्टि हुई।

धीरे धीरे ये कहानियाँ लयात्मक होती हुई भी व्युत्पत्तियाँ से जीत प्राप्त होती गईं। 'व्यक्ति', समाज और वर्ग तीनों के सुन्दरतम वाक्य इन कहानियों में मिलते हैं। इस सम्बन्ध में गुलेरी जी का दृष्टिकोण स्वस्थ है। जीवन में नीति और सदाचार की पूर्ण रूप से

स्वीकार करते हुये भी वे सैक्स के नाम पर विदकने वाले आदमियों में से नहीं थे। आदर्श, प्रतिष्ठा तथा नीति सदाचार, जीवन के ऊँचे मान को स्थिर करना इन कहानियों की प्रेरणायें हैं।

आज की हिन्दी कहानियाँ इतनी विकसित हो चली हैं कि उनकी विषय, कला विधान तथा प्रतिपादन शैली के विचार से अन्य भारतीय तथा अ भारतीय कहानियों के समकक्ष रखा जा सकता है। प्रारम्भिक कहानियों की रचना बंगला तथा अरिजी कहानियों के अनुकरण पर की गई। उनमें कल्पना तथा सुलझ की प्रधानता थी तथा कहानी के तात्त्विक विकास का अभाव था। अब इनमें कला तथा साहित्य का इतना विकास हो गया है कि उनकी गति विधि का यथार्थ मूल्यांकन तथा विवेचन अनिवार्य हो गया है। जिस प्रकार युगीन प्रवृत्तियों ने हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करके हमारी नैतिक मान्यताओं, सामाजिक प्रश्नों और उनके निर्णयों में आमूल परिवर्तन ला खड़ा कर दिया, उसी प्रकार उन प्रवृत्तियों ने कहानीकारों के माप-बैठ और दृष्टिकोण में भी अपूर्व क्रान्ति की। अतएव इस युग की कहानी कला में वाश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हुआ। अध्ययन की दृष्टि से केवल एकान्त प्रभाव ही इस युग के कहानीकार का परम लक्ष्य बना। अपनी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इस युग का कहानीकार अपनी

१- विचार और अनुभूति, श्री मीन्द्र, 'बड़े गुलरी जी की कहानियाँ' : पृ० ४६

२- इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य प्रकार से एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है, और उसके द्वारा बुनी गई वस्तु उस उद्देश्य की प्रीप्ति का साधन है। वह प्रभाव और उस प्रभाव और की एकान्तिकता ही मुख्य है। अन्त्य : हिन्दी प्रतिनिधि कहानियाँ भूमिका : पृ० २२

रचना होती, शिल्प विधान में इतना स्वतन्त्र हो गया कि उसने इस क्षेत्र में अपूर्व व्यापकता कायम की। उसने इस क्षेत्र में इतनी प्रयोग किये कि सब प्रयोगों की व्याख्या करना कठिन नहीं तो टेढ़ी सीर जरूर है। साम्य कहानी होती है लेकर उसमें रखा चित्र, विश्लेषण चित्र से लेकर सूचनिका, कैमरा विधान और न्यूजरील विधान तक कहानी रचना की सीमा बढ़ गई। कहानीकारों की विभिन्न शैलियों के फलस्वरूप कथानक तथा कथा विधान के रूपों में उनके नये नये प्रयोगों और हस्त साधन के परिचय देने की मिश्री है। कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकता और वर्णनशक्ति से वागे बढ़कर मानसिक सूत्रों, मनोवैज्ञानिक चर्चाओं, घुसप घटनाओं, मनोद्विगी के माध्यम से निर्मित होकर स्फुट रसाचित्रों, टुकड़ों और सांकेतिक रूपों में कभी कभी इतने व्यापक हो गये हैं कि उनमें जीवन के बहुत सन्धे सन्धे भाग तथा विभिन्न समस्याएँ सम्मिलित हो गई हैं। जैन्य और ज्ञान का नाम कथा विधान में उत्पत्तीय है।

संश्लिष्ट चरित्र तथा मनः स्थिति को गूढ़ ग्रन्थियों के विश्लेषण में ऐसे कथा विधान प्रस्तुत किये गये जिनसे चरित्र से संबंधित वे तमाम कर्म प्रणायें एक ऐसे संधि स्थल पर स्वीकृत हो गई कि जिनके सहारे उन गूढ़ चरित्र का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साम्यवाद जैसा मार्क्सवाद ने सामाजिक और व्यक्तिगत घटनाओं को कथानक निर्माण में सबसे अधिक स्थान दिया। दूसरी और फ्राइड की मनोविश्लेषण पद्धति ने जीवन की वास्तव घटनाओं को गण्य सिद्ध कर व्यक्ति के चेतन अवचेतन कात के मनः उद्विगी स्वप्न चिन्तों को सबसे अधिक स्थान दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कथा विधान में चरित्र के घुसप, संवेदों घटनाओं

वीर उद्गारों को संकुम्भित करने का कीर्तित प्रकट हुआ तथा उसके विधान से भी वही प्रकार की वीर रूपता उपस्थित हुई ।

कलात्मक दृष्टि से इस युग में कहानी कला का मुख्य उद्देश्य चरित्र ही रहा है । चरित्र के चारों वीर ही कहानी के सम्पूर्ण तत्व घूमते रहते हैं । चरित्र के रूप, चरित्र के वर्ग, चरित्र की स्थिति वीर चरित्र के स्तर में कहानी व्यापकता का गर्भ है कि सम्पूर्ण वायुनिक युग इसके माध्यम से प्रतिबिम्बित हुआ । दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद वीर साम्यवाद, समस्त युगीन प्रवृत्तियाँ वही केन्द्र बिन्दु से चरितार्थ की गई । चरित्र अवतारणा मूलतः यद्यर्थे भूमि पर हुई है । साधारण चरित्र से मुख्य वीर प्रतिनिधि चरित्रों के उछार सम्पूर्ण मानव संवेदनाओं, कार्य व्यापारों की कहानी विधान में स्थान मिली । चरित्रों की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा वीर उनके व्यक्तित्व विशेषण में नये नये प्रसाधन प्रयुक्त हुए, जैसे वात्स्य विशेषण मानसिक ऊहापीह, अवैतन विज्ञप्ति तथा संकेत वीर छोट छोट कार्य व्यापारों के अध्ययन ।

इस युग में चरित्र अवतारणा विस्तृत मनी-
वैज्ञानिक घरातल से हुई । इस युग का चरित्र विकास युग के चरित्र की उपेक्षा अधिक व्यक्तिवादी हुआ । कहानियों के कथानक न याद रखकर चरित्र याद रहने लगे । उनके वर्तमान, संपदां स्मृति मस्तिष्क में तैरने लगे । इस युग में विशेषकर स्त्री सुरक्षा के सम्बन्ध, नैतिक मान्यताओं वीर स्त्रीत्व की समझने वीर व्यापक अध्ययन के लिये सबसे प्रयोग सबसे अधिक हुआ परन्तु इसके नाम पर काम, नग्न प्रेम, वाचना वीर उसकी वीर विद्वतियों के

चित्रण हुये ।

शैली में भी इस युग में प्रयोग हुये । चरित्र विकास के साथ, भाव वस्तु की प्रसुक्ता मिली । रेखा चित्र, व्यंग चित्र, संस्मरण, सूचनिका, और कैमरा शैली आदि का प्रयोग होने लगे ।

कहानी की दृष्टि से शैली चित्र कला के सामीप्य हो गई । मुख्यतः मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियों की सृष्टि प्रायः अनुभूति की प्रेरणा से अधिक हुई है । मार्क्सवादी और फ्राइड मूल की छाप भी इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य रहा है । विकास युग की मावात्मक कहानियों की अपेक्षा इस युग की कहानियाँ अधिक वैदिक हो गई । वायुनिक कहानी-कला में मनोविश्लेषण तथा समाज शास्त्र के अन्तर्गत मार्क्सवादी मत, यौनवाद आदि की प्रेरणाओं ने इसके लक्ष्य तथा अनुभूति में नाना अन्तर प्रस्तुत किया । प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों में नैतिक मान्यताओं का तथा आदर्श सुझाव का दृष्टिकोण निश्चित होता था ।

आज के युग में हिन्दी कहानियों में कथानक का हाथ हो रहा है । प्रेमचंद और प्रसाद के पूर्व कितनी कहानियाँ "सरस्वती" के माध्यम से आई हैं सब कथानक प्रधान कहानियाँ हैं । इन कहानियों के कथानकों पर प्रायः शेक्सपीयर के सम्पूर्ण नाटकों के दृष्टिकोण की छाया पड़ी थी और दूसरी ओर उनके निर्माण संस्कृत के नाटकों और लोक कथाओं की कथा वस्तु के आधार पर हो रहे थे । इस काल की कहानियों में मुख्यता स्वयं कथानकों की थी, चरित्र की नहीं ।

प्रेमचन्द के द्वितीय उत्थान की कला की कहानियों में "प्रेम प्रसून", "प्रेम दाबडी" जादि संग्रह की कहानियों के कथानक छोटे हैं। उसमें जीवन का एक क्लृप्त सिया जाने लगा और इस क्लृप्त में भी चरित्र पर अधिक ध्यान जाने लगा। प्रेमचन्द की "छूटी काकी", "छतरंज के तिलाड़ी" में चरित्र का विशेष मनोविज्ञानिक सम्बन्ध है। प्रसाद की "वाञ्छाश दीप", "छूटी वासो" में मनोविज्ञान के वाधार पर अन्तर्दृष्टि और मानवीय संघर्ष की प्रतिष्ठा हुई।

प्रेमचंद और प्रसाद युग के उपरांत हिन्दी कहानियों के विकास क्रम में जैनन्द तथा ज्ञेय दो महान् क्रांतिकारी कहानी-कार जाते हैं। यहाँ उनकी कला का मूल केन्द्र चरित्र बना। जैनन्द की सम्पूर्ण कहानियों का गुरुवंद चरित्र है और उस चरित्र की प्रतिष्ठा मनोविज्ञान के वाधार पर की है। कथानक अत्यन्त सूक्ष्म हो गये हैं। इनकी समझने के लिये पाठक को भी फाँ जागरूक, बौद्धिक तथा सशक्त रहना होगा। ज्ञेय इस दिशा में तो जैनन्द से भी जागे बढ़ गये हैं। ज्ञेय ने मुख्यतः व्यक्तिगत पहलु की अपनी कला का केन्द्र बनाकर कहानियाँ लिखी हैं। कथानक विधान का यही स्वरूप इलाचन्द्र जीशी की उन कहानियों में मिलता है जो व्यक्ति के वह विशेषण और वह की एकात्मकता पर निर्भर प्रहार के लक्ष्य से लिखी गई हैं। इन कहानियों में कथानक अपने व्यञ्जनात्मक रूप में केवल भावों, मनोदृष्टि के विशेषण के बीच में बसा है। कथा-तत्त्व में यही सूक्ष्मता "वशक" और यशपाल की कहानियों में मिलती है।

युग ज्यों ज्यों बौद्धिक होता जा रहा है, चरित्र ज्यों ज्यों संश्लिष्ट अन्तर्मुखी और पुरुष होते जा रहे हैं। इसके फल-

स्वरूप कथानक अपने मूल रूप में नष्ट होता जा रहा है। आज कहानी निर्याण का सम्पूर्ण और एकमात्र सूत्र चरित्र होने के नाते कहानी की शिल्प रेलारं वत्यन्त कोमल पर जपदाफुल्ल बंधु कंतुली हो गई है। चरित्र जैसे निष्कर्म हो गये हैं। कहानियों के वक्ता पात्र प्रायः स्थिरहीन लगे हैं। वे कार्य रत न होकर चिन्तन रत हो गये हैं। कहानी में पानी कोई घटना न घटती हो और न कार्य व्यापार होते हैं वे सर्वथा चरित्र के मन में होते हैं - घटते हैं।

शिल्प की साक्षात्, प्रत्यक्ष प्रभाव डालने की साफता कमल जोशी की कहानियों में है परन्तु वे भी विविधविध चरित्रों पर आधारित हैं जिनमें मनोविज्ञान का पुट है।

कलात्मक दृष्टि से इस वर्ण की कहानी कला का भरपूर चरित्र हो चुका। कहानी के सम्पूर्ण उपकरण इसी पर प्रोपते मिलते हैं। दर्शन, मनोविज्ञान, गान्धीवाद, आतंकवाद, योनिवाद, साम्यवाद इसी चरित्र के केन्द्र बिन्दु हैं।

कौथिक और यशपात की कहानियों की धारा में अपनी सफलता की उच्च कोटि पर पहुंच गई उसके उपरान्त हिन्दी कहानियों में एक गत्यविरोध का समय आता है। कौथिक की कहानी कला जितने मूल में केवल क्षुब्धता मात्र है। इसके पश्चात् क्या शेष रह जाता है जहां से काली पीढ़ी विकास करती है। वाणि के कुछ वर्ष केवल शिल्प प्रयोग का काल बनकर रह जाता है। इस संदर्भ में कौथिक की "राज" कहानी आती है। यह कहानी गहरी उदासी और जीवन की एक रसता, जीम के दर्द का एक

जीता जागता चित्र है। उत्तम एक स्थिति विशेष का स्वीकार मात्र है-
 इससे अधिक उस कहानी में कुछ नहीं। जीय, जैन्द्र की शिल्प-परम्परा
 में केवल यथार्थ के मात्र स्वीकार के सन्दर्भ में तन्धान्य शिल्प प्रयोग मात्र ही
 हो रहे थे।

इस अस्पष्टता, यथार्थ की ऊँच और शिल्प
 प्रयोग की प्रतिक्रिया में दूसरी ओर सस्ती, सेंस की, रोमान्टिक कहानियाँ
 की धारा का चल पड़ना। विप्लव रुचिकी संतुष्ट करने वाली वही एक
 विषय "सेक्स" तथा "रोमान्स"। वही एक उद्देश्य सेक्स, "एनसनी लीज",
 "बलात्कार", शहरों की रंगीन रातों की रहस्यमयी कहानियों के अंतर्गत
 पाठकों की मरमार और उनकी वही एक रुचि समाज की भोजन देने वाली
 सस्ती भौंडी कहानियाँ।

यह गत्यावरोध एक बड़े पैमाने पर हुआ।
 इ. स. ७ दशक तक कोई कहानीकार नहीं आया। इसका कारण विप्लव
 रचनात्मक प्रक्रिया। दूसरे प्रातिष्ठित उग्र वात्सल्य की निमग्न सेखनी तथा
 वात्सल्य। ये वात्सल्य नवीन के लिये रास्ता पिलाने की अपेक्षा उस पथ की
 अधिक उत्प्रेक्षा तथा कठोर बनाते गये।

इस सामाजिकता की विनीती की नई कहानी
 में स्वीकार किया। नई कहानी से हमारा तात्पर्य उन कहानियों से है जो
 सच्चे अर्थ में कलात्मक निर्माण हैं, जो जीवन के लिये उपयोगी और महत्वपूर्ण
 होने के साथ ही उसके किसी न किसी पक्ष पर आधारित है या जीवन के
 नवीन सत्यों की एकदम पहचान में समर्थ है। नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें

किसी लक्ष्मी भू भाग के ज्वीब से प्राणियों का वर्णन है बल्कि उसमें है
 कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन सा विशेष नयापन है जो
 सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है या बिना
 किये परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा ऐसा पक्ष है, जो साहित्य में
 अब तक ज्ञात है ।

कहानियां केवल शिल्प रंगीन वर्णन, कला *
 श्री कलावाजी के बल पर सड़ी नहीं होती उनका निर्माण जीवन वस्तु
 शिला पर होता है और क्लोथिय के पत्थर की तरह ठोस और कंठित की
 तरह शक्ति-संपन्न होती है । उसमें घुमाव, फिराव नहीं होता, एक
 सालता, सादगी, सोचापन ही मिलता । इस प्रकार कहानी की वात्सा
 में ही परिवर्तन हो गया ।

हिन्दी की नई कहानियां अपने सामाजिक-
 नैतिक परिस्थितियों को जीवन की समग्रता के बीच नई दृष्टि से देखने लगी।
 क्या गांव क्या कस्बे क्या शहर क्या गली उसकी दृष्टि सीधे उनकी यथार्थता
 से टकराई । यह परिवर्तन केवल कहानीकार को ही नहीं बरन पाठक की
 रुचि में भी आया । वह कल्पना के स्थान पर अपना समसामयिक जीवन
 देखने की नयी रांगे करने लगा । फल यह हुआ कि नयी कहानी के क्षेत्र
 में झड़ाझड़ नयी कहानी की पत्र-पत्रिकारें प्रकाशित हुई । जैसे कहानी, नई
 कहानियां, नयी सदों विनोद, निहारिका और सारिका आदि । विकास
 का यह पहला चरण इतना वेगमय, शक्तिमय तथा उत्साहपूर्ण था कि देखते

१- भूमिका- हंसा जार्ज जैला, मार्केण्डिय ।

ही देखते उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण कहानीकारों का एक नया दल इस नये दिशातिथि से यहाँ ह्रा गया - मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, पाकैण्डिय, शिव प्रसाद सिंह, कमलेश्वर, राजिन्द्र यादव, जयर काम्ब, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल, उषा प्रियम्बदा, मन्मू भंडारी, कणीश्वरनाथ रेणु, शैलर, जीश्री और लक्ष्मीनारायण सात आदि । इस नये चरण ने अपने वागमन के बीच बड़ी बुरी तरह से आये हुये उस गतिरीथ की इस तरह से अपनी धारा में बहा लिया जैसे बड़ी हुई गंगा और सरजू नहीं देखते ही देखते अपने बाधाओं की तोड़कर उन्हें अपनी सहज धारा में ले लेती है ।

आज एक नयी वेगवती सहज धारा ऐसी फूटी कि हमारा सारा समाज, सारी प्रकृति, जहाँ तक कहानीकार की नजर दीड सकती है- वही सब कुछ नयी कहानी का विषय बना । वहाँ के सभी जीते जागते प्राणी उते उसकी नयी कहानी के चरित्र के रूप में मिले । अन्त विषय, अन्त समस्यायें और अन्त चरित्र तथा इसके साथ नवीन दृष्टि । अरकास्त की दीपहर का भोजन "मोहन राकेश की "मिश्रपाल" आदाँ पाकैण्डिय की "उचराधिकारी", राजिन्दयादव की "जहाँ लक्ष्मी है", निर्मल वर्मा की "परिन्दे", कमलेश्वर की "राजा निरपत्तिया", मन्मू भंडारी की "यह भी सब है" आदि जहाँ एक और नयी है वहाँ दूसरी और यह परम्परा कछि कछि अर्चित उपलब्धि भी है ।

दृष्टि बदली, मानव और जीवन की देखने के ढंग बदले, तो कहानी का शिल्प बदला । एक और लोक कथा और दूसरी और उपन्यास की रसों की झूलो हुई भिन्न भिन्न प्रकार की कहानियाँ तिली जाने लगी । इस नयी कहानी का इतना प्रभाव कि पुरानी पीढ़ी के अनेक प्रतिष्ठित, विकासीभूत कहानीकारों से इसकी अपनाकर अपनी रचना की ही बदल दिया । अरक की "पलंग" कहानी इतका उदाहरण है।

नयी पुरानी कहानी नये कथाकार द्वारा इस तरह एक साथ बली कि इसका मूल्यांकन और जर्न बीच करना पसंद कठिन हो गया । राबिड्र की सर्वथा नई कहानी थी " मित्रपात्र " इसी के साथ कहानी " सुश्रु " । केवल निर्गत वर्ण ही एक ऐसे उदाहरण है जो सर्वथा एक ही तरह की एक ही जर्न में सिर्फ नई कहानी के लेखक हैं ।

नई कहानी अपने प्रथम चरण से लेकर आज तक इसकी विकास दिशाओं का अध्ययन अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है । नई कहानियों के लेखकों ने इतने कम समय के भीतर जीवन और समाज के अनैकानिक उपरिचित स्तरों की उपारा है । क्या ग्राम जीवन की कहानियाँ क्या कल्याण या शहरी जीवन की कहानियाँ- इसकी नयी कला के जीवन के नये संदर्भों तथा नयी वास्तविकता का बड़ी ईमानदारी से चित्रांकन किया है । मार्कण्डेय का " भूदान ", " जाना और भूता " वापरी कुक्कुट गुरु ", कमलेश्वर की नीली फीस " जवनाम बस्ती " इस नये दायरे की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं । इनमें व्युत्पत्ति की नवीनता है । विविध मानवीय दुःख स्तर के स्वर उभरे हैं । नयी कहानियाँ में परिवेश बीच की धेतना, व्युत्पत्ति का रमन तथा जीवन के नये संदर्भों समस्याओं से जुकने की शक्ति समपन्नता के ही तत्त्व मिलते हैं ।

नयी कहानी के शिल्प सौन्दर्य में उसके कथानक के स्वरूप जैसे कहानी का द्वारा शिल्प ही उदार से उदारतम हो जाता । उसका बंसा बंधाया शास्त्रीय रूप अपने आप ही उदार से उदारतम हो गया । कथा, लोक तत्व, संस्मरण, यात्रा वर्णन की शैली, छाया

की कला, रमन पद्धति ये सबके सब तत्त्व मिल जुटकर एक ही कहानी में उजागर हो गये । कहानी का शिल्प कहानी की उत्तरात्मा में जैसे सराबीर हो गई । शिल्प उसकी वात्सा में डूबकर एक हो गई ।

यदि नयी कहानी में शिल्प नया नहीं है तो यह किस तरह नयी कहानी है । मेरा विचार है कि इस स्तर से शिल्प की नवीनता, नये गठन से ही कोई कहानी नई नहीं हो सकती । वे नये के लिये मूल रूप से आवश्यक तत्त्व है नया जीवनानुभव और नयी जीवन दृष्टि क्योंकि जीवन दृष्टि वह सारभूत तत्त्व है जो बीबी का अर्थ बदलती है । यह नया अर्थ ही सारवान वस्तु है ।

नवीनता के प्रति वासकि लेखक को उसकी कसली लागू से छिपकलु डियाकर उसे फार्म की नवीनता अपना शिल्प के चमत्कृत गह्वर में लींच से जाती है । उधर नवीनता की यही वासकि अनेक कहानीकारों के माथे पर मढ़ा रही है और वे आवश्यक रूप से बिम्बां और प्रतीकों के जाल में फंस रहे हैं । जिस जाल की उन्होंने अपनी उद्गम शक्ति से तोड़ फेंका था और कहानी की धारा की नया दीर्घ, नया प्रसंग और नया उद्देश्य दिया था वे ही स्वयं फिर उसी रास्ते पर मुड़ रहे हैं। इनके पीछे निश्चित रूप से वही नवीनता के प्रति वासकि है, उसकी दृष्टि के प्रति नहीं ।

चतुर्थ अध्याय

कहानी :

जाधुनिक कहानी- साहित्य का इतिहास
लगभग 40 वर्ष का है। मुद्रण- यंत्र तथा पत्र- पत्रिकाओं के प्रचार से हिन्दी कहानी का आरम्भ तथा विकास हुआ। भारत का कथा- साहित्य प्राचीन है उसका विस्तार वैदिक संस्कृत, पात्सी, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में मिलता है। वैदिक साहित्य में जायीं तथा वस्युओं एवं उर्वशी- पुरुखाँ जैसे उपाख्यान मिलते हैं। वेदों के बाद ब्राह्मण तथा उपनिषदों के युग में भी यत्र तत्र कहानियाँ तथा उपाख्यान मिलते हैं। कहानी का यह पुराना रूप आख्यायिकारं, आख्यानक, जातक कथार्यं, पौराणिक- कथार्यं, दंत कथारं, लोक कथारं आदि रूपों में मिलता है।

कहानी का प्रारम्भ उपनिषदों की रूपक कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों और बौद्ध- साहित्य की जातक कथाओं में दिखाई देता है। उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा आदि की चर्चा मिलती है। महाभारत के "उकुन्तलीपाख्यान" "शावित्री- उपाख्यान" आदि में कार्य जाति का इतिहास, संस्कृति, धर्म आदि का सुन्दर विश्लेषण मिलता है। भगवान बुद्ध की पूर्ण जन्म की कथा का संग्रह जातक- कथाओं में मिलता है और ये कथार्यं एक दृष्टि से धार्मिक- कथार्यं हैं जिनका निर्माण इनके शिष्यों और धर्मप्रेक्षकों ने बुद्ध की महिमा पूर्ण प्रदर्शित करने के लिये कहा था। इन जातक कथाओं में यह विशेषता है कि इनमें एक स्वतन्त्र कथाओं से अनेक उपकथाओं का जन्म होता है और इस प्रकार की परम्परा

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ कथा- सरित्सागर, पंच तंत्र आदि में मिलती है ।

संस्कृत के लोकप्रिय कथा- साहित्य में गुढा-द्वयकृत "बुद्ध-कथा" एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसके आधार पर बुद्ध स्वामी कृत "बुद्ध कथा श्लोक संग्रह" में "पंच तंत्र" के ताल पंच विशंतिका" की कथाएं संग्रहित हैं । "पंच तंत्र की भांति "क्षितीपदीय" नीति ग्रन्थ है जिसमें कीक छोटी छोटी कथाएं मिलती हैं । इस प्रकार हमें भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा मिलती है । परन्तु आज की कहानियाँ पश्चिमी साहित्य से प्रेरणा ले रही हैं, उनमें विषय, शैली, उद्देश्य आदि में नवीनता दिखाई पड़ती है तथा आधुनिक पश्चिमी कहानी से प्रभावित है । हिन्दी कहानी का इतिहास पुराना नहीं है फिर भी उसके विकास में एक परम्परा मिलती है । हिन्दी कहानी- साहित्य के उदगम और विकास का अध्ययन उसके साहित्य के निम्नलिखित काल- विभाग को मानकर किया जा सकता है :-

काल-विभाग

१- प्रारम्भिक काल	सन् १८०० से १९०० तक
२- शैशव- काल	सन् १९०० से १९१० तक
३- निर्माण- काल	सन् १९१० से १९२७ तक
४- विकास- काल	सन् १९२७ से १९३७ तक
५- आधुनिक - काल	सन् १९३७ से १९६४ तक

प्रारम्भिक काल (सन् १८०० से १९०० तक)

सन् १८०० से १८१० के बीच लल्लूलाल का

“ प्रेम सागर ” सदस्य मिश्र का “ नासिक्तीपास्थान ” तथा वंशा वल्ला खाँ की “ रानी केतकी की कहानी ” । “ रानी केतकी की कहानी ” का निर्माण एक मौलिक कृति के रूप में हुआ इसमें हिन्दी कहानी का रूप दिखाई देता है । वंशा ने अपनी यह रचना भाषा के एक स्वतन्त्र रूप को प्रस्तुत करने के लिए लिखी । उन्होंने इस रचना का नाम उदयमान चरित या रानी केतकी की कहानी रखकर इसकी शैली के नये चारों में संकेति किया । इस कहानी में आधुनिक कहानी की “ क्या-वस्तु ” वातावरण, कथीकथन, शैली आदि विशेषताएँ मिलती हैं । इसका कथानक मौलिक है इसमें लौकिक प्रेम का काव्यात्मक झुंकार मिलता है । इसमें क्लासिक घटनाओं की स्थान मिलने पर भी क्या के वातावरण में सजीवता है । इसकी भाषा की चारा निम्न-लिखित रूप में उपस्थित हुई है :-

“ बीचों बीच उन सब घरों के एक बारसी घाम बना था जिसकी छत और फिवाड़ और बाग़िन में बारसी छुट कहीं लकड़ी छूट, पत्थर की छुट, एक उगली के पोर बराबर न लगी थी । चांदनी सा भीठा पक्षी जब रात घड़ी एक कह गई थी, तब रानी केतकी सी दुल्हन की उसी बारसी फन में बैठकर झुल्ला की झुला मेजा ”

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इन तीन कथात्मक रचनाओं के जतावा कोई विशेष रचना नहीं दिखाई पड़ती । मुद्रण-यन्त्र का प्रचार होने के कारण कई सस्ती तथा मनोरंजक कहानियों की वित्तार्थ जनता के हाथ में जाने लगी और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में

१- सं० श्यामसुन्दर दास : “ रानी केतकी की कहानी ” तृ०बा० २००२
पृष्ठ ३८

“ फिस्सा लीला मीना”, “ फिस्सा साढ़े तीन यार”, “ क्वीलो पटियारिन”,
 “ फिस्सा शातिमताई”, “ दास्तान अमीर हमजा” आदि कहानियों का
 प्रचार होने लगा । उनका जला में प्रचार था ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में “ कवि वचन
 बुधा”, “ हिन्दी प्रदीप”, “ हरिश्चंद्र मंगवीन”, “ सार बुधा निधि”, “जानंद
 कादंबिनी” आदि साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन होने के कारण साहित्य
 के विभिन्न- रूपों का प्रचलन लोगों में होने लगा ।

इंग्लैन्ड का प्रसिद्ध पत्र “ लंदन पेंस” की शैली
 पर “ हिन्दी प्रदीप”, “ भारत मिल” आदि पत्रिकाओं में छोटी छोटी व्यंगा-
 त्मक कहानियां प्रकाशित होती थीं और उनके द्वारा पाठकों का मनोरंजन
 होता था । उन् १८७६ में प्रकाशित “ हिन्दी प्रदीप” में एक हास्य चित्र का
 नमूना इस प्रकार का मिलता है :-

“ एक बूढ़ा कमर फुकाये लोठी लिये बाजार
 में चला जाता था । राह में किसी ने पूछा कि यह कमान तुमने कितने दिन में
 लिया है । उसने उत्तर दिया कि चौदह दिन अगर काटो यह तुम्हें आप से आप
 मिल जायगा^१ । ”

इसी प्रकार उन् १८६७ के “ हिन्दी प्रदीप”
 में प्रकाशित “ पढ़े लिखे बेकार की एक नकल” शीर्षक स्कुट लेख में इस कहानी
 का रूप देखिए :-

१- हिन्दी प्रदीप, अप्रैल १८७६ पृष्ठ ४३ (हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि
 का विकास) डा० लक्ष्मीनारायणलाल पृष्ठ ५१ से उद्धृत ।

“ जिन्होंने अपना जीवन केवल किताब और पुस्तकों में ही बिताया और जिनके सीधे सरल चित्र में सार की बुराई भलाई में स्थान पाया ही नहीं उनकी कालख लौढ़ने पर ऊँची नीची दशा में पढ़ किया सुख दुःख कीतना पड़ता है उसी का एक चित्र(स्मारे) इस लेख का सत्य है ।

इससे स्पष्ट माहल पड़ता है कि पाश्चात्य संस्कृति तथा शिक्षा का प्रभाव तत्कालीन भारतीय जीवन पर पड़ा और उसकी प्रतिक्रिया स्वप्न- चित्र, व्यंग चित्र आदि रूपों में प्रकाशित होने लगी और उन्हें कथा का रूप मिलने लगा । सन् १९०० के “ हिन्दी प्रदीप ” में बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन द्वारा संपादित “ माण्य का कीर ” (एक कद मनीहर कहानी) का प्रकाशन हुआ । इसी वर्ष के जनवरी में काशी से सुदर्शन और प्रयाग से “ सरस्वती ” का प्रकाशन आरम्भ हुआ उनमें आधुनिक कहानी की शैली में कहानी या आख्यायिका के रूप में कथात्मक रचनायें प्रकाशित होने लगीं ।

शैल्य काल (सन् १९०० से १९१० तक)

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ “ सरस्वती ” और सुदर्शन ” के प्रकाशन के साथ साथ १९०० ई० में होता है । इससे भी पहले १८९९ ई० में नुसक्त्या के आधार पर कात्यायन और “ वररुचि ” की कथा और “ उपकीशा ” की कथा कहानी रूप में “ हिन्दी प्रदीप ” में प्रकाशित हुई । “ मन की चंचलता ” शीर्षक कहानी सुदर्शन में सन् १९०१ में प्रकाशित हुई । माधव मिश्र

१- हिन्दी प्रदीप, अप्रैल, मई, जून, १८५७ पृष्ठ ३, ४

२- हिन्दी प्रदीप, अप्रैल, मई, जून १८५७ पृष्ठ १७

निबंध माता के "निवेदन" में इस कहानी के बारे में लिखा है :-

"हिन्दी में छोटी वास्त्यायिका या कहानी (बंगला गत्यके ठंगकी) लिखने के समारम्भ मिय जी ही थे । " मन की चंचलता " उनकी पहली कहानी है, जो सुदर्शन के दूसरे भाग की दूसरी संख्या (फरवरी एन् १९०१) में प्रकाशित हुई थी । "

इस संग्रह में उनकी " पुरोहित का वात्स त्याग " जापानी पारवाही " यदा युधिष्ठिर संवाद " और बड़ा बाजार " शीर्षक कहानियाँ मिलती हैं । " सुदर्शन " में प्रकाशित अधिकतर कहानियाँ वास्त्यायिका ठंग की हैं । एन् १९०३ में उसके बंद होने पर कहानी साहित्य के प्रकाशन का कार्य " सरस्वती " पत्रिका के द्वारा होने लगा । इस काल की कहानी का मूल निम्नलिखित रचनाओं में ढूँढा जा सकता है :-

- १- शेक्सपीयर के नाटकों का वास्त्यायिकाओं के रूप में अनुवाद ।
- २- संस्कृत के नाटक और कादम्बरि का अनुवाद ।
- ३- बंगला से अनुदित कहानियाँ ।
- ४- जीवन का यथार्थ रूप चित्रित करने वाली कहानियाँ । जैसे " दुसारे वाली " ।
- ५- काल्पनिक तथा कलात्मक भाव कथार्थ ।

बंगला कहानी का प्रभाव हिन्दी कहानी पर पड़ा है । बंकिमचंद तथा रवीन्द्रनाथ की कहानियों के कारण बंगला कहानी

१- सं० चतुर्विंशती द्वारका प्रसाद शर्मा ; माधवप्रसाद निबंध माता " संवत् १९६२
निवेदन पृष्ठ ४

के इतिहास में नये युग का आरम्भ हुआ । बंगला में कहानी की गल्प कहा जाता है । ये गल्प अत्रुदित रूप में हिन्दी में प्रकाशित होने लगे । बंगला कहानी पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव था । अतः यह प्रभाव बंगला की अत्रुदित कहानियाँ द्वारा हिन्दी में आने लगा ।

“सरस्वती” में शेक्सपीयर के अनेक नाटकों के अनुवाद कहानी-रूप में प्रकाशित हुए । इसी प्रकार “रत्नावली” और “मालविकाग्निमित्र” की कहानियाँ अत्यन्त मनोरंजक प्रमाणित हुईं । “रत्नावली” की आख्यायिका का आरम्भ इस प्रकार हुआ है ।

“कौशाम्बि नगरी में राज मदनोत्सव की धूम धाम मची हुई है । वसन्त ऋतु के आने से नगर-निवासी जन बड़े उमंग के संग कामदेव की पूजा की तैयारी कर रहे हैं । ऐसे समय में कौशाम्बि के अधिपति महाराज उदयन) वत्सराज) भी अपने मित्र वसंत के साथ राज प्रासाद की सबसे ऊँची छत पर बैठे हुए नगर निवासियों के उत्साह और खुशुछ की देख रहे हैं ।”

इस आख्यायिका अन्त बहुत ही भावपूर्ण है :-

“उस उत्सव में यह ‘रत्नमाला’ की वसन्तक की सुसंगता ने की थी ; वसन्तक ने पुरस्कार में पाई और आनन्द पर्वण से सारा राज प्रासाद गूँज उठा ।”

१-“सरस्वती” : जनवरी १९०१ पृ० २६

२-“सरस्वती” : फरवरी १९०१ पृ० ५७

इसी प्रकार हिन्दी कहानी का प्रारम्भ

अंग्रेजी तथा संस्कृत के नाटकों के भावानुदित वास्तव्यायिकाओं के द्वारा हुआ । इनमें भारतीय कथा-शैली का उक्तयोग किया है परन्तु बाद में बंगला की अनुदित कहानियों द्वारा विदेशी साहित्य की परम्परा का प्रभाव भी हिन्दी-साहित्य पर पड़ने लगा ।

हिन्दी कहानी के विकास क्रम में किशोरीलाल गोस्वामी की वाधुनिक कहानी "हनुमती" जून १९०० में "सरस्वती" में प्रकाशित हुई । आचार्य रामचंद्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय" का महिला कृत "हुताश वासी" नाम की कहानियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । डा० श्रीकृष्ण लाल के अनुसार "हनुमती" हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी है परन्तु डाक्टर लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार "ग्यारह वर्ष का समय" हिन्दी की प्रथम कहानी है । हिन्दी कहानी के विकासक्रम के अनुसार "हनुमती" कहानी को प्रथम स्थान दिया जा सकता है यद्यपि इस पर शेक्सपीयर के प्रसिद्ध बड़का नाटक "टेम्पेस्ट" (*The tempest*) की छाया बहुत स्पष्ट है । इसके तत्काल किशोरीलाल गोस्वामी ने इसे पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है ।

"हनुमती" के समान "ग्यारह वर्ष का समय" की रचना वास्तव्यायिका की शैली पर हुई है और इसका तत्काल इस बात का संकेत कहानी के बीच में इस प्रकार देता है :-

"इस वास्तव्यायिका में यही ज्ञात होना शेष है कि बंजरेश्वर मिश्र के पुत्र की क्या पशा हुई^१ ।"

इस काल में व्यंकटेश नारायण त्रिपाठी कृत, "एक कछरफा की आत्म कहानी" यशोबन्धन ज्योती कृत "हठयादि की आत्म कहानी" महिन्द्रलाल गर्ग कृत "ष्ट की आत्म कहानी" आदि कहानियाँ "आत्म कहानी" की शैली में रची गईं। इस प्रकार सन १९०६ में प्रकाशित कलाता पार्वतीनन्दन कृत "मेरा पुनर्जन्म" और एक के दो दो" बंग मस्तिता कृत "कुम्भ में छोटो बहू" आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। इनमें "मेरा पुनर्जन्म" कहानी प्रसिद्ध है। इसका लेखक निवेदन के रूप में कहानी के बीच में लिखता है :-

"क्या अधिक बढाने का साहस नहीं होता--- मेरी दुसपूर्ण आस्थायिका बहुत लम्बी है।----- परन्तु पाठक महाशय मेरी कहानी की उपन्यास न समझिये।"

सरस्वती के सम्पादक द्वारा लेखक ने इस निवेदन का उत्तर टिप्पणी के रूप में इस प्रकार दिया है :-

"तुम यदि अपनी कहानी इसी चीगुनी कर देते तो भी हम उसे काटकर तुम्हारे शरीर से खून निकालने का पाप अपनी सिर न लेता?"

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के उत्तरार्ध में मेरी कहानी-कला की प्रयोगावस्था का दर्शन बंग मस्तिता कृत "दुलार वाली,"

१- सरस्वती : फरवरी १९०६ पृ० ६०

२- सरस्वती : फरवरी १९०६ पृ० ६०

सत्यदेव दूत" कीर्ति कालिमा , " मधुसूत दूत" दूत की कीठरी", वृन्दा-
वन सात घमा की " रासी बंद मार" जादि कहानियों में मिलता है ।

"दुतारवाली (मई १९०७) एक मनारंजक तथा घटना प्रधान कहानी है
उत्तम एक रहस्य घटना का रहस्य सीता गया है । यह बात " दूत की कीठरी "
में भी मिलती है । उत्तम कुतूहल और रोमान्च की भावना है ।

शैलम जाल की कहानियों में वृन्दावनलास
घमा दूत " तातार और एक वीर राजपूत " (१९१०)में कहानी की प्रयोगा-
वस्था का वर्णन मिलता है । सन् १९०६ में प्रकाशित उनकी " रासी बंद मार "
कहानी में उनकी कहानी कला का प्रारम्भिक रूप मिलता है । " तातार
और एक वीर राजपूत " में भी उनकी ऐतिहासिक कहानी का प्रारम्भिक रूप
मिलता है ।

इसका आरम्भ बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ है:-

" उस समय दिन के कोई बस बचे हीने ।
बादलों के छोट छोट टुकड़े आकाश में लड़ रहे हैं । मंद मंद में फन बह रहा
है । उसके फीकों से पहाड़ी के नीचे अवस्थित एक उद्यान लहरा रहा था । "

कहानी का प्रारम्भ कहानी की आधुनिकता
का संकेत दे रहा है । उस प्रकार एक युवक के मुख से कहा गया -

" सुकेशी, सौन्दर्य का रूप बड़ा मधुर, पर

स्पर्श बहुत कठोर होता है - वाक्य उस कहानी की कथोपकथन-शैली में भाव-सौंदर्य निर्माण करता है और उसकी मधुरिमा पाठक के हृदय की हिता देती है। हिन्दी कहानी साहित्य के विकास में 'सरस्वती' पत्रिका ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया और 'हन्दु' पत्रिका के प्रकाशन के कारण हिन्दी कहानी की प्रगति की दिशा में परिवर्तन दिखाई देने लगा। उस काल में ही 'निन्हावे का फेर मैथिलीशरण गुप्त ने (१९१०) तथा 'नक्की कित्ता' (१९०६) में गीतिका हंसी में लिखी।

निर्माणकाल (सन् १९१० ई० से सन् १९२७ ई० तक)

कहानी साहित्य के विकास में हंदु पत्रिका का प्रकाशन बहुत महत्वपूर्ण घटना है। सरस्वती के प्रकाशन के कारण लोक कथानियों का प्रकाशन ही रहा था। परन्तु 'हन्दु' के प्रकाशन द्वारा उसकी और अधिक बल मिला। धीरे धीरे 'गृह सन्धी' (१९१०) क्या मनीरंजन (१९१२) हिन्दी गण मास (१९१८) माधुरी (१९२३) बाँद (१९२३) आदि साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा।

हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में सन् १९१० तक का काल अपना विशेष महत्त्व रखता है। जयशंकर प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' १९११ ई० में हन्दु में प्रकाशित हुई और हास्यरस के तत्त्व की पी० पी० श्रीवास्तव की प्रथम कहानी भी १९११ ई० में प्रकाशित हुई। 'ग्राम' कहानी का आरम्भ इस रूप में हुआ :

“टन । टन । टन । स्टेसन पर घंटी बोलती ।

बावण मास की संख्या भी कैसी मनीहारिणी होती है, मेयमास विभूषित

गगन की छाया, सफ़्त रसात कानन में पड़ रही है, अधिपारी धीरे धीरे अपना अधिकार पूर्ण गगन में जमाती हुई, सुहासन कारिणी महाराणी के समान विजय प्रवाहन के सुप्त भिक्षुन भीड़ में खनक करन की आशा दे रही है।**

कहानी के प्रारंभिक अंश की देखकर यह प्रतीत होता है कि वह अपनी स्वतन्त्र अस्तित्व का अन्विष्टाण कर रही है और उसमें जीवन की आस्तविकता का चित्रण होने लगा है। डाक्टर श्री कृष्णासाह ने वाधुनिक कहानी के उद्गमों के बारे में इस प्रकार लिखा है :

“ वाधुनिक कहानियाँ का प्रारम्भ दो उद्गमों से होता है। एक धीरे सामयिक और तत्कालीन जीवन के प्रतिबिम्ब की आकाशमिक घटनाओं और कल्पना, हास्यमय, विनोदपूर्ण तथा बहुधा परिस्थितियों के आधार पर यथार्थवादी वातावरण के आधार पर सुसज्जित नई कहानियों की गृहिणी होने लगी । दूसरी धीरे प्राचीन, सपनाकाव्यों, नाटकों और वास्तविक गीतियों तथा प्रबन्ध काव्यों के आधार पर कल्पनाप्रसूत कथानक रूप में नाटकीय कहानियों के साथ में ठोस जाने लगी । प्रथम उद्गम से यथार्थवादी कहानियों का प्रारम्भ हुआ और द्वितीय उद्गम से आदर्शवादी और कवित्वपूर्ण कहानियों का । ”

उपरोक्त उद्धरण में प्रबन्ध तथा प्रवाद की कहानियों की धीरे संकेत मिलता है। एन १९१२ में जयशंकर प्रसाद ने एक दूसरे अंग की कहानी का प्रारम्भ किया, जिसमें उनकी नाटकीय प्रतिभा और कवि हृदय की अपना कौशल दिखाने का उपयुक्त दृष्टि मिलता । “ रघुया बाल्य ” नामक कहानी

१- इन्दु - कला २ किरण २ संवत् १८६७ पृ० ६१

२- सं० डा० श्रीकृष्णासाह - हिन्दी कहानियाँ - चौदहवीं आवृत्ति पृ० ३६

एन १९६१ ई०

जी "हनु" में वर्ष १९१२ में प्रकाशित हुई थी, गद्य में एक सण्डकाव्य के समान है और फारसी के प्रपात्यानी के बहुत ही निकट है। उस काल में प्रताप जी और प्रमोद जी ने अपनी विविध प्रकार की कहानियाँ द्वारा हिन्दी कहानी साहित्य को समृद्ध किया।

सन् १९१० से सन् १९१६ तक इन छः वर्षों में हिन्दी की प्रारम्भिक तथा मौलिक कहानियों का दर्शन हुआ। "उत्पति कहा था", "पंच परमेश्वर" आदि उच्च कोटि की कहानियाँ उसी काल में लिखी गईं।

जयशंकर प्रताप जी ने अपनी "ग्राम" शीर्षक भाव कहानी के द्वारा हिन्दी कहानी साहित्य में प्रवेश किया। "ग्राम" भारत के ग्रामीण जीवन की एक दुःसंपूर्ण कहानी है। उसी तरह "हनु" में प्रकाशित श्री राधिकारमण सिंह कृत "कानों में काना" (१९१३) तथा पं० पारसनाथ त्रिपाठी कृत "सुत की मौत" (१९१३) कहानियों द्वारा हिन्दी में भावपूर्ण कहानियों की परम्परा बानि बड़ी। "कानों में काना" पाठक के मन में एक प्रकार का कुतूहल तथा गुदगुदी जाग्रत करता है। कहानी का आरम्भ इस प्रकार हुआ है :

"किरण। तुम्हारे कानों में क्या है ?

उसने कानों से बंगल लट की हटाकर कहा "काना।"

सम्मुख की कान कानों की धर कर बैठे थे।

वर। कानों में काना ?

हां- तब कहाँ पड़ें ? "

"किरण अभी भीती थी। दुनियाँ में जिसे भीती कही है वही भीती नहीं। उसे इन के फूँती का भीतापन समझी।"

१- कानों में काना- हनु कता ४ सण्ड २ किरण १ जुलाई सन् १९१३ पृ० ४५

यह एक भाव प्रधान तथा शिक्षाप्रद कहानी है, उसके द्वारा लेखक यह संदेश देता है कि समय का उचित ख्याल न करने के कारण मनुष्य को पश्चाना पड़ता है।

सन् १९१३ में पारसनाथ त्रिपाठी की 'सुत की मौत' शीर्षक कहानी अपना एक विशेष महत्व रखती है। कहण इस से पूर्ण इस कहानी में श्यामा नामक स्त्री के वात्स्य त्याग की प्रभाववात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। इस कहानी का अंत भी भावपूर्ण है। अन्तिम भाव किता भावपूर्ण है :-

“ दूर लड़ा एक साधु श्यामा को इस “ सुत की मौत ” की निर्निमेष देख रहा था । ”

सन् १९१५ और १९१६ में प्रकाशित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की “ उसने कहा था ” (१९१५) विश्वम्भर नाथ जिज्वा की “ विदीर्ण हृदय ” (१९१५) तथा प्रखंड की “ सीत ” (१९१५) एवं परमेश्वर (१९१६) अत्यन्त उच्च कौटि की कहानियाँ हैं। इन कहानियों के द्वारा हिन्दी कहानी साहित्य की नींव दृढ़ हुई । “ उसने कहा था ” और “ पंच परमेश्वर ” हिन्दी कहानी साहित्य की दो कमर कृतियाँ हैं।

गुलेरी जी की “ उसने कहा था ” कहानी लक्ष्मणसिंह की वात्स्यसमर्पण की कहणक कहानी, पवित्र प्रेम के लिए किये गये निःस्वार्थ बलिदान की कहानी है। अपनी सहज पुस्तक रसोदक के कारण ही यह हिन्दी कहानी साहित्य का माहस स्टीन बन सकी । वाचार्थ नंद दुलारे वाजपेयी

जी ने " हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ " शीर्षक कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है :

" गुलरी जी की " उसने कहा था " कहानी बहुत ही अधिक स्थान और समय धरती है। कहानी की नवीन प्रतिमाओं की दली हुए विराट् या महाकाव्य (ऐपिक स्टोरी) कही जा सकती है। तम्बो कहानियाँ प्रसाद जी ने भी लिखी हैं और प्रमचन्द जी ने, उन दोनों कहानियों में " उसने कहा था " की सी बोधित विशास्ता नहीं है। "

वाजपेयी जी ने " उसने कहा था " में कहानी की जी " बोधित विशास्ता " देती है वह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। वास्तव में यह कहानी सत्तासिंह जमादार के अपूर्व स्वार्थ त्याग और गतिदान की कहानी है। अंत बहुत ही भावपूर्ण वाक्य में किया है :

" कुछ दिन पीछे लोगों ने जलदारी में पड़ा -
प्रान्त बैलजिम- ६८ वीं सुनी मैदान में घावीं से मरा - नं० ७७ सिंह
रायफूस जमादार सत्तासिंह । "

यह एक वादर्थ प्रेम की प्रणय कथा है जिसमें सत्तासिंह का चरित्र चित्रण प्रेम और कर्तव्य के विशाल तथा व्यापक वादर्थ की पाठकों के सामने उपस्थित करता है।

गुलरी जी ने अपनी कहानियाँ द्वारा कहानो का एक स्वतन्त्र रूप लोगों के सामने रखा । " सरस्वती " तथा " हन्दु " में जी

१- संपादक नंद दुतारे वाजपेयी- हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ तु० सं० एन १६५१
(भूमिका से) ।

कहानियाँ छपती थीं उनमें अधिकतर भाषा पूर्ण कहानियाँ रहती थीं । उनके काल में बुन्दावनलास वर्मा, पारसनाथ त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद "कौशिक", विश्वम्भर नाथ जिज्जा, ज्वालाधर शर्मा, राधिकारमण सिंह वादि वर्मा कहानियाँ प्रकाशित कर रहे थे । इस दृष्टि से मुन्शी प्रेमचंद का हिन्दी कहानी साहित्य में प्रवेश होना एक क्रान्तिकारी घटना है । उनकी "पंचपरमेश्वर" (१९१६) शीर्षक कहानी कला का वादर्थ उचित ढंगों पर उपस्थित करती है ।

छावटर श्रीकृष्ण लाल हिन्दी- कहानी साहित्य में प्रेमचंद के वाचिर्भाव का मूल्यकित बहुत ही स्पष्ट शब्दों में किया :-

"बाधुनिक कहानियों में विकास का प्रथम और प्रसुक्तम सूत्र प्रेमचंद की देन है । उन्होंने पहले-पहल कहानियों को बाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ाकर मानव जीवन के अंतः रहस्यों के उद्घाटन का सन्धान बनया ----- जहाँ पहले कहानियों में भीतर- बाहर सभी जगह इन्हीं वाक्स्थिक घटनाओं और संयोगों की प्रधानता थी वहाँ प्रेमचंद ने कथानक के बाह्य रूप रेशा के लिये वाक्स्थिक घटनाओं और संयोगों का तो पूरा पूरा उपयोग किया, परन्तु उसकी अंतः रहस्य रेशा का विकास मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण द्वारा ही किया ।----- प्रेमचंद के इस वाचिष्कार ने मानव चरित्र नाम की एक वस्तुतः पिटारी तैयार की जिसके वाच्यता का कोई अंत ही नहीं । मनुष्य का मान बहिर्मान, स्नेह-प्यार, ईर्ष्या- वैषम्य, कलह, घृणा- ग्लानि, वैर विरोध, कल

क्या क्या परिवर्तन होते हैं यह वास्तव में क्लृप्त है।

हिन्दी- कहानी साहित्य में प्रेमचंद जी का एक निश्चित स्थान है। १० ज्वालादेव शर्मा की "कनाथ बालिका", "भाव परिवर्तन" और "विरक्त विमानवाह", फुमलाल पुन्नालाल बख्शी की "कलमला" आदि कहानियाँ प्रकाशित हुईं। प्रेमचंद ने "प्रेम परमेश्वर" के बाद अनेक कहानियाँ लिखीं उनकी संख्या ३०० तीन सौ के आसपास है। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे बाद में वे हिन्दी में लिखने लगे। इसलिए उनकी कहानियाँ पर उर्दू कथा- साहित्य का प्रभाव पड़ना है। स्वामाविक है। उनकी "प्रेम परमेश्वर", "बलिदान", "पुत्र प्रेम", "सुहाग की छाड़ी", "सम्पत्ता का रहस्य", "स्वदेस" आदि महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। प्रेमचंद जी ने ग्रामीण समाज का चित्रण करके तत्कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद जी के अनुसार उस कहानी का जादूई रूप प्रकाश है :-

"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी नवोन्मेषात्मिक सत्य पर हो।" प्रेमचंद जी के काल में ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याओं का निर्माण हुआ था इस कारण उन्होंने अपनी कहानियों के पात्रों के जीवन का चित्रण इस ढंग से किया कि उनमें मानव जीवन की अनेक कमजोरियों का रूप सामने उपस्थित करके मानवीय जादूई

१- डॉ० डा० श्रीकृष्ण लाल "हिन्दी कहानियाँ", चौदहवीं आवृत्ति १९६१
पृष्ठ ४०, ४१, ४२।

२- प्रेमचंद - "कुछ विचार", प्रतीय संस्करण, १९४५, पृष्ठ ३२।

के गुणों की भी स्थापना की। प्रेमचंद जी मनुष्य जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्र होचने में सक्षम सिद्ध हस्त थे। कहानी के पात्रों द्वारा मनुष्य की विविध मनस्थितियों का विश्लेषण करने की प्रेमचंद की कला अभिनव है। प्रेमचंद की कहानियों में उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति का दर्शन मिलता है। उनके यथार्थानुसृत आदर्शवाद का दर्शन उनकी अधिकतर कहानियों में मिलता है।

प्रेमचंद की कहानियों के साथ साथ प्रसाद जी की भाव पूर्ण कहानियाँ प्रकाशित हो रही थी। प्रसाद जी प्रकृति से प्रेरित थे इसलिए उनकी कहानियों में कल्पना शौर्य, प्रेम, आनंद आदि का दर्शन मिलता है। बाबू नंद दुलारे बाबूजी जी ने प्रसाद की कहानियों का मूल्यांकन इस प्रकार किया है :-

“प्रसाद” की कहानियों में वातावरण का चित्रण विशुद्ध कहानी के लिये कुछ अधिक हो जाता है, किन्तु अतीत के ये कल्पनाविचित्र विशुद्ध कहानी है भी नहीं। प्रसाद की कहानियों में “कहानी” की वषेला वस्तु वकन प्रवृत्ति अधिक है, जिसके कारण उनकी कहानियों में आवश्यक गत्वरता नहीं आ सकी है। अतीत को सजीव करने की चिन्ता में प्रसाद घटना सूत्र के साथ शीघ्र गति से आगे नहीं बढ़ते, पाटकों दिल-पाते चलते हैं। उनकी कहानियाँ, इसलिए कायत्व के साथ उपस्थित होती हैं।”

प्रसाद के कहानी-साहित्य का विस्तार बाधुनिक

१- नंददुलारे बाबूजी : “बाधुनिक साहित्य”, प्र० सं० सं० २००७, पृष्ठ १६८ ।

हिन्दी कहानी के जन्म कास है सन् १९३७ तक है । प्रसाद जी का बौद्ध और शैव मत द्वारा प्रभावित है तथा भारत की संस्कृति से बहुत प्रेम रखते हैं ।

“ शायद ‘बौर’ प्रतिव्यक्ति कहानियों में प्रसाद जी सौन्दर्यावादी प्रवृत्ति का दर्शन उन कहानियों में दिखाई देता है । प्रसाद जी की कहानियों के बारे में डाक्टर भीकृष्ण लाल ने इस प्रकार लिखा है :-

“ कवित्वपूर्ण वातावरण, कवित्वपूर्ण भावना और नाटकीय तथा जादूवादी परिस्थितियों की सृष्टि करने में अर्थात् प्रसाद बलियो है, उनकी कला कवित्वपूर्ण और स्वच्छन्दवादी है । ”

प्रमोद जी एक कथावादी कलाकार थे और वे अपनी कहानियों द्वारा समाज में नये नये वाद्यों की स्थापना करना चाहते थे । प्रमोद जी ने जिन वाद्यों को सामने रखकर कहानियाँ लिखी उनका अनुकाण १० गोविन्द बल्लभ पंत, सुदर्शन, कौशिक आदि लेखकों में किया । प्रसाद स्वच्छन्दवादी कलाकार थे उन्होंने प्रेम का संघर्ष का अभिव्यक्ति करने वाली कहानियों का निर्माण किया । उनकी हर एक कहानी में कवि-हृदय की भावुक धारा का प्रवाह दिखाई पड़ता है । उनकी कहानी कला का

१- सं० डा० भीकृष्ण लाल : “ हिन्दी कहानियाँ ”, चतुर्थ संस्करण,

१९४६

अनुकरण करने वालों में चतुर्सेन शास्त्री, रायकृष्ण दास, विनीत रंजित व्यास, पान्देय वैद्यन शर्मा उग्र आदि कुछ मुख्य हैं।

प्रेमचंद जी के व्याख्यादी दृष्टिकोण को लेकर निरवधारणा शर्मा "कौटिल्य" ने ताई (१९२०), शान्ति (१९२०), फाली (१९२१), फली (१९२३), गुरुकार (१९२५), काकी (१९३०) न्याय आदि कहानियाँ लिखीं। कौटिल्य जी ने अपनी कहानियों में तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण करके अपने पाठकों को यह भी दिखाया कि मनुष्य अपने सामने विशेष आदर्श रखकर भी अपनी सफलता में सुख और समाधान पाता है।

प्रेमचंद जी के समान सुदर्शन जी को भी उर्दू से हिंदी में जाये। उन्होंने कवि की स्त्री (१९२३), एयर की जीत (१९२५), सदा सुख (१९२६-३०), एथेन्स का सन्तुष्टि (१९३१) गुरुदास (१९३१), संसार की सबसे फली दहानी (१९३३) आदि कहानियाँ लिखकर प्रेमचंद की तरह ही यथार्थानुसंग आदर्शवादी कहानियों की परम्परा को आगे बढ़ाया।

प्रसाद जी की माद धारा का परिचय चतुर सेन शास्त्री की "बीजाजी" (१९२३, "हनी १९२४)", "दुल्हा में रसि कहीं मोरी सज्जी" (१९२७) आदि कहानियों में मिलता है।

“कला कला के लिये” का साहित्यिक वाक्य
 सामने रखकर राय कृष्ण दास ने अपनी कहानियों की सृष्टि की।
 उनकी कहानियों में “रमणी का रहस्य” प्रसन्नता की प्राप्ति, वन्तः
 पुर का बारम्भ, पाँ की बात्मा आदि महत्वपूर्ण हैं।

सैलीप्रसाद “हृदयेक” ने अपनी साहित्यपूर्ण तथा
 चमत्कार पूर्ण शैली में “साधना” (१९२१), “कलुषा कथा” (१९२४),
 प्रायश्चित्त (१९२५), समर्पण (१९२६), पर्यस्तान आदि कहानियाँ हैं।
 पर्यस्तान कहानी का वन्त जयशंकर प्रसाद की “समुन्द्र संतुलण” कहानी
 से मेल खाता है :-

“समुन्द्र संतुलण” कहानी का क्लृप्त :-

“धीवर वाला ने कहा- बाबूजी ?

लहरों को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा- कहीं से चलोगी ?

पृथ्वी से दूर जल राज्य, जहाँ कठोरता, नहीं केवल
 केवल शीतल, कौमल तथा तरल बालिन है, प्रसन्नता नहीं सीधा बाह्य -
 विश्वास है, वैभव नहीं सरल सौन्दर्य है।”

“पर्यस्तान” शीर्षक कहानी का क्लृप्त :-

१- जयशंकर प्रसाद : “वाकाश दीप”, तु० टी० २००२ वि०, पृष्ठ १२६।

“राजकुमार- बच्चा रत्नमाले, वही बाता
हूँ, जहाँ प्रेम का वक्षस्य राम्राज्य है, जहाँ इसका अविरल प्रीत प्राप्त
होता है, जहाँ विच्छेद का भय नहीं, ब्रह्मा की वार्त्ता नहीं, जहाँ
मेरे हृदय की लक्ष्मीवरी राजकुमारी बर्फी के महुर हास्य का प्रोज्ज्वल
प्राण है, वही बाता हूँ रत्नमाले।”

इस काल में पुन्दावन लाल वर्मा ने अपनी “शरणा-
गत” कहानी से लिखी उनकी अधिकतर कहानियाँ ऐतिहासिक हैं।

इस काल की कहानियों के रचना विधान में बनेक
परिवर्तन हुये हैं। सन् १९६० तक कहानी को अपना कोई स्वतन्त्र रचना
विधान या शैली नहीं थी, उसका रूप बंगला कहानी के प्रभाव से बदलता
रहा। इस काल की अधिकतर कहानियाँ घटना प्रधान और चरित्र
प्रधान हैं। उनमें मनुष्य जीवन का व्यापक चित्र खींचने का प्रयत्न किया
गया है।

विकास-काल (सन् १९२७ से सन् १९३७ तक)

हिन्दी कहानी- साहित्य का यह काल विभाग प्रेमचंद
जी तथा प्रसाद जी की कहानियों से सीमित है। इन दो लेखकों की

१- चँडीप्रसाद : हृदयेश कृत “पर्यटन” कहानी से।

अन्तिम कहानियाँ इस काल विभाग में प्रकाशित हुई हैं । इनके अतिरिक्त प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवती प्रसाद बाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, जेनेन्द्र, छलार्चद जोशी, बलैय आदि की कहानियाँ भी इसी काल में प्रकाशित हुई हैं । यह मनोवैज्ञानिक कथकलिका कहानियों का युग है, इस काल में भी प्रेमचंद तथा प्रसाद की कहानियाँ अपना महत्त्व रक्ती हैं । मुन्शी प्रेमचंद के वादशैली की दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा और वे कथकली की पृष्ठ भूमि पर अपनी कहानियों की रचना करने लगे । इस काल में उनकी 'मोटैराम शास्त्री' (१९२८), 'मकुलबी पागल' (१९२८), 'बलग्यो फा' (१९२९), 'स्वप्न' (१९३०), 'कफन' (१९३६) आदि कहानियों में उनकी कहानी-कला का चरम वादशैली मिलता है । प्रेमचंद ने इन कहानियों में जीवन का वास्तविक चित्र सीक्कर मनुष्य के जीवन से सुन्दरसे सुन्दर तर फलू का विश्लेषण करने में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सहारा लिया है इसलिए इन कहानियों में चरित्र-प्रधान कहानियों की रीत्या अधिक मिलती है ।

'वाकाश दीप' (१९२९), 'बांधी' (१९३१) और सन्त्रजाल (१९३६) कहानी संग्रह प्रकाशित हुए । प्रसाद की कहानियों के ये तीन कहानी-संग्रह उनकी कहानी कला के बल बल वादशैली उपस्थित करते हैं । 'वाकाशदीप', 'ममता', 'समुन्द्र सतरण', 'देवदासी', 'किसाती' आदि कहानियाँ उच्चकोटि की हैं । जिनमें प्रेम और कथकली का संघर्ष दिखाया गया है । इस दृष्टि से 'वाकाश दीप' कहानी तत्काल

उच्च कौटि की है। इस कहानी की नायिका चम्पा दुःखगुप्त की प्यार करती है परन्तु दुःखगुप्त से उसके पिता की इच्छा की गई थी। इसलिए वह उससे घृणा भी करती है। वह दुःखगुप्त से कहती है :-

“ मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। बन्धेरे है जलदस्तु । तुम्हें प्यार करती हूँ । ”

जस प्रसाद प्रसाद जी ने “विहारी” कहानी में प्रेम की मासुक्तापूर्ण मनोवृत्ति का बहुषु अनुपम चित्र उपस्थित किया है। पात्रों के आन्तरिक भावों का विश्लेषण करने में प्रसाद जी का कौशल बहुमुत है। इसलिए उनकी कहानियों में काव्यात्मक वातावरण की मधुरिमा सर्वत्र मिलती है।

“बाँधी” वीर” छन्दबास” कहानी- संघर्षों की कहानियाँ यथार्थ की भाव भूमि पर चित्रित की हैं। इन कहानियों का कथानक कुछ विस्तृत तथा यथार्थवादी है। प्रसाद जी ने “महुवा” तथा “बड़ी” शीर्षक कहानियों में जीवन के यथार्थ चित्रण द्वारा अपनी कहानी-कला का वादर्थी दिखाया है। “गुन्ठा” वीर” छन्दबास” शीर्षक कहानियों में प्रसाद जी की कहानी- कला का निसरा हुवा रूप दिखाई देता है। सन् १९३० के आसपास का काल भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण है।

१- जयकिशोर प्रसाद : “वाकाश दीप”, वर्ष २००२, पृष्ठ १३।

इस काल में देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों में ऐसे परिवर्तन होने लगे कि समाज का रूप बदलने लगा । इस काल की कहानियाँ में राष्ट्रीय भावना, गान्धीवाद, स्त्री भावना आदि पर भी विचार होने लगा । धीरे धीरे कहानी का आदर्श मनोवैज्ञानिक हुआ और चरित्र प्रधान कहानियों का युग पुराना हुआ । इन्हें जेन्द्र कुमार, स्वामीजी जोशी, ब्रजेश, निराला, भगवतीचरण वर्मा, शिवाराम शरण गुप्त, कमलाकान्त वर्मा, कमलादेवी चौधरी, भीमती चौधरी, कचभचरण मेन आदि लेखकों ने भी विविध प्रकार की कहानियाँ लिखीं ।

“निराला” और “सुदर्शन” ने अनेक कहानियाँ लिख कर तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का चित्रण पाठकों के सामने उपस्थित किया । निराला जी ने “स्त्री शिक्षा”, “विधवा विवाह”, “अन्ध्राँतीय विवाह” आदि की समस्याओं को लेकर “ज्यातिमयी”, “श्यामा”, “प्रेमिका-परिचय”, “हिरनी”, “चतुरी नमार” आदि कहानियाँ लिखीं । उनकी कहानियाँ जपद्म तथा शिक्षित जनता की अनेक सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालती हैं । “सुदर्शन” की अधिकतर कहानियाँ नैतिक शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । उन्होंने अपनी उद्देश्य-प्रधान कहानियों द्वारा जीवन के मानवीय सत्यों का उद्घाटन करते मनुष्य में उदात्त भावनाओं का जगाने का कार्य किया । प्रेमचंद के समान यद्यपि उनकी कहानियाँ में जीवन की व्यापकता का दर्शन वहाँ दिलाई देता परन्तु भाषा तथा रचना-विधान का चातुर्य उनकी कहानियों पर

वितलार्थ पड़ता है ।

येचन शर्मा^१ उग्र ने हिन्दू-मुस्लिम एकता, त्याग, देश प्रेम वादि राजनीतिक विषयों को लेकर अपनी कहानियों द्वारा समाज में फैली हुई क्षुरीतियों प्रस्थाचारों का विमर्श बहुत ही उचारों के साथ किया है । पूँजीवादी सामन्तशाही के विरुद्ध उनके मन में जलना बाह्योक्त है कि उनकी कहानियों की भावधारा एक विशेष प्रकार की छान्ति करने की प्रेरणा देती है । उनकी "पल्लाव", "देशभक्त", वादि कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं । "देश भक्त" कहानी का अन्त तत्कालीन देश भक्त की देश सेवा का मूल्यांकन इस रूप में प्रकाशित करती है :-

"देव मंडल के बीच में बैठी हुई माता मनुष्यता की गोद में बैठकर देश भक्त ने वीर साथ ही त्रिशूकोटि देवताओं ने देहा, पितृत्व के एक पुत्र के व्यापार के उपासकों ने तौप से उड़ा दिया ।

उस पुत्र के एक- एक कण की देवताओं ने मणि की तरह जूट लिया, बहुत देर तक देव लोक देश भक्त की विजय में मुस्मित रहा ।"

माया की पिन्दादिली का तादर्थ मगवतीचरण वर्मा की कहानियों में मिलता है - "कन्टासमेट" संग्रह की कहानियाँ

१- ७० डा० श्रीकृष्णलाल : "हिन्दी कहानियाँ", चौदहवीं आवृत्ति : १९६१ ।

में उच्चकोटि का व्यंग्य मिलता है। "दो बकि कहानी संधू की
दो पाके" कहानी में झूठा ज्ञान और निरे दुःख का व्यंग्यपूर्ण चित्र-
उपस्थित किया है।

वर्मा जी अपनी कहानियों का प्रारम्भ एक विराष्टि
ऐसी से करते हैं। उनकी कहानियों में चरित्र चित्रण तथा कथानक दोनों
पर ही समान दृष्टि रखी गई है। मनोविज्ञान शास्त्र की प्राप्ति होने
के कारण उसका प्रभाव उस काल के कहानीकारों पर भी हुआ। प्रबुद्ध
प्रायः ने हमारी हर एक मन स्थिति का सर्वप्रधान भावना से जोड़ा
तौर उसे केन्द्र मानकर नीति क्रीडा की व्याख्यायें कहानियाँ द्वारा उप-
स्थित होने लगी। इस कार्य में प्राप्ति करने का श्रेय जैन, प्रताप जी, श्री,
अन्य आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा दिया।

जैन ने अपनी कहानी द्वारा नारी जीवन के
विविध फलुओं पर प्रकाश डाला। उन्होंने मनोविज्ञान के आधार पर नारी
की व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करते उसकी उन्नति
के मार्ग भी बताया है। उनकी "रात" कहानी में ऐसी ही एक नारी का
चित्र उपस्थित किया है। जैन जी ने नारी के पत्नी के रूप में देवर
की आवश्यकता का संकेत "मापी" कहानी में उस प्रकार दिया है :-

"मापी को कौन देवर प्राप्त नहीं था और देवर
स्त्री के जीवन में आवश्यक वस्तु है। एक देवर चाहिए, जिसकी अवसर बना-

कर, छड़ी, रेल-खूद, प्रमोद-विनोद की स्त्री की चपल सुलभ बापी-
वाल्मीक वृद्धियाँ रिल-खिलाकर, तृप्ति लाम करे।^१ ”

कैन्द्र नारी की व्यक्तिगत वृद्धि की बाँकापा
रखकर ही उसकी समस्याओं को हल करना चाहते हैं। नारी के जीवन
में देवर को स्थान मिलने पर उसके वैवाहिक जीवन पर प्रभाव भी कुछ
भी प्रभाव नहीं पड़ता जसका विश्लेषण उनके “त्याग पत्र” उपन्यास
में इस प्रकार मिलता है। -

“ विवाह की ग्रन्थि दो के बीच की ग्रन्थि है
वह समाज के बीच की भी है। चापने से ही क़या वह टूटती है ? विवाह
भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है। वह प्रश्न क्या यों हल
हल सकता है ? वह गाँठ बंधी कि हल नहीं सकती, टूटे तो टूट पड़े ही
जाय। लेकिन टूटना कम क़िसका श्रेय है।

कैन्द्र जी का नारी पर बहुत विश्वास है। कैन्द्र
की दृष्टि से “ पुरुष कुछ नहीं बनाता- बिगाड़ता, वो कुछ बनाती
बिगाड़ती है, स्त्री ही। ”

कैन्द्र की नारी अपनी जिम्मेदारी का भी अनुभव

१- कैन्द्र कुमार : “ वाल्मीक ” कहानी-संग्रह है “ बापी ” कहानी, पृष्ठ १८१।

२- कैन्द्र कुमार : “ त्याग पत्र ” प्रथम बार १९३७, पृष्ठ २२।

३- कैन्द्र कैन्द्र कुमार : “ पाल तथा स्पर्धा ”, १९२६, पृष्ठ ४०।

करती है। जैनेन्द्र ने "त्याग फ़" के मृणाल द्वारा उस बात को रूप में सामने उपस्थित की है। मृणाल कहती है :-

" मैं समाज को तोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटा कि हम फिर किसके भीतर रहेंगे ? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे ? इसलिए मैं ज़ना ही कर सकती हूँ कि समाज से दलग होकर उसकी फाँसीकाँसा में हूँ ही टूटती हूँ। "

उस प्रकार नारी के विषय में जैनेन्द्र का अपना दर्शन है। उन पर गान्धीवाद का भी प्रभाव है। उनका व्यक्तित्व सर्वत्र एक वास्तविक के रूप में दिखाई देता है। " स्नेह ", " वध का मेद ", " साधु का छट ", " हत्या ", " एक रात ", " कुछ उलझन ", " पत्नी ", " चिड़िया की बच्ची ", आदि कहानियों में उनकी कहानी कला का व्यप्यन दिया जा सकता है। प्रभाकर माचवे ने जैनेन्द्र के कथा-साहित्य का भूतयादिन का रूप में प्रस्तुत किया है :-

" चिन्वी के पटना- प्रधान कथा साहित्य की पात्र- प्रधान बनाने का शैल जैनेन्द्र की को है। पात्र को ही चार चुनकर उनके चरित्रों में पढ़ने की शैली हिन्दी में अपने ही है। उनके बाद के सभी कहानीकारों तथा उपन्यासकारों ने कम- अधिक परिमाण में उसे ग्रहण किया है। "

१- जैनेन्द्र कुमार : " त्याग फ़ ", १९३७, पृष्ठ ६०

२- साहित्य संदेश, अक्टूबर, १९४५।

जेन्द्र की कहानियों का मूल्य उनसे ही निर्णय के अनुसार इस प्रकार है :-

“ कहानी तो भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है । हमारे सामने अपने सवाल होते हैं, रखाये होती हैं और हम ही उनका उत्तर, उनका समाधान लोभों का सतत प्रयत्न करते रहते हैं । उदाहरणों और मिसालों की खोज होती रहती है । कहानी उस खोज के प्रयत्न का उदाहरण है । वह निश्चित उत्तर नहीं देती । पर वह प्रतीति देती है कि रायदा उस रास्ता मिले । वह सुझाव देती है, कुछ सुझाव देती है और पाठक अपने चिन्तन क्रिया के सहारे उस सुझाव को ले लेते हैं । ”

जेन्द्र जी की कहानियों में कथा तत्व की अपेक्षा पात्र परिवर्धन अधिक मिलता है और कहानी की मार्मिक तीक्ष्णता का अनुभव पाठक को होता है ।

मनोवैज्ञानिक कहानियों में “ लोभ ” तथा “ स्तब्ध बोधी ” की कहानियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । स्वभाव से कवि होने के नाते “ वे लोभ ” की कहानियों में मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण के साथ कथा में भी भाव पक्ष का दर्शन होता है । परन्तु अधिकतर उनकी कहानियाँ विपुल मनोवैज्ञानिक दृष्टि को हैं ।

“लेल”, “हारिती”, “कमर बल्लरी”, फाड़ी जीवन”, “कदिया”, “शान्ति होती थी”, “प्रव्यनिर्या”, “ताज की दाया में”, “नई कहानी का प्लोट”, “विषमता”, “सिगतसर” आदि उनकी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। “कलैय” जी की कहानियाँ में सामाजिक या राज शान्ति की घोषणा स्पष्ट दिखाई देती हैं। उनका विद्रोही मन किसी न किसी बन्धाय का प्रतिरोध करने की माँगना रहता है। कलैय जी की कहानी के रचना विधान का केन्द्र बिन्दु चरित्रों के निर्माण के हैं।

“कलैय” जी के समाज क्लार्कद जोशी ने भी मनो-वैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। जोशी भी फ्रायड के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। उनकी पहली कहानी “सज्जवा” (१९२०) हिन्दी मल्लाला में उपी थी और बाद में उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं। जोशी जी साहित्य के कलागत सौन्दर्य की घोषणा करने वाले लेखक हैं। “उपेक्षितों” (१९२८), “चरणों की दासी” (१९२९), जीत की छोर (१९३९) आदि कहानियाँ उनकी कहानी कला का आदर्श उपलब्ध कराती हैं।

उन्होंने अपनी कहानियों के लिये सामाजिक घरातल चुन लिया है। उनकी हर एक कहानी में किसी न किसी नैतिक आदर्श की व्याख्या मिलती है। “मैं” और “मेरी डायरी के दो नीएस पृष्ठ” आदि कहानियाँ उस दृष्टि से प्रसिद्ध हैं।

क्लार्कद जोशी और कलैय जी कहानियाँ केन्द्र की

कहानियों से भिन्न हैं। यद्यपि इन तीनों में ही मनोवैज्ञानिक फलक दिखाई पड़ती है। जेनेन्द्र जी प्रेमचंद जी से प्रभावित हैं और मनुष्य की समस्याओं का निरीक्षण करते अपने अनुभवों द्वारा उनका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। "वज्र" और "स्तावद जोशी" का यह से अधिक प्रभावित हैं। उन्होंने मानव जीवन के रूप की मनोवैज्ञानिक ढंग से जांचने का प्रयत्न किया है।

इस काल में अधिकतर मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी गई हैं। प्रेमचंद जी की "रफन" प्रसाद जी की "सात्वती" आदि कहानियाँ इसी काल में लिखी गईं। परन्तु जेनेन्द्र, वज्र, स्तावद जोशी, उग्र, चन्द्रगुप्त विषालकार आदि कहानीकारों की कहानियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

प्रेमचंद जी ने अपनी चरित्र प्रधान कहानियों द्वारा मनोवैज्ञानिक कहानी का सूत्रपात किया था। उसका विकास इस काल में जेनेन्द्र, स्तावद जोशी, वज्र आदि कहानीकारों की कहानियाँ में मिलता है। इतना सब होते हुये भी इस काल की अधिकतर कहानियाँ में मनुष्य की व्यक्तिगत समस्याओं का चित्रण अधिक मात्रा में हुवा है।

आधुनिक-काल (सन् ३७ से --- १९६४)

कहानी-साहित्य का यह प्रसाद-प्रेमचंदोत्तर काल आधुनिक कहानी का युग माना जा सकता है। प्रेमचंद और प्रसाद की

कहानियों द्वारा हिन्दी कहानी में बाधुनिकता के लक्षण दिखाई देने लगे और साहित्य के विविध रूपों में उसे महत्पूर्ण स्थान मिलने लगा । बाधुनिक कहानी का पुराना रूप सात्याफिकाओं के द्वारा उपस्थित हुआ था परन्तु केवल पच्चीस वर्ष के बाद उसमें कनेक नव्यतर प्रवृत्तियों का प्रवेश हुआ और रचना विधान की दृष्टि से वह अब काफी बढ़ रही है ।

उस काल की कहानियों का सूत्रपात जैन्द्र, छला चंद जोशी, लखी, बरक खादि की प्रारम्भिक कहानियों में मिलता है और बाद में छकी विकसित परम्परा सियारामरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, कमलादेवी चौधरी, सत्यवती मलिक, वसुन्धरा नागर, शिवभूजन सहाय, धर्मवीर भारती, फाद्री, यशपाल, चन्द्रकिरण सौ-सुखिका, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि प्रौढ़ कहानीकारों की कहानियों में मिलती है । इसी प्रकार बाधुनिक कहानी के कहानीकार भीष्म सहानी, बलमद्र दीप्ति, देवेन्द्र सत्यार्थी, उषादेवी मिश्रा, विपुला देवी, गुमित्रा-नंदन देव, श्रीमती शिवरात्री देवी, जयनाथ नलिन, लक्ष्मीनारायण लाल आदि उल्लेखनीय हैं ।

बाधुनिक कहानी किसी विशेष लेख या वाद से प्रभावित नहीं है । उस पर जीवन के भिन्न-भिन्न वादों का प्रभाव दिखाई देता है । वह पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित है और उसमें सुस्पष्टता की कनेक प्रवृत्तियों का दर्शन मिलता है । उस पर गान्धीवाद, साम्यवाद

यौनवाद, प्रातिवाद आदि के सिद्धान्तों का प्रभाव दिसाई देता है ।
सन् १९३७ के आस पास की कहानियों में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं :-

१- वृद्धित कहानियों की संख्या कम दिसाई देती है ।

२- कहानी पर पार्श्वान्त्य तथा घंगला कहानी का अपेक्षाकृत प्रभाव नहीं दिसाई पड़ता और इसे एक स्वतन्त्र रूप मिलने लगा ।

३- कहानी में तत्कालीन समाज की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि समस्याओं का चित्रण होने लगा । जीवन की वास्तविकता के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला गया ।

४- कहानी में बौद्धिक पक्ष की महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा ।

५- किसी भी विचार धारा का सुस्पष्ट अवलोकन करने की प्रवृत्ति कहानीकारों में दिसाई देने लगी ।

६- कहानियों के लिये रचना शैली के अनेक नमूने उपयोग में आने लगे और उनमें रचना विधान की सूक्ष्मता की और ज़्यान दिया जाने लगा ।

७- कहानियों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण होने लगा ।

८- मनुष्य का सम्पूर्ण अध्ययन करने की प्रवृत्ति कहानियों में दिखाई देने लगी ।

प्रेमचंद जी कहानियों में तत्कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला गया और यही परम्परा उस काल में दिखाई पड़ती है । राजनीतिक विचारधारा को चकार भी उनकी कहानियों में आया हुआ । उनकी नई कहानियाँ गान्धी जी से प्रभावित हैं । प्रातिवादी युग का चारम्भ होने से समाजवादी विचारधारा का प्रभाव भी इन कहानियों पर हुआ । उस काल की कहानियों में यह भी एक विशेषता है कि कहानी लेखक समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं जिनमें कृपाशंकर, फादरी आदि लेखक उत्प्रेक्षणीय हैं ।

कृपाशंकर की कहानियों में प्रातिवादी विचारधारा का प्रभाव है । उनकी कहानियों का कथानक अधिकतर राजनीतिक या सामाजिक समस्याओं पर आधारित है । मार्क्सवाद प्रभाव उनकी कहानियों पर अधिक मात्रा में है इसलिये उसमें प्रवाक्वादी भावना दिखाई पड़ती है । उनकी आरम्भिक कहानियाँ यथार्थवादी थी परन्तु भारत की राजनीति से प्रभावित होकर उनकी कहानियाँ समस्यात्मक हो गईं । समाजवादी विचारधारा का भारतीय मूल्योक्तन इनकी कहानियों में मिलता है । जीवन में

ठीक करने की विद्वोही भाषना उनकी कहानियों में मिलती है ।

रमाप्रसाद चिन्टयील^१ की फाही^२ की वक्कि-
तर कहानी फायद के सिद्धान्तों से प्रभावित है । परन्तु उनकी कथा-
नियों का वादर्श पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तक सीमित नहीं है ।
जीवन की यथार्थ भाव भूमि पर लिखी गई कहानियाँ प्रेमचंद की के
“कफन” जैसी कहानियों की याद दिलाती है । वे किसी भीमत्स तथा
वश्लील चित्र की वैस्कर मुँह छिपा कर चलना एक नैतिक उपराध मानते हैं ।
उनकी “दो काली बहिन”, “यह भी एक कहानी है”, “निरुपमा”,
“सुसुम की बात”, “बैरबक कबला”, “जीवन का रहस्य” आदि कहानियों
में उनकी कहानी कला का प्रारम्भिक रूप दिखाई पड़ता है । उनकी
“सड़क पर”, “सुरती” आदि कहानियों में प्रेमचंद तथा गुलेरी की कहानियों
की शैली की परम्परा स्पष्ट दिखाई देती है ।

फाही जी की “सड़क पर” कहानी प्रेमचंद की
“कफन” कहानी से बराबरी की जा सकती है । गरीब होना एक नैतिक
उपराध है कानून, धर्म और नैतिकता गरीबों से लिये हैं । इन दो सिद्धान्तों
पर कहानी की रचना हुई है । यथार्थवादो नग्न चित्रण इस कहानी में
मिलता है ।

उपेन्द्रनाथ “बक” की कहानियों में प्रेमचंद की
यथार्थवादी परंपरा का विकसित रूप मिलता है । प्रेमचंद के समान “बक”
भी उर्दू से हिन्दी में आये । उनकी “भिरती की बीबी” (१९३८),

चयन' (१९३८), 'मौली' (१९३८), 'मनुष्य यह' (१९३९), 'डॉकी', 'काँडा का तेली' (१९४९) आदि कहानियों में उनकी कहानी कला का रूप दिखाई पड़ता है।

कमलाकान्त वर्मा जी अपनी एक नई तैली लेकर हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जाये। उनकी 'बाबी' (१९३७), 'सुफला' (१९३८), 'तकली' (१९३८), 'आबादस्य प्रथम दिवसे' (१९३९) आदि कहानियों में उनकी कहानी कला का रूप दिखाई पड़ता है। उनकी 'तकली', 'फाँटो' आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

स्त्री कहानी लेखिकाओं में चन्द्र किरण, सैन-स्त्रिणा, उषा देवी मिश्रा, तेवरानी पाठक, श्रीमती लारा रानी श्रीवास्तव आदि कहानी लेखिकाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। स्त्री जीवन की समझने की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उपयोगी हैं।

पर पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण ही हिन्दी कहानी-साहित्य की प्रगति होती गई और हिन्दी का कहानी साहित्य 'सरस्वती', 'हनु', 'हिन्दी गप माला', 'मनोरमा', 'चाँद', 'गृह लक्ष्मी', 'माधुरी', 'सुधा', 'कहानी', 'विशाल भारत', 'एन', 'माया' 'मनोरंजन कहानियाँ' 'सरिता' आदि पत्रिकाओं द्वारा लोगों के सामने उप-स्थित हुआ। कभी कहानी संग्रह कराने की प्रथा शुरू हुई है और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों के कहानी-संग्रह प्रकाश में जाये हैं। कई कहानीकारों से

भी मिलते हैं कि जिनकी एक दो कहानियाँ किसी पत्रिका में छपती गई हैं परन्तु उन्हें अब पाठकों के सामने रखने के साधन उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि हिन्दी कहानी-साहित्य की वायु कम है परन्तु समृद्धि की दृष्टि से बहुत जागे हैं।

वाधुनिक कहानियों के विषय में विचार करते समय उनके विषय, रचना विधान, भाषा आदि के बारे में अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। अनेक कम समय में हिन्दी-कहानी साहित्य ने काफी प्रगति की है और ये विकास के नय पर हैं। उसमें हमारे जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण हुआ है और अधिकांश हमारे सामने नये-नये आदर्श उपस्थित करने में बह सफल हुए हैं।

रचना विधान की दृष्टि से हिन्दी कहानी में अनेक प्रयोग हुए हैं और उनकी परम्परा का दर्शन गुलशेर गुलेरी जी, प्रेमचंद जी, प्रसाद जी, सुदर्शन, भगवती चरण वर्मा, उग्र, चन्द्रगुप्त, विपार्लकार, कमलाकान्त वर्मा, जैनोन्द्र कुमार, जैशय आदि की छोटी कहानियों में मिलता है।

चन्द्रधर वर्मा गुलेरी जी "उसने कहा था" कहानी के प्रकाशन के कारण हिन्दी एक नया आदर्श उपस्थित किया गया। "देव परमेश्वर" में भी मुंशी प्रेमचंद ने भारतीय जीवन का फनीफुँ से महलों तक का चित्र सीकर तत्कालीन समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

प्रसाद जी की कहानियाँ में काव्यात्मक वातावरण

तथा कल्पना का माधुर्य मिलता है। इनके पात्रों में अन्तर्बन्ध मिलता है। "सुदयेर" की कहानियाँ में भी काव्यात्मक वातावरण की सृष्टि मिलती है। उसी प्रकार राय कृष्ण दास की कहानियाँ भी भाव-प्रधान हैं। "कौरिक, उग्र, भगवती चरणचरण प्रसाद बाजपेयी की कहानियाँ में भी कहानी कला के तत्त्व अलग बापस उपस्थित किये हैं। कौरिक जी की कहानियों में घरेलू जीवन के चित्र मिलते हैं। भगवती प्रसाद बाजपेयी की कहानियों में यथार्थ और वास्तव का सुन्दर चित्रण मिलता है। "उग्र" की कहानियों में रुढ़ियों का विरोध तथा राष्ट्रीय भावना का चित्रण मिलता है। भगवती चरण वर्मा की कहानियों में ऐतिहासिक व्यक्ती अधिक रहती है।

कहानी की वात्मा में अधिक परिवर्तन होते रहे हैं। पहले कहानी मनोरंजन के लिए भी पढ़ी जाती थी जब भी उसका उपयोग प्रायः इसी रूप में होता है। परन्तु जिस रूप में वह पहले रही जाती थी उसी रूप में वह नहीं दिखाई पड़ती है। पहले उसमें कथा की धारा या वह घटना-प्रधान हुए। परन्तु प्रेमचंद के उदय के पश्चात् उसमें नवीनता आई और प्रसाद जी के जातिभाव के कारण उसमें रूप-सौन्दर्य मिला। जैनन्दा और जैय ने अपनी कहानियों के द्वारा उसमें वापुनिकता के सब गुण भर दिये। यथार्थ की भाव भूमि पर लाकर लड़ा करने वाले यशपाल, पंजाबी आदि हैं। जैनन्दा की कहानियों में एक नये शिल्प-विधान का रूप मिलता है। कथानक का बल कम होने के कारण कछुवड़े उनकी कहानियाँ छोटी हैं परन्तु पात्रों के चरित्र-चित्रण में जो गूढ़ता मिलती है उसके कारण कहानी के हर एक शब्द में लाक्षणिकता मिलती है।

जैसे तथा छताचंद जोशी की कहानियों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। जैन्द्र, जोशी, जैसे वादि की कहानियों में पात्रों के वस्तुजगत का दर्शन होता है।

कलपाल, फाद्री, गगिय रायस वादि की कहानियों में युग संघर्ष का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। "बल्क" जी की कहानियों में सामाजिक चित्रण अच्छा हुआ है।

घटना प्रधान, वातावरण प्रधान तथा भाव प्रधान कहानियों के द्वारा कहानी के रचना-विधान में बहुत कुछ नैतियों का प्रयोग होता है। "कौस्तुभ", ज्वालादत्त शर्मा वादि की कहानियाँ में देव घटना तथा संयोग की प्राधान्य दिया है। कार्य प्रधान कहानियों में जासूसी, रहस्यपूर्ण, वैज्ञानिक तथा हास्य मय कहानियाँ जाती हैं। जी० पी० श्रीवास्तव तथा अन्नपूर्णानंद द्वारा हास्य रस की कहानियाँ लिखी गई हैं। प्रेमचंद की "रतन के लिलाही" वातावरण प्रधान कहानियाँ हैं।

इस काल विभाग में हास्य पूर्ण, ऐतिहासिक, प्रकृतिवादी, प्रतीकवादी कहानियाँ भी लिखी गईं। जी० पी० श्रीवास्तव, बह्मिनाथ मट्ट, अन्नपूर्णानंद, वेदुष, वादि ने हास्य पूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। उनमें हास्य का गाम्भीर्य नहीं है। वृन्दावनलाल वर्मा, प्रेमचंद, प्रताप, चतुर्सेन शास्त्री, राहुल श्रीकृत्यायन वादि ने ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। बेचन शर्मा, उग्र, चतुर्सेन शास्त्री, फाद्री वादि लेखकों ने सं प्रमृ

वादी के ढंग से कहानियाँ लिखकर समाज की घुणास्पद तथा बीमत्स बातों का विरलेषण बड़े कलात्मक ढंग से किया गया है। प्रतीकात्मक कहानी का वादर्थ प्रसाद जी की "कला" राय कृष्णदास की "कला और कृत्रिमता" वादि कहानियों में मिलता है।

कहानियों के रचना विधान की दृष्टि से उनके प्रयोग होते रहे हैं। "छायरी", "फव" वादि द्वारा कहानी का रूप धामने रखने का प्राप्त हुआ है। रेखा चित्रों के रूपों में कई रचनाएँ धामने आई हैं। महादेवी वर्मा फूल "स्मृति की रेखाएँ" छठी पैणी में आ सकती हैं। साहित्य के नवीनतम विकसित रूप "सूचनिका" (

) में जीवन की वास्तविकता का चित्र यथार्थ रूप में चित्रित किया जाता है। इस प्रकार कहानी के शिल्प विधान में प्रयोग होते रहे हैं।

कहानी की भाषा में प्रगति के लक्षण दिखाई देते हैं। प्रसाद, हुसैन वादि लेखकों की कहानियों में काव्यात्मक भाषा का रूप मिलता है। प्रेमचंद, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा, जलिय वादि की भाषा में स्थिरता तथा गाम्भीर्य दिखाई पड़ता है।

प्रेमचंद के सर्वांगीण के कारण ही कहानी- लिखक साहित्य में नये युग का आरम्भ हुआ और विश्व के कहानी- साहित्य में भी हिन्दी कहानियों की स्थान मिलने लगा। प्रेमचंद की मृत्यु के लिये जोस बर्ब व्यतीत हो गये परन्तु प्रेमचंद के समान कोई युगान्तकारी

कहानीकार पैदा नहीं हुआ । प्रेमचंद ने अपनी एक श्रेष्ठ में पविष्य की कहानी का आदर्श निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है -

“ ----- हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोड़े शब्दों में कही जाय, उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न बाने पाये, उसका पहला वाक्य मन को आकर्षित करने की तरफ उसे मुग्ध किये रहे और उसमें कुछ घटपटापन हो, कुछ ताज़गी हो, कुछ विकास हो और इसके साथ ही कुछ तात्त्विक भी हो । ”

१- प्रेमचंद : 'कुछ विचार', तृतीय संस्करण, १९४५ पृष्ठ ३१ ।

उपन्यास

हिन्दी उपन्यास साहित्य का इतिहास लगभग ८५ वर्षों का है। हिन्दी गद्य के नाटक, कहानी, आलोचना और निबन्ध आदि साहित्यिक रूपों के साथ साथ उपन्यास का प्रचार भी सर्वसाधारण शिक्षित वर्गों में है। कथा-साहित्य की वैदिक काल से ही महत्वपूर्ण स्थान मिलने के कारण संस्कृत-साहित्य में उसकी परम्परा मिलती है। संस्कृत के कथा साहित्य में बृहत् कथा मंजरी, कथा सरित्सागर, बैताल पंच विंशतिका, शुक-रूपकाति, सिंहासन दाम्निशिका, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि में भारतीय कथा-साहित्य की परंपरा का दर्शन होता है। "काव्यम्वरी" और हर्षचरित में भारतीय कथा साहित्य का निरंतर रूप मिलता है, बरन्तु बाद में भारतीय कथा साहित्य की यह परम्परा विकसित रूप में दिखाई नहीं पड़ती।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में कथा साहित्य की यह परम्परा एक नया रूप लेकर भारतीय जीवन में प्रवेश करने लगी और बाद में उसे कौड़ी का नावेल का रूप मिलने लगा तथा भारत की आधुनिक भाषाओं में नावेल की हैली पर कगर्वा की रचना होने लगी और हिन्दी में उसे उपन्यास की संज्ञा दी गई। इसमें बंगाल के उपन्यासों का प्रभाव भी पूर्ण रूप से दिखाई देता है। बंगाल उपन्यासों पर आंग्ल प्रभाव था इसलिए बंगाल द्वारा हिन्दी में भी कौड़ी उपन्यासों का प्रभाव पड़ा जिससे हिन्दी उपन्यास साहित्य प्राप्ति की पंथा की ओर बढ़ने लगा। भारत में कौड़ी राज्य होने के कारण मुद्रण यन्त्र के प्रचार से कृत्यों का प्रकाशन सर्व सुलभ हुआ। अतः लेखकों की अपनी पुस्तकें प्रकाशित करने के साफ उद्देश्य हुए। इन लेखकों द्वारा कीक कितारें लिखीं

गई और उनमें क्या-साहित्य की महत्वपूर्ण स्थान मिल गया। इन स्तरों ने जनता की रुचि को देखकर बंगला, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं की किताबों का अनुवाद करना प्रारम्भ किया और साथ ही उनके आधार पर अनेक पुस्तकें लिखी। भारतभू ने उपन्यास साहित्य की और जनता का ध्यान आकृष्ट किया और उर्दू तथा बंगला की शैली पर हिन्दी में उपन्यास लिखे जाने लगे। धीरे धीरे परिस्थितियों के अनुसार उर्दू छिटा और मुद्रण-यन्त्र के प्रचार से जिन जिन विचारधाराओं का प्रसार भारतीय जीवन में होता गया उनका परिपाक उपन्यासों में दिखाई देने लगा। समय की गति के साथ हिन्दी का उपन्यास साहित्य तेज बढ़ता हुआ दिखाई देता है। उसको विकसित परंपरा का अध्ययन उसके इतिहास के निम्नलिखित काल विभागों के आधार पर किया जा सकता है :

काल-विभाग

- | | |
|-------------------------------------|-------------------------|
| (१) प्रारंभिक काल सन् १८७२- १८८१ | भारतभू युग |
| (२) निर्माण काल सन् १८८१ से १९१८ तक | पूर्वतर प्रेमचन्द युग |
| (३) विकास काल सन् १९१८ से १९३६ | प्रेमचन्द युग |
| (४) विस्तार काल सन् १९३६ से १९६४ | प्रेमचन्द के बाद का युग |

हिन्दी उपन्यास साहित्य का सूत्रपात भारतभू हरिश्चन्द्र के जीवन काल में हुआ। 'हरिश्चन्द्र की जीवनी' के दूसरे अंक (१५ अक्टूबर सन् १८७३) से बाबू गदायर सिंह द्वारा बंगला से अनुदित कादम्बरी धारावाहिक रूप में छपना प्रारम्भ हुआ। भारतभू काल में उपन्यास की रचना का पहला मौलिक प्रयत्न दिल्ली निवासी श्री निवासदास कृत 'परीक्षा-गुरु' (१८८२) उपन्यास में दिखाई पड़ता है। डाक्टर श्रीकृष्णदास ने

इसे हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। हुक्म जी के अनुसार हिन्दी का पहला उपन्यास भाग्यवती (१८७७) है जिसकी रचना संस्कृत साहित्य के विद्वान् पं० शिवाराम फुल्तारी द्वारा हुई। पं० फुल्तारी जी ने यह उपन्यास महिलाओं की गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए लिखा था। उसी प्रकार मुंशी ईश्वरी प्रसाद और कल्याणराय ने हिन्दुओं की लड़कियों की फढ़ाने के लिए "वामा शिषक" (१८७२) नामक पुस्तक लिखाई थी। ईशाबल्ता सा ने "रानी केतकी की कहानी" (१८००-१८०३) की रचना की। उसी प्रकार "प्रेम सागर", नासिकीपाख्यान आदि हिन्दी गप की प्रारम्भिक रचनाओं में हिन्दी कथा-साहित्य की परंपरा का सूत्रपात दिखाई पड़ता है। "रानी केतकी की कहानी" एक मौखिक रचना है और हिन्दी के कथा-साहित्य में उसे महत्वपूर्ण स्थान है। "रानी केतकी की कहानी" के निर्माण के समय ईशाबल्ता सा का कार्य हिन्दी कथा साहित्य के सामने मौखिक साहित्य प्रकार नहीं था। कथानक केतकी की दृष्टि से यह बिल्कुल अज्ञात युग था। ईशाबल्ता सा ने इस रचना को "उदयमान चरित या रानी केतकी की कहानी नाम देकर चरित और कहानी शैली का संकेत इसमें दिया। परन्तु ईशा के सामने अपनी भाषा के विषय में एक निश्चित दृष्टिकोण था उन्होंने इस रचना का आरम्भ निम्नलिखित रूप में किया है :

"यह वह कहानी है कि जिसमें हिन्दी छूट।

और न किसी बोली का भेल है न पुट।" १

बाद में वे फिर लिखते हैं -

"ठीक ठाक एक कौसी बात का

एक दिन बैठ बैठ यह बात अपने ध्यान में ला चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी

१- सं० श्यामसुन्दर दास- रानी केतकी की कहानी पृ० ७७ सं० २००२ पृ० १

कहिए कि जिसमें हिन्दवी हूट और किसी बोली का फुट न मिले, तब जाके मेरा जो फूट की क्ती के रूप में मिले । इस कहानी का कहने वाला यहाँ वापकी जताता है, और ऐसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं वह सुनता है। अब वाप जान रत के, बाँधें मिलाके, सन्मुख होके टुक वधर देखिए, किस वृष से पट्ट चलता हूँ और अपनी फूट की न पंखड़ी की हाँठों से किस किस रूप के फूट डालता हूँ।

कहानी के जीवन का उभार और बोलचाल की कुलहिन का सिंगार । किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था । उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुवर उदयमान करके पुकारते थे । सबकुछ उसके जीवन की जीत में सुरज की एक सीत वा मिली थी ।"

इसी स्पष्ट पता लगता है कि उंशा ने यह मौलिक रचना वाणा के एक स्वतन्त्र रूप के निर्माण करने की दृष्टि से लिखी है और उसका निर्माण अपनी एक स्वतन्त्र शैली में किया है। इसी पूर्व बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने बंगला में उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था और उनके "दुर्गन्धिनो" (१८६५) , कपाल कुन्डला (१८६६) मृणासिनो (१८६६) आदि प्रारम्भिक उपन्यास लिखे जा चुके थे । मुन्शी ईश्वरी प्रसाद मुदरिस "रियाजो" और मुन्शी कल्याणराव मुदरिस बख्त उर्दू द्वारा बामा शिकाक व्यक्ति दो भाई और चार बहनों की कहानी (१८७२) शौचिक रचना लिखाई गई । यह पुस्तक तत्कालीन पश्चिम ज़र विभाग के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर बहादुर की प्रेरणा से हिन्दुओं की लड़कियों को पढ़ने के लिए "बामा

१- सं० श्यामसुन्दरदास- रानी केतकी की कहानी - लृ० वा० सं० २००२ पृ० २,३,४ ।

शिष्टाक " पुस्तक बन पाई गई । यह पुस्तक सड़कियों के लिए है और इसमें " स्त्री शिक्षा की आवश्यकता " पर विचार दिया गया है। इस रचना पर बंगला या अँग्रेजी उपन्यास का कोई प्रभाव पित्तार् नहीं पड़ा । उस रचना में एक भारतीय गृहस्थी का घरा पिय सींचा गया है और क्या में प्रगह है।

" वामा शिक्षक " के उपान स्त्री शिक्षा के प्रचार में लक्ष्मीगद देने वाली पं० ऋद्धाराम कुल्तीरी कृत " माग्यवती " (१८७७) क्या प्रधान रचना है। शुक्त जी हरे हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। पं० कुल्तीरी जी ने भारतखण्ड की महिलाओं की गृहस्थ की शिक्षा देने के लिए यह उपन्यास लिखा । लेखक ने " माग्यवती " पात्र का चरित्र चित्रण हरे कलात्मक ढंग से चित्रित किया है कि उसकी चतुराई के कारण उसके व्यक्तित्व का प्रभाव उपन्यास के अन्य पात्रों के स्वभाव चित्रण में पित्तार् देता है। " माग्यवती " के चरित्र चित्रण की यह भी एक विशेषता है कि उसकी हर एक कृति में किसी न किसी वादर्थ की स्थापना पित्तती है और इसी लेखक का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है।

" माग्यवती " के बाद पीलिक उपन्यास के रूप में " परीपागुरु " (१८८२) का निर्माण हुआ । " माग्यवती " के बाद केवल ५ वर्षों की क्धि में इस प्रकार के पीलिक तथा उत्कृष्ट उपन्यास की रचना होना हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। यह भी एक शिक्षा प्रधान एवं उद्देश्य प्रधान रचना है। लेखक ने अपनी कृति का नाम " परीपागुरु " रखकर अपनी उपन्यास कौशल का परिचय दिया है और उस नाम के अर्थ का भी इस प्रकार स्पष्ट किया है :

“ जी बात सी बार समझाने से समझ में नहीं आती वह एक बार की परीक्षा से फ़ीमांति मन में बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग परीक्षा की “ गुरु ” मानते हैं। “ इसमें ” परीक्षागुरु ” के उद्देश्य का भी संकेत मिलता है। तैत्तिरीय ने अपनी उपन्यास की सफलता का भी संकेत अन्त में इस प्रकार दिया है :

“ जी सच्चा सुख, सुख मिलने की मृग तुच्छता है यवन पीछन की जब तक स्वप्न में भी नहीं मिलता था वही सच्चा सुख हस्तमय ब्रजकिशोर की बुद्धिमानी से परीक्षागुरु के कारण प्राप्ताणिक माव से रहने में मनपीछन की धर बैठ मिल गया । ”

श्रीनिवासदास दिल्ली निवासी थे और मथुरा में सुप्रसिद्ध सत्पीचंद की शाखा के व्यापारिक केन्द्र के मुनीम थे । इस पद पर काम करते उन्हें जी कुछ अनुभव मिले थे उनका पूर्ण उपयोग उन्होंने अपनी इस कृति के निर्माण में किया है। इसलिए इस उपन्यास में जीवन की वास्तविकता तथा व्यावहारिक ज्ञान की अधिकता कथानक की बीच बीच में दिखाई देती है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास अपनी विशेषता प्रकट करता है। कथानक की कथिदा उसका चरित्र चित्रण बहुत ही अच्छा है। परीक्षागुरु के तैत्तिरीय की यह भी एक विशेषता है कि वे अंग्रेजी , संस्कृत, हिंदी और उर्दू भाषा के ज्ञाता हैं। तैत्तिरीय ने “ परीक्षागुरु ” के “ निवेदन ” में इस प्रकार स्पष्ट किया है :

“ इस पुस्तक के रचने में मुझे महामारतादि , संस्कृत,

१- पृ० ६७० श्रीकृष्णदास- श्रीनिवास ग्रन्थावली (प्रथम संस्करण) पृ० २६९

२-

००

००

४२४

गुलिस्ताँ वगैरे फारसी, स्पेक्टर, ताई बेल्ल, गोल्डस्मिथ, विलियम कुपर
वादि पुराने सखों वीर स्त्री वीष वादि के वर्तमान रिसाली से बड़ी सहायता
मिली है। ”

हिन्दी उपन्यास के इस प्रारम्भिक युग में संस्कृत,
बंगला वादि भाषाओं से अनुदित रचनाओं द्वारा नई नई प्रवृत्तियों का प्रभाव
उपन्यास के अन्तरंग पर पड़ने लगा । विशेषतः बंगला से कीक उपन्यासों का
अनुवाद हिन्दी में हुआ । बंगला से कीक उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में
हुआ । बंगला से उपन्यासों का अनुवाद गदाधरसिंह, राधाचरण गोस्वामी
ने किया वीर याद में राधाकृष्णदास, रामचंद्र व्यास, किशोरीलाल गोस्वामी,
विजयानंद त्रिपाठी, उदितनारायणलाल वर्मा, राधिकानाथ बन्धीपाध्याय,
प्रतापनारायण मिश्र वादि ने कीक उपन्यासों का अनुवाद किया । इन अनु-
दित उपन्यासों में “ दुर्गिनिदिनी (१८८२) रानधारानी (१८८३) मधुसूती
(१८८६) प्रेममयी (१८८६) सच्चा सपना (१८९०) , वीष निर्माण
(१८९१) कपाल कुण्डला (१८९४) रामसिंह (१८९४) वादि उत्कृष्टनीय रचनाएं
हैं। ये सब उपन्यास बंगला की श्रेष्ठ कृतियां हैं। इन अनुदित उपन्यासों के महत्त्व
को पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र वीर पंडित राम प्रसाद मिश्र ने अपने “ हिन्दी में
उपन्यास ” शीर्षक निबन्ध में इस प्रकार लिखा है :

“ हम यह भी कह सकते हैं कि यदि आज हिन्दी
से अनुवादित उपन्यास जमा कर दिये जायें तो कदाचित् दो बार मौलिक
उपन्यासों की छोट रस उपन्यास हो न मिल सकेंगे जिन्हें हम उपन्यास कह
सकें । ”

१- हिन्दी में उपन्यास - आठ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग संवत् १९७२
कार्य विवरण, दूसरा भाग पृ० ४२

इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी के उपन्यास साहित्य में अद्वितीय उपन्यासों की महत्वपूर्ण स्थान है। उनमें बंगला के उपन्यासों की संख्या अधिक है।

हिन्दी का "उपन्यास" शब्द ही बंगला का है।

अंग्रेजों के प्रभाव के कारण पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता का प्रचार पहले बंगाल में हुआ। वहाँ से साहित्य के द्वारा नवीन विचार धारा का प्रचार हिन्दी प्रदेश में जाने लगा। बंगला में उपन्यास लिखने का पहला प्रयास प्रतापचंद घोष ने अपना "बंगोधिप पराजय" नामक कृति सन् १८५० में लिखकर किया। यह उपन्यास अंग्रेजी उपन्यास "Swallow" से प्रभावित है परन्तु यह बंगला की पहली रचना है जिसका निर्माण अंग्रेजी उपन्यासों के अनुसार हुआ है।

जब हिन्दी में पहला मौलिक उपन्यास लिखा गया तब बंगला उपन्यास साहित्य अपनी विकसित परम्परा में जाने बढ़ रहा था, बंगाल में शिक्षा का प्रचार बढ़े और से हो रहा था। हिन्दी प्रदेश की जनता में शिक्षा का प्रचार अधिक परिमाण में नहीं हुआ। जनता केवल मनीरंजन बाबू की धी हस्तक्षि सामाजिक तथा शिक्षा प्रधान उपन्यासों की अपेक्षा तिलस्मी और जायसी उपन्यासों का प्रचार लोगों में था। उस समय गुलामकावली, बेताल पच्चीसी, किस्ता तोता पेना, हकीमी मटियारिन, तिलस्म-इ-हीरुवा आदि कथा साहित्य का प्रचार था।

हिन्दी में वाङ्मय साहित्य का अनुवाद करने का कार्य भारतेन्दु द्वारा प्रारम्भ हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी में सामाजिक धार्मिक आदि उपन्यासों की आवश्यकताओं का अनुभव किया और बंगला

का " पूर्ण प्रकाश चन्द्र प्रभा " हिन्दी में अनुदित तथा संशोधित करके छपाया। भारतेन्दु जी एक कहानी कुछ वाप बीती तथा कुछ जाबीती " (१८७६) में लिखकर उपन्यास की चरित शैली का सूत्रपात किया। उनकी शैली का रूप उसमें इस प्रकार हुआ है।

" उन सबों में से एक मनुष्य की वाप तीन पहचान रखिये, इसी बहुत काम पड़ता। यह नाटा सीटा, कञ्छे हाथ पैर का सांवले रंग का बादमी है, बड़ी माँझ छोटी बाँहें, कड़ाका की, ताल फाड़ी बाँधे, हरा दुफ्टा, कमर में लपेट, संकेत दुफ्टा जीड़े जात का कुनबी है। उसका नाम सीली है। सीली जाकस्त भी बहुत मुह लग रहा है, एसी से जी घात किल्ली की मुक पर पहुँचानी होती है वह लोग उतते कहते हैं। खड़ी के वास्ते मस्किद गिरानी इसी का काम है। "

इन सब बातों से पता लगा कि हिन्दी का " उपन्यास साहित्य " अनुदित उपन्यासों द्वारा प्रभावित रहा है। और उस पर बंगला के उपन्यासों का प्रभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है। परन्तु इस बात की भी मानना पड़ता कि हिन्दी का उपन्यास-साहित्य बाहरी साहित्य से प्रभावित होकर अपनी स्वाधीन विकास के लिए संघर्ष कर रहा है और उसके पोछे भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा भी एक प्रेरणा के रूप में कार्य कर रही है। उपन्यास शब्द भी बंगला का है परन्तु इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिखाई दिया।

भारतेन्दु के साहित्य से हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रभावित रहा है और जनता उपन्यास की ओर आकर्षित हुई। इस प्रकार

१- एक कहानी कुछ वाप बीती कुछ जा बीती - भारतेन्दु ग्रन्थावली - तीसरा

सं०- प्रथम संस्करण सं० १०१० पृ० ८७५

सबसे अधिक महत्वपूर्ण साहित्य रूप का वादर्थ उपन्यास में मिली लगा ।
 अतः डा० श्रीकृष्णात्तल के शब्दों में कहा जा सकता है :

“ साधारण जनता के हृदय में सुसुखत वृत्ति जानि
 वाला , साधारण सादार जनता का वाच्य लेकर अपनी वाला यह साहित्य
 रूप वाधुनिक जनतंत्र का प्रतिनिधि है जिसमें साधारण जनता की वाशा,
 वाकांक्षा साकार हो उठती है। ”

“ परोक्षा गुरु ” के बाद ठाकुर मनवीरन सिंह
 ने “ श्यामा स्वप्न ” (१८८५) शोचक स्वप्न उपन्यास लिखा । इसमें वादर्थ-
 वाद की स्थापना है। इसलिए इस प्रणय कथा में जुंगारी भायना का वाता-
 वरण सर्वत्र मिलता है। इसमें रीतिकालीन जुंगारिक परम्परा के वातावरण
 के साथ काव्यात्मक उपन्यास शैली का प्रयोग किया है। इस परम्परा का दर्शन
 पं० वातकृष्ण भट्ट के “ नूतन ब्रह्मचारी ” (१८८६) और सी अजान और एक
 सुजान (१८९१) इन की उपन्यासों में मिलता है। बालकों की नैतिक वादर्थ
 की शिक्षा देने की दृष्टि से “ नूतन ब्रह्मचारी ” उपन्यास अपना महत्वपूर्ण
 स्थान रखता है। उपन्यास के अन्त में इसका संकेत स्पष्ट रूप से मिलता है :

“ अन्त की हम अपने पढ़ने वालों को सूचित करते
 हैं कि आप लोगों में यदि कोई अभीष्ट तथा अज्ञान हो तो हमारे उपन्यास
 की पढ़ वाशा करते हैं सुजान बनें । इस किस्ती के अजानों को सुजान करने
 की चंदू या और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा । ”

१- सं० डा० श्रीकृष्णात्तल - श्याम स्वप्न - प्रथम संस्करण, संवत् २००७ पू०

इसके बाद फिरोज़ी सात गोस्वामी का "स्वर्गीय कुसुम" या कुसुम कुमारी (१८८६) पुन्यहारिणी का वायर्ध रमणी (१८९०) त्रिवेणी (१८९०) स्वर्गलता या वायर्धवाता (१८९०) आदि उपन्यास महत्व के हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस काल विभाग में गोस्वामी जी का उदय एक विशेष घटना है। उन्होंने सामाजिक ऐतिहासिक और जासूसी छोटे बड़े ६५ उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया। फिरोज़ीसात गोस्वामी ने लोक सामाजिक उपन्यास में लिखे लेकिन उनमें तत्कालीन समाज का पदार्थ चित्रण नहीं मिलता। इस दृष्टि से राधाकृष्णदास का निःसहाय हिन्दू (१८९०) हिन्दी का पहला यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें बनारस का वर्णन बहुत ही यथार्थ रूप से चित्रित किया है। इसी प्रकार खन्विकामय व्यास का "आश्चर्य वृत्तान्त" एक काल्पनिक प्रपञ्च कहानी है। इसके बाद बाप बाबू देवलीनन्दन तन्त्री का महत्वपूर्ण उपन्यास "चन्द्रकान्ता" (१८९२) लिखा गया। यह हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नये युग का आरम्भ करता है।

कला की दृष्टि से देखा जाय तो इस काल के उपन्यासों में किसी विशिष्ट शैली का शिल्प का वर्णन नहीं दिसाई पड़ता। बाबा शिनाफ, माणिक्यती, नूतन ब्रज्जारी, निःसहाय हिन्दू आदि में कथा-वस्तु की धारा छटनाओं के साथ चलती रही है। उनमें पात्रों की संख्या कम है और चरित्र चित्रण पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। अधिकतर रचनारं उद्देश्य प्रदान होने के कारण साधु भाषा का प्रयोग हुआ है। परीक्षा-गुरु, नूतन चरित जैसे उपन्यासों में नवीनता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रारम्भिक काल पर विचार किया जा सकता है। इस काल में हिन्दी उपन्यास साहित्य

का प्राचुर्य पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण बंगला के उपन्यासों द्वारा हिन्दी में आया । यद्यपि इस काल के उपन्यासों पर बाह्य प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है परन्तु भारतीय कथा साहित्य की शैली की दृष्टि से वह मुक्त नहीं है। हाथाचरण गीस्वामी संपादित भारतेन्दु (मासिक पत्र) में प्रकाशित वीरवाला (१८८३) उपन्यास का आरम्भ इस प्रकार मिलता है :

“ शूरसेन देश में म्हावती नाम नगरी राजधानी है, जिसमें पूर्वकाल से उत्तरकाल तक तन्निवंशी राजा राज्य करते आये हैं, जिनकी शूरवीर सेना के भय से ही लोग उस देश की शूरसेन कहते हैं। ”

परन्तु आठ दस वर्षों के बाद इस प्रकार की शैली का दर्शन कम मिलता है। सन् १८८२ में प्रकाशित चन्द्रकान्ता उपन्यास का आरम्भ इस रूप में मिलता है :

“ शाम का वक़्त है, कुछ कुछ साहिमा दिखाई दे रही है, सुनसान मैदान में एक पहाड़ी के नीचे दो उत्स वीरन्द्र सिंह और तेजसिंह एक पत्थर की चट्टान पर बैठ बाज़ में कुछ घातें कर रहे हैं। ”

निर्माणकाल - (१८८१- १८९८ ई० तक)

“ परीक्षागुरु ” (१८८२) के बाद देवकीनन्दन खत्री का “ चन्द्रकान्ता ” (१८८२) उपन्यास हिन्दी साहित्य में नवीन

१- भारतेन्दु (मासिक पत्र) सं० हाथाचरण गीस्वामी २० जून १८८३
पृ० ४१ ।

विद्या का निर्वहण करता है। यह वह उपन्यास है जिसने पाठकों का ध्यान उपन्यास साहित्य के प्रति आकर्षित किया । " श्यामास्वप्न " (१८८५) आश्चर्य वृत्तान्त (१८८३) आदि कृतियों के द्वारा जनता का मनोरंजन न हो सका क्योंकि इन उपन्यासों की भाषा साहित्य थी जो कि जनता की समझ में आतानी से नहीं आ सकती थी । " चन्द्रकान्ता " (१८८२) चंद्रकान्ता संतति (१८८६) तथा भूतनाथ के प्रकाशन के कारण उपन्यासों के पढ़नेवालों की संख्या बढ़ने लगी ।

उपन्यास के निर्माण की दृष्टि से यह काल विभाग खत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें सामाजिक, तिलस्मी, जासूसी, भावप्रधान, ऐतिहासिक आदि अनेक प्रकार के उपन्यास लिखे गये । इस काल में बंगाल, अंग्रेजी, मराठी आदि भाषाओं के अच्छे अच्छे उपन्यासों का अनुवाद हुआ । इन अनुवादित उपन्यासों में बंगाल के उपन्यासों की संख्या अधिक मिलती है। नमिन्द्र नाथ गुप्त, बंकिमचंद्र, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, चंडीशरण सेन आदि उपन्यासकारों के उपन्यासों का अनुवाद श्रीधरसिंह उपाध्याय, कृष्णकान्त का दान पत्र (१८८८) बालिश्वर प्रसाद देवी (१८८८) प्रतापनारायण मिश्र का कपाल कुण्डला (१९०१) अमरसिंह (१९०७) ब्रजमदन सहाय, चन्द्र-शेखर (१९०७) किशोरीदास गोस्वामी " हंदिरा " (१९०८) आदर्शन का माधवी कर्कण (१९१२) रुद्र नारायण " राजपूत जीवन प्रसात " (१९१२) नाथुराम प्रसी आदि लेखकों ने किया ।

इस काल विभाग में हिन्दी उपन्यास का प्रचार करने के लिए अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ । इस दृष्टि से 'उप-

न्यास (१९०१) उपन्यास लहरी (१९०२) उपन्यास सागर (१९०३) उपन्यास
कुसुमाञ्जलि (१९०४) उपन्यास लहार (१९०७) उपन्यास प्रहार (१९१२) आदि
पत्रिकार्थ महत्वपूर्ण हैं।

इस काल के प्रमुख उपन्यासकार किशोरीदास गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री, कवी व्यायसिंह उपाध्याय, गोपालराम गरुमरी, लज्जाराम शर्मा भस्मा, ईश्वरी प्रताप शर्मा, ब्रजनंदन उदाय आदि ने सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी जादूखी, भाव प्रधान आदि प्रकार के उपन्यासों की रचना कर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समृद्ध किया। देवकी नंदन खत्री के उपन्यास जनता का मनोरंजन करते हैं। उनके उपन्यास उर्दू तिलस्मी उपन्यासों से प्रभावित हैं। तिलस्मी का भाव फारसी कहानियों से लिया है। इन उपन्यासों का कथानक घटना-प्रधान होता है और उसमें लोक विस्मयजनक घटनाओं का कार्य-व्यापार कीर्तितपूर्ण ढंग से पाठकों के सामने रखा जाता है।

देवकी नंदन खत्री के उपन्यासों का प्रकार जनता में रुका। इसके लोक कारण हैं। इन तिलस्मी उपन्यासों में बहुधा तथा वाश्चर्यजनक घटनाओं का वर्णन रहता है। इन वाश्चर्यजनक घटनाओं के वर्णन का प्रभाव पाठकों के मन पर इतना पड़ता है कि वे इस नये वातावरण के स्वप्न में डूबते रहते हैं। हिन्दी का थोड़ा ज्ञान रखने वाले लोग भी इन रचनाओं को पढ़ते थे और उस समय ऐसे भी लोगों की संख्या मिलती है जिन्होंने केवल इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया।

तिलस्मी उपन्यासों में कथारों की अवतारणा हुई थी उससे साहित्यिक उपन्यास साहित्य के निर्माण में सहायता मिली। साह-

सिक उपन्यासों में छाँों और डाकुओं की दृष्टि रहती है। ये छाँ और डाकू बड़े धीरे तथा उदार तथा आदर्श के लिए मर मिटने वाले होते हैं। जनता में घटना प्रधान उपन्यासों के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण देखकर गोपाल राम गहमरी ने साप्ताहिक शैली पर अपने जासूसी उपन्यास लिखे। जनता ने इन उपन्यासों का स्वागत किया और जासूसी साहित्य का प्रचार किया।

“बेकुर की फाँसी” (१९००), “दुनी कान है?” (१९००), जासूस की मृत (१९०१), छत कीबी (१९०२), घर का भरी (१९०३) डाक्टर की कहानी (१९०३), क्लृप्त हून (१९०६) मौजपुर की छाँ (१९११), जाती कीबी और डाकू साहब (१९१४), जासूस की शेरारी (१९१४) आदि कीक उत्कृष्ट-नीय उपन्यास हैं।

जासूसी साहित्य की एक विशेषता है कि उनमें कल्पना की अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य दिया जाता है। कथानक में हर एक घटना की योजना उस ढंग से की जाती थी कि उसमें किसी भी घटनास्थिति का थोड़ा ही बीच मिलती ही उसकी सहायता से किसी भी घटना, रहस्य आदि का पता लग सकता है। इसलिए इस काल के जासूसी उपन्यासकार अपने उपन्यासों का कथन पाठकों के सामने उस ढंग से रखते थे कि उनके एक ही धागे के सहारे सारे उपन्यास का ढाँचा पाठकों के सामने उपस्थित हो जाय। गहमरी के उपन्यासों में यह विशेषता अधिक मात्रा में दिखाई देती है।

गहमरी के उपन्यासों की दूसरी विशेषता यह है कि उनको रचनाओं में चरित्र चित्रण की थोड़ा स्थान मिला है। उन्होंने पात्रों का चरित्र चित्रण घटनाओं के रहस्य का पता लगाने की दृष्टि से किया है। कथानक के घटना वैचित्र्य को समझने के लिए पाठकों को अपनी बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है।

देवकी नंदन लखी तथा गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों द्वारा जनता का मनोरंजन किया और उनकी विकसित परम्परा का दर्शन किशोरीलास गोस्वामी (१८६५-१९३२) के सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी आदि उपन्यासों में मिलता है। गोस्वामी जी ने अपने उपन्यास के रचना विधान के लिए भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा की ही स्वीकार किया था।

गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास महत्वपूर्ण हैं और उन पर बंगला के उपन्यासों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उनके कई उपन्यास अनुवादित हैं और कुछ ऐसे भी उपन्यास मिलते हैं कि उन पर बंगला उपन्यासों की छाया स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। उन्होंने अपने "यादूरी तस्ती या यमज सखीदर (१९०६) उपन्यास के अन्त में मूल लेखक की "कृतज्ञता स्वीकार" इस प्रकार की है :

" बंगाली लेखक बाबू वीरेन्द्र कुमार राय के "हमीदा" नामक उपन्यास की छाया पर यह उपन्यास लिखा गया है, हमीदा विद्योगान्त उपन्यास है पर अपने इसे संयोगान्त बनाया है। हमारा यह उपन्यास "हमीदा" का अनुवाद नहीं है, वरन् इसे अपने अपने ढंग पर पूरी स्वाधीनता से लिखा है। "

इससे स्पष्ट पता चलता है कि गोस्वामी जी ने बंगला उपन्यासों से बहुत कुछ ग्रहण करने का प्रयत्न किया है। सामाजिक उपन्यासों में दीन हीन लोगों की जिज्ञा व्यर्थ चित्रण किया है। "चपला व नव्य समाज" (१९०३-१९०४) नाम का एक रहस्यपूर्ण उपन्यास लिखकर तत्कालीन नये समाज का चित्र पाठकों के सामने रखा।

वाक्ताव में राधाकृष्ण दास ने " निस्वहाय हिन्दू " उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जिस यथार्थवादी उपन्यासी की परम्परा का पुत्र पात्र किया था उसकी विकसित करने का कार्य गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यासी द्वारा हुआ । ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की वृत्ति गोस्वामी जी में ही दिखाई पड़ती है। गोस्वामी जी ने " तारा (१९०२) कनककुसुम (१९०३) " मल्लिकादिनी (१९०५) आदि उपन्यास लिखकर ऐतिहासिक उपन्यास का श्रीगणेश किया ।

किशोरीलाल गोस्वामी के समकालीन उपन्यासकारों में ईश्वरी प्रसाद शर्मा, गंगा प्रसाद गुप्त, लज्जाराम शर्मा भट्टा, कावान दास की०ए०, बपी ध्यासिंह उपाध्याय, जैनन्द्र किशोर, ब्रजन्दन सहाय, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गंगा प्रसाद गुप्त का " वीर पत्नी " (१९०३) ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें राजपूत जाति के गौरव का इतिहास मिलता है। लज्जाराम शर्मा के उपन्यासों में उद्देश्य प्रधान दृष्टि का मातापरण मिलता है। अपने आदर्श दम्पति (१९०४) उपन्यास की " धूमिका " में इस प्रकार स्पष्ट किया है।

" आपर्ण दम्पति में पति का पत्नी के प्रति वीर पत्नी का पति पर प्रेम दिखलाया गया है। कान्तासम्पत्ता शास्त्र में धर्म की अवधि के भीतर मनुष्य को वानन्द देकर आमीद प्रमीद के व्याज से चरित्र-शोध की शिक्षा देने वाले हैं। मैं वाक्ताव कितने उपन्यास लिखे हैं वे सब उसी उद्देश्य से लिखे हैं वीर रुपा हैं कि सर्व साधारण ने उन्हें पसंद भी किया है। "

कवी ध्यायसिंह उपाध्याय का " ठठ हिन्दी का ठाठ " (१८६६) भाषा के बादलों की दृष्टि से महत्व का है। उन्होंने ठठ भाषा के बादलों के बारे में स्पष्ट लिखा है :

" ठठ भाषा वह है जो शिथिल लीग वाफ़स में बोली जाती है। भाषा वैसी ही हो, गवारी न होने पावे । "

भावों की विवारी के काल्पनिक सौंदर्य का कामास ब्रजवदन सहाय की ०२० के " राधाकान्त " (१६१२) " सौंदर्योपासक " वादि रचनाओं में मिलता है। " सौंदर्योपासक " (१६१६) में स्वच्छन्द भाव व्यंजना का परिचय मिलता है। प्रेम को स्वच्छन्द व्याख्यान उपम मिलती है। " सौंदर्योपासक " में जिस प्रेम का कुम्भ किया था उसकी सुन्दर व्याख्या उसकी पत्नी " मातली " द्वारा भी की गई है।

सौंदर्योपासक का कहना है :

१- मैं सौन्दर्यपूराणी हूँ, सौन्दर्योपासक हूँ अवश्य किन्तु इसी क्या मुझे जायज्य रीति पड़ता । "

२- मैं केवल यह चाहता हूँ कि तुम्हें अपनाऊँ । तुम्हें, अपनी ही कहने में मुत है। मैं यह चाहता हूँ कि मेरा नयन-बकौर सदा तुम्हारे मुत मयंक की अवलीकन किया करे । मेरा मन तुम्हारी सर्वदा पूजा करे । "

३- " स्त्रियों की प्रेम ही एक मात्र अवलम्बन है।

१- ब्रजवदन सहाय- सौंदर्योपासक पृ० ८

२- " " " " पृ० १०१- १०२

सतनाजी के लिए प्रेम ही जीवन है। परन्तु पुरुषों के लिए ऐसा नहीं है। वे उन्हें तो बनेक वाशा, बनेक अभिलाषा, बनेक परीक्षा और बनेक महत् उद्देश्य है।^१ --

-- सौन्दर्योपासक " ने प्रेम के जिस बहुमुख सौंदर्य का अनुभव किया था उसका आवर्त स्थापित करने का प्रयत्न उपन्यासकार ने किया है। परन्तु प्रेम के कवंडर के बाद प्रेम की वर्णा करने वाला यह प्रबंधात्मक उपन्यास हिन्दी उपन्यास के निर्माण काल में वास्तविक चित्रण देकर एकांगी हो रहा है।

राधाकान्त (१९१२) के बाद मेस्ता सखाराम शर्मा कृत " वादर्थ हिन्दू " (१९१५) नायक रण सारवा कृत " भारतमाता " (१९१६) श्रीधर पाठक कृत " तिलस्मीता सुन्दरी (१९१७) मिश्रकृत " कीरमणि (१९१७) वादि उपन्यासों की रचना हुई। रचना विधान की दृष्टि से इस काल के उपन्यास अधिकतर घटना प्रधान हैं। तिलस्मी, श्यारी और जासूसी, उपन्यासों में संयोग वैचित्र्य के कारण परिवर्तन होता रहा है। ईश्वर प्रसाद शर्मा ने अपनी स्वर्णमयी वा ऐसी करनी वैसी धरणी (१९२०) उपन्यास में किसी बहाने तत्कालीन उपन्यासों पर बड़ा व्यंग्य किया है। शर्मा जी लिखते हैं :

-- यार ! क्या ऐसे ही उपन्यास लिखना होता है ? ज़रा बटफट्टी बुलबुली नायिका ही, सुन्दर सतीना नायक ही, कुटनियों की कूट, श्यारों की श्यारी, माशूक, जादूग के चोचले ही, तिलस्मी की पनदार कथा ही, तब उपन्यास की बहार होती है। --

इससे स्पष्ट होता है कि इस काल के अधिकतर

१- ब्रजचंदन सहाय- सौन्दर्योपासक पृ० १६६

२- ईश्वरी प्रसाद शर्मा- स्वर्णमयी - पृ० १७

उपन्यासकार पाठकों के मनोरंजन तथा मनोविनोद के लिए ही उपन्यास लिखते थे ।

इस काल के पाठक उपन्यासों की मनोरंजक तथा विलास के साधन मानते थे । इसी कारण इस काल के उपन्यासों में बादरुं परिवर्तन-चित्रण, कथा संगठन आदि पर ध्यान नहीं दिया गया । सन् १९१६ में प्रमचंद जी का "सेवासदन" उपन्यास प्रकाशित हुआ ।

विकासकाल (सन् १९१८ से सन् १९३६ तक)

प्रमचन्द जी के "सेवासदन" (१९१८) के प्रकाशक के साथ ही हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। उन्होंने पंच परमेश्वर (१९१६) शोणिक कहानी लिखकर हिन्दी कहानी-साहित्य के इतिहास में एक नयी दिशा की ओर संकेत किया और उसी काल में जीक उपन्यास लिखकर उन्होंने हिन्दी उपन्यास में क्रान्तिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया । प्रमचन्द जी के पूर्व के उपन्यासों में बादरुं कथा यथार्थ का चित्रण नहीं मिलता । उसमें प्रेम का रूप वर्णन था । किसीरी लाल गोस्वामी जी के उपन्यासों में समाज की यथार्थता का थोड़ा चित्रण तो मिला किन्तु उनके उपन्यास वर्तनीत वर्णनों से बहुत कुछ कटते हैं। जनता अपने मनोरंजन के लिए मांग कर रही थी और उनके हाथ में बहुत मदी से मदी किताबें ही जाती थीं । उनका उद्देश्य धन कमाना था । बाद विभिन्न बिहारी धीवास्तव के "हिन्दी में मौलिक नाटकों की आवश्यकता" शोणिक लेख में इन सब बातों का वर्णन इस प्रकार है :

"एक समय वह था, जब हिन्दी में उपन्यास की बड़ी दून मन रही थी, कोई भी कलम पता बैठता और एक मन गढ़ता उपन्यास

तैयार करके अपने को लेखकों के वर्ग में सम्मिलित करता था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में अरसीस कथीय और निन्दनीय उपन्यासों का भंडार बढ़ गया। किस्ता साठ तीन चार, नीलमाला, रात की दो दो बातें इत्यादि पुस्तकें जिनका नाम सेने में भी लिखता है, बड़ी सज्जन के साथ इन प्रती से छपकर निकलने लगीं।^१

तत्कालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य की अवस्था बहुत दयनीय थी। उपन्यास पढ़ने वालों के प्रति भी लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। जब साधारण वादमी भी उपन्यास लिखने लगे तब इन उपन्यासकारों के प्रति सम्मान की भावना का भी लीप लीता चला गया। पं० विष्णुदत्त शर्मा ने "उपन्यास से हानि" शीर्षक निबन्ध में निम्नलिखित बिन्दु दिए हैं :

- १- पाठक के लिए उपन्यास भावक पदार्थ नहीं है।
- २- शृंगार रस के उपन्यास मन में कुचारा उतपन्न करते हैं।
- ३- उपन्यास पढ़ने से ऐच्छिक या पारलौकिक कार्यों में कुछ फलसिद्ध नहीं होती और समय व्यर्थ खर्च हो जाता है।
- ४- उपन्यास और सीधे ग्रन्थ को पढ़ने से मन और बुद्धि सुलिया हो जाते हैं।

इस काल के पहले जो उपन्यास लिखे गये उनमें अधिकतर

१- एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन कलकत्ता (सं० १९८३) कार्य विवरण
भाग २ पृ० ६४

२- तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्य विवरण, भाग दूसरा (सम्मेलन)
पृ० १२५

उपन्यास लोगों में अप्रिय थे परन्तु प्रेमचन्द के प्रादुर्भाव के कारण उपन्यास साहित्य के प्रति जनता का रुचि हुई और अनेक लेखकों ने अपने उपन्यासों द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया ।

५

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों द्वारा एक नये समाज का निर्माण करना था । उनके हिन्दी का उपन्यास साहित्य " लीजिए निवेदन " में उनकी साहित्य सेवा का वाचस्पति इस प्रकार प्रकट हुआ है :

" हमें अपने युवकों की प्रणय रहस्यों का पाठ पढ़ाने की, उनके हृदय में आग लगाने की जरूरत नहीं है।----- हमें देश में उन भावों की संवार करना है जो हमें इस संग्राम में मर्दों की भांति खड़े होने में सहायक हों । "

प्रेमचन्द हिन्दी संसार में एक युग की प्रेरणा लेकर जाये । वे पहले उर्दू के अच्छे लेखक थे और उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाएं हिन्दी संसार में कथानियों के रूप में प्रकाशित कीं । उनके उपन्यासों का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे उपन्यास साहित्य में नहीं तत्कालीन भारतीय जीवन में एक सामाजिक तथा राजनीतिक ज्ञान की विचारधारा को लेकर जाये थे । उन्होंने अपने कथा-साहित्य में जीवन के यथार्थ का चित्रण कर उसके पीछे के लिए जादूवाद की स्थापना की । प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों द्वारा किसानों की वार्षिक व्यस्यता, ग्रामीण जीवन की दुर्बलता, विधवाओं तथा वेश्याओं की समस्या, समाज की कुरीतियां, हिन्दू पुस्तक श्रेय, जमींदारों तथा पुस्तक के उत्पादक आदि तत्कालीन

१- तरङ्गों- हिन्दी साहित्य सम्पत्ति का कार्य विवरण, भाग दूसरा पृ०

प्रश्नों पर प्रकाश डालता है। इस दृष्टि से उनके "सेवा सदन" (१९१८) प्रमात्रय (१९२२) रंगभूमि (१९२४) काया कल्प (१९२६) निर्मला (१९२८) गवन (१९३१) कर्मभूमि (१९३२) गीदान (१९३६) तथा मंगलसूत्र (अपूर्ण) नामक उपन्यासों का निर्माण हुआ है।

प्रमचन्द ने अपने उपन्यासों में सत्य के पथ की ग्रहण कर मानव मंगल की वीर संकल करने वाली नैतिक वाद्यों की स्थापना की है। जीवन के कठोर यथार्थ का चित्रण करते समय उन्होंने व्यक्ति को जेदता तत्कालीन समाज की समस्याओं का यथार्थ रूप अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। प्रमचन्द ने "सेवासदन" में सुमन का जीवन ऐसे ढंग से चित्रित किया है कि तत्कालीन देशी समाज का यथार्थ चित्र, विवाह के कसर पर देश की समस्या, समाज की रुढ़िवादिता, झूठा नैतिकवाद, विधवाओं की समस्या का चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। देशीयों तथा विधवाओं के सुधार पर प्रकाश डालते समय उनका वादस्वाद ही अधिक सक्रिय दिताई पड़ता है। ऐसा लगता है कि उन्होंने इस समस्या की व्यावहारिक दृष्टि से सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया है। इसमें उनका सुधारवाद जीवन के व्यावहारिक पक्ष की ठीक परत नहीं एकत्र । यही कारण है कि उनके वादस्वाद में किसी न किसी कमी का अनुभव अवश्य हो जाता है। वार्थिक दृष्टि से भारतीय नारी परतंत्र है वीर देशी समस्या के मूल में वार्थिक प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहता है। यदि वे स्त्रियों के इस व्यावहारिक प्रश्न पर ध्यान देकर उनके सुधार के उपाय बतलाते तो उनका दृष्टिकोण रंगभूमि एकांगी हो बन पाता । यह बात उनके "प्रमात्रय" में भी दिताई देती है। "प्रमात्रय" में प्रमचन्द ग्रामीण जीवन की वीर मुक्ति है। जमींदार किसान संघर्ष

का चित्रण करते समय उन्होंने ग्रामीण जीवन की वीक समस्याओं का चित्रण किया है। इसमें ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित ज़मींदार, पटवारी, मुन्शी, वकील, डाक्टर, पुलिस बक्सर आदि वर्ग का चित्रण ऐसे ढंग से किया गया है कि यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके द्वारा ग्रामीण ज़ाता पर्यंकर रूप से वाफ़ा है। परन्तु प्रमथ जी ग्रामीण जीवन का सुधार शिपिती वीर ज़मींदारी द्वारा ही करना चाहते हैं। " सेवा सदन " के समान इसमें भी उनके सुधार की वापसी भावना वसफ़स रही है। वे जीवन के व्यावहारिक पदा के प्रति कम ध्यान दे सके वीर ज़मींदारी का कृत्य परिवर्तन करके ग्रामीणों का प्ररन सुतफ़ानि का उपाय वसतानि ली । परन्तु उनकी यह सुधार-भावना उनके वसिन्तिम उपन्यास " गोदान " के मशान् परिवर्तनों की पूर्व पीठिका मात्र है।

" सेवासदन " वीर प्रमाभम की वसदता प्रमथ जी उपन्यास कला का विससित रूप उनके " रंगभूमि " (१९२४) उपन्यास में मिलता है। वे पसती वार वपने इस उपन्यास में जीवन की वास्तविक रंग-भूमि पर वीये हैं। उन्होंने " रंगभूमि " में सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर प्रकाश डालते समय " नगर " ग्राम, फ़ीव्य, प्रम, सुत, पुःत, वाशा, वाकांता, ध्यय , वधिकार वीदि की लेकर भारतीय जीवन में कृतिन्ति की भावना के बीज बीये हैं। प्रमथ जी की उपन्यास कला का विकास " सेवा-सदन " , प्रमाभम वीर रंगभूमि " में एक विशिष्ट ढंग से हुआ है। इन तीनों उपन्यासों में उनकी " रंगभूमि " कृति गान्धीवाद वादशी का पीभाण करती है। इसकी यह विशिष्टता है कि गांधी जी की राजनीतिक धतना का प्रभाव सर्वत्र विसाई धता है। इस उपन्यास का " धूरदास " पात्र गांधी जी की विचार-धाराओं से प्रभावित है। प्रमथ जी की उपन्यास कला के विकास-क्रम में रंग-भूमि एक महत्व की सीढ़ी है।

“ काया कल्प ” (१९२६) निर्मला (१९२८) और प्रतिज्ञा (१९२९) में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं पर ही प्रकाश डाला गया है। “ कायाकल्प ” में तत्कालीन साम्प्रदायिक , सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का चित्रण हुआ है। “ निर्मला ” विधुर विवाह के दुष्परिणाम की एक कल्पना कहानी है। “ प्रेम की साक्ष्या ” कर्तव्य पत्र ” का सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रमचन्द जी ने “ प्रतिज्ञा ” का निर्माण किया ।

“ गृध्र ” (१९२९) और गोदान (१९३६) के कथानक पारिवारिक और सामाजिक जीवन है सम्बन्ध रखते हैं। प्रमचन्द जी ने “ गृध्र ” में जीवन की सामाजिक पृष्ठभूमि पर मनोवैज्ञानिक चित्रण का वादश उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। प्रमचन्द जी के उपन्यासों में पात्रों के अनुसार घटनाओं में परिवर्तन होते रहे हैं, परन्तु उत्तम परिस्थितियाँ पात्रों के कार्य व्यापार पर अपना व्यापक प्रभाव रखती हैं। नारी की जाभूषण-लालसा का यह एक यथार्थवादी चित्रण है, जिसका रचना-विधान बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है।

मुन्शी प्रमचन्द जी ने “ रंगभूमि ” की राजनीतिक समस्याओं पर फिर एक बार “ रंगभूमि ” (१९३२) में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसमें हमारे पिछले राजनीतिक वाद्यों (१९३१-३२) का व्यापक चित्र देखने की मिलता है। इसमें राजनीतिक वाद्यों के लिए सामाजिक सुधार का होना अत्यन्त अत्यन्त आवश्यक मुन्शी प्रमचन्द ने बताया है। इसलिए बहुतांश, सामाजिक संघटन, बालकों की शिक्षा आदि का विश्लेषण गान्धीवादी विचारों की सहायता से किया है।

प्रमचन्द जी का "गोदान" (१९३६) हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक अमर कला कृति है। इसकी तुलना "टासट्टाय के "युद्ध और शान्ति" उपन्यास से की जाती है और एक महाकाव्यात्मक उपन्यास (एपिक नावल) के रूप पर विचार किया जाता है। इसका नामकरण भारतीय ग्रामीण जीवन तथा संस्कृति की ओर संकेत करता है। "हीरो" नामक एक भारतीय किसान की कहानी भारतीय जीवन की व्यापकता का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करती है।

प्रमचन्द ने अपनी सभी तक के उपन्यासों में जीवन की वास्तविकता की स्थापना आदर्शवाद की भित्ति पर की थी परन्तु प्रमचन्द जी का यह यथार्थान्वित आदर्शवाद "गोदान" में स्पष्टता निष्क्रिय हो जाता है। इस यथार्थवादी चित्रण में उनका आदर्शवाद काम नहीं देता। प्रमचन्द उपन्यास के आरम्भ में ही उपन्यास के नायक "हीरो" का चित्रण बहुत ही उच्चानुभूति पूर्ण ढंग से किया है। वह अपने घर में गाय रखने के लिए लातायित था। उसकी इस अभिलाषा का उत्तर उसकी कन्या मृत्यु के दुतान्त में मिलता है। गाय को उस अभिलाषा के कारण उसका परिवार इतना दरिद्र हो जाता है कि उसकी मृत्यु के समय उसकी पत्नी धनिया के पास गोदान करने के लिए "घर में न गाय है, न कहिया, न पैसा"। धनिया उसी दिन सुतली केवकर उसके बीच जाने लेकर आई, उन्हें अपने पति के ठण्डे हाथ में रखकर "गोदान" किया और पछाड़ साकर गिर पड़ी। भारतीय जीवन की इसी बढ़कर और क्या कहण कहानी हो सकती है। "गोदान" में प्रमचन्द का यथार्थान्वित आदर्शवाद सामाजिक यथार्थवाद में परिणत हो जाता है।

प्रमचन्द के सपान जयशंकर प्रसाद ने अपनी "कंकाल, तितली (१९३४), इरावती (१९३६) नामक उपन्यासों द्वारा हिन्दी उपन्यास

साहित्य के विकास में योग दिया । प्रसाद जी ने "कंकाल" के द्वारा भारतीय स्त्रियों की अस्थाय परिस्थितियों का चित्रण करके मंदिरों के धार्मिक ढोंगी पर प्रकाश डाला है। धर्म और संस्कृत के नाम पर फैली हुई सामाजिक कुरी-तियों का यथार्थ चित्रण इसमें मिलता है। इसमें प्रसाद जी ने जिस समाज का वर्णन दिया है वह प्रमनन्द जी के समान से भिन्न ही भिन्न है। उन्होंने प्रयाग, काशी और हरिद्वार के वातावरण की पृष्ठभूमि पर वहाँ के धार्मिक ढोंगी पर साक्ष्यपूर्वक हमला किया है। प्रसाद जी का यह कुछ चरित्र प्रधान उपन्यास है।

"कंकाल" की जगह "तितली" में प्रसाद जी अधिक मातृक हो गये हैं। इसमें ग्राम सुधार की भाषना को प्राधान्य दिया गया है। कला की दृष्टि से "तितली" का उद्देश्य अधिक धार्मिक तथा व्यापक है परन्तु "तितली" की तुलना में "कंकाल" का उद्देश्य अधिक प्रभाव-पूर्ण स्पष्ट तथा उभरा हुआ है।

प्रसाद जी का अपूर्ण उपन्यास "हरावली" हिन्दी साहित्य को एक अनमोल कृति है। इसका जितना माग सिखा गया है उसमें प्रसाद जी का उपन्यास कला का नितरा हुआ रूप मिलता है। इसमें हिन्दी दर्शन तथा बौद्ध दर्शन की समस्याओं पर विचार हुआ है। एक मातृक कवि होने के कारण उनके उपन्यासों में सर्वत्र ही जीवन की काव्यात्मक तथा भाव-पूर्ण व्याख्या मिलती है।

प्रमनन्द और प्रसाद के उपन्यासों द्वारा हिन्दी के उपन्यास साहित्य में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ । आधुनिक उपन्यास-साहित्य

की जो कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं उनका सूत्रपात इन दोनों के उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समाज का यथार्थ चित्रण उपस्थित किया है तथा समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आये हैं, परन्तु प्रसाद जो अपने उपन्यासों में एक कलाकार के रूप में दिखाई पड़ते हैं। दोनों के साहित्य का उद्देश्य भिन्न होकर भी उनकी उपन्यासों की आत्मा एक ही है। इन दोनों कलाकारों की कृतियों के द्वारा हिन्दी में विभिन्न प्रवृत्तियों के उपन्यासों के निर्माण में सहायता मिली। इस काल विभाग में निम्न-लिखित उपन्यासों के प्रकारों का सूत्रपात हुआ है :

- १- यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास
- २- स्वच्छन्दतावादी उपन्यास
- ३- मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- ४- ऐतिहासिक उपन्यास

यथार्थवादी सामाजिक उपन्यासों की परम्परा का प्रारम्भ प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचन्द जी की आदर्श-न्तुल यथार्थवादी परम्परा का अनुसरण करने वालों में " विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक का स्थान महत्वपूर्ण है। उनके " माँ (१९२६) और " भित्ति-रिणी " उपन्यास नारी हृदय की भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण उप-स्थित करते हैं। " माँ " के व्यक्तित्व का प्रभाव किस रूप में बच्चों पर पड़ सकता है इसका मनोवैज्ञानिक चित्र हमें उपस्थित किया है। " भित्तिरिणी " उपन्यास में एक आध तथा एक गरीब स्त्री का चित्र उपस्थित किया गया है। किस प्रकार परिस्थितियाँ मनुष्य के चरित्र की बनाती बिगाड़ती है, उसी प्रकार चरित्रवान व्यक्ति भी परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाता है। फटे पुराने कपड़े के भीतर भी एक चरित्रवान स्त्री की आत्मा का निवास होता है।

चतुरसेन शास्त्री ने नारी की समस्या की लेकर "हृदय को परत" (१९१८), "हृदय की प्यास" (१९३२) "अमर वमिताला" आदि उपन्यास लिखे हैं। "हृदय को परत" में विवाह की समस्या का विश्लेषण हुआ है उसमें दिखाया गया है कि अनिच्छा से किया हुआ विवाह किस प्रकार अपने दुर परिणामों को प्रकट करता है। "हृदय की प्यास" में वाधुनिक नारी के वैवाहिक जीवन की एक समस्या का चित्रण उपस्थित किया है। एक शिक्षित तथा विवाहिनी युवक के मन में अपनी पितृ की पत्नी के प्रति किस प्रकार आकर्षण होता है और अपनी उस "प्रेम-पिपासा" की तृप्ति के लिए क्या-क्या कार्य कर बैठता है। इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। "अमर वमिताला" में विधवाओं की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

ग्रामीण समस्याओं की लेकर सियाराम शरण गुप्त ने "गौद" (१९३३) और "अन्तिम आकांक्षा" (१९३४) नामक उपन्यास लिखे। भारतीय नारी की समस्या का चित्रण "गौद" में मिलता है। "अन्तिम आकांक्षा" में भी अन्ध्याय के विरुद्ध सर उठाया गया है।

प्रताप नारायण श्रीवास्तव का "विदा" (१९२८) उपन्यास इस काल की अमर कृति है। उनके इस उपन्यास में पारचात्य उपन्यास कला को फलक दिताई देती है। उपन्यास का चरित्र चित्रण बहुत ही अच्छा हुआ है और उपन्यास का प्रारम्भ बहुत ही नाटकीय ढंग से हुआ है। श्रीवास्तव जी का यह एक आदर्शमूलक मौलिक उपन्यास है।

पं० सुर्यकान्त त्रिपाठी निराला के "अप्सरा" (१९३१), कलका (१९३३), निरुपमा (१९३६) आदि प्रारम्भिक उपन्यासों

में स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण की प्रधानता मिलती है। इन उपन्यासों में प्रताप जी की रोमान्टिक उपन्यास कला का विकसित रूप मिलता है। "अप्सरा" में ही स्वच्छन्द प्रेमियों की कहानी है जिसमें प्रेम और देश सेवा द्वन्द्व दित्तया गया है। परन्तु निराता जी ने "कतका" में वास्तविक जीवन के यथार्थ का चित्रण करके किसान आन्दोलन की मार्मिक समस्या का उद्घाटन किया है। उनके इन उपन्यासों में नायिका की महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। निराता जी ने इनका संक्षेप "कतका" की प्रस्तावना में इस प्रकार दिया है :

"मुझे आशा है, हिन्दी के पाठक, साहित्यिक और आलोचक "कतका" की कतकों के अंकसार में न झिझाकर उसकी बातों का प्रकाश देंगे कि हिन्दी के नवीन पथ से वह कितनी दूर तक परिचय कर सकती है।"

भावली प्रताप माजपरी के प्रेमगी (१९२६) वनाथपत्नी (१९२८) त्यागपरी (१९३२) पतिता की साधना (१९३६) आदि उपन्यासों में स्त्री एवं पुरुष के रूपाकर्षण का चित्र खींचा गया है। इसी प्रकार वेचन वर्मा उग्र के "दिल्ली का दलाल" (१९२८), बुधुवा की बेटो आदि उपन्यासों में भीली युवतियों तथा वासिकाओं के फंसाये जाने का चित्र मिलता है।

मनीषज्ञानिक उपन्यासों की दृष्टि से जैनन्द कुमार, हलाचन्द्र जोशी, वीर्य आदि के प्रारम्भिक उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। जैनन्द के "परत" उपन्यास में नारी जीवन का एक मातृकापूर्ण चित्रण मिलता है। इसके उपन्यास होने में स्वयं लेखक ने संदेह प्रकट किया है। जैनन्द ने अपने "मैं आगे क्या लिखना चाहता हूँ" शीर्षक लेख में "परत" के बारे में इस प्रकार लिखा है :

“ परस की भी एक लम्बी कहानी कहिए ।
उपन्यास के नाम पर तो वह कीरी याचना है। ”

इस काल में पत्रात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास
“ चन्द स्त्रीयाँ के खत ” (१९२७) उपन्यास में मिलता है। धन शर्मा पाण्डेय
“ उग्र ” ने अपने इस उपन्यास द्वारा हिन्दू और मुसलिम एकता का प्रश्न सामने
रखा है। यह एक प्रेम प्रधान उपन्यास है। इसके द्वारा “ प्रेम ईश्वर है ” इस
सिद्धान्त की स्थापना की है। प्रेम का स्थान ईश्वर से भी उड़ा माना है :

“ बल्लाह भी मजदूर की,
तेला नजर जाता है ।
बुतखाने के परदे में,
कावा नजर जाता है ॥

इसमें प्रेम क्या का बड़ा ही सजीव करुणा दृश्य उपस्थित किया गया है।
प्रेम फल से बड़ा है और फल यदि सच्चा है तो वह प्रेम के रास्ते का रोड़ा
नहीं, फल है। इसमें दो विजातीय युवक युवती के आत्म समर्पण द्वारा प्रेम
के वादश की स्थापना हुई है।

इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों में भावती चरण
वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा आदि की कृतियों को महत्वपूर्ण स्थान है। भावती
चरण वर्मा का “ चित्रलिता ” (१९४४) उपन्यास हिन्दी के ऐतिहासिक उप-
न्यासों में गिना जाता है। इसमें पाप क्या है और उसका निवास स्थान कहाँ
है, इस समस्या की लेकर लेखक ने उसके पात्रों द्वारा इसी समस्या का उत्तर भी
दिया है।

इस उपन्यास की मौलिक समस्या जीवन के नैतिक मूल्यों पर आधारित है। जीवन में चलते चलते पाप और पुण्य, सत्य और असत्य, स्वार्थ और वादर्थ, स्वार्थ और निःस्वार्थ व्यक्ति और समाज आदि द्रष्टा-त्मक प्रश्न सामने आते हैं और उनका ठीक उजर देने का प्रयत्न इस उपन्यास में हुआ है। वृन्दावनवास वर्षों के "गढ़ कुन्ठार" (१९२६) और "विराटा" की पदमिनी "उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

सन् १९१८ से १९३६ तक ऐसे बने उपन्यासकार मिलते हैं जिनके एक ही उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। शिवदास गुप्त का "श्यामा", हरिदास माणिक का "राजपूतों की बहादुरी", १० गोविन्द बल्लभ पंत का "सूर्यास्त प्रतिमा", राधिकाशरण प्रसाद सिंह का "तर्क", मन्नन द्विवेदी का "कल्याणी", बंटीप्रसाद वृद्धेश का "मनोरमा", शिवपूजन सहाय का "देहाती दुनिया", उषादेवी मित्रा का "पिया", तेजरानी पाठक का "हृदय का कोटा", कणमचरण जैन का "माहें", शिवरानी देवी का "नारी हृदय", भीमाथ सिंह का "उल्लूक" आदि मुख्य माने जाते हैं।

इस काल विभाग में प्रकाशित अनुदित उपन्यासों की संख्या बहुत है। प्रभु लाल पन्नालाल बरही ने बंगला से हिन्दी में अनुदित कथा-साहित्य के बारे में इस प्रकार अपना निर्णय दिया है :

"हिन्दी के आधुनिक कथा-साहित्य के विकास में बंग भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवादों का महत्वपूर्ण स्थान है। उसके द्वारा लोक रुचि का परिष्कार हुआ, कथा शैली में नवीनता आई,

भाषा में प्रौढ़ता काई और बाधुनिक युग की विचारधारा का भी प्रसार हुआ। उनमें भी खीन्ड बाबू और सरद बाबू की कृतियों का विशेष प्रभाव पड़ा है।^१ **

इससे स्पष्ट होता है कि बंगला के उपन्यासों का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर अधिक था। बंगला का साहित्य बीजेरी से प्रभावित होने के कारण लोगों की दृष्टि बीजेरी उपन्यासों की ओर आकर्षित हुई। पराठी से हरिनारायण बाप्टे तथा गुजराती से रमणलाल देसाई आदि के उपन्यासों का अनुवाद हुआ। उसी प्रकार उर्दू के कई उपन्यासों का भी अनुवाद हुआ जिसका वर्णन जगते कव्वाय में विस्तारपूर्वक किया जायेगा।

सन् १९१८ से १९३६ तक मौलिक उपन्यासों की संख्या अधिक मिलती है। प्रेमचन्द के पहले घटना प्रधान उपन्यासों का निर्माण हुआ था परन्तु प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों द्वारा उस दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अपने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की महत्वपूर्ण स्थान दिया। डा० श्रीकृष्णलाल के शब्दों में :-

** चरित्र चित्रण का पूर्ण विकास पहले फल प्रेमचन्द ने ही प्राप्त किया। उन्होंने ही पहले फल अपने चरित्रों की शारीरिक और नैतिक विशेषताओं की ओर ध्यान दिया, उनकी व्यक्तित्व रूपि, आदर्श, भावना तथा उनकी कमजोरियों का चित्र पाठकों के सामने उपस्थित किया।^२ **

१- फुमलाल पन्नालाल बस्ती - हिन्दी कथा साहित्य १९५४ पृ० ४७

२- डा० श्रीकृष्णलाल- बाधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० संस्०

प्रेमचन्द जी ने अपने पात्रों के चरित्र चित्रण की और अधिक ध्यान दिया है। उन्होंने 'हिन्दी का उपन्यास साहित्य' शीर्षक निबन्ध में स्पष्ट लिखा है :

“ चरित्रों की कल्पना से उपन्यास का आरम्भ होना चाहिए, घटना की कल्पना से नहीं। ”

इस काल विभाग के अधिकतर उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, वार्षिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। नारी समस्या की दृष्टि से भी अनेक उपन्यास लिखे गये और इन उपन्यासों में पुरुष और स्त्री के स्वाभाविक आकर्षण के बारे में अनेक प्रकार की व्याख्या की गई। आधुनिक शिक्षा का प्रचार होने के कारण नर नर सामाजिक समस्याओं का निर्माण होने लगा और पात्रों के वैज्ञानिक चरित्र चित्रण की परम्परा का सूत्रपात हुआ। इलाचन्द्र जोशी, ज्ञेय, जेन्द्र आदि उपन्यासकारों की कृतियाँ प्रकाशित हुईं। इस काल में बौद्धिकता की प्रधानता के कारण लेखकों को अपनी रचनाओं के लिए नयी दिशाएँ मिली और उनमें अनेक नव्यतर प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ।

विस्तारकाल (सन् १९३६ से १९६४ तक)

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में सन् १९३६ का वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस वर्ष प्रेमचन्द का 'गोदान', जेन्द्र का 'सुनीता', मणवतीचरण वर्मा का 'तीन वर्ष', निराला जी

१- जयशंकर प्रसाद- काव्यकला तथा अन्य निबन्ध - सु० संस्करण स० २००५

पृ० १२०

का, 'निरूपणा', भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'पतिता की साधना' वादि उल्लेखनीय उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इनमें प्रेमचन्द का वादशीरि उपन्यास 'गौदान' बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'गौदान' में जीवन के यथार्थ का पूर्ण चित्रण मिलता है। सेवासदन, से कर्मभूमि तक के उपन्यासों में वादशीरि को सामने रखकर ही यथार्थ का चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द का सुधारवाद जिस वादशीरि रूप में खड़ा रहा है उसका विकसित रूप यथार्थवाद, अति यथार्थवाद, प्रकृत वाद, समाजवादी यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थ वादि रूपों में वाज के उपन्यास में मिलता है। यथार्थवाद की विकसित परम्परा इस ढंग से प्रस्फुटित होने लगी कि प्रेमचन्द का 'मानवीय यथार्थवाद' या वादशीरि-न्मुख यथार्थवाद, प्रसाद का सामाजिक यथार्थवाद, बुन्दावनलाल वर्मा का 'रौमान्टिक यथार्थवाद', जैनेन्द्र का रहस्यवादी यथार्थवाद जैय और यशपाल का समाजवादी-न्मुखी यथार्थवाद वादि रूपों में उसके टुकड़े दिताई पड़ते हैं।

यथार्थवाद की ज्वाँ हिन्दी में सन् १९२० के बाद शुरू हुई। प्रेमचन्द जी ने 'यथार्थवाद', 'वादशीरिवाद' और वादशीरि-न्मुख यथार्थवाद की व्याख्या इस प्रकार से की है :

“यथार्थवाद यदि हमारी वासि तोल देता है तो वादशीरिवाद हमें उठाकर हमें किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। जहाँ वादशीरिवाद में यह गुण है वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की पूर्ति मात्र हो- जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, उस देवता में प्राण प्रतिष्ठा करना मुश्किल है। इसलिए वही उपन्यास उच्च कौटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और वादशीरि का समावेश हो गया हो। वादशीरि को सजीव बनाने

के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यासों की यही विशेषता है।^१

इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द का 'बादलों-नुस यथार्थवाद' उनकी उपन्यास-कला का केन्द्रबिन्दु है और उसका दर्शन 'गौदान' को छोड़कर अन्य सभी उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। परन्तु उन्होंने 'गौदान' में केवल यथार्थवाद का उपयोग किया और हमारी ज़ाँसें खोल दीं। इस प्रकार बादलों-नुस यथार्थवाद द्वारा यथार्थवाद का प्रवेश बाधुनिक उपन्यास साहित्य में हुआ।

औरंगी सम्यक्ता तथा शिक्षा के प्रचार के कारण भारतीय जीवन में एक नये युग का दर्शन होने लगा और पारश्चान्य विचारों के सम्पर्क में आने के कारण भारतीय स्त्री-पुरुषों के वैयक्तिक तथा समाजिक जीवन में अनेक समस्याओं का सूत्रपात हुआ। नारी समस्या, विवाह-समस्या, प्रेम का बादर्श, पुरुष और स्त्री का सम्यन्ध आदि प्रश्न उपस्थित हुए। इन समस्याओं को लेकर सामाजिक उपन्यासों में भिन्न भिन्न बादर्शों के धरातल के रूप में उपन्यास साहित्य की तीन शाखायें प्रस्फुटित हुईं।

बाधुनिक मनोविज्ञान शास्त्र की उन्नति के कारण फ्राइड आदि बाधुनिक मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त के अनुसार पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होने लगा और मनोवैज्ञानिक उपन्यास की एक स्वतन्त्र शाखा निर्माण हुई। उसी प्रकार मार्क्सवादी विचारों का प्रचार होने के कारण समाजवादी उपन्यासों की अलग शाखा प्रस्फुटित हुई। इसी

प्रकार भारत की परतंत्रता तथा महात्मा गांधी के उदय के कारण उनके राजनीतिक विचारों का प्रभाव देश की समस्याओं पर होने लगा और आधुनिक उपन्यासों में राजनीतिक उपन्यासों की जगह शांति निर्माण हुई। इस प्रकार सामाजिक उपन्यासों से तीन जगह जगह शांति निर्माण हुए।

ऐतिहासिक उपन्यासों में दो वर्ग किये जा सकते हैं। जिन उपन्यासों में केवल ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर तत्कालीन जीवन तथा समाज का चित्रण किया जाता है उनकी शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रखा जाता है परन्तु जब ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर तत्कालीन समाज का काल्पनिक चित्र खींच कर मनुष्य तथा समाज की प्राकृतिक समस्याओं पर विचार किया जाता है तब स्वच्छन्दतावादी ऐतिहासिक उपन्यासों की जगह श्रेणी दिखाई देती है। अतः हिन्दी उपन्यास साहित्य का निम्नलिखित प्रकारों में विभाजन कर उनका अध्ययन किया जा सकता है :

- (१) सामाजिक उपन्यास
- (२) मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- (३) समाजवादी उपन्यास
- (४) राजनीतिक उपन्यास
- (५) ऐतिहासिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यासों का विकसित रूप प्रेमचन्द, प्रसाद, कौशिक आदि के उपन्यासों में मिलता है। सामाजिक उपन्यासों में समाज की सर्वसाधारण समस्याओं का चित्रण होता है। इसमें समाज की धार्मिक तथा रुढ़िवादी परम्पराएँ, प्रेम का आदर्श, नारी का स्वतन्त्र, स्त्री

पुरुष का सम्बन्ध, देश के सुधार आदि पर विचार किया जाता है। इस प्रकार के सामाजिक उपन्यासों में प्रताप नारायण धीवास्तव, सियाराम शरण गुप्त, कृष्णचरण जैन, सूर्यकान्त त्रिपाठी, गोविन्द बल्लभ पंत, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उषादेवी मित्रा, श्रीनाथ सिंह, रमिय राघव, अनुपमाल मंडल, फाही, उपेन्द्रनाथ 'बशक' आदि के उपन्यास आते हैं।

प्रताप नारायण धीवास्तव ने 'विदा' उपन्यास के बाद 'विजय' 'विकास' आदि उपन्यास लिखे। 'विजय' में विधवा समस्या पर विचार किया गया है। सियारामशरण गुप्त के 'नारी' उपन्यास में नारी की आन्तरिक सहनशीलता, सत्यशीलता आदि का आदर्श उपस्थित किया गया है। उसी प्रकार उषादेवी मित्रा ने 'बचन का बोल', 'पिया' 'जीवन की सुसज्ज' 'सौहार्द' आदि उपन्यासों में नारी की विविध समस्याओं का चित्रण सींचकर उसके गृहणीत्व के आदर्श की स्थापना की है।

जैन्द्र के 'त्यागपत्र' में पुरुष और नारी के सम्बन्ध पर ही विचार किया गया है। जैन्द्र ने विवाह के सामाजिक प्रश्न पर इस प्रकार प्रकाश डाला है :

“ विवाह की ग्रन्थि दो के बीच ग्रन्थि नहीं है, वह समाज के बीच की भी है। चाहने से वह क्या खरब टूटती है ? विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है। वह प्रश्न क्या यों टाले टल सकता है। वह गाँठ है बंधी कि कुल नहीं सकती, टूटे तो टूट भले ही जाय। लेकिन टूटना कब किसका बेयस्कर है ? ”

श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक स्पर्शकाण्ड का चित्रण देखने को मिलता है। "पतिता की साधना", "पिपासा", दो बहनें, निमन्त्रण" आदि उपन्यासों द्वारा समाज की आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टभूमि पर स्त्री पुरुष के बीच के प्रेम की कृति, कमिलाणा आदि का चित्र उपस्थित किया है। उन्होंने अपने उपन्यास "निमन्त्रण" के "विलेख" (भूमिका) में प्रस्तुत उपन्यास के उद्देश्य की व्याख्या इस प्रकार से की है :

" हमारे समाज की आज जो आर्थिक, कौटुम्बिक, नैतिक और मानसिक स्थिति है, उसकी बाहर से देखने में फैली और बिसरी हुई, किन्तु यथार्थ में सम्बन्ध और शूलित- एक भूतल पर अपने सबसे उपन्यास में देने की चेष्टा मैंने की है। "

वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में प्रेम के चित्रण पर अधिक ध्यान दिया है। ऐसा प्रतीत होता है उनका एक मात्र प्रिय विषय प्रेम ही है। वे विवाहति नारी की अपेक्षा प्रेक्षी में प्राणेश्वरी पाते हैं। "निमन्त्रण" उपन्यास में उन्होंने प्रेक्षी की व्याख्या इस प्रकार से की है :

" विवाह तो नारी को देवी बना डालता है। विवाह तो उन स्थूल व्यापारों से सम्बन्ध है, जिनसे गंध जाती है। जो बासी फड़ते फड़ते वीत में सड़ तक जाते हैं, किन्तु प्रेक्षी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूत शान्ति का एक मार्ग है। "

कुटुम्बप्यारी सक्सेना के "हृदय की ताप" उपन्यास

में स्त्री समस्या के एक तंग का विश्लेषण हुआ है। उदेंद्र नाथ बरक ने विवाह की समस्या को लेकर 'सितारों के रेत' तथा 'गिरती दीवारें' नामक उपन्यास लिखे हैं। 'सितारों के रेत' में भारतीय मध्यम वर्ग के पारिवारिक जीवन के संकटापीत चित्र उपस्थित किया है। दूसरे उपन्यास 'गिरती दीवारें' में वैवाहिक जीवन की विषमता पर प्रकाश डाला है। हमारी प्राचीन छवियों तथा परम्पराओं की दीवारें गिरती जा रही हैं और उनकी जगह नवीन की नींव पड़ रही है।

भारतीय शिक्षित युक्त-युक्तियों के वाधुनिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न रणिय राघव का 'घरोंदे', जगन्मोहन जैन का 'मन्दिर दीप' आदि उपन्यासों में हुआ है। 'घरोंदे' में कालिज के वातावरण का सुन्दर चित्र खींचा है। इसमें रणिय जी ने अपने एक पात्र द्वारा वाधुनिक प्रेम की समस्या पर जो ध्यान रखा है वह बहुत ही व्यापक है :

" सीता ने उपेक्षा से कहा- राजनीति में सब कम्युनिस्ट होना और प्रेम में प्रियता को बहिन बताना वाक्यस्र की सबसे बड़ी खाम है। "

निराला जी की प्रारम्भिक रचनाओं में उनकी रोमान्टिक प्रवृत्ति का दर्शन मिलता है। इसलिए उनकी 'बचरा' जैसी प्रारम्भिक रचनाओं में नारी के मनोरम माधुर्य का वर्णन होता है। परन्तु 'हिल्लेहुर करिहा' जैसी रचनाओं में गाँव का चित्र मिलता है। इस

तत्त्व निराशा की समाज के यथार्थ चित्रण में बाधुष्ट हुए हैं। प्रेमचन्द की 'गोदान' की फलक, अनुपमास मण्डल द्वारा लिखित "दस बीघा जमीन" में मिलता है। उस काल में उनके ऐसे उपन्यास लिखे गये जिनमें किसी न किसी रूप में समाज की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात चरित्र प्रधान उपन्यासों में मिलता है। पार्श्वस्थ साहित्य और वाधुनिक शिक्षा प्रचार के कारण भारतीय जीवन में अनेक समस्याओं का निर्माण हुआ और उत्का प्रभाव लिखित स्त्री पुरुषों की वैयक्तिक समस्याओं पर पड़ने लगा। मनुष्य का वाह्य जीवन उसके अन्तर्गत की अपेक्षा कुछ निराशा होता है। मनुष्य का अस्तित्व जो सौ साल पहले था वह आज नहीं है। उसके वाह्य जीवन की अपेक्षा उसके अन्तर्गत प्रति के अन्तर्गत जीवन के अनुभवों में एक प्रकार का संघर्ष दिखाई पड़ता है और मन में संघर्षों की दृष्टि निर्माण होती है।

वाक्कल के समाज में नारी समस्या तथा रौटी की समस्या महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वैयक्तिक समस्या के रूप में जब सेक्स समस्या का रूप प्रकट होता है तब सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक और समस्याओं का प्रश्न व्यक्ति के सामने ही नहीं राष्ट्र के सामने ही खड़ा हो जाता है।

जैनेन्द्र कुमार के "सुनीता" (१९३६), न्यागपत्र (१९३७), कल्याणी (१९४०) आदि उपन्यासों में मनुष्य का स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। जैनेन्द्र पर वाधुनिक मानस शास्त्र का प्रभाव है। उन्होंने समाज को केवल देता ही नहीं बल्कि अपने अनुभव तथा सत्य के आधार पर सामने आई हुई समस्याओं के मूल की खोज की और नैतिक दृष्टि से उनकी व्याख्या भी की है।

जैन्ड्र के उपन्यासों की मुख्य समस्या है- नारी का सतीत्व उन्होंने 'बप्ते कलौ, सुनीता, मृणाळ और कल्याणी' इन चारों पात्रों के चार बलग बलग रूप दिखाये हैं किन्तु चारों की एक ही समस्या है। जैन्ड्र एक बड़े दार्शनिक तथा कलाकार दिखाई पड़ते हैं वे नारी मनोविज्ञान की परख अच्छी तरह से जानते हैं।

जैन्ड्र की नारी सामाजिक दृष्टि से चरित्रहीन है, परन्तु उसका वैयक्तिक आदर्श इतना ऊँचा है कि उसमें विरल नारीत्व का आदर्श मिलता है। जैन्ड्र ने जिन जिन जनैतिक समस्याओं को अपनाया है उनमें नैतिकता का आदर्श उपस्थित करके नारी जाति का महत्व प्रदर्शित किया है। जैन्ड्र जी के उपन्यासों में मनोविज्ञान प्रधान प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, परन्तु उनके नैतिक-जनैतिक दृष्टिकोण के कारण पात्रों के चरित्र चित्रण में जटिलता बाई है। एलाबंद जोशी के 'संन्यासी' के प्रकाशन के साथ बौद्ध का 'शेखर : एक जीवनी' का प्रकाशन जैन्ड्र की मनोविश्लेषणवादी परम्परा को आगे ले गया है। एलाबंद जोशी की उपन्यास कला का विकास उनके 'संन्यासी' (१९४१) उपन्यास में दिखाई देता है। उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रणाली का सूत्रपात उनके 'घृणामयी' (१९२६) और 'फँस की रानी' (१९४१) में दिखाई देता है और उसका विकसित रूप 'संन्यासी' (१९४१) 'प्रेत और छाया' (१९४१), 'निर्वासिता' (१९४६) आदि उपन्यासों में दिखाई देता है। जोशी जी के उपन्यास प्रेम प्रधान हैं। प्रकाश के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण उनके उपन्यासों में सौजा जा सकता है।

मनुष्य के जीवन में काम-वासना को महत्वपूर्ण स्थान

है। मनुष्य के वन्तर्जात में फड़ी दमित काम वासना बक्सर पाते ही हिंसक पशु की भाँति जी चारै कर सकती है। उस समय मनुष्य बपौ को नहीं रोक सकता। वतः उसके जीवन में नाना प्रकार के विकास स्पष्ट तथा वसूत चित्रों के रूप में उत्पन्न हो जाते हैं और उसके मन पर प्रसन्नता तथा मलिनता की छाया दिखाई पड़ती है। प्रेमचन्द ने बपौ "उपन्यास" तथा "कहानी" कला "शीर्षक" तैली में इस प्रकार किया है :

" मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समकता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है। "

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानव चरित्र पर प्रकाश डालकर और उसके रहस्यों को खोलकर मनोगत भावों तक पहुँचने की चरित्र-चित्रण की शैली का सूत्रपात प्रेमचन्द के उपन्यासों में हुआ था उसका विकसित रूप जेन्द्र, प्लाचन्द जोशी वादि के उपन्यासों में मिलता है।

जोशी जी के उपन्यासों का धरातल भी इसी मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण से प्रभावित रहा है और उसका दर्शन उनके पात्रों द्वारा प्रदर्शित हुआ है।

जोशी जी ने नारी जीवन की एक निश्चित समस्या सामने रखकर उसका विश्लेषण बिल्कुल ही वैज्ञानिक ढंग से किया है। कला के क्षेत्र में उसकी वैज्ञानिकता प्रशंसनीय हो सकती है, परन्तु उसका कलात्मक जीवन नष्ट हो जाता है।

झौंसी जी ने "संन्यासी", फैं की रानी "वीर", "प्रेत की छाया" आदि में जितने मुख्य पात्र मिलते हैं उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण हुआ है परन्तु उनके अधिकतर पात्र काम वासना से प्रेरित हैं। एक पुरुष के साथ अनेक स्त्रियों का संकर्म बढ़ाकर उपन्यास में वातावरण की दृष्टि क्लृप्तपूर्ण हुई है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अश्वेत की "शेखर : एक जीवनी (१९४१) और "नदी के द्वीप" (१९५१) महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। "शेखर : एक जीवनी" अपना एक विशेष स्थान रखता है। उसमें लेखक ने एक व्यक्ति का सम्पूर्ण अध्ययन उपस्थित किया है। आचार्य नंद हुलारे वाजपेयी के शब्दों में :-

" " शेखर अपनी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप आदर्श की अपूर्ति-स्वरूप एक असफल पात्र है जिस असफलता में सामाजिक प्राकृतिक प्रतिरोध ही कारण हैं। यदि इस संघर्ष का चित्रण यथार्थ किया जाता तो असफल होते हुए शेखर के प्रति हमारे हृदय में संवेदना जानी चाहिए थी और उत्तरोत्तर तीव्र होनी चाहिए थी, किन्तु लेखक तो असफल पात्र को अपनी अतिरिक्त सहानुभूति द्वारा दूसरा रंग देना चाहता है, जो उसका मोह पात्र है। "

लेखक ने "शेखर" के जीवन के हर एक पक्ष पर विचार किया है। जहाँ कहीं शेखर के जीवन में शिथिलता आती है, वहाँ लेखक भी चुपचाप बैठ जाता है।

१- नंद हुलारे वाजपेयी- आधुनिक साहित्य- प्रथम संस्करण सं० २००७

पृ० १७६ ।

“ ब्रह्म ” का दूसरा उपन्यास “ नदी के द्वीप ” उनके उपन्यास का वाक्योपस्थित करता है। नदी प्रवाह का प्रतीक है, उस प्रवाह की धारा में उपन्यास के छोटे बड़े पात्र द्वीपों के समान हैं। इसमें चरित्रवान, सम्य, चरित्रहीन वादि पात्रों का निर्माण हुआ है। दो द्वीपों के बीच में सेतु के द्वारा एकता लाने का प्रयत्न किया है।

रचना-विधान की दृष्टि से “ शैलर : एक जीवनी ” की अपेक्षा “ नदी के द्वीप ” अधिक कलात्मक उपन्यास है और यह हिन्दी उपन्यास-साहित्य की एक बेजोड़ कलाकृति है।

व्याधुनिक काल में मनोवैज्ञानिक उपन्यास अधिक संख्या में लिखे जा रहे हैं और उन पर ब्रह्म, जैनेन्द्र आदि का उपन्यास-साहित्य का प्रभाव दिखाई दे रहा है। नरोत्तम प्रसाद नागर का “ दिन के तारे ”, डा० देवराज का “ फव की सौज ”, डा० धर्मवीर भारती का “ गुनाहों का देवता ” आदि महत्वपूर्ण हैं। गान्धीवाद की व्याख्या “ दिन के तारे ” उपन्यास में मिलती है। धर्मवीर भारती के “ गुनाहों का देवता ” एक ऐतिहासिक प्रेम की कहानी है। भारती जी ने उसका मनोवैज्ञानिक चित्र इस रूप में उपस्थित किया है :

“ जीवन की समस्याओं के अन्तर्विरोधों में जब जावपी दोनों पक्षों को समझ लेता है तब उसके मन में एक ठहराव आ-जाता है। वह भावना से ऊपर उठकर स्वच्छ बौद्धिक धरातल पर जिन्दगी का विश्लेषण करने लगा । वह जब भावना से डरता था । भावना के तूफान में झुकी हुई ठोकरें खाकर अब उसने बुद्धि की शरण ली थी और एक पलायनवादी की तरह भावना से भागकर बुद्धि की स्कान्ति में छिप गया । कभी मायुक्तता से नफरत करता था, अब वह भावना से ही नफरत करने लगा । ”

इस प्रकार हिन्दी के अधिकतर सामाजिक, राजनीतिक वादि उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण मिलते हैं। इस दृष्टि से "वस्त्र" का "चितारों का खेल", रमिय राघव का "घरोंदे", कमलदास नागर का "महाकास" वादि उपन्यास भी महत्वपूर्ण हैं।

समाजवादी उपन्यास :

हिन्दी में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार "एस" पत्रिका के द्वारा हुआ और शिवदान सिंह के प्रकाशित लेखों द्वारा हिन्दी क्षेत्र में उसका प्रवेश हुआ। प्रेमचन्द की अपूर्ण कृति "मंगलसूत्र" में समाजवादी धारा का सूत्रपात हुआ और बाबू उसका विकसित रूप यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, नागाबुन, रमिय राघव, मेरू प्रसाद वादि के उपन्यासों में मिलता है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर ही समाजवादी विचारों का परिपोषण हुआ। मार्क्सवाद के मूल में बाकि समानता को महत्वपूर्ण स्थान मिला है और भौतिक साधनों द्वारा उसमें प्राप्ति के उपाय दिखाई देते हैं। जय और काम के आधार पर ही मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की व्याख्या हुई। इस में मार्क्सवाद प्रस्तुत होने के कारण उसकी विचारधारा का प्रभाव विश्व के साहित्य पर पड़ा है।

समाजवादी उपन्यासों में यशपाल के "दादा कामरेड", देवद्वीडी, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप "वादि उपन्यास महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। "दादा कामरेड" (१९४९) उपन्यास तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति से प्रभावित है।

समाजवादी विचारधाराओं का प्रचार रणिय राघव के "विष्णुद मठ", नागाजुन के "बलवनमा" आदि उपन्यासों में मिलता है। "विष्णुदमद" में बंगाली जीवन को केन्द्र बनाकर काल के समय की बंगाली जनता की दक्षिणता तथा काल की विभीषिका के विभिन्न फलसुखों का चित्रण किया है।

इस प्रकार समाजवादी उपन्यासों पर विचार किया जा सकता है। हमारा उपन्यास साहित्य देश की राजनीतिक धारा से किस प्रकार प्रभावित हो सकता है, इसका दर्शन समाजवादी उपन्यासों में मिलता है।

राजनीतिक उपन्यास :

भारत परतन्त्र होने के कारण उसकी राजनीतिक समस्याओं का प्रभाव तत्कालीन उपन्यासों पर हुआ। प्रेमचन्द जी के "कर्म-धूमि" (१९३२) में तत्कालीन भारतीय राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण हुआ। हमण प्रसाद सिंह का "राम रहीम" (१९३७) "तैल का चढ़ती धूप" (१९४५) मणवती चरण वर्मा का "टेढ़े मेढ़े रास्ते" (१९४६) जी गुरुपद का "स्वाधीनता के पथ पर" आदि उपन्यासों में मिलती है। सन् १९४७ तक हमारी हर एक समस्या का सम्बन्ध भारत में अंग्रेजी राजनीति से जाता था। इसलिए जहाँ कहीं सामाजिक प्रश्नों या समस्याओं का चित्रण होता था वहाँ राजनीतिक समस्याओं पर कुछ न कुछ लिखा जाता था। परन्तु "चढ़ती धूप", या "टेढ़े मेढ़े रास्ते" जैसे कई उपन्यास मिलते हैं

जिनमें तत्कालीन भारत के राजनीतिक विचारों का विश्लेषण बहुत ही प्रभावात्मक ढंग से हुआ है।

राजनीतिक विचारधाराओं का चित्रण केवल ने जफने पहले उपन्यास 'चढ़ती धूप' (१९४५) में किया है। 'चढ़ती धूप' में एक गरीब युवक की वास्तविकता का दर्शन है। मजदूरों की समस्या लेकर इस उपन्यास में भारत के नवोदय के लिए एक पथानु संदेश है।

राजनीतिक उपन्यासों की परम्परा में मणवती चरण वर्मा का 'टैडे मेडे रास्ते' (१९४६) बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें भारतीय परिवार की एक असफल कहानी मिलती है, जिसमें १९३० के वास पास की भारतीय राजनीति के टैडे मेडे रास्तों का अध्ययन किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यास :

हिन्दी में उपन्यासों की परम्परा का सुत्रपात बंगला के बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, रासाल चन्दोपाध्याय आदि के अनुदित उपन्यासों द्वारा हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी के 'तारा' (१९०२), मल्लिका देवी (१९०५), लखनऊ की कब्र (१९०६) राजिया बेगम (१९१५) आदि उपन्यास मिलते हैं। सन् १९३६ के पहले मुन्दावनलाल वर्मा का 'गढ़ कुहार' मणवती चरणवर्मा का 'चित्रलेखा', जयशंकर प्रसाद का 'हरावती' आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इस काल में मुन्दावन लाल वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रणिय राघव, बलदेव शास्त्री, छेठ गोविन्ददास आदि के ऐतिहासिक उपन्यास मिलते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि निर्माण करनी पड़ती है। इसलिए उपन्यासकारों की बहुत ही कौशल के साथ काम करना पड़ता है। उस काल के वादश, रीति रिवाज, विचार-धारा, नैतिक वादश आदि की भी व्याख्या की जाती है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में लेखक का अपना कोई विशेष ध्येय होता है।

इस काल विभाग में अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास उल्लेखनीय हैं। जयशंकर प्रसाद का "हरावती", वृन्दावनलाल वर्मा का विराटा की सुमिनी (१९३६), यशपाल का "दिव्या" (१९४५) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का "बाण मट्ट की वात्स्य कथा" (१९४६) वृन्दावनलाल वर्मा की "भाँसी की रानी" (१९३६) कन्नार (१९४८) चतुरसेन शास्त्री का "वैशाली की नगरवधू" (१९४८), सेठ गोविन्ददास का "हनुमती", वृन्दावनलाल वर्मा का "मृगयत्री" (१९५०) और राहुल सांकृत्यायन के अनेक उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का "बाणमट्ट की वात्स्यकथा" एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपन्यास है। वात्स्य कथा के रूप में लिखा हुआ यह पहला हिन्दी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में द्विवेदी जी की बप्रतिम प्रतिभा, संस्कृत का साहित्य प्रेम और अनुसंधानात्मक शक्ति की कला मिलती है।

बौद्धकालीन युग का वातावरण लेकर यशपाल जी ने "दिव्या" (१९४५) तथा चतुरसेन शास्त्री ने "वैशाली की नगरवधू" (१९४८) हीनिक उपन्यास लिखे हैं। यशपाल की "दिव्या" बहुत ही महत्वपूर्ण कृति है। इस उपन्यास की एक विशेषता है कि इसमें नारी के चरित्र

सौंदर्य तथा वाकर्षण देश, काल, व्यक्ति आदि का भेद नहीं मानता ।
 " दिव्या " के समान आचार्य चतुर्सेन शास्त्री का " वैशाली की नगरवधू " अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

राहुल सांकृत्यायन जी के " सिंह सेनापति " , " जय योधेय " आदि ऐतिहासिक उपन्यास उल्लेखनीय हैं। सेठ गोविन्ददास का " हनुमती " बड़ा उपन्यास है। इसकी रचना भारत के राष्ट्रीय आन्दोलनों की प्रेरणा पर हुई है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्दावनलास बर्मा की कृतियों को बहुत ही ऊँचा स्थान दिया गया है। उनके " फाँसी की रानी " (१९४६) और " मृगनयनी " (१९५०) महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। सन् ५७ के विप्लव का वर्णन विस्तृत रूप से " फाँसी की रानी " में देखने को मिलता है। " मृगनयनी " उपन्यास में बर्मा जी एक इतिहासकार के रूप में दिखाई पड़ते हैं। मृगनयनी का चरित्र अत्यन्त सजीव तथा शक्तिशाली बनाया है। " मृगनयनी " में बर्मा जी ने एक कलाकार की आत्मा का ही रूप देखा है। जब वह अपना सम्पूर्ण चित्र मानसिंह को दिखाती है तब मानसिंह उसे वह चित्रपूर्ण करने की कहता है। तब मृगनयनी उस चित्र की ओर देखकर उससे कहती है :

" संकल्प और भावना जीवन तलहटी के दो पल्ले हैं। जिसकी अधिकार भाव से ताव दीजिए वही नीचे चला जायगा । संकल्प कर्तव्य है और भावना कला । दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता है। न तो कभी कल का वेश पूरा हुआ है और न कर्तव्य का । तलहटी के दोनों पल्ले तुले हुए हैं न इस चित्र में । "

१- बुन्दावनलास बर्मा- मृगनयनी - द्वितीय संस्करण सन् १९५२ ई० पृ०

धुन्दावनलाल वर्मा के साहित्य में भारतीय रोमान्स का वास्तविक रूप मिलता है।

जब काल के उपन्यासों में शिल्प की दृष्टि से कने परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। पहले उपन्यास पढ़ा जाता था बाव उस पर सोचना भी पड़ता है। जेन्द्र जी का कहना है "कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं," उपन्यासकार अपनी कृतियों की कथावस्तु की अपेक्षा पाठकों को और कुछ देना चाहता है।

"कला कला के लिए" बान्दोला की छाया उस काल के उपन्यासों पर होने के कारण उपन्यास के बाहरी ढाँचे में परिवर्तन हुआ है और उपन्यासकार अपने उपन्यासों में मनमाने पात्रों की सृष्टि करने लगे हैं।

उस काल में "पई की रानी", प्रेत और छाया "सुनीता, कल्याणी आदि उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। ज्ञाना ही नहीं भाषा और भावों को प्रकट करने की शक्ति दिखाई पड़ती है। मनुष्य स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव का चित्रण हमें होने लगा है और मनुष्य के अज्ञात भावों को भी व्यक्त करने की शक्ति भाषा में दिखाई देने लगी।

हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक युग में शिक्षा प्रचार की दृष्टि से कई रचनाओं का निर्माण हुआ। कुछ रचनाओं में नैतिक आदर्श की स्थापना थी, कुछ रचनायें जनता के मनोरंजन की दृष्टि से लिखी गईं। प्रेमचन्द के आधिपत्य के कारण हिन्दी उपन्यास साहित्य में नये युग का आरम्भ हुआ और व्यापकवाद के धरातल पर चरित्र प्रधान उपन्यासों का

निर्माण होने लगा । हिन्दी का उपन्यास साहित्य बंगला, अंग्रेजी, मराठी, उर्दू उपन्यासों से प्रभावित रहा है यही कारण है कि नई नई प्रवृत्तियों का दर्शन दिसाई देता है। इस दृष्टि से परीक्षागुरु, चन्द्रकान्ता, सौंदर्योपासक, सेवासदन, परल, तिलली, बिबलेखा, सुनीता, गौदान, संन्यासी, पदों की रानी, दादा कामरेठ, शेर : एक धीवनी, चढ़ती धूप, दिव्या, बाणभट्ट की जात्म कथा, फाँसी की रानी, टैंड में रास्ते, गुनाहों का देवता, मनुष्य के रूप, आदि कृतियाँ हिन्दी उपन्यास कला के क्रमिक विकास का चित्र पाठकों के सामने रखती हैं। हिन्दी के प्रौढ़ लेखक पद्मलाल पुन्नालाल बरशी ने हिन्दी के उपन्यासकारों के उत्तरदायित्व के प्रति इस प्रकार का संकेत किया है :

“ यथार्थवाद के आधार पर यदि जीवन की सच्ची समीक्षा होगी, तो उससे जीवन का सच्चा गौरव प्रकट होगा और तब नव धारों की प्रतिष्ठा होगी । उपन्यासकारों के लिए जो काम सबसे स्पृहणीय हो सकता है, वह प्रचार का नहीं, निर्माण ही हो सकता है। वे ऐसे ही चरित्रों का निर्माण करें, जिनसे पाठकों की चरित्तन स्फूर्ति, बानंद, उत्साह और वीर्य की प्रेरणा हो । ”

१- पद्मलाल पुन्नालाल बरशी - हिन्दी कथा साहित्य , प्रथम संस्करण १९५४

=====

पंचम अध्याय

=====

पंचम अध्याय

उर्दू कहानी साहित्य का इतिहास

उर्दू कहानी साहित्य का इतिहास बहुरिक प्राचीन नहीं है यह तो बीसवीं शताब्दी की ही देन है । इसकी सभी शैल ६० वर्षों की हुर है । इसमें बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही जन्म लिया है उस समय से लेकर अब तक इस प्रकार (Trend) में होने परिवर्तन हुये हैं कि यह श्रम पर परिवर्तित की साधारण ही भी प्रतीत होती है और विस्मयपूर्ण भी । जिस प्रकार १८५७ के गदर ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जो भी कार्य उत्साह लाया उसी प्रकार बीसवीं शताब्दी ने कहानी क्षेत्र में अपना उत्साह दिखाया तथा कहानीकारों को कहानी लिखने के लिये प्रेरित किया और नवीन जागृति पैदा कर दी । बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक पहुँचते पहुँचते इस जीवन के प्रत्येक पल को अपनी सफ़ेद में ले लिया था और ऊपर उधर की कठिनाइयों में पड़कर कठपुतली की तरह ऊपर उधर मटक रही थी और वास्तविक पक्ष दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था । इसी प्रकार की परिस्थितियों के वाकचरण ने जनता को तथा लेखकों की राजनीति की ओर जागृत किया और उनके ऊपर नवीन भावना पैदा कर दी और गण की भिन्न भिन्न रूपों का विकास किया इस प्रकार जो जीवन मानव का कुठित हो चुका था जिसमें किसी प्रकार की जान नहीं थी उसमें भी उत्साह तथा प्रीति की ध्वनि उमड़ पड़ी इस प्रकार

साहित्य में सम्पूर्ण राजनीति के तत्त्व कार्य कर रहे थे। काव्य के वन्तर्गत भी स्वतन्त्रता सम्बन्धी कविताओं का प्रकाशन हो रहा था तथा गद्य में भी ऐसे निबंध तथा कहानियाँ लिखी जा रही थी जो जन साधारण की भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य की ओर प्रेरणा दे। इस प्रकार इस युग में राजनीति विचार धारा तथा कहानी साहित्य मुजावलों में मुजायें हाँककर एक दूसरे के साथ चल रहे थे ज़िन्दगी तो साहित्य की समाज का जीता जागता दर्पण कहा गया है। अधिकतर कहानियाँ इसी युग में लिखी गईं और जो समाज की वास्तविक परिस्थिति थी उसका जीता जागता चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ।

वास्तव में उर्दू कहानी "कवध फैन" (१८७७) नामक फ़ा में प्रकाशित होती थी क्योंकि कवध फैन नामक फ़ा में "बर्त", "पौली", मुहर्रम, सब्बेवरात आदि त्यौहारों के ऊपर लेख लिखे जाते थे और उनका लिखना इस ढंग का था कि प्रतीत होता है वह किसी की कहानी का चरित्र चित्रण कर रहे हैं। नवाज और नवावजादों के विषय में इन पवित्र कवसरों के चित्र "कवध फैन" फ़ा में निकलते थे। मुन्शी सज्जाद हुसैन भी फ़ा में एक कालम लिखते थे। इस फ़ा का खिताब *أمر* प्रतिदिन के कट्टरवादिता पर आधारित था और इसी फ़ा के द्वारा कहानी कला का विकास हुआ। मुन्शी सज्जाद हुसैन का महिस्ताखों के प्रति लिखने का ढंग उनकी समायें तथा बैठकों का प्रदर्शन होना दिताया गया है। उनकी समस्याओं की हमें वही बच्चे वाली किताब "ग़िलज़ार", तथा मुन्शी ज़्याला

प्रवाद पक्ष का सुनुना रोज़ी कब्र

دلنا بگوئے

* तथा सिन्धु की देखी

कहता है सब्जे तबे पार यह सब कहानी के एो फलसे रूप थे ।

जसी प्रकार मियाँ मन्नु बेगु पितम जुरीफ का बजाव नार तथा जनकपट्टेस वीर मियाँ बीबी खै गात का वर्तनर* ये कहानी फला की ताकतियाँ थी । जन्मे पात्र ही है परन्तु पयानक नहीं, पति पत्नी का चरित्र विकास तथा वाफ़ी मन मुटाव तथा मोलू नाकरानियों के भगदड़े तथा अपनी फौरियों से ज़ूरी सलानुधति Vagene Rabbanna. Azab-ān. nar

* मैं दिताया गया है । जन्मे लंदर हास्य रस का फुट नहीं है वीर थे भी साहित्य के बामुखण गिने जा सकते हैं । * पात का वर्तनर* को एम कहानी का नाम दे सकते हैं क्योंकि जन्मे कथानक है । जन्मे * रंदा * शब्द से कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और स्थिति बड़ी पयानक हो जाती है । वन्त मैं समस्या का समाधान जब होता जन्मे कि यह विदित होता है कि * रंदा * पछिला का नाम बड़ी है वरन् रंदा है (Subscription)

)। इस कहानी का वार्तालाप बहुत वाकबर्क तथा रोज़क है । नवाव सई जहमद की * नई रौशनी की डिक्शनरी * और * नई रौशनी के नाम बरखस बायाम * और * पुरानी रौशनी के नये पयाम * भी कहानियों के वन्तर्गत जाते हैं । * नई रौशनी की डिक्शनरी * में पश्चिमी जीवन के दैनिक शब्दों का वर्णन है । जैसे - * पाया * की छुट * बादि उनकी कथावरगु तथा चरित्र निवण स्वाभाविक ढंग से वर्णन किया गया ।

* कथ पत्र * पत्र की उर्दू कहानी और उपन्यास के क्षेत्र

के विकास में उतना ही ज़रूरी महत्वपूर्ण स्थान है जितना कि अठारहवीं शताब्दी में स्फ़ैटेटर तथा टैन्टलर का। अंग्रेजी साहित्य के उपन्यास तथा कहानी साहित्य के विकास में। अथर्व पत्रिका ने उर्दू कथा साहित्य का धीगणेश करने में अपना योगदान दिया है। ऐसे पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन का भी साहित्य में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। सज्जाद हैदर फ़तुम ताबा एतान निज़ामी, सुल्तान हैदर ख़ाँ, अब्दुल मजीद तान सादिक और राशिद उल शैरी के कार्यों का परिचय मज़हूँ

Makrazam नामक पत्रिका के पृष्ठों से हुवा। इसी प्रकार तमझूँ कल्लश दीन दुनिया, जमाना वदीय, दुर्रेश वादि पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं।

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशान्धियों में उर्दू कहानी का श्रेष्ठ काल था। इस युग में सबसे अधिक प्रचलित नाम सज्जाद हैदर मल्हाम का था। उनकी छोटी छोटी कहानियाँ फ़ताना के नाम से विख्यात थीं। यह सब कहानी रोमान्टिक थी और प्रेम पर आधारित थी जैसे उला और मज़हूँ। ये आधुनिक उला और मज़हूँ वही हजारों वर्ष पहले थे। सज्जाद हैदर ने अधिकतर रोमान्टिक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें कल्पना और काव्य कला के दर्शन होते हैं। "ख़ासिस्तान" उनकी रोमान्टिक कहानियों का संग्रह है।

प्रेमचंद निरदिष्ट उर्दू के सर्वप्रथम तथा महान कहानीकार हैं। कहानी का जो रूप है वह सर्वप्रथम मुन्शी प्रेमचंद ने ही दिया तथा कहानी की जो विशिष्टताएँ तथा जो कहानी में तत्त्व होने चाहिये वह कला

मुन्शी प्रेमचंद ने ही सितार्ह । उनके इस ३२ साल के मध्य में कहानी अपनी सम्पूर्ण मंजिलों से गुजरती दितार्ह देती है । वास्तव में उनकी जीवन की कला का मोड़ एवं संग भील कहना चाहिये । प्रेमचंद की कहानियाँ कहानीकार की शैली का पूर्ण इतिहास है । किस प्रकार कहानी का भी गणेश हुआ तथा किस प्रकार कहानी अपनी पथ पर चलती हुई जहाँ पर पहुँची है वे सब कहियाँ मुन्शी प्रेमचंद की कहानियाँ में मिल जाती हैं । प्रेमचंद ने इस युग में जितनी कहानियाँ लिखी वह इन कहानियों के पहिले संग्रह "सोढ़े वतन", में प्रकाशित हुये या "प्रेम पचीसी" या "प्रेम बचीसी" में । इसके पठन पश्चात् प्रेम बचीसी संग्रह में कहानियाँ छपी । "वारदात", "जासिरी तीरफा", "हृद की कीमत", "खावो ख्याल", "पादो राह" आदि कहानियों के संग्रह हैं । कहानी की वाप इनकी प्रवृत्ति है वह अपने शैशवकाल में भी जब मुन्शीजी ने इसकी प्रारम्भ किया था वास्तव में मुन्शी जी ने कहानी को एक नवीन रूप प्रदान किया । मुन्शी प्रेमचंद अपनी कहानियों की कथानक के सिर गाँवों में प्रमत्त करते थे तथा ग्रामीण जनता के जीवन की उनकी दशाओं का गहन अध्ययन करते थे जिसे वे अपनी कहानियों का विषय *Theme* चुन सकें । यह पूर्ण रूप से किसानों, निम्न तथा मध्यम वर्ग के मनुष्यों को सब अच्छी प्रकार से जानते थे । वह उनकी कमजोरियों, संघर्ष, फुसलाव, वैधविरवास, बाराये, धार्मिकता आदि से पूर्ण परिचित थे किसानों का ई गस्तिष्क उनके लिये एक हल्की किताब था तथा उनके प्रत्येक हृदय की गतिविधियों से पूर्णरूपेण विज्ञ थे । उनकी कहानियाँ "प्रेम पचीसी, प्रेम बचीसी, वारदात, जादो राह" में

जो संश्लेषित है, ग्रामीण जीवन का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है तथा उनकी
 ओर से एक सुन्सी प्रेमबंद बकालत करते हैं। निर्धन व्यक्तियों की निर्धनता
 जो उनकी ईमानदारी के रास्ते से छ्हर उधर हुलाती है सुन्सी प्रेमबंद की
 कहानियों का मुख्य विषय है। परन्तु निर्धन व्यक्ति ईमानदार हैं वे
 अपना विश्वास नहीं खोते। यद्यपि वे कभी पात्र नहीं रहते। मिल मात्कि
 हजारों मजदूरों की रोटि लेकर शान्ति से सो सकते हैं सेठ साहूकार बन्धि
 व्याप पर रुपया देकर उनको ब्रुस सकते हैं परन्तु इन निर्धन ग्रामीण
 किसान तथा बन्धि का हृदय इन लोगों से बन्धि कोमत होता है। ये
 ग्रामीण कृषक तथा बन्धि जीवन पर्यन्त तक वाराम नहीं लेते हैं। परन्तु
 ये अवैतनिक तथा अवैधानिक उपायों को अपने कार्य में नहीं लाते। यह सुन्सी
 प्रेमबंद की प्रारम्भिक कहानियों का विषय है। "ईमान का फौसला"
 इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। "ईमान का फौसला" नामक कहानी एक
 सजीव कहानी है। भाल हुंवर, सेठ नारायण लाल एवं उसकी ईश्वर में
 वात्सा रहने वाली पत्नी कीर्ति माँ का चरित्र बड़े सजीव ढंग से सुन्सी जी ने
 खींचा है। यह वात्सा कीर्ति बाबाकी का संघर्ष है। वन्त में माँव हुंवर
 प्रश्न करती है :- "ईमान से बतावो गाँव किसको" तो सेठ नारायण
 बेईमानी को झोढ़कर ईमानदारी पर जाता है और कहता है "बापका"
 इस प्रकार वात्सा की विजय होती है। इसी प्रकार "दुर्गा का मंदिर"
 तथा "जेवर के छेँ छिन्ना" में भी ग्रामीण तथा कृषकों की ईमानदारी
 के दर्शन होते हैं। यह प्रेम बगीची में संश्लेषित है। इस प्रकार इनकी प्रार-
 म्भिक कहानियाँ "सौजे बतन" में या "प्रेम पच्चीसी या प्रेम बगीची" में

संग्रहीत है। इन कहानियों को पढ़ने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सुन्ही प्रेमचंद पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति को अपने देश की सभ्यता तथा संस्कृति के लिये पातक समझते हैं। प्रेमचंद को भी इन पश्चिमी देशों के मनुष्यों विशेषतः अंग्रेजों से घृणा थी तथा अपने देश के भोले भाले ग्रामीण श्रमिकों के हिमायती थे, वे गरीबी को अच्छी तरह जानते थे। किस प्रकार जमींदार, सातूकार इन निर्धन किसान तथा श्रमिकों के प्रति व्यवहार करते हैं, जानते थे। उन्होंने कहानियों के द्वारा पाठकों के हृदय में यह बात बैठाने का प्रयत्न किया है कि हमारे देश की भूमि अपनी लाकड़ों के सर्व सौन्दर्यशाली है कि उसको हम अपने वर्तमान जीवन में रोशनी राह बनावें तो हमारा जीवन प्रत्येक ओर प्रकाशित हो जावे।

“रानी धार्या” और “विक्रमादित्य का तेगा” इसी प्रकार प्रयत्नों के उदाहरण हैं - इन दोनों कहानियों में देश प्रेम मरा हुआ है। इसलिए प्रेमचंद की ये कहानियाँ जो प्रेम पक्कीसी और प्रेम बगीची में प्रकाशित हुई हैं देश प्रेम से बहुत प्रीत हैं, यह वह प्रण है जब पश्चिम अपनी तारी चालाकियों से पूर्व की संस्कृति को नष्ट करने पर तुल हुआ था तथा कल्याण-चार कर रहा था। भारतवासी इस स्तरे का ऐतान कर रहे थे जो पूर्व और पश्चिम के बीच उठ खड़ा हुआ था। इस प्रकार भारतवर्ष की संस्कृति नैतिकता का फल स्पष्ट दिखाई दे रहा था उस समय प्रेमचंद ने अपनी बेस्ती से कहानी को लिखकर वे चित्र प्रदर्शित किये हैं ताकि हम अपनी महात्ता में तल्लीन होकर किसी ओर भी वसि उठाकर न देखें। राजपूतों का जीवन, भारतवर्ष के ग्रामीणों का जीवन तथा नागरिकों का जीवन में जो कुछ अच्छा था वह अपनी प्रारम्भिक कहानियों में दिखाया है। प्रेमचंद ने जीवन की एक विषय परिस्थिति को अपनी प्रारम्भिक कहानियों

का बाधार बनाया है। तथा अपनी एक उच्च बाधाएं उन ग्रामीण तथा पत्रिकों के हृदय में फैक दी जिससे ये जमींदार साहूकार तथा छोड़ों के धोखों से सचेत हो जावें।

ऐसी कहानियों में जिनको हम दास्तानों की श्रेणी तथा समाज के वर्तमान बताते हैं प्रेमचंद ने १९०५ और १९०८ के मध्य लिखी थी। जिनमें से प्रथम कहानी "दुनिया का जनमौल रत्न" है। पाँचवीं और अन्तिम "एक दुनिया और हुबेकतर", "दुनिया के सबसे जनमौल रत्न", "एक दुनिया", "हुबेक वतन" १९०६ और अगस्त १९०८ में रिवाते जमावे में प्रकाशित हुए और जनाना प्रेस ने उन पाँच कहानियों का संग्रह "सौजे वतन" के नाम से १९०९ में प्रकाशित हुए। परन्तु कुछ ही महीने बाद "सौजे वतन पुस्तक" जब्त कर दी गई तथा सरकार के वर्णन कर दी गई क्योंकि ब्रिटिश सरकार को उन कहानियों में राजद्रोह की भावना दिखाई दे रही थी। "सौजे वतन संग्रह" कला की दृष्टि से उच्च संग्रह का जो भारतवासियों के हृदय की स्वतन्त्रता बर्बर की और तथा भारत माता के प्रेम में आत्म विभोर गद्गद तथा तल्लीन करना चाहता था। जिस समय यह लिखा गया मुन्शी प्रेमचंद जिला हमीरपुर में एक डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स थे और अपनी कहानियाँ मुन्शी धनपतराय के नाम से प्रकाशित कराते थे। जून १९१० तक जितनी भी चीजें "जमाने" में प्रकाशित हुईं नवाब राय के नाम से हथी परन्तु नवाब राय नाम छोड़कर मुन्शी दयाराम निगम के कहने से प्रेमचंद का नाम स्वीकार कर लिया क्योंकि उनकी पुस्तकों पर ब्रिटिश सरकार ने रोक लगा दी थी। अगस्त

और सितम्बर के महीने में उनकी मशहूर कहानी रानी सारधा प्रकाशित हुई
 तो इसमें उनका नाम प्रकाशित नहीं था। "विक्रमादित्य का तेगा" प्रथम
 कहानी है जो प्रेमचंद के नाम से जनपरी अन् १९११ में प्रकाशित हुई। यह
 वह युग है जिसमें प्रेमचंद ने "रानी सारधा" तथा "विक्रमादित्य का तेगा"
 के बरफ खतिरिज" सर दरवेश", "करिमा जवाब", "राजा हरवीर",
 "बंकिम मशहूर", "वाहे वैक्स", "मनाऊँ और राजहट वादि कहानियाँ
 लिखी। मुन्शी प्रेमचंद ने स्वयं लिखा है। "प्रत्येक जाति का संस्कृति और
 साहित्य अपने युग का वास्तविक चित्र होता है जो विचार उस कौम के
 मस्तिष्क और हृदय में भूँकते हैं वह सब और काव्य के पृष्ठों में ऐसे स्पष्ट
 होते हैं जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब। हमारे साहित्य का प्रारम्भिक काल वह था
 जिसमें कि मनुष्य गफलत के नशे में मस्त थे का काल में गजलों और कुछ
 कहानियों के सिवाय कुछ नहीं था। दूसरा चरण बताया जबकि प्राचीन
 और नवीन विचारधारा में जीवन और मौत का युद्ध प्रारम्भ हुआ और
 समाज में कल्याण की भावना की नींव सुनाई दी इसके जगह एक पैर और
 बढ़ा जबकि मानव के हृदय में देश प्रेम की भावना की लहर उठने लगी और
 इसका प्रभाव साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देने लगा। हमारे देशकी उस
 समय ऐसे साहित्य की आवश्यकता थी जो देश प्रेम की जाग मनुष्य के हृदय
 में जागृत करे। मुन्शी प्रेमचंद की "सौदे वतन" की चार कहानियाँ इसी
 पर आधारित हैं।

"दुनियाँ का सबसे अनमोल रत्न" एक नवयुवक की
 वास्तविक प्रेम की कहानी है। प्रेमी की प्रेमिका रानी उसे इस रत्न पर

अपनी दासता में तेना स्वीकार करती है कि वह दुनिया की सबसे कमूल्य-
 वान वस्तु उसकी भेंट करे। वह उसकी सौज में घुमता फिरा और सोचने
 लगा कि विश्व की सबसे कमूल्यवान वस्तु क्या है ? एक स्थान पर उसने
 देखा कि एक वादमी को फाँसी दी जा रही है। फाँसी जिसकी दी
 जा रही थी उससे अपनी अन्तिम कृपा पूरी करने के लिए कहा। पास
 में ही रखे हुये एक नन्हे से बच्चे को लेकर वह गोद में लेकर प्यार करने
 लगा। इस समय उसकी लॉस से एक लॉस की छूँद गिर पड़ी। प्रेमी ने
 उस लॉस की छूँद को अपने हाथ में ले लिया और अपनी प्रेमिका के पास ले
 जा कर दिया। उसने इसे दुनिया की कमूल्यवान वस्तु नहीं माना। इसके
 उपरान्त वह प्रेमी एक जंगल में जा रहा था जहाँ एक सुनती अपनी पति की
 लाश लेकर चिता में बैठी हुई थी, कुछ ही क्षण में जग की लपटों में
 इसका सुन्दर मुँह नष्ट हो गया। इस प्रेमी ने उससे एक छुट्टी पर
 लाक लेकर अपनी प्रेमिका के पास ले जाकर दी, प्रेमिका ने उत्तर दिया
 कि दुनिया की कीमती वस्तु अवश्य है परन्तु सबसे वैश्वकीमती वस्तु नहीं
 हो सकती। इस प्रेमी की सम्पूर्ण शक्ति निष्फल रही और निराशावाँ
 में गीते लगाने लगा। एक बार फिर उसके हृदय में प्रेम की चिंगारी फूटी
 और फिर वह प्रयत्न करने लगा परन्तु इसलिये प्रयत्न करने पर भी कोई
 युक्ति हाथ नहीं आई और सोचा कि इस जीने से तो माना ब्रह्मा है
 इसी समय किसी राहगीर ने इसे बताया कि जा पवित्र भारत भूमि में तेरा
 सत्यपूर्ण होगा। यह प्रेमी रेगिस्तान और नदियों को पार करता हुआ
 पवित्र भारत भूमि में जा पहुँचा जहाँ एक मैदान में असंख्य पृथक बिना रुकते

के लगे हुये दृष्टिगत हुये । उस दृश्य से प्रेमी का हृदय दहल गया । उसने पास से कराहने की ध्वनि बाँध, देखा कि एक युवक है जिसके शरीर से रक्त का फव्वारा निकल रहा था और हाथ में तलवार । प्रेमी ने पूछा कि कौन है ? उस युवक ने उत्तर दिया - " वया तू नहीं जानता कि मैं कौन हूँ, वया तूने उस तलवार की काट देखी, मैं अपनी माँ का बेटा और माँ का हृदय का टुकड़ा हूँ । " यह कहा और तलवार पर हाथ मारा । प्रेमी ने कहा ये युवक मैं तेरा कौन शत्रु नहीं, एक विदेशी हूँ । यह सुनकर उस घायल सिपाही ने मोठी वाणी में कहा - " तू यहाँ बैठना " चौड़ी देर में उसकी बातें बंद हो गईं और उसके मुँह से निकला - " माँ की जे " उसके साथ ही रक्त की अन्तिम धूँद सीने में बाहर निकल बाँध । प्रेमी ने उस रक्त की हाथ में लिया और रानी के हाथ में वह रक्त की धूँद रखकर सम्पूर्ण गाथा वर्णन की । सभी कहानी पूरी नहीं होने पाई थी पलका पदाँ छटाकर बाहर जा गई और बोली - " हे वासिष्ठा जा निहार तू मेरा वाका है और तेरी कनीज़ ना चीज़ " यह कहकर एक सन्दूक था मंगाया और उसमें से एक लौह निकाली । लौह पर जाड़े पुर से लिखा हुआ था ।

" वह वासिष्ठी कतरा हूँ जो वतन की विकाङ्क्ष में गिरे, दुनियाँ की सबसे बेशकीमती है है । " यह कहानी १२ पृष्ठ से भी कुछ कम है परन्तु ये १२ पृष्ठ प्रेमवर्ध ने हृदय की रक्त से लिखे हैं । इस कहानी में प्रारम्भ से अन्तिम तक वर्णन शैली अपनी उच्च कौटि की है कि जोश और

उत्साह से पूर्ण है। कभी कभी तो इस भाँति-भावत में इसके पेर स्वयं लड़-
खाने लगते हैं। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक कोई कहानी नहीं
वरन् उपन्यास पढ़ रहा है। इस कहानी के एक एक शब्द में दर्द दिल की
गूँच सुनाई देती है। कहानी राजनैतिक विचार धारा से वीत-प्रीत है।
कहानी का पहला भाग वीर भी अधिक उजम है जबकि प्रेमी विदेशी है वीर
भारतीय धायल सिपाही ने उसे अपने पात्र में बिठा लिया है उस समय
इस भारतीय सपूत के मुँह से भी एक शब्द निकलता है वही प्रेमचंद के सच्चे
हृदय के उद्गार हैं। “भारत माता की जे”। सबसे ५० वर्ष पूर्व यही
संसार कलक्टर साहब को सैडीसन (राजनीति) पिलाई दिया था। क्योंकि
इसमें इन्कलाव की मात्तक थी इसलिए यही ठीक समझा गया कि इस
किताब की सम्पूर्ण प्रतियाँ जप्त कर दी जावे। “जेल मस्मूर” में भी उस
स्वतन्त्रता के बलिदान की मात्तक स्पष्ट है। “वही मेरा वतन” यह
सबसे छोटी कहानी है। इसमें लेखक ने बताया है कि किस प्रकार एक व्यक्ति
६० वर्ष अमेरिका में रहकर अपने प्यारे देश में जाया है। अमेरिका में
सम्पूर्ण चीजें उपलब्ध होती हुये भी उसके दिल में देश-प्रेम कबला तीव्र
थी वह अपनी देश-प्रेम की इच्छा को लेकर बम्बई जब उतरा वीर वहाँ
के जीवन में परिचयी रंग देता तो इसकी बातों में बाँसु भर जाये वीर वह
तड़पकर यह कह उठा- “यह मेरा प्या देश नहीं, मेरा प्यारा भारत
नहीं।”

प्रेमचन्द ने अपनी ही कहानियों में देश-प्रेम को जिस
रंग से व्यक्त किया है उसमें मुकाम बल्लि है। परन्तु इस कहानी में हमें

यथार्थ के दर्शन होते हैं। हमारे फौजड़े, हमारे ग्रामीण भाएँ, अपना देश, फितना प्यारा है। यहाँ फल्लों और गढ़ों ने फौजड़ी, चौघात, बरगद की छाया, गंगा के पवित्र किनारों ने ली है। सादा जीवन ने लेस्क के वण्डू वर्णन पर भी अपना वचित डालकर उसे भी अपने ढंग से रंग लिया है। यही कारण है कि इस कहानी की गति बड़ी तीव्र है और विचार अपने आप आगे बढ़ते रहते हैं और इसका प्रभाव इतना गहरा होता जाता है कि लेस्क और पाठकों के हृदयों में देश-प्रेम की भावना बागृत हो जाती है।

चौथी कहानी "शेले मातम" गत तीनों कहानियों से भिन्न है। इसमें नैतिकता के दर्शन होते हैं परन्तु अधिक उच्च कहानियों में नहीं है। और अन्तिम कहानी का भी यही हाल है। "एक दुनिया" और "जन्म वतन" का है। इस कहानी का भी उद्देश्य भी देश-प्रेम ही है।

"शेले मातम" कहानी की छोड़कर शेष कहानियों में एक ऐसे वास्तविक सच्चे, दर्शनमय नैतिकता तथा प्र देश-प्रेम की आत्मा फवलती और तडफती दृष्टव्य होती है। दे०००प्रे००० देश की स्वतन्त्रता तथा देश-प्रेम की भावनाएं इन कहानियों में निहित हैं। इन कहानियों में Sadition प्र देशप्रीति की भावनाएं क्यों और क्यों की दिलाई दी। वह इनकी संडीतन की समझता है और इसे ज्यत करने के उपरान्त वह यह समझता है कि अब इनकलाब नहीं आवेगा। इन प्रश्नों का उत्तर कीमी जिन्दगी के इस समाज ने दिया है जिसमें एकर प्रेमवद ने यह बार कहानियाँ लिखी थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू और मुसलमानों

दोनों का जीवन अधिक कष्टमय था तथा कुछ नेताओं ने भी यह महसूस
 किया कि अंग्रेजों ने अपनी राजनीति से जो भारत के इतिहास पर गुलाम्मा
 साजी की है। इससे भारतवर्ष के बच्चों के हृदय पर बड़ा बुरा प्रभाव
 पड़ रहा है और जागे जाने वाली पीढ़ियों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा
 और उनकी आत्माओं तथा दिल पर यह शासन धीरे धीरे अपनी संस्कृति
 की छाप छोड़ रहा है। डॉ. गोस्वामी, तिलक, रानाडे तथा राजगुरु
 ने अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी में ऐतिहासिक निबंध लिखना प्रारम्भ किया और
 अपनी इतिहास की और अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया।
 इसका प्रभाव देश के नवयुवकों पर यह पड़ा कि उन्होंने भी कुछ ऐतिहासिक
 निबंध लिखे जिनको पढ़कर देश के विभिन्न वर्गों में इस देश की महानता
 तथा देश प्रेम का संचार हो सके। इस युग के सम्पूर्ण वैज्ञानिक तथा साहि-
 त्यिक रिश्तों में ऐसे ऐतिहासिक निबंध तथा कविताएँ देखने में आती हैं
 जिनका उद्देश्य देश भक्ति को पैदा करना है। प्रेमचंद ने इस युग में कथा-
 नियों के अतिरिक्त कुछ निबंध भी लिखे हैं जिनमें देश प्रेम की भावना
 निहित है। भारतवासियों के हृदयों में देश प्रेम का संचार पैदा करना अंग्रेजों
 के लिये एक ऐसी वस्तु थी जिस पर अंग्रेज सरकार का तिलिना एक
 प्राकृतिक बात थी जो दुनिया की समस्याएँ तथा पन्न पामलों की समस्या
 से और बाकी बहुत समझने का दावेदार है। इन तैलों और कहानियों
 से बाँसला उठा उसने यह सोचा कि यदि ये कहानियाँ तथा निबंध जला
 दिये जायें तो भारतवासियों के हृदय में जो देश प्रेम के बीज धकेले गये हैं
 बुझ जायेंगे जिससे जागे बतकर आन्ति की चिंगारियाँ निकलने वाली हैं

इसलिए इन वंगरेज वफादारी की इन कहानियों में सेहीशन दिखाई दिया
 और प्रेमचंद का प्रथम संग्रह 'सौजे बदन' देश के प्रेम तथा स्वतन्त्रता के
 नाम पर बलिदान हुआ। इससे देश प्रेम रूप होने के बजाय और बढ़ि
 हुए और प्रेमचंद ने अपने नाम से जो कुछ लिखा वह छुट्टु सुलकर लिखा।
 प्रेमचंद के बाद जो कहानीकार हुये हैं वह किसी न किसी प्रकार प्रेमचंद
 से प्रभावित अवश्य हुये हैं। प्रेमचंद की कहानियों में कौमी जिन्दगी के
 दिल की हल्की से हल्की धड़कन भी सुनाई देती है यहाँ तक कि जब
 उसकी गति तीव्र हो जाती है तो 'बासियाँ बरवाद' जैसी कहानियों
 के रूप में हमारे समक्ष आती हैं। सन् १९३९ में प्रेमचंद की कहानी
 'बासियाँ बरवाद' और उनकी कहानियों के संग्रह 'सुमर मा तेरा'
 के साथ शासन ने बहुत बुरा व्यवहार किया तथा जूत कर दिया।
 वास्तव में देखा जाय तो मुन्शी प्रेमचंद की मानव प्रकृति के समझने का
 गहन अध्ययन है। वह किसन मजदूर के हिमायती तो थे ही साथ ही साथ
 जमींदार, साहूकार, वंगरेजों के व्यवहार से भी पूर्ण परिचित थे। समाज
 के व्यापार उनकी कहानियों के विषय है। जब सविनय अवज्ञा आन्दो-
 लन पूर्ण अपनी चरम सीमा पर था मुन्शी प्रेमचंद ने समाज के अन्दर जो
 बुराईया थी उन पर काफी कहानियाँ लिखीं। 'बासिरी तौहफा',
 'बासियाँ बरवाद', 'दामिल का कैदी' ऐसी ही कहानियाँ हैं। मुन्शी
 प्रेमचंद के अन्तिम कहानियों में हरिजन आन्दोलन की गूँज सुनाई देती है।
 परन्तु 'कफन', 'दूध की कीमत', 'निजात' में मुन्शी प्रेमचंद की उच्च-
 कौटि की शैली के दर्शन होते हैं। 'निजात' कहानी में बहुतों और

ब्राह्मणों का वाक्की मतभेद है । बहुत ब्राह्मणों को ऐश्वर की तरह देखते हैं और ब्राह्मण बहूतों की सेवा के लिए ऐश्वर ने बनाया है, समझते हैं। वास्तव में देखा जाय तो मुंशी प्रेमचंद ने उर्दू कहानी को उच्च स्थान पर लाकर खड़ा किया । वाज-कल तो कहानी कला को भेय है वह मुन्शी प्रेमचंद की ही कारण है । -

" Premchand raised the Urdu Short story from insignificance into prominence. He gave it substance dignity and character. The popularity which the short story enjoys today is due to Prem Chand.

मुंशी प्रेमचंद के सम्कालीन कहानीकारों में सुदर्शन का कार्य सराहनीय है । सुदर्शन की कहानियों का संग्रह "सदा बहार फूल" में प्रकाशित हुआ जब कि वह केवल २६ वर्षों के थे । यह बड़ी सीधी सीधी सरल घरेलू कहानियाँ हैं । वह भी प्रत्येक दिन के जीवन से अपनी कहानियों का कथानक लेते हैं उनके चरित्र भी समाज से सम्बन्धित हैं जिस प्रकार कि मुंशी प्रेमचंद के । सुदर्शन अपनी कहानियों में सुधार की भावना पर विशेष जोर देते हैं । मुन्शी प्रेमचंद का उद्देश्य सुधार की यह भावना के साथ ही सदा कहानी उन्होंने कहानी के लिए ही लिखी है । सुदर्शन कहानीकारों के मध्य में इस लिए प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं "योंकि वह मुन्शी प्रेमचंद के प्रथम अनुयायी हैं । "सदा बहार फूल" संग्रह में "छाफ की कुत्ती", "नमक सार", "चूँचूँ माँ की ममता" में मानव के लिये न्याय वन्य वस्तुओं की बपेक्षा अधिक प्रिय है और प्रत्येक परिस्थिति में वे अपनी सब्दों रहते हैं और माँ का प्यार जमा कर देता है और भूल जाता है ।

गरीबी, आह, रजौराहत में न्याय वन्याय का परिणाम बुरा होता है। पापी कुछ दिन तो - आनन्द प्राप्त कर लेता है। परन्तु अन्त में सत्य की विजय होती है। अच्छी बीज का परिणाम अच्छा होता है चासक तथा चासाकी दृष्टि होती है। "रैतान का हथियार", परमात्मा के नाम नामक कहानी में कल्पना का कुछ अधिक है। यह उनकी प्रारम्भिक रचना है। बाद की रचनाओं का संग्रह "वहारिस्तान एवं बैंगाल की बीती" में भी कथानक की रचना में कहानीकार की अनुपम शान है। अन्य कहानियों में भी सुन्शी प्रेमवद की शैली से सुदर्शन प्रभावित है। "सौलह सिंगार" जो सुदर्शन का सघन बाद का प्रकाशन है, समाजवाद की गूँज सुनाई देती है। इसमें "मजदूर शक्ति का नशा", तर्ज अमृत" में सुदर्शन ने मजदूर तथा गरीब किसानों की सङ्घर्षकारी तरफदारी की है। अर्थात् सुदर्शन ने भी ग्रामीण जीवन की ही अपनी कहानी कला का क्षेत्र चुना है। उनका ग्रामीण वातावरण पत्नी, अब्बास हुसैनी और वाजुहत्त रौबी से भिन्न है और उनका उद्देश्य राजनैतिक और रोमानी वातावरण की बड़े-बड़े अपेक्षा मानव का जीवन है। अतः उनकी कहानियाँ ग्रामीण कहानियाँ होने के अतिरिक्त दूसरों की कहानियों से भिन्न है।

प्रेमवद का अनुकरण करने वाले कहानीकारों में अहमद नहीम कासिमो और अली अब्बास हुसैनी हैं। अहमद नहीमकासिमो का कहानियों का संकलन चौपास और अली अब्बास हुसैनी का काँसी

स० "दोनों ही बड़े रौबक ढंग से लिखे हैं। खली बख्शमाए हुसैनी की कहानियों के संकलन "बाईंसी०स०" योसै०छि०बड़े में २४ कहानियों का संकलन है जो ग्रामीण तथा श्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं। ये कहानियाँ हिम्मत, ईमानदारी, देश भक्ति से जीत प्रीत हैं। "मिलाप" दो शरीफों का मुलापिला खूब रीस करीम की नफरत का हृदयिक फगड़े को साधारणतः गाँवों में प्रचलित है, दिखाये गये हैं जो कि गाँवों में प्रायः होते रहते हैं। "बैलों की जोड़ी", "ग्रामीण चालकों" की रुचिकर छोटी कहानी है।

बाईंसी०स० संकलन में जो कहानियाँ लिखी गई हैं वह भी ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं। मिस्टर बहीद बाईंसी०स० जब अपने गाँव पहुँचता है तो वहाँ भाई के खान पात रहन सहन को देखता है तो उसका हृदय प्रवीभूत होता है। "दिल की वाग", "पिया की जोगन" अच्छी ढंग से ग्रामीण किसानों से सम्बन्धित लिखी गई हैं।

अहमद नसीम कासिमी की कहानियों का संकलन "चीपास" भी ग्रामीण जीवन से ही सम्बन्धित है परन्तु खली बख्शमाए हुसैनी से थोड़ी भिन्न है। हुसैनी का उद्देश्य ग्रामीण जनता का सोधा तथा मोलाफ, ईमानदारी, ग्रामीणों का रहन सहन, सुख और दुख की घटनाएँ वर्णित उनके पूर्ण जीवन पर प्रकाश डालना है। कासिमी का उद्देश्य ग्रामीण जनता का करुणा पूर्ण जीवन तथा उनका माप उनकी दीनता, अज्ञानता, धनिकों के द्वारा लोचण, निः सहाय जीवन का चित्र सीधा है।

कुछ लोगों का ऐसा विचार था कि यू०पी०

में उर्दू का विकास अधिक है। तब: यह परम्परा प्रचलित हो गई कि जो कौंच भी अपनी कहानी लिखे उसकी कहानी का विषय उतर प्रदेश को कवर करना होना चाहिए तथा कदाचित् मुहाविरे रीति-रिवाज, दिल्ली, आगरा, मुरादाबाद के आसपास के ही में यहाँ तक कि मुन्शी प्रेमचंद तथा उन्हे उनके फन चिन्हां पर चलने वाले कहानीकारों ने भी इसी परंपरा का निमाया करीर सुस्थतः यू०पी० के ग्रामीण जीवन का ही अधिक चित्र खींचा। उर्दू साहित्य में कासिमी ने पंजाबी ग्रामीण जीवन का भी चित्र खींचा। क्योंकि उर्दू समस्त भारतवर्ष की भाषा काफी करी है एह हुकी है यू०पी० की ही केवल नहीं। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य की भाषा प्रकाशन होना अत्यन्त आवश्यक है। "गैरत मंद वेटा" में कासिमी ने धनवान और गरीब का संघर्ष दिखाया तथा "धेगुनाह" में किसानों के चरित्र चित्रण, उत्साह, प्रेम तथा वैधानिक नियमों की अज्ञानता पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। इसी प्रकार "देहाती डाक्टर" कहानी में कासिमी ने बताया है कि किस प्रकार गरीबों को सलाह जाता है तथा किस प्रकार का दुर्व्यवहार किया जाता है। इसी युग में मुन्शी प्रेमचंद और सुदर्शन के साथ ही सुल्तान हैदरजोश, सज्जाद हैदर पन्थाम, न्याय फतहपुरी, राशद उलावैरी, मज्मूल गोरखपुरी, हिजाब इन्ध्याज खली वाज्ज कुरेवी आदि ने भी कहानियाँ लिखी।

सुल्तान हैदर जोश आर्थिक तथा सुधारक कहानीकार है। सुल्तान हैदर जोश ने अपनी सुधारक प्रवृत्ति की समाप्त के जीवन तक

ही सीमित रहा है और अपनी कहानियों के द्वारा मनुष्यों को यह पताने का प्रयत्न किया है कि पश्चिम और पूर्व में जो अन्तर मिलता है वह दो देशों, दो कौमों तथा संस्कृति और सभ्यता के कारण ही है। जब पूर्व वाले देश पश्चिम वालों की संस्कृति तथा सभ्यता को अपना लेते तो जो आज देश में अन्तर जा गया है भविष्य में और बड़ा भारी भिन्नता ही पायगी। सुल्तान हैदर जोश की कहानियाँ "फसाना जोश" के नाम से प्रकाशित हुये उन सबसे सुधार की भावना है और उनके पीछे उच्च कौमो संस्कृति तथा सभ्यता भी है। सुल्तान हैदर जोश की कहानियों में उनकी प्रवृत्ति तथा ऐली के भी दर्शन होते हैं जिनमें धार्मिक सुधार भावना फलक जाती है। उनकी कहानियों के संकलन में "हो नगी", "खावो जयाल", "बालमे उर दाए", सुधार भावना तथा कला की दृष्टि से अच्छी कहानियाँ हैं। मुंशी प्रेमचंद तथा जोश दोनों अपने (सुसलाद) उद्देश्य को याद रख कर लेते हैं अपना दृष्टिकोण देवत कलाकारी ही नहीं है वह देशों जीवन की प्रतिबिम्ब है, जिनमें सुधार भावना तथा राजनैतिक चिन्तन का समन्वय है और कभी कभी अन्कलाव (क्रांति की भावना) को सनाय और राष्ट्र के भीतर जागृति का देना- अन्का कर्तव्य है। जून १९०० में एक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसका सम्पादन नेतृत्व में (editorship) में हुआ। जोड़ी छोटी कहानियाँ प्रत्येक भाषा में पत्रिका के विकास के लिये लिखी गईं वहीं उर्दू साहित्य में हुआ। सैय्यद सज्जाद हैदर यत्दाम खाया हसन निजामी, सुल्तान हैदर जोश, अब्दुल मजीद खान शालिक,

एसीदुल सेरी, 'मसज्ज' नामक पत्रिका के पृष्ठों से ही जतता में विख्यात हुये। इसी प्रकार की पत्रिकाएं और हैं जिनमें 'तम्मगुन' का प्रकाशन राशीद उल सेरी, 'कल कला' सैय्यद हम्त्याज अली ताज ने 'दीन दुनिया' ज़हूर अहमद कश्शी एवं 'दरवेश' खाजा हसन निजामी के प्रबंधन में निकली। इन पत्रिकाओंका जीवन अधिक लम्बा नहीं था इसलिए इनकी कहानियाँ के साथ कोई अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु इन पत्रिकाओं में कहानी लिखने की भावनाओं का विकास किया और कहानियाँ अधिक और अधिक लिखने की कहानियों को प्रोत्साहित किया। प्रेमचंद के साथ ही सज्जाद हैदर पल्दरम का नाम जाता है। प्रथम तो इनकी कहानियाँ 'फसानाज' शीर्षक से प्रकाशित होती थी। सज्जाद हैदर की कहानियाँ रोमान्टिक तथा प्रेम से लीत प्रीत थी और उस युग के अन्य कहानकारों की कहानी भी घरेलू थी जो प्रेम के ऊपर आधारित थी। सज्जाद हैदर के कार्य मौलिक नहीं है वरन् उन्होंने दूसरी भाषाओं से मुख्यतः तुर्की भाषा को अपनी कहानियों में स्थान दिया है परन्तु उनका प्रत्यक्ष अनुवाद नहीं था। हाँ कथानक अवश्य तुर्की भाषा से लिया। शेष सभी मौलिक विचार धारा थी तथा उनकी स्वयं की कल्पना सज्जि थी। सज्जाद हैदर ने प्रसिद्ध लेला मज्नु नामक प्रेम की कहानी को लिखते लिखते और फिर से नवीन जन्म दिया। सज्जाद हैदर की अधिकतर रोमान्टिक कहानियाँ हैं। इनमें काव्य की प्रतिभा तथा कल्पना की शक्ति की अधिकता है। 'त्यालेस्तान' प्रेम की कहानियों में सबसे

वज्ज्या संकलन हू है ।

सज्जाद हैदर की सामाजिक कहानियाँ भी उसमें कोटि की हैं। " निकोस सानी", " बाजवावागे मुखबल", " सुहवते नागिनी" आदि सामाजिक कहानियाँ हैं । " हैर सुरैया की कहानी", " छजते दिल के सेवानेह ऊमरी", " रीवाये संगीन" रोमान्टिक कहानियाँ हैं और फ़रने लायक हैं ।

ख़ाजा हसन निजामी ने भी कहानियाँ लिखी हैं । धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक सुधारक के साथ साथ वह एक अपने समय में सफल पत्रकार भी है । " बेगमात के बार्सू या बार्सू की बूँदें", " लंगेजों की विफा", " भंग बीती कहानियाँ" अच्छी कहानियों के वन्तर्गत हैं । " बेगमात के बार्सू" और " लंगेजों की विफा" नामक कहानियाँ ग़दर की घटनाओं पर आधारित हैं तथा भंगबीती कहानियाँ शु. कल्पना के ऊपर आधारित हैं । " फाके में रौज़ा", " यकीम शहजादे की उंद" कहानियाँ हृदय को प्रवीभूत कर देती हैं ।

ख़ाजा हसन निजामी वास्तव में कलाकार हैं और वह कहानी कला से पूर्ण विज्ञ हैं । ख़ाजा हसन निजामी अपने युग का पूर्ण ज्ञान हैं जिसमें वे कहानियाँ लिखने जा रहे हैं । उन्होंने ग़दर के कारणों का सूत्र ब्ययन किया और सैकड़ों वादयियों से मिले । बहादुर शाह के छुट्टियों से भी मिले ।

राशिद उत्तरेरी ने बाद में तिसा और अधिकतर उपन्यास लिखे परन्तु कहानियाँ भी लिखीं। उनकी कहानियों की शैली उर्दू कहानियों की दिली उर्दू की तरह है। उनकी प्रारम्भिक कहानियों का प्रकाशन 'मौहर' 'उस्मत' तथा 'कतोर' वरक' में प्रकाशित हुआ। और बाद का प्रकाशन कई भागों में *Volume* जैसे 'सैलावे वरक', 'हुफाने वरक', 'बिलायती नन्ही', 'कसबे मशरिक' प्रकाशित हुआ। उन जिल्दों की माँग अधिक रही और जनता की माँग के कारण ही इनका प्रकाशन हुआ।

यद्यपि उन्मयाज बली ताज बाधुनिक कहानीकार है तो भी उन्होंने १९२५ से पूर्व भी बड़ा अच्छा कार्य किया है। इसलिये बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की दशाब्दियों में उन कहानीकार का नाम आता है। उन्मयाज बली ताज ने लेखन का कार्य १५ बरस की आयु में ही प्रारम्भ कर दिया था। उनकी सर्व प्रसिद्ध कहानियाँ इस युग में 'ताज', 'मासूम', 'बन्ना', 'सलमा' एवं 'तावारिस' बच्चा जब उनकी आयु २० वर्ष की ही थी उससे पूर्व ही लिखी गई थी। इसके बाद आप काश्मिरक हम्मान नाटक तथा अन्य कथा साहित्य की ओर हो गया। परन्तु उनकी कहानियाँ जो उन्होंने प्रारम्भ में लिखी थी टैक्नीक की कला के आधार पर सर्वोत्तम कहानियों की युवक लेखकों के पक्ष्य उनकी शैली से भी मुन्शी प्रेमचंद की शैली से मिलती है। पात्र भी अधिकतर ऐसे ही हैं जैसे प्रेमचंद के। 'बन्ना' कहानी मुन्शी प्रेमचंद की 'मुरी काकी' का स्मरण दिला देती है। यह कहानी इतनी उत्तम है कि पाठक इसको पढ़कर प्रवीभूत हो जाते हैं तथा

नेत्र व्युत्पन्न होकर प्रकाशित हो जाते हैं। इसी प्रकार "सावारिस बच्चा" का कथानक भी बहुत ही उत्तम है तथा उसके पात्र भी बड़े अर्थव्यवहारी हैं।

"Imtiaz Ali Taj is good at painting, loveliness and pathos. In 'Amma' he had admirably described the pathos of neglected old age. In 'Tara' he has shown the loveliness of a neglected child. Tara -because she has no looks, is neglected by her parents and humiliated by her sisters."

इसी प्रकार 'सलमा, मायूस, बिन माँ का बच्चा' बहुत ही कला की दृष्टि से उच्च कौटि की कहानियाँ हैं। 'हुसन की कीमत' और दूसरे उपकथानों प्रथम बार सन् १९२२ में प्रकाशित हुये। 'हुसन की रात' में मनोवैज्ञानिक ढंगकी कहानी है और उस समय की सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालती है। कुछ समय तक तो इसी ढंग की कहानियाँ लिखी जाती रही। 'हुसन की कीमत' की भाषा लेखक की अपेक्षा अधिक स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष है।

"Husan Ki qimat is the usual tale of a husband who forsakes his wife in the heyday of his youth and on losing youth, looks and wealth realises that true love can only be fired in the heart of a wife."

"The conception of the character of Yusuf and Aslam and the whole theory of 'Husan ki qimat' that Husan, like all other commodities has a price and that its possessor has a right to demand the highest market price for it, was still a new thing in Urdu literature in 1922. The pointed the way towards the turn the Urdu short story was taking."

अदुल मजीद साहिब भी उस युग के बड़े कहानी-कार थे। "चम्पा", "रोशनाकमान" बड़ी अच्छी कहानियों के संग्रह हैं। उन्होंने "तलबीबे निबवा" और "मसून" में अपना प्रकाशन किया था। "चम्पा" संग्रह में बहुत सी कहानियाँ जो उस समय प्रचलित थी मिलती हैं। उनमें "हिमालय की चोटी", "एक की दुकान"। "खाये परिस्तान" कथानक की दृष्टि से उत्तम कहानी है।

हुस्तान हैदर जोश सबसे उत्तम कहानीकार थे जिन्होंने "मसून" नाम पत्रिका में पृष्ठों के पृष्ठ लिखकर अपना कृण चुकाया। "फनाजिर", "शबीब उर्दू" और "जाने एक बड़े कहानी-कार थे। उनका नाम अब भी "साकी" और "दुनिया" पत्र के पृष्ठों में कभी कभी दिखाई दे जाता था। उनकी कहानियों का संग्रह एन् १९२६ में फजाने जोश" के नाम से प्रकाशित हुआ।

"फजाने जोश" में नौ कहानियों का संकलन है तथा चार या पाँच उगमें देस है। "मुलावत" तथा "उग्रे कैद" या काल्पनिक कहानियाँ हैं और कल्पना के ऊपर आधारित हैं। "तलबीबे निबवा" और "ताबी जादम" भी उत्तम कहानियों में हैं। "छाफाकाते जमाना", "नरगिस सुई पारत", फला गुनाह और "झाब मुहवत भी इनकी कहा-

निर्या है ।

" The intrinsic merit of Sultan Haider Josh's work is very little. It has historic interest as it serves the purpose of showing the stages by which Urdu short stories have achieved their present position. "

विभाजन के पश्चात् कहानियाँ -

सन् १९४७ में जब भारतवर्ष का विभाजन हुआ और पाकिस्तान बना उस समय हमारी कहानी- कला उच्च कोटि पर पहुँच चुका था। १९३५ से १९४७ के मध्य जितनी उर्दू में कहानियाँ लिखी गईं उनमें से बहुत सी कहानियाँ ऐसी हैं जिनकी हम पश्चिमी देशों की, सबसे अच्छी कहानियों की श्रेणी में रखा कर सकते हैं। इस २० वर्ष के समय में मुन्शी प्रेमचंद ने 'कफन' अब्बास हुसैनी ने 'दो शरीफों का मुकाबिला' मुहम्मद मुजोब ने 'कीमियागर' अशक ने 'बैगन का पौधा' बेदी ने 'गर्म कीट' कृष्ण चंदर ने 'टूटे हुए तारे' अयाज उल्लाह ईसारी ने 'बातिरी की लीज' मिन्टो ने 'हत्क' और नया कानून' अहमद खली ने 'हमारी गली' और गुलाम अब्बास ने 'बान्दी' लिखकर बड़ी स्थान अथक प्राप्त किया है जो कि मोपसास और जॉर्ज ने स्थान प्राप्त किया है। सन् १९४७ तक पहुँचते पहुँचते उर्दू कहानीकारों ने अपनी कहानियों में वह जीवन का वास्तविक फलू का चित्रण किया है जिसमें जीवन के फलू के दिव की धुन स्पष्ट सुनाई देती है और साथ ही साथ कला के दर्शन भी होते हैं। इन बारह वर्षों में वह कलापूर्ण कहानियाँ लिखी गईं जिनकी हम पढ़कर अपना तथा उर्दू कहानी साहित्य का सिर ऊँचा कर सकते हैं। हुसैनी, हिजाब हम्न्याज खली, अस्तर ईसारी, अज्जून गौरस-पुरी, अयाज, बेदी, कृष्ण चंदर, मिन्टो, अयाज उल्लाह ईसारी और अस्तर ईसारी के अतिरिक्त अब गुलाम अब्बास, हसन खखरी, मुमताज

मुफ्ती, बख्तरख़ुसैन, सुहेल अबीमावादी, बख़्मद नदीम कासिमी,
 हाजुरा मशर, सदीया मस्तूर, कुरातुलरान हैदर, मुमताज, शीरी,
 फलहत सिंह, तसनीम सलीम, शफीक उल रहमान, महेन्द्र नाथ, छाहीम
 अलीस का बागा यावर के नाम सुनकर भी लोग चौंकते हैं। उनमें से
 प्रत्येक ने कुछ न कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिनमें मानव के दुःख दर्द की
 ध्वनि भी सुनाई देती है और उसके दिल की कथाएँ गहराज्यों की गम्भीरता
 भी पाई जाती हैं। उन कहानीकारों की कहानियाँ मानव के बान्तरिक
 भेदों की सच्ची वाचाप हैं। उन्होंने अपनी वाण्य दृष्टि को छिपी नहीं
 रखा है वरन् बान्तरिक हृदय की दृष्टि को भी खुला रखा है।

हमारी कहानी साहित्य उन्नति की इस चरम
 सीमा पर पहुँचा था कि विभाजन के पश्चात् जो साधारण घटनाएँ, दंगे
 हुए उसने उसकी कला की धमका दिया और एक काफ़ी समय तक इस
 क्रांति तथा वाफ़ कगड़ों के कारण उसकी प्रगति रुक गई और लम्बे
 समय तक उसके देखने वालों को ऐसा ज्ञात हुआ मानो किसी बहती हुई नदी
 के किनारे एक बड़ी दिवाल खड़ी हो गई हो और वह नहीं सदैव के लिये
 बहना मूल रुक हो परन्तु जो नदी अपनी पूरी शक्ति के साथ बह रही तो
 उसको कड़ी चोटान भी नहीं रोक सकती है। उनकी वृद्धि में परिवर्तन
 हो सकता है। इस दंगे फसाद में मार्काट तथा कगड़ों का कारण यह
 हुआ कि जो कहानी साहित्य में एक चौड़ा सा विघ्न उपस्थित हो गया
 था कुछ दिन जो ठहराव आ गया था फिर से उसमें उत्साह पैदा हो गया

और उस नदी ने अपने लिये एक नवीन पथ खुद निकाला। हमारे कहानीकार अचानक इस वातावरण के कारण भौंकने और दम तोड़कर रह गये थे उन्होंने फिर अपने नेत्र खोले और जीवन का उत्थान कहानियों के द्वारा करने का दृढ़ संकल्प कर लिया परन्तु उनको इस जीवन में समाज ही एक नवीन स्थिति का ज्ञान हुआ। प्रत्येक वस्तु उन कहानीकारों के लिये नवीन और निर्जीव ही दिखाई दिया। मानव और मानवता को वही ने प्रत्येक पगल मिट्टी और रक्त से रक्त पान देता। मानवता के सम्मान को जिसे मानव ने हजारों वर्ष के इतिहास से पोषण किया था, मरता हुआ तथा शिथिलता हुआ दिखाई दिया और ऐसा प्रतीत हुआ कि मानवी अब तबाही, पर्वदी और नै-श्वी के शिवाय कोई चीज शेष नहीं है। इस लिये तबफ़े, तिलमिलाते हुये कहानीकारों ने वस उनको अपनी दृष्टि में रता और इस तबाही और पर्वदी के मातम और जिनगी के जलमों के महम बड़े भयानक बड़े दर्दनाक और वीमत्सपूर्ण موت कुछ पुराने कहानीकार ऐसे हैं कि उन्होंने जमाने के जलमों से अपने सीने को गायल करने की अपेक्षा उसकी तरफ से अति बंद कर लेने में ही अच्छा समझा जाता है।

जली अब्बास हुसैनी, मख़्दूम गौरखपुरी और हिजाब उम्प्याज जली ने विनायन के बाद जो थोड़ा कुछ लिखा उसमें उनकी वही प्राचीन कला के दर्शन होते हैं जिसके कारण उनको कहानीकारों की दुनिया में प्रसिद्धि प्राप्ता हुई थी। जली अब्बास हुसैनी की कहानियाँ "रहीम बाबा" और "कलपरी", श्रान्तिकारी होते हुये पीशुनियादी तौर पर कहानियाँ हैं। प्रत्येक जीवन के पल्लु पर भी ध्यान रखर भी यह कहानीकार

हैं। मजबूत गौरसपुरी ने इस युग में भी मानव के जीवन के क्षेत्र की ध्यान में रखकर उसको ही अपनी कहानी का आधार बनाया है। कथानक तथा पात्रों का स्वसा ध्यान में रखकर यह बात कभी भी फ्रट नहीं की कि कहानी का परिणाम मौतर और दिल नतीन है। विज्ञाप एम्पवाज बली ने इस युग में भी रोमानी और तिलस्मी कहानियाँ लिखी हैं और उन मानवों की कहानियाँ सुनाई हैं जिनकी नाकामियाँ और मल्लमियाँ ने उसे रोमांच ^{المنا} मरीज बना दिया है। और जिनकी जिन्दगी की वास्तविक रंगिनियों में सून तमन्नाकी सुरती के बतिरिक्त कुछ नहीं। उन तीनों कहानीकारों की कहानियाँ इससे पूर्व ही कला की चरम सीमा पर इन्हीं के हाथों पहुँच चुके थे परन्तु इनमें एक चीज़ अब भी है। अब भी यह कहानियाँ कहानी फूने वालों की रुचि को उभारती तथा संतोष

देती हैं। उन तीनों कहानीकारों ने विनायक के पाद भी अपने हीरुंग में लिखे वही क्रम रहा और दुनियाँ के पलेछों से अपने को थोड़ा कलग ही रहा। वहमद बली, एसन वरवरी और अस्तर बीरारी ने लगभग लिखना बंद ही कर दिया है। उपेन्द्रनाथ बरक, हयात उल्लाह बीरारी और बेदी ने पहले जैसे उत्साह से नहीं लिखा लेकिन लिखा अवश्य। उपेन्द्र नाथ बरक ने एक मुख्य विचारधारा की अपनी कहानी का फलू बनाया है। विनायक के उपरान्त भी वह इसी रास्ते पर बढ़ी बलादुरी से चल रहे हैं जैसे झकलाबों की वामदोशव इसानों की दुनियाँ से कलग दौड़ें बीज है। न तो झकलाब इनको प्रभावित करते हैं और न उनके दिल में झकलाब

उनकी प्रभावित करते हैं और न उनके दिल में हल्काव की खाँस
पौर बेचनी पैदा होती है ।

वेदी और उद्यात उल्लास के लिये हल्काव की
और से खाँस बंद कर लेना सम्भव नहीं है । उनका हृदय मानव का छोटे
हुती देखकर तड़प जाता है इसलिए वह मानव के दुःख को अपना दुःख समझ
कर उस पौर अपना मन लगा देते हैं जिस पर चलकर उनका दुःख दूर किया
जा सके । इसलिए १६४७ के हल्काव की फलक स्पष्ट है । वेदी का
अफसाना "लाजवन्ती" और उद्यात उल्लास कीारी की कहानियाँ
शुभ गुजार खाँस "तर्था माँ बेटा" की पर आधारित हैं । "लाजवन्ती"
में वह कहानी और गहराई नहीं जो "दानाद बीम" और "ग्रहण" के में
दिखाई देती हैं । उद्यात उल्लास कीारी की "शुभ गुजार खाँस" में ज्वराली
बहाव नहीं जिसमें दोनों के प्रायः कहानी कला की उज्यता और मज़ाक
से बला ही गये हैं । उस दिने पूर्ण स्थल भर लिखते समय भी कहानीकार ने
किसी प्रकार की कमी पैदा नहीं होने दी । इसमें हुएन वर्या और वर्णन
कला की जा सकती थी । इसके तद्विरुद्ध जो भी दो तीन कहानी लिखी
हैं उनमें कला का सौन्दर्य भी है । "असमत" की कहानियाँ तीन प्रकार
की हैं । एक दंगी, नगदूँ से सम्बन्धित , दूसरे क्रान्तिकारी और तीसरे
उस समाज तथा वातावरण सम्बन्धी जिसे "असमत" ने अपना कर व्यक्तित्व
प्राप्त किया । केम्बल कीट की एक दिने के सम्बन्धित कहानी है उसमें भाव
बद्धि तथा कला के कम दर्शन होते हैं और अपने पात्रों के दिल पर कौरे

प्रभाव नहीं छोड़ते । 'सौने का कंठा' और 'चौधी का जोड़ा' वास्तव में इसलिए प्रसिद्ध हैं कि असमत् को उसी समाज तथा वातावरण तथा उसी पात्रों के सम्बन्ध में कुछ बातें कहने का तबसर मिला है जिनके जीवन के विषय में उन्होंने पूरी तरह से वर्णन किया है ।

विभाजन के पश्चात् कृष्ण चन्दर और मिन्टो ने दूसरे कहानीकारों की अपेक्षा बहुत अधिक लिखा है । कतः उनके कई कहानियाँ के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और इसकाक्रम जब तक जारी है । इन दोनों कहानीकारों का यदि अध्ययन किया जाय तो हम उस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों ने कला की दृष्टि से कुछ चीजें भी लिखी हैं परन्तु उनकी कहानियों को पढ़कर यह परिणाम मालूम होता है उनकी कहानी क्षणी उपली है कि वे दिल की गहराई पर बहुत कम उतरती है । कृष्ण चंदर ने इस युग के प्रारम्भ में उर्दू कहानियों में लिखी जिनका उद्देश्य दैवी सम्बन्धित, श्रान्ति, सुवासरती, सामाजिक, मृदुनी और गज्जाटी भावुक छल्ले० सम्बन्ध है । कृष्ण चंदर ने इस युग के प्रारम्भ में कई कहानियाँ लिखी जिनका उद्देश्य दैवी सम्बन्धित, श्रान्ति, सुवासरती सामाजिक, मृदुनी और भावुक सम्बन्ध है । कृष्ण चंदर ने यह कहानियाँ मानवता तथा नैतिकता की दृष्टिगत किये हुये लिखी और विभिन्न प्रवृत्तियों में विभिन्न पढ़ने वालों की दृष्टिगत किये हुये लिखी तथा उसमें वह आकर्षण फैला कर दिया कि प्रत्येक वर्ग के पढ़ने वाले इसे प्रभावित होते हैं ।

मिन्टौ ने वास्तव में कृष्ण वंदर से भी अधिक लिखा और पाठकों को यकीन दिलाया कि उसके मुलाहिवे में घारीकी तथा गहराई को कमी नहीं है। उनके ११, १२ कहानी के संग्रहों में केवल धौंढी ही ही कहानी ऐसी है जिसको वास्तव में कहानी कला की कसौटी पर कसा जा सकता है। विभाजन के पण्डित परचात् मिन्टौ अपनी कला की महत्त्व को स्थिर नहीं रख सके बने पर बराबर झगमगाते रहे।

वौर स्पष्ट है कि झगमगाते हुये पर किसी मंचित पर स्थिर रहने वाले पद चिन्ह छोड़कर नहीं जाते। यदि किसी कहानीकार ने अपनी कहानी में नकलीया छोड़े हैं तो वे अहमद नदीम का सिद्धि हैं। अहमद नदीम की कहानियों में "नया परिहास", "तसकीन", "जब बादल उमड़े" वौर उनसे भी बढ़कर "रसखाना", "गुन्हासा" वौर जातिश गुल" हैं। इसी किसी प्रकार मिलते जुलते एमे गुलाम अहमद के उन कहानियों की श्रुत में भी नजर आते हैं जो इन्होंने विभाजन के बाद लिखे हैं "साया वौर उसकी बीबी" वौर "फैन्ती हैयर कटिंग सेलून" उनकी कला के शान्ति, क्षमीमान के उदाहरण हैं। इसमें कहानीकार ने अपनी कहानियों को इस ढंग से लिखा है किसी बोज पर भी पाटक को ध्यान नहीं मालूम होती। पिछले दो तीन वर्ष में गुलाम अहमद ने तो तीन बोज ऐसी भी लिखी हैं जिसको पढ़कर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि कहानीकार ने अपनी प्रकृति के विरुद्ध रुक रुक कर तथा धीमे चलने के दबाव अपनी यात्रा तीव्र गति से की है। इससे प्रतीत होता है कि वह अपना कार्य तीव्र करना चाहते हैं यह उनकी कहानियों की घटनाओं से तथा

वातालाप से प्रतीत होती है ।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त, पिछले लिखने वालों में जिन्याँने कारी ۷۵ को अपनी और दृष्टिगोचर रखा है, भारतवर्ष के कहानीकार भी हैं तथा पाकिस्तान के भी । पाकिस्तान के कहानीकारों में "राजरा मसहूर", "खदीजा मस्तूर", "क़ुरतुलउद्दीन हैदर, मुमताज सुफ़ती, कुदरत उल्लाह गुहाब और शफीक उल रहमान के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं और भारतवर्ष के कहानीकारों में स्वाजा अहमद ख़्वास, महेन्द्र नाथ, पल्लव सिंह, प्रेमानाथ परदेशी और तसनीम अलीम के नाम प्रसिद्ध हैं । जहाँ तक भारतवर्ष का सम्बन्ध है उनमें स्वाजा अहमद ख़्वास, महेन्द्र नाथ और पल्लवसिंह की कहानियाँ की संख्या अधिक है । और इनकी कला के वे ही दर्शन अब भी होते हैं जो उन्होंने पूर्व अपनाई थी । स्वाजा अहमद ख़्वास के वफ़सानों में अब भी पहले का सा ही उत्साह मिलता है । महेन्द्र नाथ की कहानियाँ मानव की आन्तरिक कठिनाइयाँ तथा पेट ख़ौंफ़ और भिन्न की भुल के वासपास घूमकर लगाते हैं और एक बीस पैदा कर लेते हैं यो तौ कभी कभी कुछ कहानियाँ में कला और बयान की घुलावट सबसे अधिक पल्लव सिंह की कहानियों में मिलती है इस तरह इनके वफ़सानों में घुलावट है कि इनकी आधुनिक कहानीकार के बलावा मुस्तक़विल का कहानीकार कहा जा सकता है ।

पाकिस्तानी कहानीकारों में शफीक उल रहमान ने पहले से अधिक प्रसिद्ध प्राप्त की । इनकी कहानी की शैली इतनी उच्च कीटि

की है वच्छे तथा बड़े घराने के लोग भी इनको और वाकफिर्त होते हैं । यही हाल कुदस्त उल्लाह "सुहाव" के साथ है । कुदस्त उल्लाह विभाजन के पूर्व के वफादानों में जो मैला भरा हुआ था उसके स्थान पर स्वस्थ तथा लेश भङ्ग पूर्ण कहानियों ने स्थान ग्रहण कर लिया । शफीक उताहमान की सुगुफ्त और दिल नशीन तथा कुदस्त उल्लाह सुहाव की गहरी

। हमारे बाधुनिक कहानीकारों को ऐसे फलू हैं जिनमें दोनों का समाया प्रस्तुत है । मुमताज मुफ्ती ने विभाज से पूर्व कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी थीं जिनकी पैकर यह प्रतीत होता था कि हमारे कहानी साहित्य की एक नवीन ज्ञान तथा कम्पन मिलेगी और यह कहानी की और अधिक विकसित करेगी जिनकी नींव उन्होंने उर्दू कहानी साहित्य में डाली थी परन्तु जो युग के सभी कहानियों में एक ऐसी चीज है जिसमें कि कलाकार की फन दिखाई देती है । यह फन हदीजा मस्तूर के वफादानों में अधिक और कुरास्तुलउद्दीन हैदर के वफादानों में कम और हाजरा मस्तूर के वफादानों में स्पष्ट तुनाई देती है । हदीजा मस्तूर ने पाकिस्तान बनने के बाद गिनती के चौदह ही वफादाने लिखे उनमें से एक ऐसे अवश्य हैं जो अपनी और वाकफिर्त करते हैं । उदाहरण के लिए उनकी कहानी "मुहाफिज उल मुल्क" उनकी एक विशेष वाकफिर्त कहानी है तथा "तलाशे गुम हुदा" तथा "दरद" उनकी सामाजिक परिस्थितियों का परिष्कार परिणाम है । इनकी कहानी कसने की कला ठीक उसी प्रकार की है जैसे कि विभाजन के पूर्व । "हाजरा मस्तूर" ने अपनी कला की बहुत कम बेनियाबी की दृष्टि से देखा है। उन्होंने अपनी कला की जिन्दगी

है अपनी कला के साथ ठीक व्यवहार किया है। इस कारण उनकी कहानियाँ में रस और दर्द भी पैदा होता है।

विभाजन के परभाव कुछ कहानीकार पाकिस्तान चल गये हैं उनमें हाजरा मसूर, लदीवर मस्तूर, कुरतुत उदीन हैदर, मुमताज मुफ्ती, शफीकुल रहमान आदि के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में उर्दू कहानीकार स्वाजा वसमद अब्बास, महेन्द्रनाथ, प्रेमनाथ परदेसी, तसनीम अलीम एवं बलवंत सिंह के नाम प्रसिद्ध हैं। बलवंत सिंह की कहानियों की संख्या अधिक है। उनकी कहानियाँ अब भी पुरानी कहानियों की शैली पर ही आधारित हैं। महेन्द्रनाथ की कहानियाँ मानव की झुल से तड़पन तथा सैक्स समस्या पर आधारित हैं।

शफीक उस रहमान जी अब पाकिस्तान जा चुके हैं उनकी कहानियों में कला के दर्शन होते हैं तथा बड़े घराने के लोग उनकी ओर आकर्षित होते हैं। यही बात कुरतुत अस्ताह सुहाब के साथ है। इन्होंने देश प्रेम की भावनाओं को ही अपनी कहानियों का तथ्य चुना है।

मुमताज मुफ्ती ने विभाजन से पूर्व कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी थी जिनकी देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उर्दू कहानी की नवीन परंपरा मिली परन्तु कहानी कला में यकन ही दिखाई देती है। रवदिया मस्तूर ने कुछ वाक्यांश कहानियाँ लिखी । "दरद" उनकी सामाजिक कहानी है। हाजरा मसूर की "बंश उवाले" साधारण जीवन से सम्बन्धित है। यह सब होते हुए भी इस युग के कहानीकारों का अपने पात्रों के प्रति पूर्ण सहानुभूति है।

विभाजन से पूर्व जी लिखा गया उर्दू कला की दृष्टि की महत्व दिया परन्तु बाद में एक तो कम लिखा और वह भी निम्न श्रेणी

का किम्वं कला की दृष्टि से उन्नति के स्थान पर जनता के ही घुलन होती है। इन कहानीकारों ने जो नियम तथा सिद्धान्त बना लिये थे उसी पर ठे रहे और उसी को आधार मानकर कहानी लिखते रहे। स्वतन्त्रता से पूर्व इनकी कहानियों में देश की स्वतन्त्र कराने की भावना थी, इसके उपरान्त जब समाज में परिवर्तन हुआ तो इन कहानीकारों ने अपनी कहानी का दृष्टिकोण नहीं बदला बरन पुरानी परिपाटी पर ही लगे रहे। ज़ी बच्चास ज़ीनी की कहानियों में यू० पी० के ग्रामीण वातावरण, हाजरा मसर के कफ़रानों में तल-नऊ के उच्च घराने, कुरातुलदीन कैद के मसूरी और वहाँ के होटल, पिन्टो के बम्बई के होटल, नदीम की कहानियों के पंजाबी गाँव आदि जैसे ही हैं और विभाजन के पूर्व।

हमें संदेह नहीं है कि इन कहानीकारों की दृष्टि वास्तविक जीवन की ओर भी है परन्तु इनकी हलमें भी इनक़लाब के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। राजनीति ने इनकी कहानियों में दंगे फ़िसाद, लंगामा आदि की जन्म दिया। इन उस विचित्र पर पहुँचते हैं कि इन कहानीकारों ने जो अपना आधार कहानी लिखने का पसंद अपनाया था उस पर अब भी चल रहे हैं। इनको यह नहीं पालूम कि समाज तथा मानव जीवन में कितना परिवर्तन आगया है! इनकी कहानियों में प्रगति के लक्षण नहीं दिखाई देते। यह कहानी के जनता का दुःख है। ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू कहानीकार थक गये हैं। परन्तु इसका प्रभाव यह अच्छा पड़ा कि इन लोगों की थक के कारण नवीन कहानीकार उत्पन्न होगये। इन नये कहानीकारों ने अच्छे कफ़राने लिखकर उर्दू कहानी की ओर पाठकों की रुचि प्रदान की। यदि प्राचीन दीपक बुझ जायेंगे तो नवीन दीपक, जिनकी लौ अभी धीमी जल रही है, कहानी साहित्य की ओर

है तो बचा सकते हैं।

संतजार छूटने, २० वर्षों में, सलीम अहमद, इबन उल-हसन, अहमद अहमद, फैतानी बानू, सादिक हुसैन, गुलाम ज़ोबीर ने उर्दू कहानियों में फिर से नवीन जीवन प्रदान किया। इन कहानीकारों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने वास्तविक समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही कहानी कला का विकास किया है। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी कहानियों का क्षेत्र राजनीतिक ही नहीं करन वास्तविक भी बना है। इन नवीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में वंगपूर्ण घटनाओं का कोई जिक्र नहीं किया और न कोई सम्बन्ध रखा। साहित्य तो सभी की उन्नति में साक्ष्य है बाक्य नहीं। ये नवीन कहानीकार अपनी गहन दृष्टि एवं उदारता का अपनी कहानियों में सच्चा परिचय दे रहे हैं। ये अपनी आलोचना की किंन्तु परकाष्ठ नहीं करते। उनकी दृष्टि में कहानी कला के पूर्ण तत्त्व विद्यमान हैं। यही कारण है कि इनके एक-दोनों में कहीं कहीं गातिब, हकवात, साफ़िज़ सुवरी आदि के नगमों की खनि सुनाई देती है। इन कहानीकारों ने अपनी कहानी का वही क्षेत्र बना है जिसके द्वारा मानव जीवन का विकास हो। कहने का उंग एक दम नवीन एवं वाक्यमय होता है जस्तु अभी तक ये कहानी-कार बेदी, भिन्टी, ख़्तारी, गुलाम अहमद की श्रेणी में नहीं बैठ सकते। ही सकता है कि भविष्य में कहानी कला को नवीन दृष्टिकोण देकर उच्च स्थिति पर पहुँचा दें।

वास्तविक नये कहानीकार :

नये कहानीकारों से तात्पर्य उन कहानीकारों से है,

जिनके नाम भारत विभाजन के पश्चात् हमारे सामने जाते हैं। इन नवीन कहानीकारों में वन्तवार लुईन, २० अहमद, शीका सिद्दीकी, देवेन्द्रनाथ उग्र, बनवर ज़ीम, सलील अहमद, हसन उल हसन और अहफाक अहमद के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक ने कहानियों का संग्रह लिखा और रिशालों में छपावाया। इन लोगों ने अपने जीवन से सम्बन्धित तथा समाज की परिस्थिति की ध्यान में रखकर अपनी कहानी का दायर चुना और उस पर लिखने लगे। इन परिस्थितियों का प्रभाव इन कहानीकारों के जीवन पर पड़ा उसी की वातावरण बनाकर कहानियाँ लिखीं। इस रूपि से हमारे पिछले कहानीकार कुशनन्दर, मिन्टी, बेदी, ह्यातउल्लाह खंसारी, अहमद नदीम कासिमी, अमृत भुगतार्ज आदि अधिक प्रभावित हुए और कहानी कला को बहुत ऊँचा उठाया।

इन नवीन लेखकों में भी पुराने लेखकों की फलक मिलती है। इन पश्चिमी कहानीकारों से प्रभावित हैं। इन कहानीकारों ने वातावरण के साथ देश एवं विश्व की घटनाओं की भी अपनी कहानियों के कथानक में वर्णन किया है। विश्व की राजनीतिक उत्कर्ष इन कहानीकारों में मिलती है। ये कहानीकार जो भी बात अपनी कहानी में कहना चाहें मानव जीवन के दुःख दर्द की बात बन जाती है। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य पाठकों को वातावरण बनाना है और ऐसी नवीनता लाना है जो गिरते हुए को अवश्य सहारा दे। यह कहानीकार पथप्रष्ट की रास्ता दिखाती हैं। इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों का स्थल, शौकल, काफी हाउस, मयसाना आदि ही चुना है। इनके पात्रों के दुःख अपने दुःखों की तरह काफी हाउस की भर्जों के पास बैठकर कहे जाते हैं और इतने पाप विपरीत हो जाते हैं कि पात्रों का दुःख न समझ कर अपना दुःख समझने लगते हैं।

नवीन कहानीकारों ने विभाजन के पूर्व जो हिन्दू मुस्लिम दोनों हुए थे उनका वर्णन भी अपनी कहानियों में किया है। पुराने कहानीकारों की भांति इन्होंने भी मानव जीवन का अपनी कहानियों में चित्रण किया है। साथ ही साथ रसिकता की भी देखा है। इनकी विचारधारा उर्दू काव्य से प्रभावित है, यही कारण है कि ये अपनी कहानियों में हज़्वात, गालिब, हुशरू की छाने से नहीं खिन्न । इनकी कहानियों की पढ़कर कुछ समय तक तो पाठक की उत्साह एवं जाग्रति उत्पन्न होती है परन्तु शीघ्र ही काफ़ूर हो जाती है। इन्होंने रसिकता की परत अधिक की है।

उलीस वल्फ़ ने वाधुनिक जीवन का यथावत् चित्रण अपनी कहानियों में किया है। इनकी कहानी मानव के अस्तित्व है जो मानव जीवन तथा समाज के पीछाक सत्य है। "दस्तावेज़ का हीरो" तथा "भूत" कहानी एक ऐसे पात्र की कहानी है जो उस वर्ण समाज को धोखा देकर समाज को छोड़ कर पकड़ा जाता है। धोखा अधिक समय तक नहीं रहता । एक न एक दिन धोखा का फल ला ही जाता है।

उलीस वल्फ़ एक साधारण ही घटना से ही कथानक की रचना कर लेते हैं, यह उनकी विशेषता है। "वह पर गया" नामक कहानी में वाधि से छत तक यही बात दिखाई देती है। मानव के मस्तिष्क में विचार-धारा उस प्रकार केन्द्रीभूत होती है जो समुद्र की तहलें उठती है और शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। गहराई की ओर कोई ध्यान नहीं दिया ।

इसके पश्चात् जबन उस छत उन कहानीकारों में से हैं जिन्होंने जीवन की पैकीपीगियों से सामान्य घटनाओं को लिया है। उनकी

कहानियाँ ऐसे पात्रों की कहानियाँ हैं जो एक विशिष्ट समाज में जीवण पाकर एक विशिष्ट रंग रूप से होते हैं और यह रंग रूप इतना तीखा और गहरा होता है कि कोई सुकान कोई इनकलाव इसको फीका नहीं कर सकता । जमीरउल्दीन इनसे भिन्न हैं। उनका ध्यान पात्रों से अधिक कथानक की ओर है। कथानक इतने सुन्दर ढंग से बुने हैं कि पाठकों के हृदय को मुग्ध कर लेते हैं। करीबतता के ऊपर एक हल्का सावरण छातकर उनकी डक देते हैं। " बस्ता सुन " , " बाँधनी और बंधरा " उनकी प्रसृत कहानियाँ हैं। कवर खीम ने भी साधारण जीवन की ही अपनी कहानियों का कथानक चुना है। " ऊँछी ह्योछी " , " जागते लेत " में लेखक ने कुत्रिफता का फुट देकर उसकी रुचिकर बनाया है।

शौकत सिद्दीकी ने लखनऊ की संस्कृति तथा सम्यता की ही अपनी कहानी के कथानकों में स्थान दिया है। वह लखनवी ढंग की कहानियाँ कहने के जादी हैं। कहीं कहीं पर नैतिकता के चित्र भी अपनी कहानियों कहने के जादी हैं। कहीं कहीं पर नैतिकता के चित्र भी अपनी कहानियों में प्रस्तुत कर देते हैं। इनकी कहानियाँ मानव की पुकार तथा उनके दुःख दर्द की ही कहानियाँ हैं। जहाँ उत्पीड़न, करुणा, टीस, दुःख दर्द है वहीं पर लेखक की दृष्टि पकड़ जाती है। उनकी दृष्टि दोनों ही का स्थान पाते हैं, जहाँ उन्होंने जनी-दारी नबार्की की वितासप्रियता का चित्र खींचा है जहाँ उन्होंने शौणित कृणक तथा मजदूरों के चित्र भी अपनी कहानियों में दिए हैं। शौकत सिद्दीकी के ऊपर किसान मजदूरों की फूस, तड़पन का विशेष प्रभाव है । इसका कारण ये उनकी एगन्त्वना देकर उनके उद्धार की कल्पना करते हैं। पाठक कहानी की घटनाओं पर इतना ध्यान नहीं देते जितना कि पात्रों से स्नेह करते हैं। मानव अपनी मानवता की फूस गया है और मानव मानव पर ही बर्थाबार कर रहा है। एक बर्थाबारी है और एक बर्थाबार सहन करने वाला । इसी हम सब निष्कर्ष

पर पहुँच सकते हैं कि नवीन कहानीकार घटनाओं की व्यक्ता पात्रों के परिवर्तन चित्रण पर विशेष ध्यान देते हैं।

देवेंद्र एड्ड उन ही गिन कहानीकारों में से हैं जिनकी मानव जीवन के दुःख दर्दों की पहचान कर उसके उद्धार की अपनी कहानियों में साकार कल्पना की है। वह समाज की चिन्ता न कर कर्म पात्र में टात ठोक कर खड़े हो जाते हैं। कहानीकार की मानव की बेवसी तड़पाती है उसे दुःख देती है। इसलिए वह सर्वसाधारण के प्रकार के लिए वह अपने ऊँचे स्तर में स्वतन्त्रता के गीत अलापता हुआ तथा ज़मीन नारे लगाता हुआ बिना किसी छर के बागे बढ़ा घला जाता है। उनकी कहानियों में जीव एवं उत्साह है। तबले अपनी कल्पना से तबलार का काम से सज्जा है। कानवर ने भी अपनी कहानियों में नगर के बदले हुए जीवन की बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। छोटी छोटी घटनाओं की महान् बना देते हैं। वातावरण सम्बन्धी प्रगति बड़ी धीमी है। घटनाओं का घरातल उनके यहाँ एक ही रहता है।

ए० अरुण की कहानी का रुकान इमानी है। " फूल गिरते हैं " एक ऐसी ही कहानी है। उनकी कहानियों से ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक अलक सैला की कहानी पढ़ रहा है। वह जीवन के सम्बन्ध में ऐसी काणित बातें कह सकते हैं जो देखने में तो साधारण हैं परन्तु उनमें उतना वानंद पाठकों की वाता है कि वे अलक सैला के वानंद की भी झूठ जाते हैं। उनकी कहानियों बुद्धि परा की कहानियाँ नहीं हैं वरन हृदय परा ही अधिक है।

इन्तजार हुसेन ने विभाजन के एक वर्ष बाद लिखना प्रारम्भ किया । तीन अफगाने-सितकर-पाठकों की इतना वाकणित कर लिया

जिसकी नवीन कहानीकारों ने नहीं किया था। नवीन कहानीकार कहने लगे कि यह चितारा कहाँ लिखा पढ़ा था। इन्तजार खुश ने जो कुछ भी लिखा वह विश्वास के साथ लिखा तथा जो कुछ उनकी कहना है वह किस प्रकार कहना है जिससे पाठक वाकणित हो सके। एक बार सखिनी उठाकर फिर रसना कमी नहीं सीखा। कहानीकार कहानी कला में निपुण है। पात्रों और वाक्यी समाज के सम्बन्ध से तब परिचित है। वह समाज के अनुसार ही अपने पात्रों का चयन करते हैं। इन्होंने महिलाओं, पुरुषों, बच्चों, बूढ़े, कानों की पूर्ण-रूपेण समझकर अपनी कहानी का पात्र चुना है। जैसा इंतजार खुश पहले लिखते थे उसी उत्साह से अब भी लिखते हैं।

अच्छाक वहन्य ने मानव के धीरे जीवन में प्रेम की फाँकी की है। माँ, बाप, माँ, बहिन, मासिक, नीकर, किस प्रकार अपने हृदय की वाञ्छारिक तर्कों को लीत देते हैं। यही प्रेम इतना सशक्त हो जाता है कि प्रेमी अपने पर धकावू होकर अपने प्राणों की बलिदान करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। पुरुष और महिलाओं के प्रेम की फाँकी अच्छाक की कहानियों का मुख्य विषय है। प्रेम वह प्रेम नहीं जो मानव जीवन की दीवाना बना दे बरन् पाठक सीपता है कि प्रेम की वास्तविक यही परिभाषा है और यही सच्चा प्रेम है। प्रत्येक वस्तु में प्रेम की फाँकी बिसाई देती है। हिन्दू की मुसलमान से, मुसलमान की ईसाई से मानव को मुक्त जानवरों से इतना प्रेम हो जाता है कि वह प्रेम के बलीभूत अपने को सब कुछ मिटा देता है। साधारण सी बातों में क्याह समुद्र की गहराई दुष्टिगीवर होती है। "तलाश", "संग-दिल" इसी प्रकार के प्रेम की कहानियाँ हैं। प्रेम, धीरे जीवन माधुम बच्चे, अच्छाक वहन्य की यह रुचि के दिशाव है जिस पर उनकी कहानी के विषय आधारित हैं। इनकी कहानियों में लाव्य की छाप स्पष्ट बिसाई देती है जो पाठकों की रुचिभर लाती है। यह माधुली सी घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करते हैं कि नवीनता कहानी का विषय बन जाती है।

वास्तव में इन कहानीकारों ने अपनी कहानी कला में नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। प्रत्येक ने अपनी कहानी कला में साहित्य का पूरा ध्यान रखा है। इन कहानीकारों की कला में पुन्नी प्रेमचन्द, ज़ी अन्वय हुसैनी, सज्जाद हैदर पत्तनम्, राबिन्द्र सिंह बेदी, कुशनचन्दर, गुलाम गुलाम की कहानी कला की ह्राप कश्य दृष्टिकोण होती है। इन कहानीकारों ने लिखा कश्य परन्तु इनसे पूर्व लिखने वालों की जो शैली थी उनकी नहीं है। उनका सारा उत्साह पाणिपत फुल जाता है। विभाजन से पूर्व कश्य ज़ी, राबिन्द्र सिंह बेदी, कुशनचन्दर इस्मत गुलाम, क्यारत उल्लाह क्यारी, मिन्टी, कासिमो ने जो प्रतिष्ठा स्थापित की थी वह उस युग में गिर गई। कश्य नवीन कासिमो की कीड़कर सभी ने क्यनति की वीर क्यसर किया है। पहले लोगों की उर्दू कहानी लिखने में जितना सम्मान मिला वह उस युग के कहानीकारों की नहीं मिला। इसका एक कारण यह भी है कि जब कुशनचन्दर, मिन्टी, बेदी क्यारी क्यदि ने लिखता क्य कर दिया तो नई पीढ़ के कहानीकारों ने सोचा कि क्य कहानी-कला की फुल लग गया है। इस कारण इन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया। कश्य ज़ी वीर क्यन क्यकीरि से क्य प्रकृत है कि तुमने कहानीकला की वीर से क्यीं मुंह पीड़ लिया तो वे कुशनचन्दर वीर मिन्टी पर विगड़ते हैं कि तुमने क्यीं अपनी कला (फन) की सराब कर लिया। गुलाम अन्वय, क्यमंत सिंह, कुराक्युल-उदीन हैदर वीर क्यारा फुल की वीर देखते हैं तो इन्होंने कहानी कला की ऊंचा हो उठाया है।

हमारे नये कहानीकार यह कुल नहीं कर सके। प्रश्न उठता है कि नये कहानीकार क्यीं नहीं कर सके या क्यीं कुल कर सके जो इनके पूर्व के कहानीकार कर चुके हैं। इन कहानीकारों ने अपना पीढ़ स्वयं चुना है वीर अपनी क्यकी मंफ्यार में नहीं पड़ने दिया है। यह मंफ्यार के थपड़ी से क्यकर निक्कत भागने की कोशिश में रहते हैं। इन्होंने स्वयं क्यरय देते हैं पर क्यीं क्यने से डरते हैं।

नये कहानीकारों ने अपनी जीर्ण न देखकर दूसरों के कमगुणों को ही अधिक देखा है और कहानी कला की कसौटी पर परदे डाल दिये हैं। यदि इन कहानीकारों के हृदय में जन-साधारण के प्रति सहानुभूति होती है तो इनकी कहानों कला विकसित होती और पाठकों की दृष्टि में अच्छी समझी जाती । ये कहानों लिखने के कार्य की वास्तव समझ बैठे हैं, इस कारण उनकी कहानियाँ बेसी, कठोरी के समझा नहीं ठहर पाती ।

इन्तजार तुलिन अपने वापकी उस संकुचित विचारधारा से निकालें तथा विस्तृत क्षेत्र में घूमें तभी वह सफल कहानीकार सिद्ध होंगे । अफगाँव वल्लभ अपनी जीवन सम्बन्धी घटनाओं में जीर्ण भी गम्भीर बने । उनवर अजीम भी जन-सम्पर्क स्थापित करके ही कहानों लिखें तथा २० वल्लभ रंगोंन दृश्यों की अपेक्षा मानव जीवन की गहराइतों में उतरें तभी उर्दू कहानी की उन्नति कर सकें हैं। कहानीकार का उद्देश्य समाज में नई वाग्राति उत्पन्न करना है। उनके जीवन की सुखमय बनाना ही कहानीकार का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए । अतः उर्दू कहानीकार भविष्य में ऐसी कहानियाँ लिखें जिनसे जन-साधारण , कृषक मजदूरों का शिष्ट-व्यवित्तन ही जीर्ण उनकी बुराई के मार्ग से हटाकर फ़तर्ह के मार्ग पर ले जायें । तभी कहानों का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

उर्दू उपन्यास साहित्य का इतिहास :

उर्दू- कथा- साहित्य में 'दास्तान' और 'वफसाने' आते हैं। 'नावेल' शब्द अंग्रेजी की ही देन है। उर्दू कथाओं ने 'नावेल' शब्द को ले लिया है। इसका श्रेय फौट विलियम कालिज को है। उत्तरी भारत में गद्य का विकास नहीं हुआ वरन् कचहरी और राज्य की भाषा फारसी होने के कारण उर्दू कथा साहित्य का विकास एक दम रुक गया। इतना ही नहीं उर्दू गद्यकार भी पद्य को ही महत्त्व दे रहे हैं। उस समय का युग काव्य का युग था। उर्दू के कवि फारसी के विद्वान् होते थे तब भी उर्दू के गद्यकारों ने 'नसर' और 'मुरस्सा' लिखना प्रारम्भ कर दिया था। दक्षिणी भारत में गद्य के लेखक गद्य का विकास कर रहे थे। मौलवी अब्दुल हक और हकीम अब्दुल समसुल्ला कादरी का नाम प्रशंसनीय है। बीजापुर के सूफी संत शाह मिराजी शम्शुल हक ने 'जल तरंग' और 'गुल बास' सूफी धर्म से सम्बन्धित लेख लिखे।

बीसवीं शताब्दी से पूर्व उर्दू गद्य में बहुत कम किताबें लिखी गईं जो लिखी गईं वे अधिकतर काल्पनिक एवं धार्मिक थी जिनका कि अनुवाद फारसी से किया गया था। उर्दू गद्य साहित्य के विकास में फौट विलियम कालिज का बहुत बड़ा हाथ है। डा० गिल क्राइस्ट ने उर्दू गद्य साहित्य के विकास में योगदान दिया और उर्दू साहित्य में अनुवाद होने लगा। डा० गिल क्राइस्ट ने अपने कालिजों के प्रोफेसरों कैप्टेन ख़ासम लॉकट एवं डाक्टर ईटर द्वारा उर्दू गद्य के स्तर को ऊँचा उठाया। उस समय के मुख्य लेखक पीर अम्जन, शेर अली, हुसैनी, लुत्फ, लल्लूलाल, निहालचंद ताहोरी, इकराम

वली, महमूद मुनीर तथा मधारीलाल गुजराती थे। मीर जमन देहलवी
जिनका उपनाम 'सुल्फ' था गिल ड्राफ्ट की वाज़ा से 'चार दर्वेश'
जो फारसी में थी उसका उर्दू अनुवाद 'बागो बहार' के नाम से हुआ।
यह फारसी में कमीर हुसरो ने लिखी थी जिन्होंने अपने मित्र निजामुद्दीन
बौलिया के लिए लिखी थी। जब निजामुद्दीन बौलिया बीमारी से ठीक
हुए तो उन्होंने अपने मुँह से यह वाशीवाद दिया कि जो इस कहानी को
पढ़ेगा यह सुनेगा कभी बीमार नहीं पड़ेगा।

वास्तव में देला जाय तो डा० गिलड्राफ्ट ने
हिन्दुस्तानी भाषाओं का प्रचार इस कारण कराया जिससे अंग्रेजी साम्राज्य
के प्रतिदिन के कार्य सुलभ हो सकी कारण फारसी, संस्कृत के किस्सों के
धड़ाधड़ उर्दू गद्य में अनुवाद होने लगे। इससे अंग्रेजों ने ही उर्दू नहीं सीखी
वरन उर्दू वाले साहित्यकारों ने उर्दू में किस्से और दास्तानें लिखने प्रारम्भ
किए। बागो बहार इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। बागो बहार चार दास्तानों
की एक दास्तान है जिसमें शहजादे और शहजादियों के किस्से, वजीर और
सौदागरों के वार्तालाप तथा परियों की कहानियाँ हैं।

फौट विलियम कालिज की स्थापना से देहली और
लखनऊ के प्रेसों में कहानियाँ और किस्से धड़ाधड़ छपने लगे। लखनऊ के लेखकों
को अपनी भाषा पर नाज़ था इसलिए जो भी फैसाने लखनऊवालों ने लिखे
उसमें भाषा पर विशेष ध्यान दिया। ईशाजल्लाहा ने 'रानी कैतकी की
कहानी' शुद्ध हिन्दुस्तानी बर्षा हिन्दी में लिखी। ईशा की दृष्टि विभिन्न
वर्गों के व्यक्तियों पर बड़ी गहरी थी, इसका उर्दू उपन्यास बड़ा अच्छा प्रभाव

पड़ा। ५० रतन नाथ सरशार के फसानों में लखनवी ढंग का २ पर विद्यमान है। इस समय तिलश्मे होश 'रुबा' की हजार हजार पृष्ठों की जिल्दों की दास्तानें दिखाई देती हैं। यूरोप में 'अलफ लैला' से सभी प्रभावित थे। इसलिए उर्दू ने नाविल को नवीन जीवन प्रदान किया।

हमारे उर्दू नाविल का इतिहास १६ वीं सदी के अंत से प्रारम्भ होता है, जिनको हम दास्तान कहते हैं। उर्दू का प्रथम नाविल निगार (उपन्यासकार) मिरा नजीर अहमद है। नजीर अहमद ने सबसे पहले 'मिराहतुल अरुस' लिखा। बाप वीथी के विद्वान् होते हुए भी उर्दू में नाविल लिखते रहे। हा० नजीर अहमद वीथी की सर्वप्रथम नाविल 'फैला' जो रिचर्डसन ने लिखी थी, बड़े प्रभावित हुए थे। मौलाना शिक्षक पहले हैं बाद में कलाकार। वह युग ही ऐसा था जबकि वीथी मुसलमानों की प्राचीन रुढ़िवादिता से छटाकर नवीन दुनिया में लाना चाहते थे। इस कारण मौलाना नजीर अहमद ने अपने प्रथम नाविल में उन बमीर सान्दान की लड़कियों को लिया है जिनका लालन पालन बड़े लाह प्यार से होता है और जब शादियाँ हो जाती हैं तो वे ससुराल में समस्या बन जाती हैं। वह उनका सामाजिक उपन्यास है। यह नाविल लड़कियों के ही पढ़ने के लिए ही लिखा है। इस नाविल को प्रत्येक नवयुवक तथा महिलाओं ने एक सुन्दर उपन्यास बताया है। वास्तव में उर्दू कथा साहित्य को नजीर अहमद ने एक नवीन विचारधारा दी। उनके पात्र बोलते हैं, उनमें जीवन है। 'दूरन्देश' नाविल में नजीर अहमद दूरन्देश ही है। इस नाविल में मु० वाफिल और कामिल उनकी मा की पवित्रता तथा भद्रता का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। यूरोपियन लेखक

यद्यपि कहानी रुचिकर है परन्तु कथानक कोई नहीं। पात्रों के चरित्र का कोई विकास नहीं है। फसाने आजाद के चार बड़े वोल्यूम हजारों पृष्ठों के लिस्तर सरशार ने उर्दू कथा साहित्य की सेवा की यद्यपि उनमें उपन्यास कला के कम ही दर्शन होते हैं। शेर कुहसार, फसाना आजाद, जामे सरशार की पढ़ने से विदित होता है कि ये पुस्तकें अस्वार्थों के कालमों के लिए बिना उद्देश्य ही लिखी गईं। फसाना आजाद में अधिक आकर्षण है। आजाद एक स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति है। एक कुंवारी तथा शिक्षित महिला 'हुश्नबारा' के सौंदर्य पर मुग्ध हो जाते हैं और उसके कहने पर रोम के युद्ध में सम्मिलित हो जाते हैं, वापस आने पर हुश्नबारा से शादी हो जाती है। इतनी सी बातें थी जिसे अफसाना कर दिया। सरशार ने जो कुछ लिखा है वह हँसने और हँसाने के लिए। इनका कार्य दर्द दिल फेंकना था। यही कारण है कि हँसी हँसी से फक्कड़फन पर उतर जाते हैं।

नजीर अहमद ने वास्तव में उर्दू नाविल का प्रारम्भ किया और विकास की गति पर 'शरर' ने पहुँचाया। शरर ने उर्दू कथा-साहित्य के विकास में बड़ा योगदान दिया है। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करके उर्दू कथा साहित्य में चार चाँद लगा दिए। यही कारण है कि शरर को उर्दू उपन्यासों का स्काट कहा है। शरर ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे अवश्य हैं परन्तु उनकी इतिहास के किसी एक युग से पूर्ण जानकारी नहीं है। उनके उपन्यास समय के साथ बदलते रहते हैं। यही कारण है कि कभी उनको उर्दू का सफल उपन्यासकार लोग कहते हैं तो कभी उनको बाउट बाव् डेट सम्झकर बाहर निकाल फेंकते हैं। एक बार स्काट को इंग्लैंड में प्रमण करते हुए एक ऐतिहासिक उपन्यास 'तिलस्मान' हाथ पड़ गई जिसमें इस्लाम

का मजाक उड़ाया गया था। मजहबी जोश में जाकर शरर ने इस उपन्यास के विरुद्ध एक ऐसा उपन्यास लिखा जिसमें इस्लाम को जीवित किया जाय। इस कारण कुछ उपन्यास धार्मिक भी लिखे। इसका परिणाम यह निकलना कि उर्दू में बालीवुड-आत्मक उपन्यास का श्रीगणेश होगया। मौलाना तख्त-उ-क़ादी भी कहीं कहीं तो वे ऐसे भौढ़े शब्दों का प्रयोग करते हैं कि उनकी सहजीब, भाषा और योग्यता पर सन्देह होने लगता है। सैय्यद वजीर हुसैन देहलवी मौलाना शरर के सम्बन्ध में कहते हैं, “आपके तारीखी नाविल भी एक जिन्दा जावीद लोगों के तज़्ज़रों से पुर हैं और हालाँकि आपने मुकामी रंगारंगी से भी सफे के सफे काले किए हैं। सुबह और शाम के भी उसमें समा लीबे हैं, लेकिन बफ़सोस जिन्दा नहीं।”

वास्तव में शरर के जीवित पात्र भी ख़जीवित से लगते हैं। वास्तव में देखें तो उनके ऐतिहासिक नाविलों के सूर्य को ग्रहण लग गया है। इन्होंने धार्मिक जोश में ही जाकर नाविल लिखे थे इस कारण कुछ मजहबी मुसलमानों ने ही इनको अधिक प्रसन्न किया। इनके नाविल, “फिरदौसबरी” तथा “फ़ैज़ मोहना” सदैव जीवित रहने वाली हैं। “फिर-दौसबरी” जनता को अधिक प्रिय है। शरर की यही एक विशेषता है कि जब वह कौंसे काम करते हैं तो उस कार्य में ऐसे जुट जाते हैं कि फिर वह यह नहीं सोचते कि कौंसे उन पर हँस भी सकता है। इन्होंने अपने उपन्यास पाठकों के जानंद के ही लिए लिखे हैं और उनको यथार्थ का चोगा पहनाकर कल्पना की नींव पर लाकर सड़ा कर दिया। एक उपन्यास में तो इन्होंने

१- उर्दू के पाँच नाविल निगार - दास्ताने से बफ़साने तक- विकार ख़जीम ।

बलीगढ़ के छात्रों के विषय में बटकल पन्तू किस्सा गढ़ लिया है। उनके उपन्यासों में उपन्यासकारों की जो विशेषताएँ होती हैं, वे नहीं हैं। उनके उपन्यासों में कला तो है ही नहीं। काल्पनिकता का पूरा अधिक है। उनके पास जिन्दगी को देखने के लिए वैसे नहीं है तो भी शरर ने उपन्यास लिखने की ओर जागामी लेखकों की पृष्ठभूमि तैयार की।

मौलाना अब्दुल हलीम शरर की तरह हर्दोह के हकीम मुहम्मद अली तबीब भी उस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में से हैं। दोनों ही उपन्यासकारों को उर्दू के साहित्यकार मानते हैं। तबीब ने कल्पा के चौत्र में भी ऊँची उड़ाने उड़ी तो सौंदर्य के चौत्र में भी इश्क की सर्गमियाँ भी दिखाईं। तबीब के ऐतिहासिक उपन्यासों पर भी वही बालोचना की जाती है जो कि शरर के ऐतिहासिक उपन्यासों पर। उर्दू भाषा का प्रयोग बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। उनके मानव पात्रों में मानसिक, आध्यात्मिक, आत्मा सम्बन्धी समन्वय है। वास्तव में तबीब की लेखनी में शरर से अधिक उपन्यास लिखने की कला है। उनकी सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि वे भी मुसलमानों के वर्ग में इस प्रकार मिल जाये जैसे कि शरर थे।

अब्दुल हलीम शरर के समकालीन साधियों में सज्जाद हुसैन, मिर्जा, अब्बास हुसैनी तथा मिर्जा मुहम्मद हादी रुसवा जाते हैं। सज्जाद हुसैन, मिर्जा अब्बास दूसरे ढंग के लेखक थे। इन लोगों ने उपन्यास कला को इज्जत का ज़रिया (बादर का साधन) नहीं बनाया। मिर्जा अब्बास हुसैन होश की दो उपन्यास की पुस्तकें हैं। "अफसाना नादर जहाँ" तड़कियों के लिए लिखा गया है। इसका वही स्थान है जितना कि मियाँ नजीर अहमद के "मिरातुल अरुस" का। इसमें सास बहू के बाये दिन फगड़े

होने का पूरा चित्र है। यह एक सामाजिक दृष्टि से सुन्दर उपन्यास है। इसमें बताया गया है कि लड़कियाँ जब ससुराल में पहुँचती हैं तो किस प्रकार अपनी बुद्धि से ससुराल में शान्ति स्थापित कर सकती हैं, तथा वहाँ कलह से बच सकती हैं।

“होस” का दूसरा उपन्यास “स्तजवत” है। इस उपन्यास में मिर्जा कमाल प्रेमी और जमाल बारा प्रेमिका हैं। इसमें एक हिन्दु-स्तानी परदे के भीतर से पश्चिमी सभ्यता का दृश्य दिखाई देता है। वास्तव में यह उपन्यास उर्दू साहित्य की जीवित रहनेवाली वस्तु है। यह पुस्तक पुस्तकालय में रखने के योग्य है। सभी पात्रों का वर्णन समाज सुधार की भावना से है।

एसी युग के उपन्यासकारों में मिर्जा मुहम्मद हादी रुसवाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मिर्जा साहब फारसी और अरबी के विद्वान् थे। इस कारण उनके मस्तिष्क में उपन्यास कला का जीता जागता चित्र प्रस्तुत था। बी० ए० होते हुए तथा लंदन की विश्वविद्यालय से बीवर्सरीयरी पास होते हुए यह विज्ञान के नवीन प्रयोग करते थे। लिखने से अधिक इनको पढ़ने का शौक था। “अस्तरी बेगम” एक अच्छा उपन्यास है। किस्से की दिल-चस्पी सनसनी सैज तथा जासूसी किस्म की है। इनके उपन्यास घटनाओं तथा वर्णनों से प्रारम्भ होते हैं कुछ में यथार्थवादी घटनाएँ हैं तो कुछ में काल्पनिक बातें ही मरी पड़ी हैं। कुछ सामाजिक घटनाओं से ही जोत-प्रीत है। अधिकतर इनके वातावरण किस्सों पर ही आधारित हैं। इन उपन्यासों में प्रत्येक वर्ग पर उचित प्रकाश डाला जाता है। सबसे बड़ी कमी इन उपन्यासों में प्रतीत होती है, वह यह है कि इनमें सुधार की भावना नहीं है। यदि कोई मूल्यवान चीज़

इनके उपन्यासों में हैं तो इनकी साहित्यिक परिमार्जित भाषा ही है। रुसवा साधारणतः रिपोर्टर हैं कलाकार नहीं।

‘शरीफजादा’ में रुसवा ने एक फूछड़ जाँत की मनोरंजक तस्वीर खींची है। पढ़ने में तो यह उपन्यास पूर्णरूपेण शुष्क है, परन्तु इसमें रुसवा की कला के प्रथम दर्शन होते हैं। प्रत्येक वस्तु नयी तुली है प्रतीत होता है कि लेखक का कथानक की ओर अधिक ध्यान है।

‘उमराव जान जदा’ में कोई रोचक बात नहीं है और न कोई सनसनीखेज घटना है। यह एक वेश्या की सीधी सादी कहानी है। इस किस्से की सम्पूर्ण घटनाएँ रोचक हैं। इसलिए यह साहित्यिक उपन्यास है। इसमें उपन्यास की कला है जब तक यह नाविल रहेगा तब तक उर्दू उपन्यासकार की दृष्टि में इसके प्रति सम्मान होगा। इसका कथानक उच्च कौटि का है। इसमें एक मौलीभाली ‘उमराव जान जदा’ एक मासूम लड़की की कहानी है। मिर्जा रुसवा प्रत्येक स्थल पर अपने को प्रत्येक स्थल पर प्रस्तुत करते रहते हैं। इस उपन्यास में घटनाएँ एक दूसरे से शृंखलाबद्ध हैं। साथ ही उत्तार चढ़ाव भी है। इसमें एक राग है जो पहले उमराव के साथ धीमी गति से चलता है, जो खानम के चकले पर चरम सीमा पर पहुँच जाता है, यहाँ राग का दर्द इसके विकास में निहित है। खानम के चकले वाली घटनाएँ बड़ी सुन्दर हैं। अन्त में पाठक सोचता है कि हमने एक दर्द भरा गीत सुना है। इस विशेष राग के साथ जो उमरावजान जदा ने गाया दूसरे साज भी बजते रहे। उनकी अपनी अपनी ध्वनि अलग थी परन्तु सब गानेवालों की ध्वनि पर ही बजते रहे। यह सब रुसवा की विशेषता है। तात्पर्य यह है कि जो भी रुसवा को शिष्या मिली या उनमें सुझा था, वह सब इस उपन्यास के कथानक में केन्द्रित होगई

है। वास्तव में रुसवा ही एक सफल उपन्यासकार है। जो कोई पाठक उर्दू नाविल का अध्ययन करे या पढ़े उसको मिर्जा रुसवा रुसवा का यह उपन्यास 'उमराव जान जदा' अवश्य पढ़ना चाहिए।

'उमराव जान जदा' के सबसे प्रसिद्ध पात्र स्वयं रुसवा है। 'उमराव' इस उपन्यास की स्वयं हीरोइन है और रुसवा स्वयं हीरो है। इसके किस्से में किसी न किसी प्रकार रुसवा अवश्य सम्मिलित हो जाते हैं। उमराव जो वार्तालाप सुननेवालों को देती है वह रुसवा की ओर ही संकेत है। वह और उमराव एक आत्मा और दो शरीर हैं। दोनों की विचारधारा एक ही है।

रुसवा की दार्शनिक विचारधारा धर्म है। वह बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। वह वास्तव में रुसवा है, लखनवी है और आशिक मिर्जाज है। वह उमराव जान से कहते हैं, "सुनो उमराव, मेरी बात याद रखना, जहाँ कोई हसीन औरत नज़र पड़े मुझे जरूर याद कर लेना, यदि मुमकिन हो तो उम्मीदवारों में नाम लिख देना और जो मैं मर जाऊँ तो मेरे नाम पर फातह दे देना।" रुसवा सफल उपन्यासकार है। हाँ कहीं कहीं वर्णन अरुचिकर बनवाशक हो जाते हैं। उमरावजान जदा ही एक उपन्यास है जो प्रत्येक पहलू से सरा उतरता है। रिचर्डसन की 'पमेल' से यह किसी भी प्रकार कम नहीं है। इसमें जीवन और कला एक दूसरे के हाथ में डालकर चलते हैं। जीवन, कला को रास्ता दिखाती है और कला जीवन को। उपन्यासों के लिए यह ज्योति प्रदान करता है।

सन १६०५ से १६४७ (फ़ान का युग)

‘ उमराव जान जदा ’ के कछे वर्षों तक उर्दू उपन्यास-क्षेत्र में सन्नाटा सा रहा । आशा तो यह थी कि उर्दू उपन्यास की उन्नति होगी परन्तु आशा निराशा में बदल गई । परिणामतः होगई और उर्दू कथा-साहित्य में उन्नति की अपेक्षा अवनति ही रही । जब यूरोप की अंग्रेजी शिक्षा एवं वातावरण का प्रभाव जब मुसलमानों की रहन सहन पर पड़ा तथा उनके मध्य अंग्रेजी साहित्य का प्रचार हुआ तो उर्दू में उपन्यास लिखने वालों का यह कर्तव्य था कि पाश्चात्य उपन्यास प्रणाली को देखकर उर्दू उपन्यास कला की उन्नति करते । परन्तु अंग्रेज भाषा साहित्य से किसी प्रकार उर्दू कथा-साहित्य की उन्नति नहीं हुई । यदि कोई उपन्यास लिखा भी गया था उसने वही फ़िटी फ़िट्टाई ही चीजें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की । इससे उर्दू उपन्यास क्षेत्र में किसी भी प्रकार का विकास नहीं हुआ । इन चालीस वर्षों में इसी प्रकार के उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिन्हें रोमांसकारी उपन्यास कहते हैं। मौलाना राशद उल सेरी ने मौलाना नजीर अहमद की नावलों की तरह की नावलें लिखी । सरफ़राज हुसैन ने वेश्याओं के विषय में नावलें लिखी । इसके कुछ समय बाद मिर्जा मुहम्मद सईद , मुहम्मद मेहदी तस्कीन तथा न्याज फ़तहपुरी हैं। न्याज फ़तहपुरी सबसे बड़े कथा साहित्यकार हैं। समालोचना के क्षेत्र में इनका कोई प्रति-द्वन्दी नहीं ।

इस युग के उपन्यासों में किशन प्रसाद का लै ‘ का श्यामा प्रसिद्ध है। इसी प्रकार वजीम बेग चुगताई की एक उत्तम उपन्यास ‘ सातिम ’ है। उर्दू कथा-साहित्य के क्षेत्र में जब यह युग कहानियों का वागया था । बीसवीं शताब्दी में उर्दू क्षेत्र में कथाकार कहानियों की ओर अधिक ध्यान देने

लगे । कुछ समय उपन्यास जगत् में अधेरा ही छाया रहा । इसके उपरान्त एक मानव ने, जो उपन्यास कला की गति धीमी चल रही थी, उसमें प्रगति ही नहीं की वरन् नवीन विचारधारा लेकर क्रान्ति ला दी । यह थे उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द । उनकी कहानियाँ तथा उपन्यास उर्दू कथा साहित्य में स्वर्ण अक्षरों से लिखे योग्य हैं। प्रारम्भ में मुन्शी जी उर्दू में कहानियाँ लिखते रहे परन्तु अन्तिम वर्षों में वह कहानी दौत्र से निकल कर उपन्यास की ओर बागये । इस क्रम में भी वह अपनी लेखनी से ऐसे उपन्यास लिख गये जिनकी कला बहुत उच्च कौटि की है।

मुंशी प्रेमचन्द की कला की समझने के लिए यह बाव-
 शक्य है कि उनके उपन्यासों का गहन अध्ययन किया जाय । यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मुन्शी प्रेमचन्द उर्दू दौत्र में पहले आये इसके पश्चात् हिंदी में लिखना प्रारम्भ क किया । उनके उपन्यासों को दो कालों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम काल में तीन उपन्यास प्रमुख हैं। प्रथम 'बेवा' बाजारे हुशन , तथा अन्तिम 'निरमला' । यह तीनों उपन्यास सन् १९२९ से पूर्व ही लिखे गये । इनका उद्देश्य सामाजिक है। हिन्दू समाज में किसी न किसी फलू का वर्णन करना मुन्शी जी की विशेषता है। पुस्तक का शीर्षक है तो 'बेवा' पर मुन्शी जी की दृष्टि सुहागिन तथा बेवा दोनों प्रकार की बातों पर है। 'बाजारे हुशन' जिसका बाद में हिन्दी में सेवा सदन के नाम से रूपा-
 न्तर किया मुन्शी जी का एक महान् सामाजिक उपन्यास है। समाज के द्वारा ही आदमी बुरा बनता है। इस उपन्यास में हिन्दी रीति रिवाज तथा दहेज प्रथा के विरुद्ध मुन्शी जी ने वावाज उठाई है। निरमला में एक सुन्दर युवती का बूढ़े एवं शक्की पति का ताहिना सहते सहते उसका मर जाने का वर्णन है। इस पर भी 'बाजारे हुशन' की प्रतिच्छाया है। उपन्यास कला से मुंशी

जी की विशेष जानकारी है परन्तु वास्तव में मुन्शी प्रमचन्द कहानी और उपन्यास के मध्य सड़ सड़सड़ाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं वह क्योंकि वे कहानियों में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं और उनका वास्तविक रुझान उसी ओर है इस कारण सामाजिक चित्रण करने में वे अधिक सफल हैं।

दूसरे काल में चार उपन्यास अपनी विशेष स्थान रखते हैं। 'गीश बाफत' जिसमें किसान और जमींदार के मध्य में सींचातानी है। दूसरा 'चौगान हस्ती' जिसमें गरीब किसानों तथा सुदलीर महाजनों का वर्णन है। तीसरा 'मैदान कमल' जिसमें अजरकान्त की धीरे धीरे कलह और कौटुम्बिक प्रेम से निकल कर नेता बन जाना और देश भक्त हो जाने का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से मुन्शी जी ने प्रस्तुत किया है। और चौथा 'गोदान' जो मुन्शी जी के संपूर्ण जीवन का निचीड़, उनकी उपन्यास कला का क्वालिटी तथा उर्दू उपन्यास साहित्य के विकास का ज्वलन्त उदाहरण है। यह सभी उपन्यास इस बात के साक्ष्य हैं कि किस प्रकार मुन्शी प्रमचन्द प्राणिमंडल से अपनी कला को निकाल कर ठीक रास्ते पर लाये हैं। बीसवीं सदी के ध्वज जैसे समाज सुधारक होगये। 'मैदान कमल' में कार्य करने की ओर तथा देशप्रेम की ओर ही मुन्शी जी ने भारतीयों को प्रेरित किया है।

जिस समय मुन्शी प्रमचन्द उपन्यासकला में प्रवृत्ति प्रविष्ट हुए, उस समय इंग्लैंड में ध्वज का शासन था। मुन्शी जी ने ध्वज के रास्ते को ही ठीक समझा। जी वास्तव में यथार्थ है उसका ही वर्णन प्रमचन्द ने किया है। प्रमचन्द ने अपने उपन्यासों में इस दम्भी समाज की कलह लौट कर रख दी है तथा समाज की कमियाँ का पोस्टमार्टम कर दिया है। 'मैदान

कमल " में भारत की स्वतन्त्रता की वीर संकेत है। " गोदान " भारत के किसान मजदूर तथा शोणित जमींदारों का जीता जागता चित्र है। गोदान में शहर ने झुंकर गांव के चरणों में वंदना की है। मालती के जीवनधारा में परिवर्तन का त्रैय ग्राम्य जीवन के त्याग एवं सीधे साधे प्राकृतिक जीवन से ही है। मुन्शी जी ग्रामीण कृषकों एवं मजदूरों के विशेष हिमायती थे । उनके मनोवैज्ञानिक धारा के कुशल चित्ते थे । प्रमचन्द ने प्राचीन भारतीय संस्कृत तथा आधुनिक पाश्चात्य आदर्शों का संघर्ष उपस्थित किया है। " गोदान " में पति परायण गोविन्दी अपमानित एवं तिरस्कृत होकर भी पति सेवा एवं संतान प्रेम वाली आदर्श भारतीय नारी है। यह सम्बन्ध विच्छेद के लिए न्यायालय जाने की आवश्यकता नहीं समझती । मालती डाल डाल पर फुदकने वाली मैन है। वह रंग विरंगी पाश्चात्य तितली है। तन्ना सरीसृप पुंजीपति गोविन्दी सरीसृप विवाहिता देवी पत्नी को बाल भात बताकर चटपटा नमकीन वीर स्वादिष्ट रसगुल्ला चाहते हैं तथा रंग-रतियों में मस्त मालती, सरीसृप कुमारियों मिर्चों के तलुए चाटने में ही जीवन की सफलता समझते हैं। यद्यपि ये चिड़ियां किसी की भी नहीं होती । तन्ना के पींजरे से भी वह दाना पानी साकर खा बताकर पुर से उड़ गई वीर तन्ना देखते ही रह गये ।

स्त्री स्वतन्त्रता विनायक मेहता का माणण सत्य तथा सुदम भारतीय सामाजिक जीवन का परिचायक है। भारतीय उर्वरा भूमि भी इस विदेशी पीधे के लिए तो बन्ध्या हो रहनी तलाक बिल पास होने पर भी यहां दो आत्माओं का संयोग छूटेगा नहीं । गृह प्रदेश की गृहिणी सदैव छुट्टय प्रदेश की रानी बनी रहनी । प्रमचन्द की भारतीय आदर्श पर अभिमान था जिसमें स्त्री पुरुष की बर्दागिनी है। वास्तव में प्रमचन्द युग-द्रष्टा थे । सन् १९५२ में नष्ट होने वाली जमींदारी उन्मूलन कानून का संकेत वे पूर्व ही कर गये ।

सन् १९३५ से संसार में छाया शुरू होगी । साहित्य की भी छाया बनाया जाने लगा । विभिन्न प्रकार की कहानियाँ निबन्ध और काव्य की रचना होने लगी । अधिकतर कहानियाँ लिखी जाने लगी । परन्तु कुछ साहित्यकारों ने एक दो उपन्यास भी लिखे । इस समय तीन व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होते हैं। कृश्नचन्दर , कबीर अहमद, जसमत चुगताई । कृश्नचन्दर ने " शिकस्त " उपन्यास लिखा । कृश्नचन्दर ने सदैव बदलती हुई घटनाओं का ही वर्णन किया है। भारत का विभाजन हुआ तो उस पर अफसाने ही लिख डाले । इनका सिद्धान्त वस्तुतः क्लेशकारी है, साहित्यिक नहीं , जिसमें पैसा कमाने के लिए कहानीकार बनना सिखाया जाता है। " शिकस्त " कश्मीरी जीवन का उपन्यास है जिसमें कृश्नचन्दर पत्रकार के रूप में सहायक सम्पादक हैं । इनके वर्णनों में वह गहराई नहीं जो एक साहित्यकार की होनी चाहिए । भाषा कुछ स्थलों पर बनावटी परन्तु प्रभावपूर्ण एवं रोचक है। किशन प्रसाद कौल के शब्दों में, " शिकस्त में जो देहाती जिन्दगी का तज़क़रा किया गया है उसमें मुझे कोई ऐसी बात नज़र नहीं आती जिससे कि यह मालूम हो कि यह काश्मीर की देहाती जिन्दगी की तस्वीर है। यह तज़क़रा तो पंजाब के किसी भी पहाड़ी इलाके या गाँव का हो सकता है। वही प्रकार कुदरती मनाज़िर की जो अक्कासी की गई है वह भी गालबिन शिमला, डलहीजी के पहाड़ी दृश्य हैं। "

इसका कथानक फिल्म पर आधारित है। वही फजी हश्क, वही एकान्त स्थानों में पड़ों के नीचे मुलाकातें फिल्मी दुनियाँ की तरह मिलती है। वह दृश्य जिसमें श्याम अपनी अंग्रेजी भाषा न जानने वाली प्रेमिका की " बी माई डारलिंग " से सम्बोधित करता है और इसका जर्थ बताते हुए वह अपने की इसी प्रकार से कहलवाता है। यह दृश्य आधुनिक युग में पत्नी हुई

सम्यता का प्रतीक है। आधुनिक जीवन तथा पश्चिमी सम्यता का इस उपन्यास पर प्रभाव है।

असमत चुगताई की नाविल "टेढ़ी लकीर" उर्दू साहित्य की अच्छी नाविल है। इनकी प्रसिद्धि इनकी छोटी कहानी "लिहाफ" से घर घर में होगई। इनकी कहानियाँ एवं उपन्यासों पर फ्राइड तथा लारेंस का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। "टेढ़ी लकीर" का लिखने का ढंग वही है जो मियाँ रुसवा का "उमराव जान अदा" का है। इसके ठेठपन की चुगताई ने इस प्रकार वर्णन किया है कि दिल फड़क उठता है। इस उपन्यास का अधिकांश भाग बड़ा सुन्दर है जिसके कारण असमत ने इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। जो कुछ भी कहती है वह स्पष्ट कहती है। यह स्पष्टवादी है, प्रीफण्डावादी नहीं। यह अवश्य है कि वास्तविकता का वर्णन करती हुई लगभग-एक ऐसे गड्ढे में गिर जाती है जिसमें से निकल नहीं पाती परन्तु इनकी लेखनी में इतनी शक्ति मरी हुई है कि पढ़ने वालों के दिल को हिला देती है। इन सब विशेषताओं से असमत का "टेढ़ी लकीर" उपन्यास उर्दू कथा साहित्य में उच्च स्थान रखता है।

अजीज अहमद इसी युग में जाते हैं। इनके ककसाने रिसालों में दृष्टिगोचर होते हैं। "गुरज" इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। इनकी वांग्म भाषा पर बड़ा अधिकार है क्योंकि लन्दन विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। इतने योग्य होते हुए भी हमारी आशाओं पर पानी फेर देते हैं। "गुरज" का नायक नईम उस हसन वार्डोली०एस० है। जब वह इंग्लैंड जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री सख्वास के वीर उसका कोई उद्देश्य नहीं। इस उपन्यास पर फ्राइड की छाप है। टैक्नीक की दृष्टि से अजीज अहमद का "गुरज" उपन्यास

पर पूरा अधिकार है। उन्होंने उर्दू कथा साहित्य की प्रतिभा में चार चांद लगा दिए। इस दृष्टि से अज़ीज, क़ुशन चन्दर एवं अ़समत जुगताई दोनों से आगे हैं। इनके सम्पूर्ण उपन्यासों का हाल यह है कि शरीर उत्तम और सुन्दर तथा आत्मा निहायत घटिया।

सन् १९०५ से १९४७ तक जो उर्दू कथा साहित्य ने प्रगति सरशार से रुसवा तक की थी वह बिल्कुल रुक गई, उपन्यास तो सिर्फ़ सनसनी सेज घटना हो गया था फिर दलदल में फँसकर रह गया। हमारे उर्दू कथाकारों को अज़ीज भाषा के बुक स्टाल वाले साहित्य से ही रुचि रही। अतः जो भी उपन्यास लिखे गये वह कला की दृष्टि से निम्न थे। अधिकतर लोगों का रुझान कहानियों की ओर था। मुन्शी प्रेमचन्द ने भी उच्च कौटि की उर्दू में कहानियाँ ही लिखीं। इनका लिखने का अभ्यास अधिक बढ़ गया था, इस कारण यह उर्दू उपन्यास क्षेत्र में उतरा। इनको "गोदान" उपन्यास सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। सन् १९३६ के पश्चात् "टेढ़ी लकीर" ही जाती है। अ़समत में कौटि राहें तो करन का ही दम है और इसी पर वह बड़े जोर शीर से कामयाब रही परन्तु अंत में दम टूट गया और मंजिल पर न पहुँच सकी। इससे यह लाभ हुआ कि उपन्यास स्तर से गिरा अवश्य परन्तु स्पष्ट अधिक हो गया।

विभाजन के बाद (१९४७- १९६४)

विभाजन के पश्चात् उर्दू कथा साहित्य को भिन्न भिन्न नामों से सम्बोधित किया गया। कोई इसे उन्मत्ति का युग, कोई इसे अवनति का युग, कोई इसे नवीन आविष्कार या प्रयोगों का युग कहते हैं। कुछ भी हो यह युग उर्दू कथा साहित्य में गप और पथ दोनों का ही रहा।

भारत विभाजन के पश्चात् जितने उपन्यास लिखे गये उतने उपन्यास उर्दू के किसी युग में नहीं लिखे गये । यह युग ऐसा था कि इस समय लोगों का धर धर स्थान परिवर्तन होना, बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ और दुःखों का सामना करना पड़ा । उपन्यास भी इस युग की मंजिल से निकल कर बागे बढ़ रहा था ।

इस युग में जितने उपन्यास लिखे गये , चाहे वह सामाजिक हों, रोमान्टिक हों, ऐतिहासिक हों यथार्थवादी हों किसी भी प्रकार के हों, सभी ने उर्दू कथा-साहित्य में घाक जमा ली । दंगे पूर्ण उपन्यास का युग विभाजन के कुछ समय पूर्व तथा कुछ समय बाद का है। जिसमें मानव ने दिल भर कर मानव के रक्त से होली खेली । रामानंद सागर का " इंसान मर गया " , एम० अलम का " रक्की हलबीस " , रशीद अख्तर का " पन्द्रह अगस्त " नसीम हजाजी का " साक और खून " , बेबावरु और फिरदौस कैसी रामपुरी के इसी से सम्बन्धित हैं। यह घातक लोगों ने ही पसंद किए जिनके हृदय इन दंगों से दुःखी हुए । विभाजन के पूर्व और पश्चात् जो देश के ऊपर मुसीबतें आई उससे उपन्यासकारों ने पूरा लाभ उठाकर उभरी हुई चोट की और अधिक उभारा है। इन उपन्यासों से मानवता की सहायता मिलता है। कला की दृष्टि से यह उपन्यास दुसरे दर्द और शोषण के दृष्टान्त हैं।

कगड़ दंगों के अतिरिक्त जो उपन्यास लिखे गये वह ऐतिहासिक उपन्यास ही हैं। कुछ समय तक तो उर्दू उपन्यासकार यह भूल गया कि ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त कुछ और भी है। फिर से मुहम्मद बिन कासिम , सहाबुद्दीन की वीरतापूर्ण ज़ातें फिर से नव जीवन का संदेश देने लगी । इन लोगों ने जीवन की पवित्रता, मानव के प्रति सहानुभूति रखने के

लिए ही उपन्यास लिखे । इन लोगों ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा उपदेश ही दिया ।

एम० कसलम के उपन्यासों में हास्य का पुट अधिक है। रईस अहमद जाफरी के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रेम के सुन्दर रूचिकर किस्से तथा सरस वातावरण इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किये हैं कि पाठकों के दिल पिघल जाते हैं।

नसीम हजाजी ने अपने उपन्यासों में इस्लामी इतिहास के ऐसे अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनमें किस्से में प्रभाव तथा उत्साह भर गया है। इनके उपन्यासों में प्रारम्भ, विकास, चरम सीमा तथा अन्त का एक ऐसा समन्वय है कि कहानी या उपन्यास पढ़ने वालों की अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इनकी एक यह भी विशेषता है कि यह यथार्थवाद की ओर चलकर सामाजिक उन्नति की ओर भी ध्यान देते हैं। मुवज्जम अली, ज्वाल उलखमरा, और बाताकोट अली उल तरतीब, नसीम हजाजी, एम० कसलम, और रईस अहमद जाफरी का नाम ऐतिहासिक उपन्यासकारों में है। कला के दृष्टिकोण से मुवज्जम अली बकौल, नसीम हजाजी, टीपू सुल्तान के महान् व्यक्तित्व पर लिखे वाली में से एक हैं। ऐतिहासिक तथ्यों पर रोमान्स का प्रभाव "बाताकोट" जैसे उपन्यासों में मिलता है। हमारे उपन्यासकार ऐतिहासिक घटनाओं से अधिक रोमान्स और प्रेम की ऐतिहासिक उपन्यास की बाजार शिला समझते हैं। अभी "जेनुनिसा" के व्यक्तित्व पर एक उपन्यास रूपा है जो ऐतिहासिक कम है और रोमाण्टिक अधिक है।

इशरत रसमानी का "खामा" जफर का "बदन से दूर"

जैदी का "नये चिराग" इसी प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास है। कैसी रामपुरी को अपने उपन्यासों में असफलता इस कारण मिली है कि उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों को पाकिस्तान के राजनीतिक घटनाओं के आधार पर लिखा है। इसके अतिरिक्त नसीम हज़ाजी, एम० असलम० रहैस अहमद जाफरी और कैसी रामपुरी ने ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं परन्तु उपन्यास कला के दर्शन कम ही होते हैं। अबीज अहमद के साहित्यिक उपन्यास, फात्मा मुबीन, इन्तजार हुसैन, अली अब्बास हुसैनी और शक्ति धानवी के सामाजिक, ए० अहमद के रोमानी, हिजाब हमत्याज अली और आबिद जफर के मनोवैज्ञानिक, कृष्ण चन्दर के राजनीतिक उपन्यास हैं। खान महबूब ने वैज्ञानिक उपन्यास लिखे हैं। इसके अतिरिक्त जासूसी तथा कूटनित उपन्यासों की कोई कमी नहीं है। हुसैनी का उपन्यास "शायद बहार आई" और इन्तजार हुसैन का "चांद गहन" भी अच्छे उपन्यास हैं।

ए० हमीद ने भी उर्दू उपन्यास क्षेत्र में काफी धूम मचाई है। "उरधे धीस, और क्वल", "जहां बरफ गिरती है" फिर बहार आई और फूल उदास हैं " इनमें रोमानी आकर्षण, सौंदर्य तथा जीवन की तड़प है। कृष्णचन्दर के "जब सित जागे", "सूफान की कलियां" और आसमान रोशन है " अच्छे उपन्यास हैं। इनमें समाज सुधार की भावना निहित है। फात्मा मुबीन के उपन्यास "हरानी, सूरिया और निगार", अबीदा सातून की "द नादरा" आयेश जमात का "गरदे सफर" वास्तव में अच्छे उपन्यास हैं।

आधुनिक युग के सम्पूर्ण उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों का अध्ययन करने के बान हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमारे

उर्दू उपन्यासकारों ने अपने अपने उपन्यासों को अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी जीवन की घटनाओं में ढाला है। हम्त्याज क़ली का उपन्यास "वंधेरा स्वाव" हमारे समाज की रोचक कहानी है, इसमें मनुष्य के अनुभव, मानव जीवन की वास्तविकता तथा यथार्थ घटनाएं हैं। आधुनिक उपन्यासकारों ने कला तथा रुचि का समन्वय अपने उपन्यासों में किया है। इसी प्रकार मख़्दूम तरजी का ज्ञान, कला तथा विज्ञान में समन्वय है। कुछ अनुवाद भी किये गये। डी० एच० लारन्स, दोस्तीवस्की आदि लेखकों से प्रभावित होकर हसन अशकरी, शफीक उल रहमान, सज़ाब हम्त्याज इन्तज़ार हुसैन आदि ने अनुवाद किये हैं।

विभाजन के उपरान्त जितने उपन्यास लिखे गये उनकी देखकर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उर्दू उपन्यास हमारे कथा साहित्य की आधुनिक युग की सबसे बड़ी देन है। यद्यपि बहुत कम लिखने वालों ने इसके विषय में कम चिन्तन किया है तथा साहित्यिक तथा कलात्मक ढंग से कम सीचा है परन्तु इसमें भी उन्होंने उर्दू कथा-साहित्य का विकास करने का ध्यान रखकर कुछ न कुछ उर्दू उपन्यास का मस्तक ऊँचा किया है। वैसे आज के युग में उर्दू कहानी का ही प्रचलन अधिक है क्योंकि आज पाठकों के पास समय-अभाव के कारण उपन्यास पढ़ना नहीं चाहते वरन कहानियाँ ही अधिक पढ़ते हैं।

=====

ਬਾਬ ਕਰਿਆ

=====

षष्ठ अध्याय

हिन्दी और उर्दू के कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

२० वीं शताब्दी (१९०० से १९६० तक)

हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाएँ खड़ी बोली से विकसित हुई हैं जहाँ दोनों का मूल एक ही है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कोई तात्त्विक भेद नहीं है । २० वीं शताब्दी में दोनों भाषाओं विपुल साहित्य की सर्जना हुई है- गद्य और पद्य दोनों में । उर्दू काव्य की अपनी एक परम्परा रही है जो फारसी से अधिक प्रभावित है, इसलिए शैली की दृष्टि से २० वीं शताब्दी की उर्दू काव्य में हिन्दी काव्य की अपेक्षा चाहे जितना वैभिन्न्य हो विषय वस्तु की दृष्टि से यह भेद न्यूनतर होता गया है । कथा- साहित्य में तो वाच्यार्थजनक समानता मिलती है । हम इस निर्बंध में उर्दू और हिन्दी में २० वीं शताब्दी के उर्दू हिन्दी के कथात्मक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करेंगे । हिन्दी और उर्दू के कथात्मक साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का विवेचन करने से पूर्व दोनों की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से पहले उसका रूप का ऐतिहासिक दृष्टि से अलग अलग अध्ययन करना उपयोगी होगा :-

हिन्दी के कथात्मक साहित्य की परम्परा और बीसवीं शताब्दी से फरसे उसका रूप :-

हिन्दी के कथात्मक साहित्य की परम्परा का पता लगाने के लिये हमें अधिक प्राचीन काल तक जाने की आवश्यकता नहीं है । हमारे उपन्यास- साहित्य का जन्म उन्नीसवीं शती के अन्तिम पाद में ही हुआ । किन्तु यह सत्य है कि प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में कथात्मक साहित्य की परम्परा चलती आ रही है । इसी परम्परा ने निरन्तर क्रमिक रूप से विकसित होकर हमारे उपन्यास का जन्म दिया । प्राचीन कथा- साहित्य की उपन्यास का आधार मानना ही तो हमें क्रमशः विकसित होने वाली एक धृक्तावद्ध परम्परा प्राप्त होनी चाहिए परन्तु ऐसी कोई परम्परा नहीं दृष्टिगत होती । साथ ही प्राचीन कथा- साहित्य और आधुनिक उपन्यास में बहुत मौलिक अंतर है । इसकी समझने के लिये हमें प्राचीन कथा- साहित्य के विभिन्न रूपों का अवलोकन करना पड़ेगा ।

प्राचीन भारतीय कथा- साहित्य के अंतर्गत जो कथाएँ आती हैं वे प्रायः वैदिक कथाएँ, संस्कृत कथाएँ, पालि कथाएँ, प्राकृत कथाएँ, अफ़ग़ानि कथाओं के साहित्य पर आधारित हैं । ऋग्वेद में जो कथाएँ मिलती हैं, वे कथाएँ न होकर कथाओं के बीज हैं । वास्तव में यह बीजों का संकलन है, जिसमें कथोपकथन का होता ही कथा का मूल कहा जा सकता है । उन्हें संवाद- सूत्र भी कहा जाता है । विद्वानों का अनुमान है कि कथा- साहित्य का मूल उद्गम- ग्रोत ये ही सूत्र हैं । "अपाता" आदि की

कथा का नाम लिया जा सकता है । परन्तु यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जो कथाएँ अपने बीज रूप में ऋग्वेद में मिलती हैं, वे ही परम्परा साहित्य में लिखित विस्तार से उपलब्ध होती हैं । " निरुक्त " में इन कथाओं के मूल आधार को बताने का प्रयत्न किया गया है । परन्तु ये कथाएँ जिस दृष्टिकोण से लिखी गई हैं उनका दृष्टिकोण उपन्यास के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न है । जिस समय से लेखक जान बूझकर उपन्यास लिखने लगे उनका ध्येय समाज और व्यक्ति का निरीक्षण उनकी भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने का रहा है । लेकिन वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों की कथाओं का ध्येय कुछ दार्शनिक, धार्मिक, ज्योतिष नैतिक सिद्धान्तों का समर्थन करना या उदाहरण प्रस्तुत करना रहा है । ये प्राचीन कथाएँ जीवन के विभिन्न वास्तविक पहलुओं पर प्रकाश नहीं डालती, सामाजिक ज्योतिष वैयक्तिक विशेषताओं को प्रकट करने नहीं करती । जीवन के गूढ़तम रहस्यों का अन्वेषण करने वाली इन कथाओं में वास्तविक जीवन का प्रतिभास नहीं मिलता । इनमें चरित्र चित्रण पर भी ध्यान नहीं दिया गया । पात्रों की दृष्टि करते समय लेखक का ध्यान पात्रों पर न रहकर, उन तत्त्व परिस्थितियों पर ही रहता है जिनका वे उद्घाटन करते हैं । इन कारणों से इन कहानियों में उपन्यास या कहानियों के तत्त्व ढूँढ़ना व्यर्थ है ।

“ चितौ फल ”, “ फल तत्र ”, “ वेतास फल विशति ”,

“ कथा संहितागर ” जैसे संस्कृत के ग्रन्थ “ कुमार पाल- प्रतिबोध ” जैसे

संस्कृत - प्राकृत काव्य आदि भी चरित्र निर्माण के उपदेश देने वाली कथाओं

से नरे फड़े हैं। ये वेद, उपनिषद् आदि की कथाओं के समान दार्शनिक नहीं हैं। इनसे अधिक 'रामायण', 'महाभारत' आदि कथात्मक काव्य-ग्रन्थों में उपन्यास तथा कहानी के तत्व अधिक मिलते हैं। 'रामायण', 'महाभारत', 'रघुवंश', 'कुमार सम्भव' आदि काव्यों में कथा-विकास एवं चरित्र चित्रण के जो प्रौढ़ रूप मिलते हैं, उनसे वाश्चर्य होता है कि ये रूप उपन्यासों में क्यों नहीं आये। इन काव्यों में वर्णन और विवरण के उत्कृष्ट दृष्टान्त मिलते हैं, मनुष्य के मानसिक भावों और इन्द्रियों के विश्लेषण में ये अद्वितीय आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की पराक्षित कर सकते हैं। इन पाठों का ध्यान में रखते हुये हमें कहना पड़ता है कि हमारे उपन्यासों पर इनका प्रभाव नगण्य है।

इन कथाओं और आधुनिक कथा-साहित्य के बीच कौण समानता है तो वह केवल आकस्मिक है। इन कथाओं में न जीवन का रूप दिखाने का प्रयास है, न चरित्र चित्रण का। एक उच्चतर जीवन की कल्पना के अतिरिक्त इनमें कुछ है तो वह मनोरंजन सामग्री है। इनका और उपन्यासों का सामान्य संबंध केवल कथानक है। इन कथाओं में जो जीवन मिलता है वह उच्चतर स्तर का होने के कारण कथवा मनोरंजक वाश्चर्यमय घटनाओं से पूर्ण होने के कारण पास्तविक लोक जीवन से बहुत दूर है, जबकि उपन्यास का जीवन से सम्बन्धित रहना अस्मि अनिवार्य है।

“ दश कुमार चरित”, “ कादम्बरी”, “ वासवदत्ता”
 जादि प्रामाण्यक वास्त्याकिकारों की कुछ चीजों में उपन्यासों से मिलती जुलती
 हैं। उनके वस्तु विकास की शैली विश्लेषणात्मक नहीं, विवरणात्मक
 है। हिन्दी के सभी प्रारम्भिक उपन्यासों में इसी शैली का प्रयोग हुआ है।
 किशोरीलाल गोस्वामी ने हिन्दी उपन्यास को पश्चिम की देन न मानकर,
 उन वास्त्याकिकारों से वाकिर्भूत माना है। उन्होंने “ उपन्यास” शब्द
 की व्युत्पत्ति बताकर फिर कहा है, “ उपन्यास की प्राचीन काल में
 भारतवर्ष में प्रचलित था और दशकुमार चरित, वासवदत्ता, श्री हर्ष
 चरित, कादम्बरी जादि उपन्यास इसकी प्राचीनता के वाज्वल्य प्रमाण हैं।
 परन्तु गोस्वामी के उपन्यास वास्त्याकिका के जितने निष्पट हैं, उपन्यास से
 उतने ही दूर हैं। जाधुनिक उपन्यासों का रूप कुछे भिन्न है। प्रेमचंद
 और परवर्ती उपन्यासकारों ने वास्त्याकिकारों से कुछ ग्रहण नहीं किया।
 उन्होंने या तो पश्चात्य उदायासों की प्रतुष्टियों को जफाया या वकी
 स्वतन्त्र विचरक से चिन्तन से काम लिया।

हिन्दी का पहला उपन्यास “ परीक्षा गुह” सन्
 १८८२ के लगभग लिखा गया। इसके लेखक श्री श्रीनिवासदास थे। श्री
 देवकीर्णधन त्रिपाठी का “ चन्द्रकान्ता” सन् १८६० में प्रकाशित हुआ। श्री
 गोपालराम गहमरी ने इसी समय के वास पास बंगला की छाया लेकर कई
 उपन्यास लिखे। सन् १८६८ में श्री किशोरीलाल गोस्वामी जी ने “ उपन्यास”
 नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया जिसमें गोस्वामी जी के ६५ उपन्यास

प्रकाशित हुये। अंग्रेजी- बंगला तथा अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यास हिन्दी में अनुदित होने लगे और साथ ही हिन्दी के मौलिक उपन्यासों की संख्या बढ़ने लगी। प्राचीन साहित्य से उपन्यास के निर्माण में विशेष सहयोग नहीं मिला। 'नासिकेतोपाख्यान', 'रानी केतकी की कहानी', 'परीक्षा गुरु', 'चन्द्र कान्ता' आदि को हिन्दी- उपन्यासों की श्रृंखला की पहली कड़ियाँ मानकर उनसे प्राचीन कथा साहित्य की तुलना करें तो स्पष्ट होगा कि हमारे उपन्यास के विकास में पूर्व परम्परा का योग नहीं के बराबर है।

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्ध हिन्दी- उपन्यास के विकास में प्रयोग युग माना जा सकता है। पूर्वार्ध में इस क्षेत्र विशेष प्रयत्न नहीं हुआ। ईसा बत्तारों की 'रानी केतकी की कहानी' और सबल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' के अतिरिक्त कौण्टे उल्लेखनीय रचना पूर्वार्ध में नहीं हुई। परन्तु उत्तरार्ध में विशेषकर उनके अन्तिम दो दशकों में, उपन्यास साहित्य की जो शक्ति धारा चल पड़ी उसकी देखते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह समय उपन्यास रचना में लेखकों के सकल नहीं तो सबल प्रयत्न का युग था। इस युग के प्रमुख उपन्यासकार धीनिवाबदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपाल राम गहमरी, बयोध्यासिंह उपाध्याय, पद्मनाभ लज्जाराम शर्मा आदि हैं। यह मानना पड़ेगा विदेशी भाषाओं का प्रभाव हिन्दी पर सीधे पड़ा कथवा किसी अन्य भाषा के माध्यम से। इस सम्बन्ध में सामान्य मत यह है कि हिन्दी- उपन्यास ने अंग्रेजी से सीधे

वॉर बंगला के माध्यम से, तथा स्वयं बंगला से प्रेरणा प्राप्त की।

हमारे बारम्ह कालीन उपन्यास में एक हीचक कथा वॉर कहीं कहीं कुछ नैतिक उपदेशों के बतिरिफ वॉर हुए नहीं मिलता। बाला भीतिवासदास, बालकृष्ण मट्ट बादि उपन्यासों में उपदेश बध्कि हैं तो "चन्द्र कान्ता" के ढंग में तिलस्मी बासुकी उपन्यासों में विविध बौ! हीचक घटनाओं की भरमार है। ये उपन्यास किसी विशेष प्रुति में ळीजी उपलब्ध उपन्यासों के प्रति बध्कि ध्यान नहीं देते थे। उन्नीसवीं सती के ळत तक किसी उत्कृष्ट ळीजी उपन्यास का हिन्दी अनुवाद निकला या प्रकाश कहीं कौं प्रमाण नहीं। हुसलजी ने कहा है, "ळीजी के दो ही चार अनुवाद देखने में जाये, जैसे र्नाल्ड कृत "लेला" और "लेदन रूय्यो। ळीजी के प्रसिद्ध उपन्यास "टाम काका की कुटिया" का भी अनुवाद हुआ।" हुसलजी ने ळीजी से अनुदित "ठा वृतान्त माता", "पुडीस वृतान्त माता", "कमला वृतान्त माता" बादि का भी उल्लेख किया है। ळीजी उपन्यासों का प्रचार केवल मनोरंजन के रूप में हुआ था। हिन्दी लेख भी मनोरंजन के लिये लिखते थे। ळी कारण से प्रेमनंद के मूर्त का कौं उपन्यास मानव चरित्र के अध्ययन पर ध्यान देता दिखाई नहीं पड़ता। कथा- विकास, समाज निरूपण, चरित्र चित्रण बादि किसी विशेष बात में ळीजी का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। हमारे उपन्यास साहित्य पर बंगला का प्रभाव बध्कि पड़ा है। उन्नीसवीं सदी के ळत में किते ही बंगाली उपन्यासों के

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४६८।

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४६७।

अनुवाद प्रकाशित हो चुके थे। उनका हिन्दी पर विशेष प्रभाव पड़ा है। डा० सजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में, “बंगला उपन्यासों में हिन्दी की एक और नई बलि प्राकृत, अतिरंजित, घटना बहुल रेयारी उपन्यासों से जुड़ा किया और दूसरी ओर शुद्ध भारतीय संस्कृति की ओर उन्मुख किया।” बेकिम पात्र के उपन्यास अत्यन्त लोक प्रिय थे। उनमें राष्ट्रीय जागृति का, संदेश था किन्तु रोमान्टिक कल्पना के बाधर पर वे पूर्ण यथार्थ के धरातल पर नहीं जा सके। उनके उपन्यासों में दो मुख्य प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। एक ओर वाश्चर्यमय रोमान्टिक कल्पना और दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं के प्रति आकर्षण। ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें प्रथम प्रवृत्ति की प्रेरणा उर्दू की “अलफ़ लैला”, “तौला मेना”, “तिलखे होश रुबा” कथाएँ हैं और दूसरी प्रवृत्ति बीबी सामाजिक उपन्यासों की देन है। बंगाली उपन्यासों के समान इन दोनों प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में ही नहीं बल्कि निराला और प्रसाद के उपन्यासों में देखने को मिलते हैं।

हिन्दी उपन्यास की मुख्य प्रेरणाओं पर प्रकाश डालते आलेखी समय उन परिस्थितियों का भी अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है जो उपन्यास के विकास में सहायक सिद्ध हुईं। कोई भी साहित्यिक धारा अपना अभी विकास प्राप्त कर सकती है जब उसका साहित्यिक वातावरण अनुकूल हो। उन्नीसवीं सदी के प्रेत तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में उपन्यास के विकास में जो परिस्थितियाँ सहायक हुईं उनकी कई विशेषताएँ हैं।

सर्व प्रथम उपन्यास के लिये ऐसी नव भाषा की आवश्यकता है जो पटनावीं की स्वाभाविक रूप में, मनोभावों की मूल रूप में और अन्तर्द्वन्द्वों की व्यवस्थित रूप में प्रकट करने की शक्ति से सम्पन्न हो। उन्नीसवीं सदी के अंत में यह काम हुआ व्यवस्थित हो गया था इस कारण उपन्यास का मार्ग सुगम हो गया। लेकिन समीचीन मार्ग से अधिक बख़तर नहीं हुये, तो भी उन्हें कम से कम इस बात का ज्ञान हो गया कि किस मार्ग से जागे बढ़ना है। हमारे साहित्य में अब तक जो कल्पना की स्थान मिला था वह विश्लेषण प्रवृत्ति की नहीं। मानसिक यत्न की जो महत्त्व था वह वैदिक यत्न की नहीं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर हमारे साहित्य में व्युत्पन्न विश्लेषण प्रवृत्ति ने जन्म लिया और क्रमशः इसका विकास होता गया।

यद्यपि जन हृदि की परिवर्तित और परिष्कृत करने की शक्ति साहित्य में होती है, तथापि एक सीमा तक साहित्य की भी जन हृदि के अनुकूल चलना पड़ता है। उपन्यास के विकास के पूर्व, हमारी साक्षर जनता में जो साधारण शिक्षा प्राप्त होगी, उन्हें मनोरंजन मात्र के लिये कुछ हल्के साहित्य की आवश्यकता थी। अधिक शिक्षित बुद्धिजीवी (Intelligentia) परम्परागत साहित्य से प्रभावित और उसके विकास में तत्सीन थे। हमारा प्रारम्भिक उपन्यास-साहित्य प्रथमतः प्रथम श्रेणी के लोगों के लिये ही बना जिन्हें प्राग् साहित्य की आवश्यकता न थी।

साहित्य की अन्य धाराओं से बढ़कर क्या-

साहित्य समाज एवं जन जीवन से अधिक सम्पर्क रखता है। उनकीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जागृति के साथ जनता को एक ऐसे साहित्य की आवश्यकता थी जो उनके जीवन की पूर्णतया प्रकट कर सके, उनकी भावनाओं को सशक्त शब्दों में व्यक्त कर सके, उनकी वाशाओं, अभिलाषाओं और उमीदों को वाणी दे सके। इसका कार्य में अन्य साहित्यिक विधायें कुछ न कर सकीं, उपन्यास बहुत कुछ कर सका। विदेशी शासन के बाधोन, पार्श्व जीवन में दूरे, सड़े गले समाज के विचलित वर्णों की चीड़ फाड़ करने की शक्ति उपन्यास साहित्य में ही थी तथा साथ ही वेदनापूर्ण चींटों पर महम लगाने की शक्ति भी। जन जागरण के युग में साहित्य के इस सबसे रूप का विकास स्वाभाविक था, मले ही उसे राष्ट्रीय जागृति की पूर्णतया प्रकट करने की क्षमता प्राप्त करने के लिये पुंशी प्रेमचंद की प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

पुंशी प्रेमचंद से पूर्व हिन्दी- उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट न हो सका। लेखकों के समक्ष कोई निश्चित लक्ष्य न था। उपन्यास की कोई प्रणाली बसवा रूप लेता न थी। जोकाँ प्रयोग साहित्य क्षेत्र में चल रहे थे। अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार उपन्यास लिख रहे थे। उपन्यास के लिखने में कोई पूर्व परम्परा न थी केवल कुछ बातों में समानता थी। प्रथम तो यह कि सभी उपन्यास खड़ी बोली गम में लिखे जा रहे थे जो उस समय तक जन साधारण की भाषा बन चुकी थी। दूसरी समानता यह थी कि इन सभी उपन्यासों में कोई अम्बड़ कहानी रचा करती थी। यह

कहानी कभी कल्पित होती थी तो कभी वास्तविक, कभी उपदेशात्मक, तो कभी मनोरंजक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक । तीसरी समानता वर्णन की थी । प्रत्येक उपन्यास में घटनाओं, चरित्रों तथा उससे सम्बन्धित वस्तुओं में ऐसा वर्णन किया जाता था जिसमें पाठकों का मन रमे तथा उन्हें वास्तविकता न दीसे । इस प्रकार १९०५ गण में लिखा गया वर्णनात्मक जात्यान वारम्भिक उपन्यासों का मीठा रूप था ।

जासूसी, रेयारी वीर तिलस्मी-

सन् १८८२ से लेकर १९१५ तक वर्षात् प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों की संक्रान्ति काल के नाम से सम्बोधित किया गया है । इसका इस काल के प्रतिनिधि उपन्यासकारों में देवकी नंदन खत्री, श्री किशोरीलाल गोस्वामी, गोपाल राम गहमरी वीर जी ब्रजानन्दन सहाय के नाम उल्लेखनीय हैं । इनमें से खत्री जी के उपन्यास घटना प्रधान, मनोरंजक वीर कौतुहलवर्धक कहे जा सकते हैं । इनके उपन्यासों का विधान तिलस्म वीर जासूसीके उन प्रयोगों को लेकर किया गया है जो पिछले समय के जागीरदारों वीर सामंतों के ब्रीडा विलास के परिचायक हैं । इन घणियों के अन्तर्गत उपन्यासों की बाढ़ सी आई किन्तु इनका साहित्यिक महत्त्व विशेष नहीं है । खत्री जी के "चन्द्रकान्ता", रवी "चन्द्रकान्ता सन्तति" हिन्दी उपन्यास के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । उनसनीदार घटनाओं के कारण ये उपन्यास इतने लोक प्रिय हुये कि हजारों पाठकों की

‘चन्द्रकान्ता’ का चस्का सा लगा हुआ था। इसके अतिरिक्त सत्री जी के ‘छुम छुमारी’, ‘भूतनाथ’ भी अधिक प्रसिद्ध हुए। किशोरीलाल गोस्वामी ने भी कई जासूसी उपन्यास लिखे। सत्री जी, जासूसी, ऐयारी तथा तिलस्मी उपन्यासकारों की श्रेणी में आते हैं।

सामाजिक उपन्यास-

हिन्दी प्रथम सामाजिक उपन्यास के रूप में वाचस्पत्य शुभल जी ने मदनमोहन मालवीय के ‘मायवती’ का उल्लेख किया है। यह छोटा सा उपन्यास सन् १८७१ में लिखा गया और कई वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। इसमें एक कुलीन जादूशू यक्षिणी का जीवन वर्णित है जो अपनी सरलता, प्रेम एवं कर्तव्य निष्ठा के द्वारा धर्म के मंद में फूले ससुराल वालों पर सफल प्रभाव डालती है। शुभल जी के अनुसार श्रीजी देव का प्रथम हिन्दी उपन्यास लाला श्रीनिवासदास का ‘परोक्षा गुरु’ है। यह भी एक वाचस्पत्यवादी रचना है। इसके अतिरिक्त सामाजिक उपन्यासकारों में राधाकृष्ण दास, पाल कृष्ण मट्ट, लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामीजी का नाम प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिक उपन्यास-

किशोरीलाल गोस्वामी के ‘हृदय हारिणी का

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४४६।

जादूई रमणी", "सर्गलता", "तारा", "मुक्त गौदना" जादि उस युग के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। गोस्वामी जी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, गार्हस्थ्य और काल्पनिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे हैं परन्तु सभी में प्रेम चर्चा ही मुख्य विषय है।

श्री ब्रजमदन सहाय ने भावार्थक उपन्यास लिखे हैं। ऐसे उपन्यासों में कथा की धारा कूट नहीं रहने पाती, घटनाओं की विरलता हो जाती है। उपन्यास की उस परम्परा को हम संस्कृत की "कादम्बरी" का ही आधुनिक रूप कह सकते हैं।

वास्तविकता शैली के उपन्यास-

इनमें ठाकुर जगमोहनसिंह का "श्यामा स्वप्न" तथा चम्पिकादास व्यास का "वाश्चर्य वृत्तान्त" मुख्य हैं।

इन उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ :-

कथा की प्रधानता तथा घटनाओं की अधिकता :-

उस युग के उपन्यासों में घटनाओं का बाधित्व है जिसका उद्देश्य कथानक को रोचक बनाना है। तिलस्मी और ऐवारी उपन्यासों में ही नहीं, सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में भी विभिन्न घटनाओं का बाधित्व है जिससे उनकी सामाजिकता एवं ऐतिहासिकता पर भी सन्देह होने लगता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाएँ और पात्र

प्रायः काल्पनिक है पर उन्हें ऐतिहासिकता का घुगा फेंनाया गया है ।

वतिर्जन और स्वास्तविकता :-

घटनाओं की अधिकता ही नहीं वतिर्जन भी इन उपन्यासों की सुबलता है । कथा की रोचकता बढ़ाने के उद्देश्य से लेखकों ने स्वाभाविकता को और बिना ध्यान दिये सुये जासूसी, ऐयारी ही नहीं अन्य उपन्यासों का भी दुर्घटनाएँ, हृदय वेश, पात्रों का गायब हो जाना और फिर प्रकट होना, चौर दगावे, रहस्य कत्त, हत्यायें, बान्ध-हत्यायें आदि से भर दिया है । डाक्टर श्रीकृष्ण सात के सड़कों में ,
“ हिन्दी के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास केवल नाम मात्र के ऐतिहासिक हैं, क्योंकि उनमें लेखकों ने इतिहास की छोट में छिछोरे, तिलक, ऐयार और प्रेम प्रसंगों की ही अवतारणा की है । ”

मानव का अभाव-

देशकालीन सामाजिक विशेषताओं और मानव की ससज वृत्तियों का अभाव इस युग के उपन्यासों में देखा जाता है । मनोरंजन के उद्देश्य से लिखित इन उपन्यासों में रोचक कथानक की जागे बढ़ाने के निमित्त पात्रों को न परिस्थितियों के अनुसार स्वतन्त्र रूप में कार्य करने का अवसर दिया गया है और न उनकी आन्तरिक भावनाओं के नैसर्गिक विकास की ओर ध्यान दिया गया है अतः पात्र व्यक्तित्व विहीन होकर रह गये हैं । परन्तु इस युग के उपन्यासों में चरित्र चित्रण और मनोभावों

का अभिव्यंजन पूर्ण रूपेण ज्ञात नहीं था । ये रचनाकार चरित्र चित्रण की परिपाटी से जूझते होने पर उपन्यास में उसकी विशेषता आवश्यक नहीं समझते थे । वे अपनी दृष्टि में उपन्यास की मानव चरित्र का अध्ययन नहीं समझते थे केवल उनका उद्देश्य पाठकों के हृदय में कौतूहल उत्पन्न कर मनोरंजित करना था । किशोरीलाल गोस्वामी के "चफला" नामक उपन्यास में हम उनके चलते फिरते सजीवा पात्रों को देख सकते हैं उनके हृदय के स्पन्दनों का अनुभव कर सकते हैं । बालकृष्ण मट्ट के पात्र कहीं कहीं अधिक सजीव तथा यथार्थ हैं । गौपाल राम गहमरी 'कृदि- सिद्धि' और बालमुकंद गुप्त के "शिव सीधु का बिट्ठा" आदि में भी सुन्दर सजीव चित्रण की कला है । इस प्रकार हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि हमारे प्रारम्भिक उपन्यासकार उपन्यास को जीवन का अध्ययन न समझकर मनोरंजन का विषयमात्र समझते हैं ।

प्रेमास्थान उपन्यास-

प्रेमवर्द से पूर्व सभी प्रकार के उपन्यासों में प्रेम और तत्सम्बन्धी क्रिया-कलाप मुख्य रूप में लाये हैं । सामाजिक उपन्यासों में भी यही एकमात्र विषय है पर जासूसी उपन्यासों में तो प्रेम ही प्रायः मुख्य विषय है । प्रेम प्रसंगों में हृदय विकारों का अध्ययन नहीं मिलता । रीति कालीन प्रेम झीठा या उर्दू कासी की हल्क बाजी के समान ऊपरी धरातल के कुछ क्रिया कलापों से ही काम लिया गया है । एा "नूतन ब्रह्मचर्यी", "ब्रह्मचारी", "बादश हिन्दू", "निस्सहाय हिन्दू", आदि कुछ शिक्षाप्रद

उपन्यास उन सबसे मुक्त है ।

उद्देश्य-

प्रेमर्चद पूर्वार्ध उपन्यासों के तीन मुख्य उद्देश्य हैं ।

(१) नैतिक शिक्षा (२) सामाजिक समस्या तथा सुधार का मार्ग-निर्देशन (३) मनोरंजन । "परीक्षा गुरु", "नूतन ब्रह्मचारी", "सी बजान एक सुजान" आदि का उद्देश्य नैतिक सुधार है । सामाजिक समस्या-मूलक उपन्यासों में अधिकांश स्त्री-समस्या से सम्बन्धित हैं । "पूर्ण प्रकाश" तथा "चन्द्र प्रभा" तथा "ठेट हिन्दी का ठाट" में अमृत विवाह की समस्या का "काजर की कौठरी", "विरागना रहस्य" आदि में वैश्य समस्या का "प्रणयिनी परिणय", "चमला", "चरुण तपस्विनी", "सौन्दर्यापासक" आदि में स्वच्छन्द प्रेम के मार्ग के विघ्नों और बाधाओं का निरूपण है ।

गाहस्थ जीवन की उत्पत्तियों को स्पष्ट करके सुलझाने वाले उपन्यासों में "आदर्श सम्पत्ति", "सास फतौह" आदि मुख्य हैं । "त्रिवेणी", "आदर्श हिन्दू" आदि में प्रबुद्धि सनातन मर्यादा का समर्पण किया गया है । ये सब समस्यामूलक होने पर विश्लेषणान्मक नहीं हैं । इन लेखकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं है फिर भी सामाजिक विचारों के प्रति अपने और विरोध करने में उन्हें उन्हें कुछ सफलता मिली है परन्तु उनमें विवेक और विचार से बढ़कर कल्पना और आवेग का ही परिचय मिलता है । "चमला" में किशोरीलाल गोस्वामी ने अपना ध्येय इस प्रकार स्पष्ट किया है, "एक दिन परिवार की सौजन्य स्थिति के साथ वर्तमान

समय का लिखित उच्चैःसुल और बन्ध- विहीन समाज का चित्र उस कृष्ण से यथावत् चित्रित किया गया है । हमारे प्राता लोग उस विच्छिन्न समाज को सुधुलताबद्ध करने के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयत्न करने में तत्पर हैं । किन्तु उस लिखितता और उच्चैःसुलता वाले को यथावत् चित्रित करने के लिये घटना का वाक्य लिया गया है, उसको देखकर सीधे विश्वास नहीं किया जा सकता कि इसमें चित्रित जीवन हमारे समाज का वास्तविक रूप है । न उनके पात्र साधारण हैं न वातावरण । प्रत्येक पात्र किसी बच्चे का दुरे धर्म का प्रतिनिधि मात्र रहकर अपनी मनुष्यता ली बैठा है । अधिकारी घटनाएँ मनसनीदार- किन्तु साधारण एकर स्वामाश्रिता ली बैठी हैं । उन सभी उपन्यासों में सुधारवादी दृष्टिकोण से कुछ वादार्थ पात्रों द्वारा समस्याओं को सुलझाया गया है । प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों में मनोरंजन ही वस्तुतः मुख्य ध्येय है । वाचार्थ नंद हुलारे बाणपेयी ने अपने कथन में स्पष्ट किया है, " उन सभी उपन्यासकारों का यही ध्येय था कि किसी पौराणिक या सामाजिक कथानक का आधार लेकर उपदेशात्मक वृत्ति प्रस्तुत करना था और कभी कौन मासुक्ता पूर्ण रचना सामने ला जाती थी परन्तु सामाजिक प्रगति और जीवन की वास्तविकता में बैठकर उसके यथार्थ और प्रभाव शैली चित्र हमारे वास्तविक उपन्यासकार अधिक पात्रों में नहीं दे सके । "

१- चपला, निवेदन ।

२- आधुनिक साहित्य : नंद हुलारे बाणपेयी, पृष्ठ १८७ ।

उर्दू कथात्मक साहित्य की परम्परा और २० वीं शताब्दी से पहले
उसका रूप -

प्राचीन उर्दू कथात्मक साहित्य के अन्तर्गत जो कथाएँ आती हैं वे प्रायः या तो फारसी से अनुदित हैं या संस्कृत साहित्य से। उर्दू साहित्य फारसी तथा संस्कृत से अधिक प्रभावित है। इसलिए उर्दू कथात्मक साहित्य पर फारसी और संस्कृत साहित्य का अधिक प्रभाव पड़ा है। इन कथाओं का कौंसा मुख्य कथानक नहीं रहा देवत सम्बन्धी सम्बन्धी मनगढ़त कहानियाँ किन्तु जो चमत्कार तथा साहस से भरे हुये, जादुओं से लौट प्रौढ, सुनसनी पूर्ण रोमांच उद्बन्ध करने वाले जादूगर, जादूगरनी राजकुमार तथा राजकुमारियों के अद्भुत किस्से हैं। इन कथाओं के अन्तर्गत 'बरेबियन वास्ट', 'दास्ताने वाम', 'दास्ताने सयाल', 'तिस्मी होश रुबा', 'हातिमताई के किस्से', 'बागो बहार', तथा भारतीय मन गढ़त कहानियाँ जैसे बेताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, गुल बकावली, जलफ लेला, चहार दरवेश आदि हैं।

उर्दू कथा-साहित्य के अन्तर्गत दास्तान और खफसाने आते हैं। नामेल शब्द अंग्रेजों की ही देन है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वह जाति जिसकी भाषा उर्दू थी दास्तानों से परिचित नहीं थी या कहानियाँ सुनने में कौंसा रुचि ही नहीं रखती थी। प्राचीन उर्दू कथा-साहित्य में दास्तानों का उभाव न था वरन् प्रत्येक रस के पर में किस्से सुनाने के लिये कुछ वादयियों को नोकर रख लिया जाता था जिसे उनका मनोरंजन हो सके। पर व्यवहार सभी फारसी में ही होते थे।

तबकिरा उर्दू कवियों का कारखी के माध्यम से ही हाजों को फ़ाया जाता है । उर्दू गफ़ार भी अपनी गप में पप की ही महत्व दे रहे थे क्योंकि पप का सामान्यतः प्रवर्तन था उर्दू गफ़ार भी अपना वक्तकार दिला रहे थे परन्तु उनकी गप, गप काव्य थी । उर्दू के कवि कारखी के विद्वान होते थे तब भी गफ़ारों ने गप का विभाजन " नज़्म मुस्तफा " नज़्म मुस्तफा में कर लिया था । दक्षिणी भारत में गप लेखन का कार्य सुचारु रूप में चल रहा था । मौलवी अब्दुल हक़ ख़ौर हकीम सैय्यद तम-मुल्ता क़ादरी का कार्य प्रशंसा के योग्य है । दक्षिणी भारत में सूफ़ी, सैतों फकीरों ने उर्दू गप का कार्य किया । शैख़ ऐबुलदीन की गन्तुल इस्लाम जो धार्मिकता के नियमों तथा कर्तव्यों को बताती है तथा " मिराजुल वासकिन " जो कि ख़ाजा वदा नवाज़ क़ज़रत सैय्यद ग़ैस दर्राज के द्वारा लिखित धार्मिक समस्याओं पर लिखी अच्छी पुस्तकें हैं, यद्यपि भाषा साहित्यिक नहीं हैं । बीजापुर के सूफ़ी सैत शाह मिराजी शमसुल उशाक ने कई निबंध लिखे जो कि सूफ़ी धर्म से सम्बन्धित थे जिनमें " जल-तरीग़ " और " गुलबाच " प्रसिद्ध हैं । १९ वीं शताब्दी में सैय्यद शाह मोर ने दक्षिणी शीर्षक " इस्लाम तौहीद " में धार्मिक किताबें लिखी । देता जाये तो उर्दू गप में बहुत कम किताबें लिखी गई थीं जो लिखी गई वे अधिकतर कल्पित तथा धार्मिक थीं जिनका अनुवाद कारखी तथा संस्कृत से किया गया है ।

उर्दू में गप लेखन का कार्य सर्व प्रथम फ़ौटि विलियम कालिज में ही हुआ । डा० गिलक्रिस्ट ने क़ीज़ों को उर्दू में दर्श बनाने

के विचार से बनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। डा० गिलक्रिस्ट ने मीर
जम्मन से "किससा बहार दरवेश का" सरल उर्दू में अनुवाद कराया जो
बाग़ी बहार के नाम से अब तक उर्दू गद्य का रत्न समझा जाता है। इसके
अतिरिक्त मीर जम्मन ने मुल्ला हुसैन कव्ज काशिकी की फारसी रचना
इस्तक़ै-मुहसिनी का अनुवाद भी "गर्जनिये सूखी" के नाम से किया।
"बाग़ी बहार" फारसी के किस्से "बहार दरवेश" का सरल उर्दू में अनुवाद
ही है। यह पुस्तक जमीर ख़ुराँ ने अपने बाल्यात्म गुरु निजामुद्दीन
घौलिया की बीमारी में उनका पिल बहलाने के लिए लिखी थी और उन्होंने
आशीर्वाद दिया कि इस पुस्तक को जो कोई पढ़ेगा उसे स्वास्थ्य लाभ
होगा। डाक्टर शैरानी और मौलवी अब्दुल हक़ की तौजों से पता चला
कि यह कहानी दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के समय में लिखी गई थी।
मीर जम्मन के पूर्व मीर "तख़सीन" ने "नौ तर्जे मुहम्मद" के नाम से इस
कहानी का उर्दू में अनुवाद किया। मीर जम्मन ने अपने काल के रीति-
रिवाजों, सामाजिक परिस्थितियों का नैतिकता का बड़ा सफल दिग्दर्शन
कराया है। यह कहानी मनोरंजन का तो साथ ही ही साथ में किस्से की
बाद में कुछ सामाजिक नैतिक मूल्यों की भी स्थापना की गई है। फौट
विलियम कालिज के उर्दू लेखकों में हंदरी अफ़ग़ोस, ज़वान, हुसैनी, बरक भी
प्रसिद्ध हैं।

फौट विलियम कालिज के समय की गद्य रचनायें
मुख्यतः अनुवाद हैं किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मौलिक गद्य
लेखन की परम्परा चल पड़ी और अनुवाद क्षेत्र में फारसी की कहानियाँ
नैतिक उपदेशों की अपेक्षा मनोरंजन प्रधान थीं। इतना ही नहीं क्षेत्रों से

वी गम्भीर कौटि के विषयों की उर्दू में भाषान्तरित किये जाने लगा । उर्दू में इस जागरण की तरफ़ दिल्ली कालिज की स्थापनाके फलस्वरूप पार्व । इसके तत्वाधान में अंग्रेजी से गम्भीर विषयों पर उर्दू में पुस्तकें प्रकाशित की गईं । १८५७ के विद्रोह में दिल्ली कालिज समाप्त हो गया । सन् १८७२ में कम्पनी की सरकार ने फारसी के बजाय उर्दू को न्यायालय की भाषा के रूप में मान्यता दे दी ।

मुसलमानों में नवीन वागुति लाने में जो कार्य सर सैय्यद अहमद खाँ ने किया वह प्रसिद्ध है ही । सामाजिक तथा शैक्षणिक सेवायें तो ही हैं, साथ ही साथ उर्दू गज पर काम करना नहीं है । नौजवा के समय में ही बाफ़ी "वासिरुसन्मा दीव" पुस्तक लिखी ।

सर सैय्यद अहमद खाँ ने शीटी बड़ी ३० से अधिक पुस्तकें लिखीं । जारम्भ में उन्होंने अधिकतर धार्मिक विषयों पर रचना की । उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक "सत वातै- अहमदीया" कही जा सकती है । जिसमें उन्होंने मुसलमानों के खूब पर लगाये गये उन आरोपों का तर्क पूर्ण उज्जर दिया जो यूरोपीय लेखक उन पर लगाये करते थे । सर सैय्यद उर्दू साहित्य में निर्बध रचना के जन्यदाता रहे जाते हैं ।

वास्तव में कौटि विलियम कालिज ही हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की देन है । यही है हिन्दी-उर्दू कथा की प्रेरणा मिली ।

(१८८० से १९०५)

मुन्शी प्रेमचंद के पूर्वतर उर्दू लेखकों में हावटर नबीर

अहमद, ५० ताननाथ सरदार, अब्दुल हसीम शरद, सज्जाद हुसैन एवं मिर्जा मुहम्मद हावी रुसवा का नाम प्रसिद्ध है ।

उन्हीं के प्रथम उपन्यासकारों में मौलवी नजीर अहमद का नाम प्रसिद्ध है । उन्होंने लगभग तीस पुस्तकें लिखी हैं जिनमें "मिरातुल-उरुस", "बिनातुन्नाश", "ताबतुल्लुद", ज़नुल्लुवत अधिक प्रसिद्ध हैं । मिरातुल उरुस और बिनातुन नाश दोनों में लेखक ने स्त्रियों को सुधर पाने, शिक्षा प्राप्त करने और सतुरात में जीवन बिताने के सिद्धान्त बताये गये हैं । यह सारी बातें ऐसी रोचक और मनहरण कथानियों के रूप में लिखी गई हैं कि बच्चे उनकी पढ़कर मुग्ध हो जाते हैं । उपन्यास की दृष्टि से नजीर अहमद के उपन्यासों में का कभी पाई जाती है कि वह बीच बीच में धर्म और नीति पर भाषाण देने लगते हैं और उनके उपन्यासों के पात्र बादशाही प्रतीत होने लगते हैं । "त्यस बनसुह" सबसे अधिक प्रसिद्ध है । उसमें दिल्ली के भिटे हुये मुसलमान घरानों का चित्र सामने आ जाता है । नजीर अहमद इसी से यह विचार भी प्रकट करते हैं कि सच्ची धार्मिकता के बिना जीवन सफल नहीं हो सकता । वास्तव में उस समय जो सामाजिक समस्याएँ मुसलमानों के मध्यम वर्ग को व्याकुल कर रही थीं । उनके सुधार की योजनाएँ नजीर अहमद अपने उपन्यासों से लोगों को नवीन मार्ग दिखाना चाहते थे । उनके उपन्यास जो किसी कथानियों के रूप में हैं सामाजिक सुधार की भावना छिपी हुई है इसलिए उनके उपन्यास प्रोफेन्टा टाइट है । इन गथाओं में न जीवन का रूप दिखाने का प्रयास है न परित्र चित्रण का । एक उच्चतर जीवन की दृष्टि के अतिरिक्त अन्य कुछ है तो वह मनोरंजन

की सम्पत्ती है। इनका और उपन्यासों का सामान्य तत्त्व कथानक है। इन कथाओं में जो जीवन मिलता है वह मनोरंजक आश्चर्यमय घटनाओं से पूर्ण होने के कारण वास्तविक जीवन से बहुत दूर है जबकि उपन्यास का जीवन से सम्बन्धित रहना अनिवार्य है।

५० रतनाय सरशार में "फिसानये बाजाद", "जामे सरशार", "सैरे कोहसार", "हामिनी", "हुदाई फाजदार" आदि उपन्यास लिखे। परन्तु वे वास्तव में उपन्यास नहीं थे वे भी दित्वरूप किस्से ही थे। उपन्यासों की भाँति उनका प्लॉट गढ़ा हुआ नहीं है। इनके छोटे छोटे किस्से बग़लु वाईना का कार्य करते हैं जो पाठक को हँसा कर उन्हें सुधार कराना चाहते हैं। सरशार पर ७९ वें सर्वेन्टीज *Cervantes*

का रतना प्रभाव था कि उन्होंने अपनी सभी बड़ी बड़ी पुस्तकों में इस प्रकार के चित्र जोड़े हैं। "फिसानये" बाजाद के पात्र उसी प्रकार जीवन के बिगड़े हुए चित्र हैं जैसे कार्टून में मिलते हैं। चार भागों में लिखी हुई यह कला कुछ पृष्ठों में वर्णन की जा सकती है पर उसका बहुत सा वैश्व ऐसा है कि कहानी का भाग न छोड़ा हुआ भी अत्यन्त आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि यदि भाग उसमें से निकाल दिया जाय तो फिसानये बाजाद का सारा समन्कार ही समाप्त हो जाय। इसकी संक्षिप्त में मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी में प्रकाशित किया था पर उसमें जो भाषा का समन्कार है वह अन्य शैलियों में नहीं। सरशार एक बहुत बड़े कलाकार और जीवन के बहुत पढ़े जानकार थे। उनका समन्कार अपने मनी-भावी की कहानी में उभरते नहीं देते और यह अनुमान लगाना कठिन है।

जाता है कि वह उस सभ्यता की किन मूल विशेषताओं का फल करते थे और इनके मिटने का उन्हें दुःख न था ।

उपन्यासकार के रूपमें मैं सरशार की जो ख्याति मिली है वह उचित ही है । यद्यपि मौलवी नजीर अहमद के उपन्यास "फसानये बाजाद" से पहले प्रकाशित हो चुके थे और उन उपन्यासों का उद्देश्य नैतिक उत्थान था । सरशार उन्हें के पहले यथार्थवादी कलाकार हैं। "फसानये बाजाद" में सरशार ने सत्तारू का सजीव चित्रण नहीं किया बल्कि उन्नीसवीं शताब्दी की उपर भारत की पूरी सभ्यता का इस तरह प्रस्तुत दिया है कि वाश्चर्य होता है कि उपन्यास के अंदर कैसे वा गये । पिपैलियों के जीवन को उनकी कल्पना अच्छी तरह चित्रित कर सकी परन्तु सत्तारू की सभी पीली जागती तस्वीरें देखने को मिल पाती हैं । सरशार के उपन्यासों की कहानी रुचिकर है परन्तु कोई कथानक नहीं ।

छठी युग में सज्जाद हुसैन जाते हैं । उनकी ख्याति उनके हास्य उपन्यास "राजी बगलोल" के कारण हुई है । उनके अन्य उपन्यास "तरदार लौड़ी", "प्यारी हुनियाँ", "पीठी हुरी", हैं । ये सभी हास्य रस से भरे हुये हैं । सज्जाद हुसैन को उर्दू का अग्रम हास्य लेखक कहा जा सकता है । मग में इनका वही स्थान है जो पंथ में ईशा का है ।

इनके उपरान्त अब्दुल सलीम शरद का नाम आता है। शरद ने सौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं । इनके अधिकतर उपन्यास मुसलमानों के प्राचीन जीवन से सम्बन्ध रखते हैं जिनमें मुसलमानों की वीरता, उदारता और धार्मिक दृढ़ता के चित्र कभी कभी उन्होंने एक प्रचारक के रूप में प्रस्तुत

किये हैं। "शरद" एक ही समय में उपन्यासकार, इतिहासकार, नाटककार और वालिका थे। उर्दू उपन्यास के क्षेत्र में "शरद" ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने एस्लामी इतिहास की कथाओं के रूप में साक्षर उसे सर्व सुलभ बना दिया है। उन्होंने उपन्यास से बरतील तन्व भी निकाल डाले। फिर भी वे इतने बहुत लेखन के साथ वे उपन्यास के कला पक्ष की उचित रूप से न निवारण सके। वे इतिहासकार थे, इसलिए अटर्नर तो उन्होंने दे दी, किन्तु चरित्र चित्रण तथा दृश्य वर्णन में ऐतिहासिक यथार्थ के दर्शन न करा सके। उनके यहाँ इतिहास का ज्ञान तो है किन्तु कथाकार की कल्पना कम मालूम होती है। उनके अध्ययन और ज्ञान के बारे में किसी को संदेह नहीं है परन्तु वे प्रायः जिद्द और धार्मिक वैमनस्य से काम लेने लगते हैं।

एक युग के एक और महान् उपन्यासकार मिर्जा मुहम्मद हादी रुसवा हैं। उन्होंने "उमरावजान बदा", "शरीफ ज़ादा", और "जाते शरीफ" उपन्यास लिखे हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना "उमराव ज़ान बदा" है जिसमें एक वैश्या की आत्मकथा उसी के मुख से सुनवाई है। उस समय तक के लोग इस विषय की कल्पना में और साहित्य के पवित्र क्षेत्र में लाते हुये संकोच होता था। रुसवा ने एक वैश्या के मुख से वे सब बातें कहलाई हैं जो उसकी जीवन के एक विशेष संकट में फँसा देती हैं। रुसवा की दृष्टि से समाज सुधार का कौंरा स्पष्ट विचार न था परन्तु जिस लक्ष्मण की वे जानते थे उसके जीवन के सभी वर्गों को एक सच्चे कलाकार की तरह हमारे समक्ष ला खड़ा किया है। हम उन चित्रों में सौ जाते हैं और स्वयं यह फा नहीं सकता कि इस चित्रण से रुसवा क्या काम लेना चाहते हैं। "उमरावजान बदा" एक उर्दू के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से है।

एक वैश्या के चित्र के पीछे प्रत्येक वर्ग के लोग खड़े हैं और वह लखनऊ हमारे समक्ष आ जाता है जो १६ वीं शताब्दी के अंत में दम तोड़ रहा था। उस समय की सभ्यता, साहित्यिक जीवन, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था, देशांतों की वार्षिक दुर्दशा और छुटमार के वितरित प्रेम-भावना के अनुपम नक़्शे भी इस उपन्यास में मिलते हैं। अंत में रुसवा ने एक उपदेशक और प्रचारक का रूप धारण कर लिया और वही इस उपन्यास का दुर्बल भाग है। उनके उपन्यासों में उर्दू में वास्तविक कथा-साहित्य का युग आरम्भ होता है। उनकी मानव स्वाभाव के अंदर बनी फ़ैस थी और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में उनके उपन्यासों का दर्जा ऊँचा था। उनके चरित्र समाज के प्रत्येक वर्ग के होते हैं और मानव स्वाभाव के अन्दर और घुरे घुरे फल्लू के पूर्ण समन्वय के साथ दिखा जाते हैं। उन्होंने "उसरावजान कदा" में प्रथम बार एक वैश्या की मानवीय गुणों से परिपूर्ण प्रदर्शित किया है।

वास्तव में हिन्दी उर्दू उपन्यास क्षेत्र के विकास में फौट विल्ड विलियम कालिज का योगदान है। हिन्दी- उर्दू दोनों ही रचनाकारों पर इसका पूर्णरूपेण प्रभाव पड़ा। हिन्दी- उर्दू उपन्यास ने अंग्रेजी से सीधे और बंगला के माध्यम से तथा स्वयं बंगला से प्रेरणा प्राप्त की। उन्नीसवीं सदी के उपरांत तक भारत में अंग्रेजी शक्ति तथा प्रभाव काफ़ी कम हुआ और अंग्रेजी साहित्य का भी अध्ययन होने लगा था। अब पाठकों के समक्ष जो सामग्री प्रस्तुत हुई उसमें हिन्दी तथा उर्दू के परंपरागत साहित्य के कुछ नवीनता थी कुछ ताज़गी थी। माया सर्व माय की

दृष्टि से साहित्य का एक नया रूप पढ़ने की मिला । भावमें कल्पना से अधिक तत्त्व की मात्रा रही । भाषा में वर्णन से अधिक विश्लेषण की प्रधानता रही । इन सबका थोड़ा बहुत प्रभाव हिन्दी- उर्दू कथा- साहित्य पर भी पड़ा ।

प्रारम्भिक काल में जो हिन्दी भाषा में उपन्यास लिखे गये उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ये लेखक अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, बर्बी भाषा के जानते होते थे । हिन्दी उपन्यास के इस प्रारम्भिक युग में संस्कृत, बंगला आदि भाषाओं से अनुदित रचनाओं द्वारा नई नई प्रवृत्तियों का प्रसार उपन्यास के क्षेत्र में पड़ने लगा । विशेषतः बंगला से अनेक उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ । यह अनुवाद का युग था । हिन्दी उर्दू साहित्य में छद्माच्छु किस्से कहानियाँ इसी लगे । उर्दू में भी फारसी, संस्कृत से अनुवाद होने लगे । "कल्फ़ लेला", "बागी बहार", "बहारदर्वेश" यह भी फारसी के ही अनुवाद हैं ।

उन्नीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में जो जाश्चर्य-मय घटनाएँ और ऐयारी प्रवृत्तियाँ हैं उनका सम्बन्ध उर्दू- फारसी की कानियाँ से मानना अधिक संगत लगता है । प्रेमचंद के मत में, "बाबू देवकीनंदन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' का का बीजाकूर" तिलस्म हौसरुता" से ही लिया गया होगा । " ऐयारी जासूसी उपन्यासों में ही नहीं उस समय के अन्य उपन्यासों में भी जो रोमांचक घटनाएँ मिलती हैं उनकी तुलना उर्दू की घटनाओं से की जा सकती है । सज्जाराम शर्मा

१- 'उपन्यास' शीर्षक लेख 'साहित्य का उद्देश्य' पृष्ठ ६१ ।

के 'धूर्त रसिक सात', 'स्वतन्त्रमा परतन्त्र लक्ष्मी' आदि सामाजिक उपन्यासों में 'बलिक लेला', 'तौता मैना', 'बली पापा और चालीस चौर', 'तिसिस्म होशरुवा' आदि में की सी कड़े कल्पित रोचक घटनाएँ हैं। गौपालराम गहमरी आदि के जासूसी उपन्यासों में उर्दू कहानियों की सी विचित्रता है। इस प्रकार हिन्दी के सभी उपन्यासों में उर्दू कथा कहानियों का कुछ प्रभाव दिखाई पड़ता है। एी सकता है, उर्दू का ये प्रभाव कुछ बंगला के माध्यम से लाया होगा।

हिन्दी- उर्दू उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ -

एक समानता तो यह थी कि हिन्दी- उर्दू के सभी उपन्यास गप में लिखे जा रहे थे जो उस समय तक साधारण व्यवहार की भाषा बन चुकी थी। सभी उपन्यासों में कौरों प्रमत्त कहानी कथा करती थी। यह कहानी कभी कल्पित होती थी, कभी वास्तविक, कभी उपदेशात्मक या मनोरंजक, कभी सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक या पौराणिक। उसके उपरान्त उनमें वर्णन की समानता थी। प्रत्येक उपन्यास में घटनाएँ, चरित्रों तथा उनसे संबंधित वस्तुओं का ऐसा वर्णन किया जाता था जिसमें पाठकों का दिल रमे तथा दिल पकड़ाव एी जिसमें उन्हें बस्वा-भाविल्ला न दीखे या अविव्वास के लिए स्थान न हो।

उन्नीसवीं सदी में हिन्दी तथा उर्दू कथाएँ या कित्थ में एक सी ही प्रवृत्ति पाई जाती है वह यह कि ऐसा किसा कहानी वास्ताने लिख देना जिसमें पाठक की तीव्र उड़ानों में फँसकर अपना मनोरंजन

कर सके। इन सभी प्रकार के हिन्दी उर्दू उपन्यासों में दोलने वाली विशेषता उनका घटनाध्रिय है जिसका मूल उद्देश्य कथानक को हलिकर बनाना था। तिलस्मी और रेयारी उपन्यासों में ही नहीं वरन् सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में भी घटनाओं का बाहुल्य है। ऐतिहासिक उपन्यासों में भी घटनाएँ और पात्र काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखकों ने इतिहास की बाँड़ में तिलस्मी, रेयारी और प्रेम प्रसंगों की छी चर्चा की है। कथा की रोचकता बढ़ाने के उद्देश्य से लेखकों ने वास्तविकता की ओर ध्यान नहीं दिया वरन् घटनाओं की अतिरंजन पर पहुँच दिया है यह हिंदी उर्दू उपन्यासों में भली भाँति दृष्टिगोचर होती है। मनोरंजन के उद्देश्य से लिखित इन उपन्यासों में रोचक कथानक को लागू पढ़ाने के लिये पात्रों की स्वतन्त्र रूप से परिस्थितियों के अनुसार कार्य करने का अवसर नहीं दिया गया है। अतः पात्रों की अपना स्वयं का कोई व्यक्तित्व नहीं है। उनकी दृष्टि में उपन्यास मानव चरित्र का अध्ययन न होकर केवल मनोरंजनका उपकरण था।

इस युग के सभी हिंदी- उर्दू उपन्यासों में प्रेम और तन्त्रमन्त्री क्रिया- कलाप मुख्य रूप में जाये हैं। सामाजिक उपन्यासों में भी प्रेम ही एकमात्र विषय है। जासूसी उपन्यासों तक में भी प्रेम प्रायः मुख्य विषय है। प्रेम प्रसंगों में भी रीतिकालीन प्रेम झीड़ा या उर्दू-कासी कहानियों की तरह बाजी के समान ऊपरी सतह की क्रिया कलापों से ही कुछ काम लिया गया है। प्रेमवर्द पूर्व उपन्यासों में नैतिक शिक्षा, समाज सुधार का मार्ग निर्देशन तथा मनोरंजन हिन्दी उर्दू उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य रहा है। कुछ भी हो यह काल प्रयोग दशा में था। हमारे हिन्दी उर्दू लेखक जाने अनजाने ऐसी एक चि० चरित्र के निर्माण का प्रयत्न कर रहे

ये जिन्हें सम्बन्ध में उनकी कौशल मुख्यतः धारणा नहीं थी। कौशल विशेष योजना नहीं थी। जब वातावरण अनुकूल हुआ, जब व्यंजन ठीक ठाक मिल गये तब जाकर उपन्यास का विकास हो सका।

रसना होने पर भी जो समाज सुधार की मनोवृत्ति उर्दू साहित्य में हादी रुसवा ने दी वह हिन्दी में मुन्शी प्रेमचंद के युग आई । रुसवा ने वेश्याओं के सुधार की अपने "उमरावजना जदा" उपन्यास में चेष्टा की है और अपने युग की लल्लऊ को बड़ी परिपाटी को तौड़कर जाने निकल गये हैं । यह मनोवृत्ति मुन्शी प्रेमचंद ने अपने सेवा सदन में दी है जो पाठ को आई । मनोरंजन का समाज सुधार की मनोवृत्ति तथा धार्मिक भावना दोनों ही (उर्दू, हिन्दी) उपन्यासकारों की कृतियों का उद्देश्य रहा है ।

उपन्यासों के निर्माण और अनुवाद के इस चारम्विक युग को पार करते ही हम हिन्दी उर्दू उपन्यासों के उस नये युग में प्रवेश करते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचंद जी ने किया, जिसके निर्देशन में हिन्दी उर्दू उपन्यास कला अपनी वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर अपनी धातु को पहचान कर अपने उद्देश्य से परिचित होकर उसकी पूर्ति कर रही । मुंशी प्रेमचंदके हिन्दी उर्दू की कड़ी ही कह सकते हैं और उनका एक नवीन युग दोनों ही भाषाओं में साथ साथ प्रारम्भ होता है । मुंशी प्रेमचंद पहले उर्दू के कथाकार हैं बाद में हिन्दी क्षेत्र में आये उसकी विवाद विवेचना हम उनके युग के कथाकारों के साथ ही करेंगे ।

प्रेमबन्ध और उनका युग (विकास काल)

(सन् १८०५ से सन् १८३६ तक)

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में भारतीय राजनीति तथा छिन्वी उपन्यास-साहित्य को एक नया मोड़ दिया। सन् १८८५ ई० में नेशनल कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। भारत की राजनीति में उथल-पुथल हो रही थी। बीसवीं सदी तक जाते जाते भारत की राजनीति का उद्देश्य काफी स्पष्ट हो चुका था। जब गान्धीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया, तब राष्ट्रीय चेतना में पूर्ण रूपेण जागृति आ गई थी। ब्रिटिश शासन को नीव हौलने लगी यद्यपि उसके समाप्तने का प्रयत्न किया ही। प्रेमबन्ध का युग विभिन्न संस्थाओं के बान्दी-तानों का युग था। ब्रह्मोदधार का बान्दीतन उनके समय में प्रसिद्ध हो चुका था। वह सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्न कालान्तर में राजनीतिक बान्दीतन का भाग हो गया। इस बान्दीतन के तीन पक्ष थे - व्यक्ति को उत्पीड़ित करने वाली सामाजिक, धार्मिक हदियों के विरुद्ध बान्दीतन, व्यापक निर्धनता के कारण स्वरूप धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध बान्दीतन तथा विदेशी शासन बान्दीतन के विरुद्ध बान्दीतन। तत्कालीन उपन्यास ने जिसका प्रसंग प्रेमबन्ध द्वारा हुआ, उस का जागरणवादी बान्दीतन के विभिन्न पक्षों को अपने मिश्रण का आधार बनाया और सम्मिलित हस्तुत के विशेषताएँ, नारी वर्ग की विभिन्न समस्याएँ, धर्म एवं पातित भेदभाव, परम्परागत सामाजिक कुरीतियाँ तथा अन्धविश्वास, धार्मिक नैतिक बाध्या-हम्बर, किसान मजदूर की शोचनीय धार्मिक स्थिति, जमींदार-भूजीपति की

की निरक्षरता, सरकारी कर्मचारियों के अन्याय व्यवहार तथा विभिन्न राष्ट्रीय बान्धवों खादि में से एक या जेक उनकी कथा- काल के प्रतिपाद्य बने ।

प्रेमचन्द की प्रेरणाएं -

प्रेमचन्द का युग भारतीय राजनीति का एक अत्यधिक शान्तिकारी और संघर्षपूर्ण युग था, जिसे हम भारत में एक नवीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और धार्मिक चेतना के प्रकटन का युग कह सकते हैं । महात्मा गान्धी के अवतीर्ण होते ही स्वतन्त्रता बान्धवों को नया बल मिला । समारोह भीतर बन्धु- उत्पीड़न के विरोध की एक गोरवमयी शक्ति जो तथा उत्पीड़क समाज, सामन्तवर्ग, सरकारी अधिकारी एवं भ्रष्टाचार से टक्कर लेने का बहुत पूर्व साक्ष्य उचित हुआ । कल्पना, रोमांच एवं चमत्कार प्रदर्शन के इन्तजाल से विमुक्त सामाजिक यार्थ की कठोर भूमि पर बड़े होकर हम युग के हिन्दी उपन्यास में वास्तविक बर्णों में अपने युग का प्रतिनिधित्व किया । " सौजे बदन " से " मंगल सुत्र " तक प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय जनता के इस संघर्ष में योगदान दिया तथा उसमें सक्रिय भाग लिया । उन्होंने अपनी साहित्य का उद्देश्य ही स्वतन्त्रता- प्राप्ति घोषित कर दिया था ।

प्रेमचन्द का युग सुधारवादी युग था । राजनीति के क्षेत्र में नेतागण, समाज से सुधारक- समूह तथा साहित्य जगत में लेखक वर्ग विभिन्न सामाजिक सुधारों का निवारण करने के लिये प्रयत्नशील थे । प्रेमचन्द का साहित्य अपने युग के स्थान फलन और विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक

तथा वार्षिक उत्सवों का ऐतिहासिक वर्णन है ।

इसी काल में प्रेमबंद का आगमन हुआ। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमबंद का आगमन एक वाक्स्मिक घटना थी। उनके पूर्व-वर्ती उपन्यास-साहित्य से उनकी रचनाओं की तुलना करें तो स्पष्ट होगा कि उस समय तक परम्परा की जो बृत्तता चلتی बाई उसकी एक कड़ी के रूप में वे नहीं आये। उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में ही कई क्रान्तिकारी विशेषताएँ दृष्टव्य हैं। उन्हें केवल दुःख-परिचालक के रूप में ही नहीं - दुःख सृष्टा के रूप में भी मान्यता देनी पड़ेगी। उनके 'प्रेम' और 'सेवा-सदन' से लेकर 'गौदान' तक के उपन्यासों में जो विकास दिखाई देता है वह तबतक आवश्यक है। इस युग में किसी भी देशी वषवा विदेशी भाषा में ऐसा महान-उपन्यासकार न हुआ न उपन्यास साहित्य का विकास ही हुआ।

उन्नीसवीं सदी के उपरांत में भारतीय जनता सर्व साहित्य को राजनीति के क्षेत्र में खींच लाने का प्रयत्न किया। नेता जनता की महान शक्ति की घोषणा करते उनके प्रेरणा देने के प्रयत्न में लगे थे। जनता अपनी अन्तर्निहित शक्ति को समझकर सजीव होने लगी और साहित्यकारों के कर्ण पर वे जन विप्लव का मंत्र घोषित हुनाई पड़ने लगा। ऐसी परिस्थिति में किसी भी साहित्यकार को जनता के जीवन और वाणी का तिरस्कार करना असम्भव था। विशेषतः प्रेमबंद जैसे सामाजिक जागरूक कलाकार के लिये जो जनता को जागृत समझते थे और जीवन की ही साहित्य का सर्वोत्कृष्ट साधन समझते थे, जन जीवन की ओर वाक्य हीना एक और राजनैतिक विवशता थी दूसरी ओर अपनी दान्तरिक अभिव्यक्ति

धी । प्रेमचंद की राजनीति का अर्थ नहीं मान सकते । राजनीति ने उनके साहित्य पर प्रभाव डाला । जनता की समझने वाले, जनता के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखने वाले जनता के सच्चे प्रतिनिधि जनता के लिये आत्म बलिदान करने वाले भारत के राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी हुये तो हिन्दी-उपन्यास के क्षेत्र में एकमात्र मुंशी प्रेमचंद ।

जीवन के जिस विशाल क्षेत्र का अनुभव प्रेमचंद ने किया उसी का रूप उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । दरिद्रता में बीता हुआ जीवन, तरह तरह की नौकरियों धर उधर मछलें रहना, जीवन की निरंतर विपत्तियाँ, अस्थिरता, और अव्यवस्था इन सबने मिलकर प्रेमचंद को अनुभव का पाठ सिखाया जो एक उपन्यासकार के लिये महत्वपूर्ण विषय है । उनके अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिनको प्रेमचंद ने देखा है । प्रेमचंद का जीवन का अनुभव केवल तटस्थ छोड़ देखनेका नहीं है । उन्होंने सामाजिक जीवन का जो संघर्षमय मय रूप देखा था उससे उनका व्यक्तिगत जीवन कम महत्व का नहीं रहा । व्यक्तिगत जीवन में उन्हें वर्मानों तक में मिला देने वाली कष्टमय घटनाओं में निरंतर संघर्ष करना पड़ा था । इसलिए देश के वर्मानों को देखकर तथा जनता की अशिक्षाओं को धूल में मिलते देखकर उनका हृदय प्रवित हो उठा । प्रेमचंद के पूर्ववर्ती और पश्वर्ती किसी उपन्यासकार का जीवन इतना संघर्षपूर्ण नहीं रहा जिससे वह अपने हृदय की वेतन बनाकर संघर्षपूर्ण जीवन का सुप्त विवेचन कर सके ।

मुंशी प्रेमचंद का व्ययक्त बृहत् था । उन्होंने 'चन्द्रकान्ता' और 'तोता फेंक' जैसी कहानियाँ ही नहीं पढ़ी थी वरन् पारचात्य उपन्यास साहित्य विशेषतः रूसी उपन्यास साहित्य का भी

व्ययन किया था। १९३३ से १९३६ तक "संस" और "जागरण" के वर्कों से ज्ञात होता है कि वह रुसी संस्कृति तथा साहित्य से कितने प्रभावित थे। टालस्टाय, गोर्की, रस्किन आदि रुसी साहित्यकारों से वे अधिक प्रभावित थे। उनकी रचनाओं पर निःसंदेह पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा था। किन्तु उस सिंघ के द्वारा अभिव्यक्ति विषय, वृ विरोध दृष्टि-कौण, मनोभाव आदि प्रेमबंद को प्रेमबंद बनाने वाली जितनी वस्तुएँ हैं वे निश्चित ही बहसखोरों भारत की भूमि में उत्पन्न हैं। प्रेमबंद की सर्वश्रेष्ठ दृष्टि से भारत की कौरात्मा के रोम रोम से साक्षात्कार किया था। यही कारण है कि उनके साहित्य का एक एक शब्द भारत की रीति रीति जनता के वात्सल्य से जोत प्रीत है।

प्रेमबंद की हिन्दी साहित्य में एक युग की प्रेरणा लेकर आये। वे पहले उर्दू के लेखक थे "एम सुर्मा एम सवाब", "सौजे यतन", "बाबारे हुस्न" आदि पुस्तकों का अधिष्ठाता उर्दू से किया। उर्दू क्षेत्र से ही वह हिन्दी की और भुके और अपनी मारमिक रचनाएँ हिन्दी में कहानियों के रूप में प्रकाशित की। वे उपन्यास तथा कहानी साहित्य में ही नहीं, तत्कालीन भारतीय जीवन में एक सामाजिक तथा राजनैतिक क्रांति की विचार धारा को लेकर आये। उन्होंने अपने कथा साहित्य में जीवन के यथार्थ का चित्रण करके उसके पोषण के हेतु वादसंवाद की स्थापना की।

प्रेमबंद के उपन्यास-

मुन्शी प्रेमबंद का प्रथम उपन्यास जो पहले "एम सुर्मा"

१- देखें- अनुच्छेद ७१ और पाद छिप्यछिप्य टिप्पणियाँ।

व हम सबाब" नाम से (१९०४) उर्दू में प्रकाशित हुआ और बाद में "प्रेमा" नाम से हिन्दी में। इसका थोड़ा परिवर्तित रूप "प्रतिज्ञा" में (१९२६) में देखने को मिलता है।

प्रेमचंद ने इसमें विधवाओं की समस्या का विवेचन किया है और विधवा विवाह के पक्ष में अपना मत दिया है। इसमें पूर्ववर्ती लेखों के उपन्यासों के समान उपन्यास कला को केवल मनोरंजन का विषय नहीं माना गया। इसमें जीवन तथा उसकी गम्भीर समस्याओं के विश्लेषण का माध्यम बनाया गया है। इस प्रकार मुन्शी प्रेमचंद ने हिन्दी-उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन धारा का प्रारम्भ किया। "प्रेमा" में सामाजिक किंवा केतना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के सङ्गठन दृष्टिगत होते हैं। "प्रेमा" में मुन्शी प्रेमचंद ने जिन प्रवृत्तियों का बीजारोपण हुआ है वे ही अधिक स्पष्ट एवं परिभाषित रूप में अन्य उपन्यासों में देखने को मिलते हैं।

"प्रेमा" में मुन्शी प्रेमचंद का उत्पष्ट रूप में आभास मिलता है उसी को अधिक स्पष्ट रूप में उल्लेख उपरिष्ठ किया है "सेवा सदन" में। इसी उपन्यास ने मुन्शी प्रेमचंद की एक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। "सेवा सदन" अपने समय का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास था। और इसके बाद भी बहुत समय तक स्वयं प्रेमचंद के अतिरिक्त और कोई लेखक उससे आगे न बढ़ सका। "सेवा सदन" में प्रेमचंद भारत की अमिश्रित नारी के अभिभावक के रूप में आये। उन्होंने वैश्या प्रथा की भयंकर समस्या का विश्लेषण किया और हमारे दम्भी समाज की कलई लौट डी। इसमें "सुमन" पात्र द्वारा तत्कालीन वैश्याओं के जीवन की समस्याओं का चित्रण कर उनके सुधार के उपाय भी बतलाए हैं। नारी जीवन की इस प्रमुख समस्या पर विचार करते समय उन्होंने विवाह के बज्र पर दहज की समस्या, समाज की

उद्धिवादिता, भूठा नैतिकवाद, विधवाओं की समस्या, वादि प्रश्नों पर भी विचार किया है। इस उपन्यास की रचना १९१४ में "बाबू-हसन" के नाम से उर्दू में एी लुकी थी। सेवा सदन के नाम से बाद में हिंदी में अनुवाद हुआ। सेवा सदन की सबसे बड़ी विशेषता वातावरण एवं व्यक्तियों के चित्रण की सजीवता। मुंजी प्रेमचंद ने शहर के रस्ते, सेठ-साहूकारों, समाज सुधार की वादि के बड़े ही यथार्थ सेवा चित्र लीचे हैं। वापन्यासिक कला की दृष्टि से "सेवा सदन" अधिक सुन्दर है। वस्तुतः सेवा सदन "मध्यमार्गीय जीवन का ही उपन्यास है।

"सेवा सदन" के पश्चात् "वरदान" एक ज़ोटा सा उपन्यास निकला। "वत्सल्ये ईश्वर" नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ। इसमें स्त्री जीवन सम्बन्धित समस्याओं की सुन्दरी प्रेमचंद ने चर्चा की है। इसमें कहानी नितान्त काल्पनिक एवं उठी हुई है। प्रेम की तीव्रता एवं प्रेम की तीव्रता एवं प्रेमी की मनोदशा का यथार्थ चित्र देने में लेखक सफल नहीं एी सका है।

"प्रेमाश्रम" में "सेवा सदन" के लेख की वर्णनात्मक प्रतिमा और भी परिष्कृत एी गई है। प्रेमचंद को जन साधारण के रूप में जाने का श्रेय उनके "प्रेमाश्रम" उपन्यास में देखने को मिलता है। जमींदारों का अन्याय, सामन्तवादी शासन, नौकरशाही का वात्स सम्मान रहित अस्तित्व, विधि की विडम्बनाएँ तथा शासकों के विधानों के बीच में अपरिमित यातनाएँ सहते हुये, पछि नारायणों की निष्ठ विवशता, इन सबका मार्मिक चित्रण "प्रेमाश्रम" में किया गया है। हिन्दी-साहित्य में शोषण के प्रति वास्तविक विद्रोह का सूत्रपात यही से होता है। अन्याय, अन्याय के विरुद्ध यहाँ मजबूत फिसान उठ रहा हुआ है और उसके

एक अप्रत्याशित प्रतिरोध से शौचक वर्ग अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसे उसका मस्तक मुका देने की, तोड़ देने की सम्हत है। तत्कालीन परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि किसान की पराजय अनिवार्य थी, वह बुरी तरह छारा है। यद्यपि बादशाही प्रेमर्षद ने कथा को एक अस्वाभाविक मोड़ देकर किसान की विजय दिखाई है। सौत्र की व्यापकता की दृष्टि से 'प्रेमाग्रय', ऐसा समझना है। यद्यपि किसानों के जीवन तथा उनकी समस्याओं के अध्ययन के रूप में प्रेमर्षद का दृष्टिकोण प्रातिवादी रहा है, किन्तु उन समस्याओं के ही समाधान प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें गान्धीवाद से प्रभावित सुधारवादी कल्पना का ही परिचय मिलता है।

प्रेमर्षद अपने छोटे उपन्यास 'निर्मला' में भारतीय नारी की एक समस्या- जर्मेल विवाह की बौर लाये हैं। 'निर्मला' एक ब्रह्म कथ में विधुर विवाह करने के दुष्परिणाम की कहानी है। इस विवाह के कारण दो-दो ब्रह्म कथे बरबाद हो जाते हैं, इसका मार्मिक चित्रण ही 'निर्मला' का विषय है।

प्रेमर्षद के सभी उपन्यासों में वाक्य की दृष्टि से सबसे बड़ा उपन्यास 'रंग भूमि' है। सन् १९२० में गान्धीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने लगे थे और समस्त देश में नयी चेतना व्याप्त हो गई थी। परन्तु भारत का दमित अधिमान जागरित हो उठा। नौकरशाही तथा उनके हिमायती स्वातन्त्र्य समय का दमन करने के लिये कटिबद्ध थे और इसके लिये अपनी सम्पूर्ण आर्थिक शक्तियों का उपयोग करते थे। भारत की निरस्त्र जनता को गान्धीजी ने अहिंसा एवं आध्यात्मिक शास्त्र केरु गुह क्षेत्र में उतार दिया। भारत की के आ राष्ट्रीय आन्दोलन के वातावरण

में ही " रंग भूमि " का कथानक वायीकृत है । इसका प्रणयन अक्षरयोग वान्दोस्त के उपरान्त हुआ । इसके स्वर पात्रों के जीवन तथा घटनाओं के वायीकृत में अंकित होते हैं । उपन्यास में व्यक्त प्रमुख पात्रों के भाव एवं विचार एक गान्धी पक्ष के उद्गार हैं । एक बालोक्त के मतानुसार " रंग भूमि " गान्धीवाद के उन्माद की विमोह द्रव्य में लिखित उपन्यास है ।

इस उपन्यास के नायक गुरदास के विविध जीवन रूपावत की समस्त भूमि में हीकर एक " रंग भूमि " है । इस संश्राम में वाच्य बस उसका सफल है, न्याय उसका लक्ष्य है, अहिंसा उसका वस्त्र है, सत्य उसका साध्य है । उसमें अहिंसा गान्धीजी के सभी गुणों का समावेश है । " रंग भूमि " गान्धीवादी राजनैतिक चेतना से अनुप्राणित है । गान्धीवाद का प्रभाव साहित्य और जीवन पर जैसा जो कुछ पड़ा वह रंग भूमि में दिखाई पड़ता है । चरित्रों की विविधता, बहुलता और भारतीय जीवन की व्यापकता का चित्रण रंग भूमि की अपनी विशेषता है ।

मुन्शी प्रेमचंद के " काया कल्प " उपन्यास को देखकर आश्चर्य होता है । जादू-टोने, ज्योतिष, पूर्वजन्म पर विश्वास आदि कितने अंधविश्वास पर आधारित विषयों के द्वारा इसकी क्या जागे बढ़ाई गई है । हो सकता है कि मुन्शी प्रेमचंद ने भारत के हिन्दू समाज ने रुढ़ मूल वैध-विश्वासों और मूल परम्पराओं को पिछाना ही प्रेमचंद का ध्येय रहा हो । वस्तुतः " काया कल्प " की मुख्य समस्या हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य है जो उस समय

१- डा० इन्द्रनाथ प्रधान (सी०) : प्रेमचंद : " चिन्तन व कला ", पृष्ठ ४४ ।

२- वाचस्पति नंद दुलारी बाणपेयी : " वाचस्पति साहित्य ", पृष्ठ १६० ।

की सबसे बड़ी समस्या पनी हुई थी मुन्शी प्रेमचंद ने पारस्परिक प्रेम तथा सहानुभूति से ही इन समस्याओं को सुलझाने में योग दिया । वेर विरोध को मिटाने तथा हिन्दू मुसलमानों में वात्मीया का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये सबसे बड़ी बाधा के रूप में प्रेमचंद ने बहिष्ता एवं सहनशीलता को ही प्रस्तुत किया है । व्यक्ति पर परिस्थिति की प्रतिक्रिया का पूरा ही सख स्वभाविक एवं बुद्धि ग्राह्य वर्णन इस उपन्यास में मिलता है ।
 "कन्या कल्प" भारतवर्ष के वाध्यात्मिक उत्कर्ष, योगियों के तलौकिक कार्यों आदि के आधार पर बना है ।

वीरवीर शतावदी के प्रथम चरक में "कृष्ण" नामक छोटा सा उपन्यास काव में परिवर्तित एवं परिमार्जित होकर एक सुन्दर उपन्यास "गवन" के रूप में निकला । एक ग्रामीण युवती जालया के बमित लाभूषण प्रेम तथा उसके दुरन्त परिणामों की कथा है "गवन" । "गवन" समस्या प्रधान है और कलात्मक प्रौढ़ता की दृष्टि से भी महत्व का है । प्रेमचंद ने "गवन" में जीवन की सामाजिकपृष्ठभूमि पर मनोवैज्ञानिक चित्रण का वादही उपस्थित करने का प्रयत्न किया । उसके प्रत्येक पात्र के चरित्र-चित्रण में परिवर्तन मिलता है । उसके मूल कारण में कोई न कोई घटना की प्रभावता है जिससे पात्रों के व्यक्तित्व का विकास होता गया है ।

"प्रेमाश्रय", "रंग भूमि" तथा "काया कल्प" के साथ उन्हीं के चरक के रूप में "कर्म भूमि" का नाम जाता है । इसमें भी

भारतीय समाज का जो चित्र सींचा गया है उसे पूर्णता प्रदान करने में "कर्म भूमि" भी सहायक हुआ है। सन् १९३३ में सत्याग्रह में जो परिस्थितियाँ देश में उत्पन्न हो गईं उसी का वास्तविक रूप "कर्म भूमि" में मिलता है। शासन की विभिन्न शाखाओं का पतन, सामान्य रूप में देश में व्याप्त अनैतिकता और व्यापार आदि के विरुद्ध संस्कृत ने इसमें अपनी शक्ति ध्वनि की है। प्रेमचंद की उपन्यास कला "प्रेमाश्रय" "रंग भूमि" तथा "कर्म भूमि" की त्रिवेणी में गान्धीवादी दर्शन से पूर्णतया प्रभावित है। डा० मदान के शब्दों में "रंग भूमि का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण एक कवि का सा है जबकि "कर्म भूमि" में जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण एक योद्धा का है। "कर्म भूमि" में कर्म योग का संकेत है। इस उपन्यास में लगभग सभी पात्र समाज सेवा व समाज कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर मानव मंगल के उत्कार्यों में जुटे हुए हैं। प्रेमचंद जी ने इसमें यह दिखाया है कि राजनीतिक आन्दोलन के लिये सामाजिक सुधार की आवश्यकता है और देश की स्वाधीनता के लिये देश की सामाजिक तथा वैचारिक समस्याओं की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। "कर्म भूमि" में सामान्य जीवन की धारा व वास्तविकता अधिक है, गान्धीवादी प्रभाव कम है।"

प्रेमचंद की रचनात्मक प्रतिभा का चरमोत्कर्ष उनके अन्तिम उपन्यास "गोदान" में दृष्टव्य है। उनके मनोभावों का विश्लेषण अधिक गहरा हो गया है, जीवन की व्याख्या का दृष्टिकोण अधिक संतुलित हो गया है। इस प्रकार "गोदान" यथार्थवाद की दृष्टि से उनके अन्य उपन्यासों से कहीं दूर आगे बढ़ गया है। मुन्शी प्रेमचंद अपने अन्तिम काल में इस

१- डा० इन्द्रनाथ मदान : "प्रेमचन्द : एक विवेचन" : पृष्ठ ६४

२- बाणपैयी १ "अधुनिक आधुनिक साहित्य" : पृष्ठ १६२

उपन्यास में वादर्थों पर वास्तविक छोड़कर, जीवन की अधिक वैज्ञानिक रूप से देखने लगे हैं। इसलिए वे गौदान में जीवन का अधिक यथार्थ रूप, कला का अधिक सुष्ठु रूप तथा चिन्तन का अधिक प्रौढ़ रूप उपस्थित कर सके हैं। प्रेमचंद ने अपने सभी कृत्यों में उपन्यासों में जीवन की वास्तविकता की स्थापना वादर्थवाद की भित्ति पर की थी परन्तु प्रेमचंद जी का यह यथार्थानुसृत वादर्थवाद "गौदान" में स्पष्टतः निश्चित हो जाता है। इस यथार्थवादी चित्रण में उनका वादर्थवाद कम नहीं देता। प्रेमचंद ने उपन्यास के आरम्भ में ही उपन्यास के नायक "गौरी" का चित्रण बहुत सहजतुष्टिपूर्ण किया है। इसमें तो केवल जीवन के जीते जागते चित्र हैं और उनकी खेक समस्याएँ। "गौदान" केवल वर्तमान का एक निष्पक्ष चित्र है उसमें "जागत मजिद की सम्भावनाओं" की फीकाही नहीं कराई गई है। इसमें तो एक चरित्र की लेकर उसे नैक परिस्थितियों में डालकर तथा बहुत से पात्रों और चरित्रों संघर्ष में लाकर समाज का एक जीवित चित्र निर्माण किया गया है।

प्रेमचंद और "गौदान" यथार्थवादी बन गये हैं।

डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में, "गौदान की मूल समस्या शोषित तथा उत्पीड़ित कृषक के कृण की समस्या है।" डा० मदान के शब्दों में, "गौदान एक भारतीय किसान की जीवन गाथा है जिसमें उसकी सभी विशेषताएँ और उसके सभी रूप विद्यमान हैं। बाबाय बाबपेयी के मतानुसार, "इस उपन्यास का उद्देश्य भारतीय ग्रामीण ऊर्ध्व जीवन के विविध पक्षों को उपस्थित कर ग्रामीण जीवन की स्थिति का उद्घाटन करता है।" वास्तव

१- डा० रामविलास शर्मा : "प्रेमचंद और उनका युग", पृष्ठ ११५

२- डा० कर्क उन्नाव मदान : "प्रेमचंद : एक विवेचन", पृष्ठ ६६

३- डा० रंजु नंद हुलारे बाबपेयी : "प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन", पृष्ठ १४५।

में "गौदान" प्रेमबंद की खपर कलाकृति है। उसकी तुलना टालस्टाय के उपन्यास से की जाती है। उपन्यास कला के पथ पर "सेवा सदन" से गौदान तक की प्रेमबंद की यात्रा सचमुच एक शानदार यात्रा है और इस प्रमाण का काल हिन्दी-उपन्यास के उदितार का सबसे महत्वपूर्ण काल है।

प्रेमबंद की मौलिक प्रवृत्तियाँ-

प्रेमबंद विषय तथा व्यभिर्ष्यज्ञता की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से बहुत अलग थे। प्रेमबंद से पूर्व हमारा उपन्यास साहित्य चिन्ता रहित, काल्पनिक, रहस्यमय तथा विवेकहीन रहा है। परन्तु प्रेमबंद के युग में देश की सामाजिक जागृति एवं राजनैतिक चेतना के कारण ऐसे साहित्य की आवश्यकता हुई, जो विचार में स्वतन्त्र हों, चिन्तन में संतुलित हों, जीवन की अवरोधक शक्तियों के प्रति उग्र हों, दीन-दरिद्र जनता की पीन परा से विद्रोहित हों तथा भारत की मूक जनता के जीवन, व्यभिचारियों तथा उसकी बातों का वाणी देने वाला हों। उन्होंने बाकांताओं की पूर्ति हेतु उपन्यासकार मुन्शी प्रेमबंद प्रत्यक्ष हुये। उन्होंने चरित्र, वस्त्रावरण, शैली, उद्देश्य आदि के क्षेत्रों में मौलिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया। उनकी मौलिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित थी :-

काल्पनिक जगत से यथार्थ की ओर -

प्रेमबंद ने उपन्यास को स्वच्छन्द कल्पना के से जाने की है। उनके लिये जीवन कौटुंबिक तमाशा न था, कल्पित गम्भीर विषय था। उनके पूर्ववर्ती लेखकों ने जीवन को विश्लेषणात्मक दृष्टि से

नहीं देता । प्रेमर्षद के लिये जीवन का प्रत्येक क्षण जीवन था । क्षण भर के लिये भी वे उसके प्रति निश्चित नहीं हो पाये थे ।

रोमान्स से प्रश्नों की ओर-

पूर्ववर्ती उपन्यासों में भी रोमान्टिक कल्पना का वाध्मिय था । रोमान्स की उपन्यास का मुख्य विषय बनाना एक कला समझी जाती थी । प्रेमर्षद के आगमन से इस कला की धक्का पहुँचा । "प्रेमा" से "मंगल सूत्र तक" तक के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने भारतीय सामाजिक जीवन की एक एक समस्या को लेकर उलका विवेचन किया । "प्रेमा" में विधवा विवाह का, "सेवा सदन" में दहेज का तथा जनमेल विवाह के दुष्परिणामों का, "प्रेमाश्रय" में किसान जमींदारों के पारस्परिक संघर्ष का, "रंग भूमि" में भारत के स्वातन्त्र्य-समय की जन जागृति का, "काया कल्प" में हिन्दू मुस्लिम समस्या का, "निर्मला", "प्रतिज्ञा", गयन में भारतीय नारी की विकट समस्याओं का प्रतिपादन हुआ । हुये प्रेमर्षद ने अपनी सन्तुष्ट पूर्ण उपन्यास "गोदान" में भारतीय किसान की करुण कथा प्रस्तुत की है । भारतीय जीवन का शायद ही कोई जग उनकी दृष्टि से छूटा हो ।

मानव जीवन का अध्ययन-

प्रेमर्षद के पात्र भारतीय संस्कृति से जीत प्रीत सच्चे भारतीय हैं । तो दूसरी ओर साधारण मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानव भी हैं । पारस्परिक सहानुभूति, ईर्ष्या, ईश, प्रेम वगैरि मानवमात्र के विभिन्न गुणों से युक्त उनके पात्र कभी कभी विरल उपन्यासकारों के उत्कृष्ट

पात्रों के समान सार्वलौकिक बन जाते हैं। "गोदान" के पात्र सचमुच एजीब मनुष्य हैं।

मनोविश्लेषण-

प्रेमचंद पात्रों के वास्तव क्रिया कलापों के पणन मात्र से संतुष्ट नहीं दीखते, उनके जातिरिक्त भावों का भी व्यवस्त करते हैं चाहे उनका मनोविश्लेषण प्रवृत्तियाँ के विश्लेषण के समान सूक्ष्म भावों का विवेक करने वाला न हो और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के विश्लेषण के समान मनस की जटिल ग्रन्थियों को सुलझाने वाला न हो तो भी उन सपने जटिल मूर्त रूप देकर पाठक के हृदय से पिला देने वाला है। उनका मनोविज्ञान एक विशेषज्ञ का नहीं जो अपने यांत्रिक सिद्धान्तों से ही मनुष्य को नापता है वरन् उस माता के सदृश है जो प्रत्यक्ष के और खतर का व्यवस्त किये बिना अपने बच्चे के भाव परिवर्तन का अर्थ अच्छी प्रकार समझती है। प्रेमचंद पात्रों के मनो भावों की बुझि से ही नहीं, हृदय से भी समझते हैं और यही कारण है उनके पात्र हृदय को प्रभावित करते हैं।

यथार्थवाद का प्रतिष्ठापन-

प्रेमचंद बादरथीन्मुख यथार्थवादी हैं। वे स्वयं स्वकी मानते भी हैं। वे जीवन के यथार्थ रूप को देखते हैं और उसे सुधारने का प्रयत्न करते हैं। उनका विकास निरंतर यथार्थीन्मुख रहा और "गोदान" तक जाते जाते वे बादरथीवाद से बहुत कुछ मुक्त हो गये। बादरथीवाद उनकी पैत्रिक संपत्ति के रूप में मिला था। जतः वह बादरथीवाद से एकदम मुक्त नहीं थे परन्तु उन्होंने उन बंधनों को एक एक कर तोड़ फेंकने का प्रयत्न किया और

इसमें वे बहुत कुछ सफल रहे । प्रेमबंद अपनी कला के चरमोत्कर्ष के रूप में यथार्थवादी बध्कि है, वादशवादी कम । "प्रेमा", "सेवा सदन" आदि के परम्परा सिद्ध प्रेमबंद सुधारवादी है । "प्रेमालय", "गिभूमि", "कायाकल्प", और वन भूमि के गान्धीय प्रेमबंद वादशान्तिनुस यथार्थवादी है । वस्तुतः प्रेमबन्दीय प्रेमबंद "गोदान" में है और बहुत कुछ यथार्थवादी है । हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद के प्रतिष्ठापन का श्रेय उन्हीं का है । पावर्ती यथार्थवादी उपन्यासकारों की निगिया प्रेमबंद की नींव पर उठाई गई है । यह प्रहिया दोनों में रही ।

प्राति और शान्ति-

प्रेमबंद के उपन्यासों पर अधिकारि गान्धीवादी विचार धारा कार्य कर रही है । उन्मात्मक भौतिकवाद और मानसवाद के अन्य विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव उनमें नगण्य है । इस कारण मुन्शी प्रेमबंद को प्रातिवादी या शान्तिकारी कलाकार मानने में बापपि हो सकती है परन्तु प्रातिवाद का विशाल वर्ग है तो मुन्शी प्रेमबंद प्रातिवादी ही है । मुन्शी प्रेमबंद की कृतियों में भारतीय समाज की प्रत्येक श्रेणी के लोगों का चित्रण, उनकी समस्याओं का समाधान, भारतीय- संस्कृति का ठीक ठीक मूल्यकिन और समाज की कलह लौकर उसकी सच्च पय प्रदर्शन करने का संदेश उपलब्ध है तो उसे प्रातिशील नहीं कहा जा सकता । यदि समाज की विकासोन्मुख प्रहियों का दिग्दर्शन ही प्रातिशीलता का लक्षण है तो प्रेमबंद का गान्धीवाद प्रातिशीलता है क्योंकि प्रेमबंद के उपन्यासों के समय में हमारे राष्ट्र में सबसे बड़ी प्रेक शक्ति गान्धीवाद की थी । उसकी यदि प्रेमबंद उपेक्षा करते तो भारतीय समाज के विश्वस्त चित्रकार न होते । परन्तु

वन्तिन वचनों में वे गान्धीवाद और सुधारवाद पर विश्वास तो बैठे और मार्क्सवाद पर तथा सशस्त्र क्रान्ति पर उकी वास्था बटुने लगी। "एस" और "जागरण" में उन्होंने निःसंकोच घोषणा कर दी "वैयक्तिक सत्याग्रह का कार्यक्रम राष्ट्र को स्वीकार नहीं है। गान्धीजी की नीति का प्रति-रोध करते हुये उन्होंने लिखा, "----- सत्याग्रही नीति से हमें अपने उद्देश्य प्राप्ति की आशा नहीं। यही कारण है कि "गोदान" में सुधारवाद का प्रभाव है। पहले के उपन्यासों में गान्धीवादी सुधारवाद का तात्पर्य लेकर यथार्थवाद और क्रान्ति भाव को किरकिरा कर दिया। एसराज एल्बर ने स. प्रेमचंद की कमजोरी माना है। इस कारण प्रेमचंद प्रेमचंद का गान्धी-वाद से प्रभावित उत्कण्ठीन समाज का यथार्थ चित्र उतारने का प्रयत्न है। जब १९३२-३३ की राजनैतिक घटनाओं ने गान्धीवाद से उनकी जब तात्पर्य छूट गई तो उनके साहित्य का स्वरूप ही बदल गया। उनका वादार्थक्य भी ही रहा ही परन्तु यह निश्चित है कि हिंदी साहित्य में प्रथम प्रथम देश के वर्ग संघर्ष का विश्लेषण करने वाले प्रेमचंद ही थे। उनका यह विश्लेषण उद्गोचर कलात्मक होता गया।

मानव मूल्य की मान्यता-

मनुष्य की मनुष्य के रूप में देखने वाले मुन्शी प्रेमचंद ही हैं। उनसे पूर्व की कुत्सित दृष्टियों की बालोचना और असाधारण एवं वास्तव्यजनक उम्भवों के कठक वर्णन से जागे बढ़कर जीवन की समग्र रूप में देखने का प्रयत्न नहीं किया। प्रेमचंद ने मानव की मानव रूप में देखकर

१- जागरण ७ अगस्त १९३३ सम्पादकीय।

२- - वही-

३- एल्बर : प्रेमचंद, जीवन और कृतित्व, पृष्ठ १६२-१६३।

उन्हे उसके भीतर छुदय की देकर कौमल वस्तु का परिचय भी पाया और सन्तुष्टि दिलाई ।

शिल्प विधान -

प्रेमबंद के उपन्यासों की एक विशेषता उनकी टेक्नोक या शिल्प विधान है । उन्होंने भावाधिर्व्यक्ता तथा वितरणान्मक रीति से कथा कहने की पुरानी परम्परा को छोड़कर उन्होंने विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक ढंग को अपनाया । विषय विकास की रीति, पात्रों का प्रत्यक्षीकरण, भावों की सूक्ष्म व्यञ्जना, भाषा को स्वाभाविकता आदि पर ध्यान रखते हुये उन्होंने नवीन टेक्नोक को अपनाया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि "प्रेमा" से लेकर गोदान तक प्रेमबंद ने सामुनिक जीवन की अधिक से अधिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के चित्रण को अपनी कला का उपकरण बनाया । परिवार की छोटी सी छोटी घटनाओं को लेकर समाज और देश की बड़ी से बड़ी समस्याओं के चर्चन का उन्होंने प्रयास किया और सफल भी रहे । इस सफलता का प्रधान कारण उनकी बलौकिक पर्यवेक्षण शक्ति तथा सांसारिक अनुभव की प्रश्रुता थी । उनकी वृद्ध दृष्टि ने अपने समाज और देश को उनके पदों से देखा था और मानव स्वाभाव को भली भाँति देखा था ।

प्रेमबंद की सीमाएँ

प्रत्येक कथाकार की अपनी सीमाएँ होती हैं । प्रेमबंद की भी अपनी सीमाएँ थी । उनके समस्त उपन्यास की कोई प्रौढ़ और प्रशस्त

परम्परा नहीं थी जिसकी नींव पर वे अपना महल बना सकें । प्रेमचंद को तो उसकी स्वयं नींव डालनी थी उनकी भिरिया उठानी पड़ी, छप्पर डालना पड़ा । प्रारम्भ से लेकर अन्त तक निरंतर प्रयत्न करना पड़ा जो कुछ किया वह सब उसके व्यक्ति के लिये प्रसनीय कार्य था फिर भी वालोचना ने उनकी प्रोफेन्डिस्ट तथा वक्तावादी के नाम से की उपाधि से विभूषित किया है । वालोचना प्रत्येक की हो सकती है इसमें कोई संदेह नहीं कोई पूर्ण साहित्यकार नहीं जिसके साहित्य में गुण एवं दोषों का सम्मिश्रण न हो । प्रेमचंद में भी कुछ कमियाँ थी :-

तटस्थताकी कमी-

प्रेमचंद के प्रारम्भिक उपन्यासों में व्याख्या और चित्रण से अधिक जीवन की वालोचना ही मिलती है । उनका वक्तावादी दृष्टिकोण ही उसका मुख्य कारण है । "गौदान" तक वे वे वक्तावाद से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाये । नगर जीवन तथा उच्च वर्गीय लोगों का स्वरूप प्रकट करने में प्रेमचंद की अपार घुणा प्रकट होती है । निम्न वर्गों पर उनकी अपार सहानुभूति है । उसी प्रकार स्त्री पात्रों का भी प्रेमचंद ने कभी उदारता से चित्रण किया है । भले यह दृष्टिकोण अनुचित न हो फिर भी उनके कथावाद को सीमा निर्धारित करता है । इसलिए प्रेमचंद अपने उपन्यासों में तटस्थ नहीं रहे ।

घटना बाहुल्य :-

प्रेमचंद के प्रत्येक उपन्यास में घटना बाहुल्य है

इसके कारण मनोभूमि अधिक स्पष्ट नहीं होती। प्रेमबंद घटना पर घटना का चित्रण करते जाते हैं। उन्हें व्यक्ति के अन्तर्गत के अज्ञात स्वभाव का बाधिकाएँ करने का व्यवहार नहीं मिलता। प्रेमबंद जी का कई व्यक्ति का अध्ययन बाह्य तल तक ही रह गया है। सामाजिक पृष्ठ भूमि ही अधिक सजाई हुई है। वास्तव में देखा जाय तो प्रेमबंद का उद्देश्य हमारे समाज का अध्ययन था, व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं एवं अन्तर्बन्ध का मनो-विश्लेषण करना नहीं।

स्वानुभूति दर्शन का अभाव -

प्रेमबंद ने जीवन का बहुत ही विशद रूप उपस्थित किया फिर भी वे उसकी गम्भीर व्याख्या नहीं कर सके। बाचार्य नेद सुतारे बाजपेयी के मत में प्रेमबंद का कोई स्वतन्त्र स्वानुभूति दर्शन नहीं, "कल्पना के अभाव में बाध प्रेमबंद जी में कुछ बौद्धिक दृष्टि और उनके फलस्वरूप निर्माण होने वाले व्यक्तिगत जीवन दर्शन का भी अभाव है।" प्रेमबंद ने रुढ़ मूल सत्त्यों और विविध वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की मौलिक प्रेरणाओं की खोज नहीं की। जिन जिन उपचारों में उन्होंने गायकों की स्थापना की है, उनके बाद में उस गायकी के गायकों के समान ही जी तर्ग फौली (Cross Word puzzle) का प्रथम पुरस्कार जितने और उस पत्र से अपने घर की वार्षिक समस्याओं को सुलझाने का निरंतर प्रयत्न करता है।

१- पिनवी साहित्य : त्रिंशती सदी : पृष्ठ ८६ ।

बौद्धिकता की कमी-

समस्याओं के उत्पत्ताय में प्रेमबंद की बौद्धिकता से ही अधिक काम लेना पड़ता है, भावुकता से नहीं। परन्तु कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक भावुक हो गये हैं। उनकी अपार सहृदयता तथा भावुकता का कारण मानव के प्रति सहानुभूति ही है। 'गोदान' के पूर्व के उपन्यासों में प्रेमबंद के जो वादश हैं उनकी सहृदय भावना का तो परित्यक्त है परन्तु बौद्धिक चिन्तन का नहीं। प्रेमबंद की अभिव्यक्ति भी सीधी सीधी है। बाबायर्मनद हुताई बाबूमेयी ने जब उच्च धेणी के साहित्य में कहीं बाणी के मौन रहने की आवश्यकता पर जोर दिया तब प्रेमबंद ने निषेध दिया, "जहाँ बाणी मौन रहती है, वह साहित्य है, वह साहित्य नहीं गूंगाफ है।" इन शब्दों में उनकी बलहीनता स्पष्ट होती है।

इन कथियों की हम दोषों के रूप में नहीं, सीमाओं के रूप में मानते हैं। ये कथियाँ न होती तो वे अधिक उत्कृष्ट उपन्यासकार होते।

प्रेमबंद- कालीन अन्य उपन्यासकारों की प्रशंसा-

प्रेमबंद के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, कौशिक, चतुरसेन, बीडी प्रसाद हृदयल, वृन्दावनलाल वर्मा, उग्र, जैन्द्र कुमार आदि आते हैं। प्रेमबंद के समान जयशंकर प्रसाद ने अपने 'ईकाल', 'तितली', 'बौर' 'हरावती' नामक उपन्यासों द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास

में योग दिया। प्रेमचंद ने अपने पात्रों द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है उनका यथार्थ विश्लेषण प्रसाद जी के उपन्यासों में मिलता है। प्रसाद जी ने 'ईकाल' के द्वारा भारतीय स्त्रियों की अवस्थाय परिस्थितियों का चित्रण करके मंदिरों के धार्मिक द्वीगों पर प्रकाश डाला है। धर्म और संस्कृति के नाम पर फैली हुई सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण इसमें मिलता है। 'ईकाल' की अपेक्षा 'तितली' में प्रसाद जी अधिक भावुक हुये हैं। इसमें माम सुधार की भावना की प्रधानता दी गई है। कला की दृष्टि से तितली का उद्देश्य अधिक धार्मिक तथा व्यापक है।

प्रेमचंद जी की वादलान्तरित यथार्थवादी परम्परा का अनुसरण करने वालों में विष्णुकुसुम विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक का स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी माँ 'बौर' भित्तारिणी' उपन्यास नारी हृदय की भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण उपस्थित करते हैं। कुरुसेन रास्त्री ने नारी समस्या को लेकर 'हृदय की परस', 'हृदय की प्यास', 'जपर वभिलाषा' आदि उपन्यास लिखे। 'हृदय की परस' में विवाह की समस्या पर तथा 'हृदय की प्यास' में आधुनिक नारी के वैवाहिक जीवन की एक समस्या का चित्रण उपस्थित किया गया है। ग्रामीण समस्याओं को लेकर सियाराम लरण गुप्त 'मोद' और 'वन्तिम वाकांक्षा' नामक उपन्यासों में मानवीय गुणों का वादल दिताकर तत्काली ठिन्वठे हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया है।

प्रतापनारयण श्रीवास्तव का 'विदा' उपन्यास इस काल की महत्वपूर्ण रचना है। यह वादलान्तरित मौलिक उपन्यास होते हुये

इस पर पाश्चात्य उपन्यास कला का प्रभाव स्पष्ट होता है। पूर्वोक्त त्रिपाठी के "वफा", "कलक", "निरुपमा" से स्वच्छन्दवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। इन उपन्यासों में प्रभाव जी की रोमान्टिक उपन्यास कला का विकसित रूप दृष्टि-गोचर होता है।

इसी परम्परा में पंडित बेचन शर्मा "उग्र" का नाम उल्लेखनीय कथाकारों में है। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में "दिल्ली का पलाश", "चंद हसीनों स्तूत", "सरकार तुम्हारी वाली में", "जीजीजी" आदि हैं। इनके उपन्यासों में भारतीय समाज के भीतर छिपी हुई दुष्प्रथाएँ, वेश्यालायों, मदिरालुओं आदि विषयक व्यर्थताओं की मसूला दिखाई देती है। उग्र जी में उच्च कोटि की विधायिनी प्रतिभा है, अनुभूति है और सरस व्यंग्य शक्ति है जो सभी स्वीकार करते हैं।

कृष्णचरण जैन का भी नाम इसी परम्परा में जाता है। "दिल्ली का व्यभिचार", "दिल्ली का कलक", "वेश्यापुत्र", "गुरु गदर", "चम्पाकली", "चाँदनी रात" आदि उपन्यासों में उनका दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा है। इनके उपन्यास तों नग्न वास्तविकता के पूर्ण प्रदर्शन हैं। भगवतीचरण वर्मा की उपन्यास कला का आधारभूत उद्देश्य मध्य वर्गीय समाज में व्यभिचारी चेतना को अभिव्यक्ति देना है। उनका प्रथम उपन्यास "फात" ऐतिहासिक है। "चित्रलेखा", "विराटा की पद्मिनी", "तीन वर्ष", "टूट्टे फूटे रास्त", "बासिरी दांव" आदि में व्यभिचारीता का विकास अधिक दिखाई देता है।

प्रेमचंद की युग सेवा के भीतर ही कैप्टन कुमार का नाम जाता है। इस पात्र में उन्होंने एक नितान्त नूतन मार्ग का प्रदर्शन किया। कथा वस्तु के ब्यक्त एवं विकास, पात्र कल्पना एवं चरित्रांकन जीवन

दृष्टि तथा रचना शिल्प प्रायः सभी दृष्टियों में नवीनता है। " परस " तपो-
भूमि, सुखदा, विवर्त, त्यागपत्र आदि उपन्यासों में मानवीय प्रवृत्ति तथा सामा-
जिक नियमों की विवक्षितता दिखाई देती है। कथा कथन की स्थूल प्रवृत्ति के स्थान
पर इनकी वस्तुतः योजना सूक्ष्म हो चली और आकर्षण का मुख्य विन्दु चारि-
त्रिक अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन कौशल हो उठा। हिन्दी में उपन्यासकार जैनन्द् की
स्थाति एक विचारक और चिन्तक के रूप में अधिक है। " जैनन्द् जी के उप-
न्यासों में आरम्भ से ही एक बौद्धिक या दार्शनिक दृष्टिकोण रहा है। " ^१
जैनन्द् जी व्यक्तिवादी भावुक कलाकार हैं। जैनन्द् गान्धीवादी विचारधारा से
प्रभावित कलाकार के रूप में आदर्शवादी हैं।

प्रेमचन्द के युग के उपन्यास लेखकों में श्री धृन्दावन लाल
वर्मा प्रायः तीन दशकों से उपन्यास साहित्य की सृष्टि करते आ रहे हैं और
आज भी उनकी लेखनी में वही स्फूर्ति एवं गति है। वर्मा जी की उनके ऐति-
हासिक उपन्यासों की वजह से अधिक स्थाति मिली है, उन्होंने अपने उपन्यासों
में जीवित की सजीव कर दिया है। इनके ऐतिहासिक उपन्यास " गढ़ कुण्डार ",
विराटा की पद्मिनी ", " फांसी की रानी ", " कन्नार " आदि हैं। सामा-
जिक उपन्यासों में " संगम " लगन " प्रत्यागत ", " खै खल भरा कोई नहीं " ^१
आदि हैं। इनकी ऐतिहासिक सामग्री में कल्पना का भी पर्याप्त भेल है।

नीति, उपदेश प्रधान अद्भुत कथानक, चमत्कार-बहुल,
स्वच्छन्द कल्पनीय प्रेरित प्रारम्भिक उपन्यासों से आगे बढ़कर प्रेमचन्द ने उप-
न्यास की यथार्थ जीवन चित्रण का उत्कृष्ट माध्यम बनाया और उसे अद्भुतपूर्व
साहित्यिक गुरुता प्रदान की। वह युग सामाजिक राजनैतिक जागरण का था।

यही कारण है कि चित्रण में यथार्थवादी शैली का उपयोग करके भी उद्देश्य में प्रेमचन्द वादशवादी हो रहे। कौशिक ने पूरी तरह से प्रेमचन्द का अनुगमन किया। प्रेमचन्द से प्रसाद जी का दृष्टिकोण किंचित् भिन्न था। उन्होंने समाज के ज्वलन्त प्रश्नों को, उसकी जीम समस्याओं को चित्रित करके भी उनका कोई वादशवादी समाधान नहीं प्रस्तुत हुआ। प्रसाद की शैली काव्यात्मक थी, किन्तु उनकी दृष्टि नितान्त यथार्थवादी। इन दोनों लेखकों से भिन्न वृन्दावनलाल वर्मा तथा उग्र रहे। इनके उपन्यासों में रूमानी प्रेम की प्रधानता है। शर्मा जी ऐतिहासिक वातावरण में अपनी प्रेम कथाएँ प्रस्तुत करते हैं, उग्र जी सामयिक घरातल पर ही रहते हैं। भावती चरण वर्मा ने चित्रलेखा में पाप और पुण्य की नई व्याख्या की। जैनन्द के उपन्यासों में एक नितान्त नूतन दृष्टि एवं औपन्यासिक प्रवृत्ति व्यक्त हुई। प्रेमचन्द के गान्धीवादी दर्शन के व्यावहारिक पदा को अपनाया तो जैनन्द ने वाध्यात्मिक पदा को ग्रहण किया। सियारामशरण गुप्त ने भी जैनन्द के वाध्यात्मिक पदा को ही लिया परन्तु वे मर्यादावादी हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द युग में जहाँ एक ओर उपन्यास में व्यापकता एवं प्रौढ़ता आई वहीं नई संभावनाओं की ओर भी संकेत मिला और वागे चलकर उपन्यास धारा, नई दिशाओं की ओर विकसित हुई। प्रेमचन्द के पूर्व घटना प्रधान उपन्यासों का निर्माण तथा जनता का मनोरंजन का उद्देश्य था जब इस युग में चरित्र चित्रण की महत्त्व मिला। चरित्र प्रधान होने के कारण रचना विधान की कला में अधिक परिवर्तन हुआ। इस काल में बौद्धिकता की प्रधानता के कारण लेखकों की अपनी रचनाओं के लिए नवीन दिशाएँ मिली और नई नव्यतर प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ।

प्रेमचन्द-काल के उपन्यासकारों में प्रमुख प्रवृत्तियाँ मिलती

हैं।

जासूसी, तिलस्मी और श्यारी :

“चन्द्रकान्ता” एवं “भूतनाथ” की परम्परा इस काल में चली रही। गहमरी जी के अनेक जासूसी उपन्यास प्रकाशित हुए। गहमरी जी के उपन्यासों की संख्या की देखकर पता चलता है कि गहमरी जी ने अन्यों से लिखवाकर अपने नाम से अधिक प्रकाशित किये होंगे। इन उपन्यासों में रोमान्टिक उपन्यासों की भांति घटनाचक्र की जटिलता है और इन जासूसी उपन्यासों में भी कथानक प्रायः एक पर अधिक युवतियों के चारों ओर बँकर काटते हैं।

रोमान्टिक कल्पना :

इस युग के उपन्यासों में सबसे अधिक प्रवृत्ति रोमान्टिक कल्पना की है। प्रेमचन्दकालीन अन्य लेखकों के सामाजिक उपन्यासों में भी रहस्यात्मक तथा आश्चर्यपूर्ण बातें हैं। चतुरसेन के “हृदय की परख” व्यभिचार” उग्र का चन्द हसीनों के खतूत, निराला का “अलका”, भावती प्रसाद वाजपेयी के “मीठी चुटकी” प्रसाद के “कंकाल” और “तितली” आदि में समाज की यथार्थ समस्याओं के साथ स्वच्छन्दतावादी कल्पनापूर्ण घटनाओं का समन्वय है। समस्याएँ प्रायः विधवा, बाल विवाह, सतीत्व मंग, प्रेम में बाधा आदि से सम्बन्धित हैं। उषादेवी के “पिया”, वृन्दावनलाल वर्मा के “लगन” आदि में रोमान्स कुछ नवीन ढंग से आया है।

सामाजिक आलोचना :

इस युग के प्रायः सभी उपन्यासों में समाज की आलोचना थोड़ी बहुत मिलती है। उग्र की “बुधुआ की बेटा” और शराबी” में समाज

की दुर्वृत्तियों की आलोचना है। प्रसाद ने धर्म और आदर्श के नाम पर चलने वालों की निन्दा करके समाज के खीखीले आदर्श की कलई खोल दी। चतुरसेन ने वासना की निन्दा की। इनमें से किसी भी उपन्यास में यथार्थवादी निरपेक्षता और कलात्मकता से सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण नहीं किया गया है।

आदर्शवाद, उपदेशवाद, सुधारवाद :

इस युग के सभी उपन्यास प्रत्यक्षा या अप्रत्यक्षा रूप में आदर्शवाद का सहारा लेते हैं। आदर्शवाद भी प्रायः उपदेशवाद तथा सुधारवाद तक पहुँच जाता है। सभी में दुष्पात्रों के अत्याचारों से पीड़ित नारियों की सहायता के लिए सत्पात्र सदा तैयार रहते हैं। सभी में कुछ दुष्टपात्रों के साथ एक या अधिक सत्पात्रों की लाकर नैतिकता का संदेश दिलाया गया है। उष्णा-देवी के "पिया" में सुधारवाद पुरुषों की कौड़ा लगाकर ठीक करने की हद तक पहुँच गया है। इसी प्रकार जैनन्द्र के "परस", सियारामशरण गुप्त के "गौद" में बिहारी, शोभाराम अण्णिविह आदर्श पात्र हैं। कौशिक जी ने भगवती प्रसाद वाजपेयी के "कनाथ पत्नी" की भूमिका लिखकर आदर्शवाद और कल्पना को स्पष्ट कर दिया है।

नियम :

लौकिकों के आदर्श के कारण सभी उपन्यास एक निश्चित नियम पर आधारित हैं। सुखान्त उपन्यासों में सत्पात्र कष्ट और विघ्न सहन कर अन्त में अपनी प्रेमिका से विवाह करके सुख को प्राप्त होते हैं तथा दुष्पात्र सुख

और विलास के जीवन व्यतीत करके अन्त में दुःख भोगकर उनका या तो मरण होता है या कारावास मिलता है। दुःखान्त उपन्यासों में नायक नायिका परिस्थितियों की विवशता से नहीं, अपने ही वायर्श, त्याग और उत्सर्ग से शोकात्मक अंत का धरणा करते हैं। "मुस्कान" की ललिता अपनी जानकर देकर प्रियतम की प्रेमिका की बचाती है। "भित्तारिणी" की यशोदा प्रेमी का अन्य स्त्री से विवाह हो जाने पर अपनी करोड़ों की सम्पत्ति दान में देकर भित्तारिणी बन जाती है।

वस्तु विन्यास :

इन सब उपन्यासों में वस्तु विन्यास साधारण है। प्रायः सभी में वैचित्र्यपूर्ण कथारं कही गई हैं। कथा के वैचित्र्य के कारण और घटना बाहुल्य के कारण भाव विकास का अवसर नहीं आया है। "कंकाल" इसका उदाहरण है। "चित्रलेखा" भी अपनी दार्शनिकता अपनी प्रभावपूर्ण शैली के लिए यह तत्कालीन उपन्यासों में अकेला खड़ा है।

चरित्र और वातावरण का अभाव :

कथानक और आदर्शों के मोह के कारण प्रेमचन्द के अतिरिक्त अन्य समकालीन उपन्यासकार न कोई किसी वास्तविक पात्र की सृष्टि कर सके न सच्चे वातावरण की। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों के विश्लेषण की और लक्षकों का ध्यान गया ही नहीं। उनकी दृष्टि घटनाचक्र को बागे बढ़ाने में ही केन्द्रित रही। परिणाम यह निकला कि कथानक में चुस्ती आ गई और हानि यह हुई कि पात्रों और वातावरण के यथार्थ रूप के अभाव में प्रभाव कम हो गया।

विचार से अधिक विकार :

उपन्यास में विचार तथा विकार दोनों का संतुलन अनिवार्य है। परन्तु जब हम उपन्यास को वास्तविक जीवन का अध्ययन मानते हैं तो विचार को अधिक महत्व देना पड़ता है। परन्तु प्रमचन्द के समकालीन उपन्यास लेखकों में यह बात नहीं मिलती। प्रतीत होता है कि लेखक विकार के हाथों समर्पण हो चुके हैं। प्रत्येक उपन्यास में ऐसे स्थल सुलभ हैं जहाँ लेखक आवश्यकता से अधिक उत्तेजित हो उठता है और पात्र उच्च स्वर (लाउडस्पीकर) की भांति लेखक के ही शब्दों की जोर जोर से बोलते हैं। तूलिका के मन्द संस्पर्श से अंकित सूक्ष्म रसावली द्वारा जिन विकारों को व्यंजित करना चाहिए, वहाँ इन लेखकों की असावधानी ने चित्र का सही रूप ही बिगाड़ दिया है।

भाव-विकास के अवसरों की उपेक्षा :

प्रमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों ने पात्रों के मनो-भावों की उपेक्षा की है। चतुरसेन के 'अमर अभिलाषा' में हरनारायण और हरमोहिन्द के मानसिक संघर्षों का विश्लेषण आवश्यक है। कौशिक के 'भिला-रिणी' में लेखक ने उन वाह्य प्रवृत्तियों का वर्णन किया है जो पात्रों के मनो-भावों को व्यक्त नहीं करती। 'कंकाल' की किशोरी पति के रहते हुए निरंजन से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करके भी साधारण अवस्था के समान असमंजस में नहीं पड़ती। इस प्रकार मानसिक द्वन्द्वों के अवसरों की उपेक्षा इस काल के प्रायः सभी लेखकों के उपन्यासों में मिलती है। मुन्शी प्रमचन्द ने मन में प्रमंजन करने वाली सभी परिस्थितियों को पहचाना है। भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा'

में सभी पात्रों के मानसिक पक्षों का सुन्दर चित्रण किया है पर वन्य उप-
न्यासों में वे चूक गये हैं। प्रसाद भी मनोविश्लेषण की ओर जाते हैं परन्तु
न जाने क्यों शीघ्र उसे भूलकर घटनाओं में बह जाते हैं।

यथार्थवाद :

प्रेमचन्द काल में हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवाद की
स्थापना हुई और उसका विकास भी हुआ लेकिन इस काल में पूर्णतया यथार्थ-
वादी एक भी उपन्यास नहीं लिखा गया । कहीं कहीं रोमान्स , वास्वामाविक
घटनाएं, लेखक के सिद्धान्त और उपदेशों का प्रदर्शन आदि के कारण यथार्थवाद
पूर्ण विकास प्राप्त न कर सका परन्तु तब भी यह तीव्र विकास का युग था ।

उर्दू उपन्यासकार (प्रेमचन्द युग) :

२० वीं शताब्दी का उर्दू गद्य प्रौढ़ता के उस स्तर तक
पहुंच चुका था, जिस पर कि "दाग" और "अमीर" के समय की उर्दू काव्य
की अभिव्यञ्जना शक्ति पहुंच चुकी थी । इस शताब्दी में कथा-साहित्य ने वाशा-
तीत उन्नति की, परन्तु साथ ही साथ इस युग में न तो वृहत् आकार के उपन्यास
ही लिखे गये न छोटी छोटी कहानियां वरन इस समय के लेखकों ने मध्यम मार्ग
वपनाया । हम उनके उपन्यासों की न तो उपन्यास ही कह सकते हैं न कहानी
ही कह सकते हैं वरन दोनों के मध्य की चीज "नौबलट" ही कह सकते हैं।
इस युग के उपन्यासकारों में विशेषतः प्रमुख उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द, न्याज
फतहपुरी, सज्जाद हैदर यलदम, ताम अहमद, सुलतान हैदर जीश, मजनु गौरस-
पुरी आदि जाते हैं।

मुन्शी प्रमचन्द से तो हिन्दी संसार अच्छी तरह से परिचित है। उनके उपन्यासों के काफ़ी अनुवाद विदेशी भाषाओं में हो चुके हैं। उनकी रचनाओं ने विदेशों में स्थाति प्राप्त करके भारत के मस्तक की ऊंचा किया। हम पहले बता चुके हैं मुन्शी प्रमचन्द ने आरम्भ में कई वर्षों तक उर्दू में ही लिखा और उनकी प्रथम कृति पहले उर्दू में ही लिखी गई और बाद में उन्होंने हिन्दी रूपान्तर किया। इसके बाद जो उपन्यास हिन्दी में लिखे उनका भी रूपान्तर हिन्दी से किया। इस प्रकार उनकी सारी रचनाएँ उर्दू में उपलब्ध हैं। उर्दू संसार उनकी अपने साहित्य की प्रथम पंक्ति में स्थान देता है। मुन्शी प्रमचन्द ने प्रथम "धेवा", बाजारे हुस्न, और तीसरा निर्मला उपन्यास लिखा। बाजारे हुस्न, का ही अनुवाद सेवासदन है। इसी प्रकार "गीश वाफ़ियत", "बाग़ान हस्ती", "मैदान बन्त" आदि उपन्यास हैं जिनका हिन्दी में रूपान्तर किया गया है। मुन्शी प्रमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों में ज्याज़ फ़तहपुरी, ख़ाजा हसन निजामी, सज्जाद हैदर यलदम, राशिद उलख़री साम अहमद, सुलतान हैदर जोश, मजून ग़ोरखपुरी हैं।

नियाज़ फ़तहपुरी का साहित्यिक जीवन "मख़जन" और "नहाद" से आरम्भ किया। इसके उपरान्त साहित्यिक बालीचनात्मक मासिक पत्र "निगार" प्रकाशित किया। साहित्य में उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने धर्म के मामले में ऐसे विचार प्रकट कर दिये जिनसे उनके सहधर्मियों में ~~हल्ला~~ रोष की लहर दौड़ गई, परन्तु नियाज़ की किसी की परवाह नहीं थी। उन्होंने "निगारिस्तान", ज़मातिस्तान, तारीदन्द्गीतैन, फ़रासत ख़लीद, ज़ब्बाले भाषा आदि पुस्तकें लिखी। इन पुस्तकों की पढ़ने से विदित होता है कि नियाज़ ने इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शन, हिन्दी साहित्य, यौन

मनीविज्ञान वादि कोई दौत्र नहीं छोड़ा । नियाज ने अपने उपन्यासों में उच्च वर्ग के जीवन पर ही दृष्टि डाली है, निम्न वर्ग के पात्रों को कोई स्थान नहीं दिया जबकि मुन्शी प्रमचन्द निम्न वर्ग के विशेषतः मजदूर तथा कुणकों के हिमायती थे । यही कारण है कि मुन्शी प्रमचन्द का साहित्य मजदूरों, किसानों का साहित्य है। यह जनतावादी लेखक थे । नियाज ने घटनाओं पर अधिक ध्यान न देकर भावनाओं चरित्र चित्रण पर अधिक ध्यान दिया है। उन्होंने पात्रों के मनीविज्ञानिक विश्लेषण की बड़ी चतुरता से निभाया है। नियाज ने नागरिक जीवन का ही चित्रण किया है। ग्रामीण जीवन से विमुख रहे हैं। प्रमचन्द ने जन-साधारण को ही अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। यही कारण है कि मुन्शी प्रमचन्द यथार्थवादी होगये हैं। उनके उपन्यासों में घटनाओं की वास्तविकता अधिक है।

मीलाना राशिदुल सेरी ने कथा-साहित्य में मौलवी नजीर अहमद की परम्परा निभाई । मीलाना ने साहित्य के दौत्र में करुणा के माध्यम से मुस्लिम समाज की उत्पीड़ित नारियों की दशा के सुधार के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी । फिर भी मीलाना को किसी प्रकार क्रांतिकारी नहीं कहा जा सकता है। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति अपनाने वाली की उन्होंने अपने उपन्यासों में हमेशा दुर्दशा दिखाई है। इस प्रकार पाठकों की इस रास्ते पर चलने से रोकता है। स्त्रियों की शिक्षा को वे आवश्यक समझते हैं किन्तु उसका उद्देश्य स्त्रियों का मानसिक और बौद्धिक ही है। उन्हें स्त्री शिक्षा के वाथिक पहलू से कोई दिलचस्पी नहीं है। इसी प्रकार बच्चों की शिक्षा में भी वे सुधारवादी पहलू पर जोर देते हैं। क्रांतिकारी पहलू पर नहीं । उनकी शैली में भावुकता की अपील नजीर अहमद से अधिक है। स्त्रियों की बोल्डता के मुहावरे घड़ल्ले से प्रयोग करते हैं तथा दृश्य वर्णन में अपनी भाषा का कम प्रयोग तथा पात्रों की भाषा द्वारा उनके कथोपकथन के ही दौरान वातावरण की सृष्टि कर देते हैं।

प्रेमचन्द युग के कथाकारों तथा आलोचकों में मजनु गौरखपुरी का स्थान काफी ऊँचा है। मजनु की चेतना बुनियादी तौर पर व्यक्तिवादी है और वे इकबाल के बड़े प्रशंसक हैं। उनकी इकबाल पर लिखी हुई आलोचना पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। फिर भी उनकी दृष्टि संसार के दुख दर्द और जीवन संघर्ष की पूरी तरह देखती है। भावनाओं के चित्रण में उन्हें टामस हाडी ने बहुत प्रभावित किया है। अपने उपन्यास भी लिखे हैं, परन्तु कहानियाँ ही अधिक लिखी हैं। उनकी कहानियाँ दुखान्त होती हैं। व्यक्तिवाद, अपने दुख में भी सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता की ओर इंगित करता है। मजनु के उपन्यास "ज़ेदी का हथ" "सौगवार शबाब" और "परियम मजदलानी" काफी प्रसिद्ध हैं। मजनु साहब बुनियादी तौर पर बुद्धिवादी हैं किन्तु उनकी उपचेतना उनको सदैव भावनात्मकता की ओर ले जाती है। वस्तुतः मजनु की चेतना में बुद्धि और भावना का इतना सुन्दर समन्वय है जो उनकी सृजनात्मक तथा आलोचनात्मक दोनों प्रकार की कृतियों को एक अत्यन्त स्वस्थ एवं संतुलित दृष्टिकोण देता है। उनकी दृष्टि तीक्ष्ण है तथा पैठ गहरी। कभी कभी वे परम्परा से हटते हुए दिखाई देते हैं किन्तु उनका आधार इतना दृढ़ होता है कि उनमें नहीं परम्परा को जन्म देने की भी क्षमता होती है।

इस युग की मुख्य प्रवृत्तियाँ :

इस युग से पूर्व उर्दू के उपन्यासकारों में रोमान्टिक कल्पना की अधिकता थी। नजीर अहमद, शरद, रुसवा आदि उपन्यासकारों ने रोमान्स के द्वारा जनता का मनोरंजन किया परन्तु इस युग में मुन्शी प्रेमचंद तियाज फतेहपुरी, सज्जाद हaidर यलदम, मजनु गौरखपुरी ने भारतीय समाज

की समस्याओं का प्रतिपादन भी किया । इससे पूर्व के उपन्यासकारों ने मानव जीवन के अध्ययन पर ध्यान नहीं दिया वरन घटनाओं का ही समावेश किया है परन्तु इस युग में चरित्र चित्रण पर ही विशेष ध्यान दिया गया है।

प्रमचन्द ने उर्दू में उपन्यास लिखकर उपन्यास की स्वच्छन्द कल्पना की तीव्र उड़ान से निकाल कर उसमें यथार्थ का पुट दिया तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से मानव जीवन की जटिल समस्याओं का विश्लेषण किया गया । इस युग में प्रगतिशीलता का मार्ग भी अपनाया गया जिसने समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराया । मुन्शी प्रमचन्द ने सन् १९०१ से १९१६ तक पहले उर्दू में ही लिखा । वे उर्दू कथाकार के रूप में ही हमारे समक्ष आते हैं। सन् १९१६ से ही उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया । इस समय में वे उर्दू में ही लिखते रहे उनकी धारणा हिन्दी में बानि की ओर बिल्कुल नहीं थी कुछ परिस्थितियाँ ही उनके सामने ऐसी थी जिसने कि उनकी हिन्दी की ओर ला खड़ा किया । इस युग में मुन्शी प्रमचन्द ही ऐसे हैं जिन्होंने अकेले ही इस युग का प्रतिनिधित्व किया । उर्दू में उन्होंने अकेले ही समाजवादी यथार्थवाद की प्रतिष्ठापना की और अन्त तक इसको भली प्रकार निभाया । उर्दू में कोई अन्य नवीन प्रवृत्ति लेकर यह उर्दू के हिन्दी लेखक नहीं चला । उर्दू के अन्य लेखकों ने वही प्राचीन पद्धति रोमान्टिक की , मनोवैज्ञानिक की या दार्शनिक मनोविज्ञान की लेकर ही रचना होने लगी । मुन्शी प्रमचन्द को छोड़ कर और कोई इस युग में उर्दू कथा साहित्य में उपन्यासकार वास्तव में नहीं कहा जा सकता क्योंकि मुन्शी प्रमचन्द के अतिरिक्त सभी लेखकों ने कहानी लिखने में अपनी मनोवृत्ति लगा दी । यह वास्तव में कहानियों का ही युग था या तो उर्दू के लेखक लम्बी लम्बी कहानियाँ लिख रहे थे या छोटी छोटी कहा-

नियों की रचना कर रहे थे अर्थात् नावेलिट ही लिख रहे थे । केवल उपन्यासकार की श्रेणी में मुन्शी प्रेमचन्द ही अकेले आते हैं।

मुंशी प्रेमचन्द को छोड़कर सभी लेखक जो अधिकांश कहानियां लिखते रहे उन्होंने वही प्राचीन परिपाटी रोमान्टिक को ही अपनाया । मुन्शी प्रेमचन्द ही ऐसे अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने सामाजिक यथार्थवाद को अपनाया ।

इस युग में मुंशी प्रेमचन्द को छोड़कर शेष उर्दू लेखकों ने अधिकांश कहानियां ही लिखी हैं। उपन्यास तो कस ही लिखे गये हैं। मुंशी प्रेमचन्द ने ही उर्दू में उपन्यास लिखे । शेष सभी ने कहानियां लिखीं । यह युग वास्तव में कहानियों का युग रहा । अधिकांश इस काल में उर्दू के लेखक या तो लम्बी कहानियां लिखते थे जिनको हम नावेल न कहकर नावेलिट की संज्ञा दे सकते हैं। इस युग के प्रेमचन्द ही, अकेले उपन्यासकार हैं जो कि प्रारंभ से अन्त तक अपनी कला में सामाजिक यथार्थवादी के नाम से विख्यात हैं। अन्य उर्दू के कथाकारों ने व्यक्तिगत जीवन पर ही अधिक बल दिया है। समाज के पहलू पर अधिक ध्यान नहीं दिया । व्यक्तिगत जीवन ही उनके उपन्यासों का उद्देश्य रहा है। व्यक्ति का समाज में जीवन कैसा है, किस प्रकार वह अपने जीवन को ठीक कर सकता है तथा उसके मनोवैज्ञानिक क्या कारण हैं ? यही उनका उद्देश्य था अर्थात् व्यक्ति का महत्त्व समाज से अधिक है, यही इनका उद्देश्य रहा है। इसके साथ ही साथ दोनों में रोमान्टिक , दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति मिलती है। हिन्दी में सामाजिक यथार्थवादी परम्परा पहली आगई और उर्दू में सन् १९३६ के पश्चात् आई । उर्दू में हम उसे दार्शनिक या मनो-वैज्ञानिक यथार्थवाद के नाम से कह सकते हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग : सन् १९३६ से

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में वादशीन्मुख यथार्थवादी प्रेमचंद युग के अन्तर्गत ही नूतन प्रवृत्तियां जाग्रत होने लगी थीं। "परस", सुनीता, और चित्रलेखा" प्रेमचंद परम्परा से परे नितान्त नवीन दशा का संकेत करने वाली कृतियां हैं। प्रेमचन्दोत्तर युग में यह कृतियां प्रबल पड़ती गईं। हृद्य की दशकों की कवि में निर्मित उपन्यासों में वर्ण्य-विषय, कथा-शिल्प, चरित्रांकन जीवनानुभूति वादि की दृष्टि से अपूर्व विविधता, विचित्रता एवं अनैक्यता आई। इस युग के प्रत्येक प्रतिभाधान उपन्यासकार की प्रेरणा, प्रवृत्ति, कला साधना भिन्न है। यद्यपि हमारा उपन्यास-साहित्य इस युग में प्रत्येक प्रवृत्ति के प्रौढतम स्वरूप की प्राप्ति नहीं कर सका तो भी उसकी वैविध्य पूर्ण उपलब्धियों का निषेध नहीं किया जा सकता।

सन् १९३६ में हिन्दी का सर्वोत्तम सामाजिक उपन्यास "गोदान" प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व सन् १९३५ में जैनद्र का प्रसिद्ध उपन्यास "सुनीता" एक नवीन प्रवृत्ति लेकर आया था। प्रेमचन्द ने वास्तव जात की प्रमुख रूप देकर मनुष्य के सामाजिक संघर्ष का रूप दिखाया। सुनीता में मनुष्य के अन्तर्जात के विश्लेषण की उपन्यास में स्थान मिला।

प्रेमचन्द के उपरान्त उनकी प्रवर्तित परम्परा में शिक्षितता आई। "गोदान" परवर्ती उपन्यासकारों का मार्गदर्शक नहीं बन सका। प्रेमचन्द ने अपने जीवन के चालीस वर्षों के निरंतर अध्ययन और क्षुब्ध के कारण जन-जीवन का वास्तविक रूप समझने की जी दायता प्राप्त की थी वह परवर्ती उपन्यासकारों में नहीं थी। १९३५ से १९४० तक के प्रायः सभी उपन्यास प्रेमचंद

की परम्परा के विकास का परिचय नहीं देते । परन्तु उनमें अन्तर्निरीक्षण की प्रवृत्ति बढ़ती गई । सामाजिक कुरीतियों तथा मनुष्य की जो दुर्वाचन्य काम कर रही हैं उसकी कौर सेरकों का ध्यान बाधूष्ट हुआ । भगवतीचरण वर्मा का "तीन वर्ण", जैन्द्र का "केल्याणी", सियारामशरणगुप्त का "नारी" तथा उषादेवी मित्रा का "धन का मौल" आदि में स्त्री पुरुष सम्बन्ध के विविध पक्षों का सामाजिक तथा मानसिक वातावरण में विश्लेषण किया गया है। इन सब बातों के होते हुए भी हमें गृहस्थ जीवन की विविध समस्याओं का निरूपण है और न नारी जीवन का गहरा अध्ययन । केवल कुछ बाह्य धरातल का ही रूप रिया गया है।

इन पाँच हः वर्णों में कौई उल्लेखनीय प्रवृत्ति नहीं है। अग्रिम का मैत्रि-मण्डल बनने तथा त्याग के पश्चात् से द्वितीय महासुद्ध के आरम्भ तक की भारत की राष्ट्रीय उथल पुथल कम महत्व की नहीं है। उस समय राष्ट्रीय समस्याओं पर राधिकाशरण प्रसाद सिंह के "राम रहीम" में हिन्दू सुस्त्रिम समस्या पर और "गान्धी टोपी" में बहिष्तात्त्विक आन्ति पर दो तीन साधारण श्रेणी के उपन्यास लिखे गये ।

यह दुग भारत के इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। अधिनायकवादी देशों का सुझौन्माद और अन्ततः पराजय, परमाणु एवं उद्भूत बमों का आविष्कार तथा उनके प्रयोग की विभीषिका, पराधीन देशों की जागरूकता एवं स्वतन्त्रता अन्तरिक्षगामी यन्त्रों के आविष्कार एवं प्रयोग आदि ने विश्व की जीवन रीति, विचारधारा, एवं मानव-मूल्यों में आन्तिवादी परिवर्तन कर दिये । इन सबका प्रभाव विश्व साहित्य पर पड़ा ।

एधर भारत में भी सन् १९४२ का भारत छोड़ो बान्दोलन तथा शासकों द्वारा उत्तका वपन, बंगाल का क्कात, हिन्दू सुशलिम दंगे, सन् ४७ में देश का विभाजन, साम्प्रदायिक उन्माद, शरणार्थी समस्या, पञ्चवर्षीय विकास योजनाएँ, जमींदारी उन्मूलन, ग्राम पंचायत राज आदि ने इस देश के राजनैतिक, जातिक, सामाजिक ढांचे को बहुत कुछ बदल दिया है तथा नौक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। कर- पार पैगमार्ह, प्रष्टाचार आदि के कारण सामान्य जन समुदाय की सुखीयें बढ़ती गई हैं। संशुक्ति स्वायत्तों के लिए प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता का विषय फैलाया गया है और परस्पर शौणार्द के स्थान पर सन्देश एवं मनोमालिन्य बढ़ा है। शिक्षा के प्रकार एवं शिक्षित युक्त युवतियों के हुत्कार मिलने के वचरों ने प्रेम प्रसंगों के लिए मार्ग उन्मुक्त कर दिया है। बम्बई कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में फिल्म व्यसथाय ने एक नवीन दुनियाँ बसा दी है और पुत्रीपतियों के ववैध प्रेम एवं यौन सुप्ति के लिए नवीन मार्ग खोल दिया है। उपर्युक्त परिवर्तित परिस्थितियों का हिन्दी उपन्यास पर प्रभाव पड़ा है और कथानक निर्माण में अधिकधिक विषय वैचित्र्य दिखाई पड़ा है। जीवन के विभिन्न पौत्रों से उपकरण स्रज किये गये हैं और हिन्दी उपन्यास समय के साथ चलने का आकांक्षी रहा है।

इस युग की मूल प्रवृत्तियाँ :

इस युग में उपन्यासों की बाढ़ सी आगई , वह विषय और अभिव्यक्त में नयी नयी धारायें लाईं । पुराने लेखकों ने अधिक प्रांढ़ता प्राप्त की और कई लेखक अपनी प्रतिमा लेकर सामने आये । कतः स्पष्ट विशेषताएँ और निश्चित धारणाएँ लिये कई धारायें निकल पड़ी ।

शान्तिवादी उपन्यास :

इस युग में एक नवीन धारा शान्तिवादी उपन्यासों की है जिसका भी गणेश यादव ने किया। यादव का जीवन ही शान्तिपूर्ण था। जिस समय उनके उपन्यास लिखे गये वह समय भी भारतीय इतिहास में महान् आन्दोलन का था। यादव का "दादा कामरेड", "देखोड़ी", और पार्टी कामरेड " शान्तिकारियों के व्यक्तित्व और जीवन से सम्बन्धित हैं। कथानक कहीं कहीं क्यार्य के ठोस घरातल को छोड़कर रोमान्स के वातावरण में चला जाता है। वनत का "चढ़े चढ़ती धूम" भी इसी श्रेणी का उपन्यास है। हलाचन्द्र के "निर्वासित" और फ़ैन्ड के "सुनीता" शान्तिकारी व्यक्तित्व का उत्प्रेक्षमात्र है। भारत की राजनैतिक दलानों का स्वरूप दिखाने वाले उपन्यासों में मगमती चरण वर्मा का "टैडे मेडे रास्ते", गुरुदत्त का "स्वाधीनता के पथ पर" वादि के नाम उत्प्रेक्षनीय है। इस युग में वैज्ञानिक विचारधारा की प्रभुता ने वस्तुओं का देखने तथा पढ़ने की नवीन दृष्टि दी। मायुक्ता के स्थान पर बाँझता बढ़ी है। बाधुनिक उपन्यासों में सामाजिक क्यार्य की विरुद्धता की प्रत्यक्षा कर मानवीय दुःख, वेदना एवं बाधरण की उत्पत्ति के कारणों का अन्वेषण करने की प्रवृत्ति प्रबल हुई और मनुष्य के मानवीय पदों का अधिकार उद्घाटन हुआ। "बासिरी दाव" की "चमेली" पति के अत्याचार से ऊँकर भाग निकलती है और परिस्थिति के प्रभाव में अनेक व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करती है। "नदी के द्वीप" का "भुवन" विवाह को सबकु सामाजिक बंधन के रूप में स्वीकार नहीं करता और ऐसा भी अपनी प्रवृत्ति का ही अनुसरण करती है। इसी प्रकार "गिरती दीवारें", "नर्म रात", "जहाज का फेरी" वादि बाधुनिक उपन्यासों में सामाजिक बंधनों के विरुद्ध विद्रोह की प्रवृत्ति पाई जाती है।

साप्ताहिक समस्यासूचक उपन्यास :

समाज से सम्बन्धित उपन्यासों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी के उपन्यासों में लेखकों का दृष्टिकोण समस्या विश्लेषण का है। दूसरी श्रेणी में अधिक यथार्थवादी दृष्टि से समाज के वास्तविक रूप को देखने का प्रयास किया गया है। उनमें भी समस्याओं का विश्लेषण हुआ है परन्तु प्रथम श्रेणी के उपन्यासों की तरह नहीं।

समस्या प्रधान उपन्यासों में नारी ही सबसे बड़ा और मुख्य विषय रही। मगवती प्रसाद बाजपेयी ने 'निर्भ्रम' में पारिवारिक शिष्टा के कारण युक्त युक्तियों में जाने वाले यौन बाधपूर्ण की विषमताओं को दिखाया। 'अबल मेरा कोई', 'नये मोड़' आदि में स्त्री की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के परिणामों और उसके प्रति पुरुष के दृष्टिकोण को दिखाया गया है। 'गुनाहों का पैगाम' और 'तट के बंधन' में वे ही पुरानी वैवाहिक समस्याएँ हैं। 'तट के बंधन' को बाधे दर्जन कहानियों के वैवाहिक जीवन की पीड़ाओं तथा कई मनसनीदार घटनाओं से बोधित बनाया गया है। चतुरसेन का 'अपराजिता' साप्ताहिक बंधन और पति के व्यवहारों के विरुद्ध सत्याग्रह करने वाली एक युवती की कथा है जिसमें यथार्थ से अधिक कल्पना का छुट है। जैनन्द्र जी के अन्तिम तीन उपन्यास 'एतदा', 'विरत' और 'व्यतीत' में भी प्रेम की उत्तमताओं की व्याख्या है पर उनका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। 'वाहिनी दास' में शराब, जुआ, और सट्टेबाजी में नष्ट हुए एक व्यक्तिका फतन दिखाया गया है। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में थोड़ी बहुत स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति मिलती है पर उनमें जीवन के कठोर यथार्थों का रूप मिलेगा या उद्दिग्ध है।

सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास :

साहित्य में सामाजिक यथार्थ की समझने की दृष्टि भिन्न २ रही है। वेसा उसका सामान्य कथं तो यही है कि समाज जैसा ही वेसा ही उसका चित्रण किया जाय क्योंकि समाज के एक या कनेक वर्गों का यथार्थवादी दृष्टिकोण से मूल्यांकन करना । इनमें सेक कितो पिलेन समस्या की ओर संकेत नहीं करते, उनको सुलझाने का प्रयत्न करना वावरक नहीं समझते । निरपेक्ष भाव से समाज का निरीक्षण करना और उसे समझना ही उनका ध्येय है। प्रतिपाद्य विषय और कला की दृष्टि से ये उपन्यास सबसे महत्वपूर्ण हैं और इनकी सम्भावनाएं अधिक हैं। समाज में एक ओर स्वार्थ, उर्प्या, द्वेष, दुरुप्रता, मलिनता, कासुकता, कनेतिकता, मानसिक कूठाये, दयनीय जीवन स्थितियां, सामाजिक आर्थिक बेजाम्य, कुरीतियां आदि हैं तो दुसरी ओर ऐसे सहायुति , करुणा, परीकार, स्वार्थ त्याग मैत्री आदि सद्गुण भी हैं। समाज के यथार्थ चित्रण में इन द्विविध परिस्थितियों का कनेन ही सद्ग तथा स्वाभाविक है। जीवन के छाया प्रकाश दोनों ही के समुचित संयोग वास्तविक जीवन अभिव्यधित हैं। सन् १९४० के पश्चात् के अल्पकाल में निकले हुए ऐसे उपन्यास साहित्य की सम्भावनाओं के प्रति निर्देश करते हैं। वेबल का "उल्का", यक्षपाल का "मनुष्य के रूप", नागार्जुन के "नयी पौध", रतिनाथ की चाची, मगवती प्रसाद के "बलते बलते" और "यथार्थ से आगे", उणादेवी मित्रा का "नष्ट नीड", अरुण के "गिरती दीवारें" और गर्म रक्त "आदि देशकाल का विषय की दृष्टि से छोटी बड़ी सीमाओं के अन्दर समाज के यथार्थ और आन्मोय अन्वयन प्रस्तुत करते हैं। इनमें प्रत्येक की अपनी अपनी सीमाएं हैं।

नागार्जुन ने प्रेमचन्द से बढ़कर कव्ययत्न की गहनता है लेकिन एहानुसृति नहीं, जितनी कि प्रेमचन्द ने। रणिय राय का "विष्णु मठ", बंगाल के काल का सजीव इतिहास है। उनका "घरीबा" मध्यमवर्गीय जीवन पर प्रकाश डालता है। इसमें विद्यार्थी जीवन की कुछ अस्पष्ट झलक भी मिलती है।

रणिय राय का "विष्णु मठ", उदयकिरण मठ का "सागर लहरों की मनुष्य", रेणु का "मैला बचल" और "पत्नी परिक्षा", इनमें कथानक माध्यम मात्र है, मनोविज्ञान साधन मात्र है। उस आधार पर वे जिस लोक का निर्माण करते हैं, उसमें वास्तविक जीवन है। आधुनिक इसी उपन्यासों का सा निर्मेल कव्ययत्न इनमें उपलब्ध है। नागार्जुन ने कथा-प्रवाह पर ध्यान दिया है, अतः वातावरण सीमित होबाना स्वाभाविक है। "विष्णु मठ" में काल पीड़ित बंगाल की जनता का दयनीय जीवन सजीव हो उठा है। "सागर लहरों की मनुष्य" नरसीदा के महुँओं के समग्र जीवन का परिचय देता है। "मैला बचल" और "पत्नी परिक्षा" बिहार के ग्रामीण जीवन की हमारे सम्मुख सा कर लड़ा कर देते हैं।

इन सभी उपन्यासों की यह विशेषता है कि ये उपन्यास रोमान्टिक प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त हैं। ये उपन्यास अक्रान्ति हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लिखे गये हैं। हमारे स्वातन्त्र्योपरान्त लिखित उपन्यास हमारे सेतकों की बौद्धिक स्वतन्त्रता प्राप्ति का भी परिचय देते हैं। इनमें कृषिपति वर्ग के प्रति निमग्न प्रकार की प्रवृत्ति प्रबल रही, यशपाल, नागार्जुन, लक्ष्मणराय आदि इसी वर्ग के उपन्यासकार हैं। दूसरे प्रकार के यथार्थवादी सेतक यह विचार कर बैठे कि मानव गुण दोषों से निर्मित है। यह "पासे" का सोना नहीं बचधातु का मिश्रण है। जीवन सागर की विशालता के साथ से त्वल भी है जहाँ सागर का पानी आकर रुक गया है और सूँ सूँ रहा है। जीवन बूँ

कलट, धुँस-धुँस, गर्दनभार, कीकड़ और दल दल से कटा पड़ा है। और वृत्ति जीवन में कहीं का बाधिय है कतख उनका चित्रण ही समाज का यथार्थ चित्रण है। नवीन मनोविज्ञान के प्रकाश में इन कलाकारों ने यह भी अनुभव किया है कि मनुष्य के बाहर ही उलकनों का अपरिमित विस्तार नहीं, उसके अन्तर में भी बेगिनती स्तर हैं जिनके नीचे ऐसी ऐसी कठोरी कन्दरायें हैं जिनकी कभीभी मात्र कंपा देने की क्षमता है। कीकड़ एवं बदबूदार पल की और व्यस्र होने वाले लेखकों में उषेन्द्र नाथ वरुण हैं। साम्यवादी लेखकों और उन लेखकों में जتنا अंतर है कि साम्यवादी लेखक साम्यवादी चरमों से ही सब कुछ देखते हैं जबकि उस कौटि के लेखक केवल जीवन से ही प्रेरणा लेते हैं। निम्न, कधीमुल, कुण्ठाग्रस्त विपन्न जीवन के चित्रण की रुचि दोनों में ही प्रबल होने के कारण ऊपर से अधिक अन्तर नहीं जान पड़ता। धर के आधुनिक लेखक रणिय राघव, उदय शंकर भट्ट, विष्णु भ्राकर, रेणु, वनत, राजेन्द्र यादव की दृष्टि प्रधान-तया सामाजिक विवृतियों के चित्रण की ओर ही अधिक रहती है।”

आधुनिक यथार्थवादी लेखकों की भावना है कि “उन नन्हीं नन्हीं निरर्थक सफसीलों और उन वर्कचन, वृत्ति हेय पात्रों को - जिसे हमारा जीवन पथ कटा पड़ा है और जिन्हें वास्तव में लगी हमारी दृष्टि देखकर भी नहीं बेस पाती- उस दैनिक जीवन को दल दल से निकाल, बना सवार बाफ़ी वन्यमनस्क, उदासीन वाँसों के सामने उस प्रकार रखना कि बाप उन्हें बरबस देखे और उनका नोटिस लेने की विवशता ही जाये, कम कष्ट साध्य नहीं। सूर्य की प्रव्यक्ता का दिग्दर्शन कराने वाली दूरबीन के मुकाबिले

१- गिरती दीवारें - भूमिका से उद्धृत

में नन्हीं नन्हीं, वदूख वकिन्न कीटाणुओं को दिखाने वाले हृदयीन कम महत्व-पूर्ण और बरस उपादेय नहीं।" इस प्रकार यथार्थवादी छोटी छोटी घटनाओं से ही उच्च व्यक्तियों के व्यौरा दर्शन के द्वारा ही जीवन का यथार्थ चित्रण करने का प्रयास करता है। यथार्थ चित्रण की यह पद्धति पर्याप्त जागरूकता से कलात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखती है।

स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित उपन्यास :

यथार्थवाद का ज्ञान विकास और प्रसार होने पर भी रोमान्स का प्रभाव स्कन्ध समाप्त नहीं हुआ। इस बीसवीं सदी के उपरांत में भी उसकी धारा चल रही है। भले ही लीज ह्युस में हौ। बरस का प्रथम उपन्यास सितारों का खेल" और हाल का लिखित उपन्यास "बड़ी बड़ी बातें", धृन्दावन लाल वर्मा का "कभी न कभी", जेनेन्द्र का "व्यक्ति" बादि में रोमान्स का प्रभाव काफी है। उनकी कथाएँ किसी रोमान्टिक कथा से तारी नहीं बढ़ पाई हैं। सामाजिक पुच्छभूमि के बाधार पर लिखित होने पर भी उनके कथानक और पात्रों में सामाजिक यथार्थ का अभाव है। "व्यक्ति" में जयन्त का अपने परिवार में जाने वाली सभी स्त्रियों से प्रेम करना, सुमिता का किताबों में कोई-सी नोट रखकर भेजना, कुमार का विलायत जाते समय अपनी कजिन को संयोग से रास्ते में जाने वाले जयन्त को सौंपना बादि कितनी ही जर्मन घटनाएँ हैं जिनको जेनेन्द्र के मनोविज्ञान के बहाने भी मान्यता नहीं दी जा सकती है। बीसवीं सदी के इस उपरांत में मनोविज्ञान के नाम पर भी यथार्थ का गला घोटना उपन्यास में उक्ति नहीं है। वस्तुतः "व्यक्ति" का मनोविज्ञान एक दार्शनिक सैल की व्यक्तिगत मासुक्ता की मार्गच्युत कल्पना ही है, जो स्वच्छन्दता-

१- गिरती दीवारें- भूमिका से उद्धृत

वाद के निकट तक पहुँच जाती है। वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास विशेषतः "विराटा की पदिमनी" से रीमान्स से प्रभावित है। "विराटा की पदिमनी" में ऐतिहासिकता केवल आधार मात्र है। वह पूर्णतया स्वच्छन्दता-वादी है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

प्रेमचन्द के पश्चात् के उपन्यासों की सबसे प्रधान मौलिक प्रवृत्ति मनोविज्ञान है। जेनेन्द्र ने जिस प्रवृत्ति को छोड़ दिया उसे स्वाचन्द्र जोशी ने कब्ज लिया और अपने बाधे दर्जन उपन्यासों में मनुष्य की मानसिक ग्रन्थियों के वर्णन का प्रयत्न किया। "प्ये की रानी" में लेखक के जाने कजाने में फँसे सम्बन्धी सिद्धान्तों का विश्लेषण हुआ है। "संन्यासी" प्रेत और जाया, निर्वासित, मुद्रित पथ "वादि में कुण्ठित शैगिरा काचित्त से उत्पन्न सुषकों के असाधारण जीवन की विश्लेषण है। मानव की उन्नतिशील सामाजिक सभ्यता की अपेक्षा उसके अन्तर्लोक में बाध की बाधिकातीन मनोवृत्तियों और दुर्बलताओं का प्रकटन ही उनका मुख्य विषय है। जोशी जो अवचेन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए अन्तर्तर और अन्तर्तम जीवन की व्याख्या करने का दावा करते हैं। "मानव जीवन में समाज का जो स्थान है, उसकी अपेक्षा करने के कारण उनके पात्र असाधारण बन गये हैं।"

उन पात्रों से मानसिक तादात्म्य पाना सम्भव है।

१- प्रेत और जाया - मुद्रिका - पृ० ६

२- जोशी स्वयं अपने पात्रों को असाधारण मानते हैं। - देखिए- प्रेत और जाया - मुद्रिका पृ० ६

पुरुष के मूलों और जहाज का पंथी वैयक्तिक मनोभावों का सामाजिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण किया गया है। जोशी जी अपने उपन्यासों के वैयक्तिक एवं पारिवारिक विषयों को विराट् देशीय क्रान्तियों की मूल प्रेरणा के रूप में देखने की व्यर्थता करते हैं।

जैय का शैलर : एक जीवनी वैयक्तिक मनो-विज्ञान के व्यक्त क्षेत्र में सर्वोत्तम है। इस उपन्यास में मनुष्य की अन्तरात्मा में जीवन के सार्वभौम में ही उदित होकर विकसित होने वाले मय, यौन वासना तथा लक्ष का क्रमबद्ध विकास दिखाया गया है। विषय और शैली की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट उपन्यास है। जैय के "नदी के द्वीप" में एक स्त्री स्त्री के दमित प्रेम के परिणामों का विश्लेषण है जो एक पति को छोड़कर दूसरे को स्वीकार करती है, परन्तु पुत्र से उन्हें से किसी भी न बनकर एक तीसरे पुरुष की बनी रहती है।

जेन्द्र ने "सुखदा", "व्यक्ति" एवं "विपत्ति" में फिर मनोविज्ञान से काम लिया है। किन्तु इन उपन्यासों से सात होता है कि वे अपने अधिक पार्श्विक योग्य हैं कि उनमें मनोविज्ञान का वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा।

मनोविश्लेषण- का सर्वाधिक प्रचलित सिद्धान्त मनोग्रन्थियों या कुण्ठाओं का है। इसके अनुसार हमारी दमित भावनाएँ या वासनाएँ ग्रन्थि बनकर अवचेतन मन में जा बैठती हैं और परीक्षा रूप से हमारे स्वभाव, चरित्र, चरित्र-व्यक्तियों एवं वाचरण को प्रभावित करती हैं। अवचेतन मन में छिपी हुई ये ग्रन्थियाँ हमारे मन में अकारण ईर्ष्या, ईर्ष्या

क्रीप, कृष्णा, निराशा, मलिनता आदि अनेकानेक भावनाएँ उदीप्त किया जाती हैं जिन्हे कारण मानसिक स्वास्थ्य तो जाता है, उसका संतुलन बिगड़ जाता है। काम-प्रवृत्ति को रोक रक्कर उसकी अभिव्यक्ति को उचित मार्ग देकर उसे मध्यता प्रदान कर मनुष्य उसकी शक्ति को साहित्य, संस्कृति, सम्यक्ता आदि के विकास की ओर लगा सकता है किन्तु कृष्ण काम प्रवृत्ति जब झूठा या मनो-ग्रन्थि बनकर अवचेतन मन में प्रविष्ट हो जाती है तो वह जीवन के स्वास्थ्य को नष्ट कर देती है। इन सिद्धान्तों के द्वारा मानव के अध्ययन की एक नवीन प्रणाली जिसे मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली कहते हैं, जन्म हुआ ।

सर्वप्रथम जैनेन्द्र ने व्यक्ति के अन्तर्मन को अपने उप-न्यास का मूलधार बनाया और व्यक्ति के अन्तर्मन को विस्तृत कर देने वाली भावनाओं का सूक्ष्मांश सूक्ष्म बन किया । "परल" में बुद्धि और अंतर् का संघर्ष चित्रित किया गया है। जैनेन्द्र बड़े ही सज्जन एवं उत्तम कलाकार हैं। मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों की ही आधार बनाकर उपन्यास रचना का सर्वप्रथम प्रयास स्वामीजी का है। उन्होंने विभिन्न प्रकार की झूठाओं से ग्रस्त मानव की अहमन्यता, आत्मरति, मानसिक विकृति, बौद्धिक यंत्रणा, संशय, सन्देह, आत्मपहिन आदि का अपने उपन्यासों में वर्णन किया है। उनके अधिकांश पात्र मानसिक रोगों के शिकार हैं। अतएव वे मानव मस्तिष्क पर प्रत्येक क्षण फटने वाले अतृप्त संस्कारों और उनके उद्भूत विचार तरंगों को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। बाह्य दृष्टियों से वृत्ति सामान्य दीखने वाली बातें भी जल में फँकी झकड़ी के समान मन में विचार लहरियाँ उठा देती हैं जिनका व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। "शेखर" तथा "नदी के तीरे" दोनों ही उपन्यासों में आत्म-निष्ठता का परम गम्भीर रूप देखने को मिलता है। यादव ने "पावस" और

‘प्रायः’ दोनों से ही प्रेरणा ली है। उनकी कृतियों में भी जार्जिक तथा यौन कुण्ठाओं की विकृतियाँ प्रदर्शित की गई हैं। यशपाल जी रचना प्रक्रिया में सामाजिक व्याख्यादी अधिक हैं मनीषिरेणु से कम !

काम-वासना :

सुसु के उपन्यासों में यौन नैतिकता के सम्बन्ध में भी एक नूतन उदार दृष्टि विकसित हुई है। काम-प्रवृत्ति को ही केवल प्रेरणाधार मान लेने के कारण सुसु की के समान भोग को भी एक दुर्विचार प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है और काम-वर्जताओं से उद्भूत, वैचारिक, वाचरणिक विकृतियों के विश्लेषण की और जाग्रत बढ़ता गया। प्रसन्न प्रवृत्ति-जन्य मानवीय मूल्यों की परितुष्टि से प्रेरित यौन-स्खलन को उस रूप में चित्रित करने का प्रयास हुआ है कि स्वस्थ व्यक्तित्व के प्रति घृणा न उत्पन्न होकर संवेदना उत्पन्न हो। दूसरी ओर पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए व्यभिचार की बाज्यताओं को भी अत्यन्त निर्लिप्त भाव से चित्रित कर कर दिखाने का प्रयत्न हुआ है कि यदि मन निर्मल है तो उस नरवर शरीर के व्यभिचार से मानवीय महिमा घट नहीं सकती। कीचड़ में रहते हुए भी कमल के समान व्यक्तित्व महिमान्वित हो सकता है। साम्यवादी लेखकों ने यह चित्रित करने का प्रयत्न किया कि धनी और सम्पन्न लोग नारी तन को वैसे ही लरीप लेते हैं जैसे कि वस्तु को। धन के पिछान के बावजूद कमल भावनाओं अथवा नैतिकता को कोई स्थान नहीं। तात्पर्य यह है कि समाज से दूषित बलग करके प्रेम तथा यौन समस्या को देखने का प्रयत्न हुआ और प्रवृत्ति एवं परिस्थिति को ऐसी सन्निवार्यता में चित्रित किया जाने लगा कि यौन दुर्जलताओं एवं स्खलन के प्रति घृणा के स्थान पर हमारी सहानुभूति ही प्राप्त हो।

नारी पुरुष समस्याको ही आधार बनाकर उप-
न्यास लिखने वालों में जैन-सर्वप्रथम हैं। "सुनीता" में उन्होंने एक नारी तथा
पुरुष की क्षुब्ध काम-वासना को दार्शनिक आवरण में प्रस्तुत किया। मग-
धतीपरण वर्मा ने "वासिरी दास" में वार्तिक परिच्छिन्नियों से विवश नारी
के शरीर चित्र का मार्मिक चित्रण किया है। बलचन्द्र जोशी ने यौन रुस्स
एवं विकृतियों को कुण्ठाग्रस्त मन के प्रेरणा स्वरूप चित्रित करने का प्रयत्न किया।
"वणक" के उपन्यासों में भी काम कुण्ठाओं के चित्र भरे पड़े हैं। मानव जीवन में
यौन दुर्बलताएँ एवं विकृतियाँ भरी पड़ी हैं। मूल के समान भोग भी एक मूल
प्रभुति है और ऊपर से अत्यधिक सरत, सज्जन एवं सदाचारी दिखाने पड़ने
वाले व्यक्ति के भीतर भी नारी रूप से प्रति पड़ी उत्कंठा होती है। जो पुरुष
का आकर्षण चिह्न है और यही एक दूसरे की सबसे पड़ी दुर्बलता है। जो:
आज के उपन्यासकार जिन सुप्त व्योमों के द्वारा काम वेष्टावों, कुण्ठाओं,
विकृतियों आदि का वर्णन करते हैं उनकी यथार्थता से एन्कार नहीं दिया
जा सकता।

ऐतिहासिक उपन्यास :

प्रेमचन्द काल में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रारम्भ
हो चुका था, परन्तु उनमें कल्पना का ही अधिक स्थान था। इस काल में कई
प्रौढ़ ऐतिहासिक निकले हैं।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने विगत अध्ययन
एवं अपार पाण्डित्य से जो उपन्यास लिखे हैं उसमें उन्होंने अपनी ईमानदारी
से ऐतिहासिक तथ्यों को कटा का रूप दिया है। 'शिलासेन', 'संस्कृत', 'पाली',
'वर्षा', 'प्राकृत', 'सिन्धु' आदि भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों तथा अन्य ऐति-

साहित्यिक प्रमाणों के संक्षिप्त प्रमाणों के आधार पर लिखित उनके उपन्यासों में कल्पना अधिक नहीं है, जिससे प्रायः ऐतिहासिक उपन्यास न होकर साहित्यिक उपन्यास हो गये हैं। 'सिंह सेनापति', 'जय बाँधेय', 'मधुर स्वान', 'जीने के लिए' और 'राजस्थानी रहिवास' ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं और बहुत कुछ सामाजिक भी हैं।

बुन्वावन लाल वर्मा के उपन्यास भी ऐतिहासिक हैं। उनके उपन्यास चौदहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक विभिन्न विषयों के आधार पर लिखित हैं। 'गढ़ कुन्डार' जो सन् १९२६ में ही प्रकाशित हो चुका था चौदहवीं सदी के बुन्देलों और सैनाओं के पारम्परिक संघर्षों का वातावरण प्रस्तुत करता है। 'विराटा की फमिनी', 'सुभाषिण्य' और 'कवनार' में काफी कल्पना है, जो कल्पितियों पर आधारित है। 'फाँसी की रानी', 'मृगयमी', 'छेवाटि' और 'वहिल्याबाई' में वर्मा जी के एतिहासकार और उपन्यासकार में होड़ सी लगी है। वर्मा जी फर्न बुन्देलखण्ड और बास पास के जीवन और संस्कृति तक सीमित रहते हैं, परन्तु उनकी इला सजीवकृत होती है। जहाँ वे बाहर जाने का प्रयत्न करते हैं वहाँ ऐतिहासिक तथ्यों से थोड़ा खिंच कर रोमान्स का हाथ फेड़ लेते हैं।

बाबाय चतुरेन शास्त्री ने 'वैशाली की नगरवधू' तथा 'वैद्य रत्नामः' में कई धार्मिक, दार्शनिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों से अवगत होकर छोटी छोटी बातों के बावजूद से काल का वातावरण उठाकर अतीत के वैद्य-कारमय रंगमंच में ऊपर उधर टांच लगाकर देता हैं। प्राकृतिक भारत की राज-नैतिक परिस्थिति का तथा दूसरे में वेद पूर्वकालीन भारत के नर, नाग, देव, दैत्य, दानव आदि का व्यवहार है और उस समय की प्रचलित धार्मिक वाचार

विचारों की व्याख्या है। पशुस्तेन का "सौमनाथ" सौमनाथ के मंदिर पर महमूद गजनी के वाङ्मय का इतिहास प्रस्तुत करता है। "धर्मपुत्र" में हिन्दू मुस्लिम दोनों का वातावरण स्पष्ट किया है। "गौली" जो साप्ताहिक हिन्दु-स्तान में सन् १९५६ में प्रकाशित हुआ, निकट भूत है सम्बन्धित है, जमें घटनाओं की विचित्रता, पात्रों की अस्वामाविक्ता, दोनों के बीच पारस्परिक सहयोग का उभाव है।

प्राचीन भारत से सम्बन्धित उपन्यासों में रमिय राष्ट्र के उपन्यास भी उत्कृष्ट है। उनके मोहनजीदड़ो संस्कृति का विलुप्त अध्ययन करने वाले "सुर्ज" का टीला " में कार्य पूर्व भारत के कुछ गणों के नाश, राज सत्ता के उदय और विभिन्न वातियों के संघर्षों का चित्रण है। "चोपर" में राजकी के काल के द्रासोन्मुख सामन्तवाद का और कथेर का जुगल में महा-भारत के पश्चात् के समाज का विवेचन है। उनके प्रतिदान "देवकी का बेटा" यशोधरा जीत गई, रत्ना की बात "वादि औपन्यासिक जीवनियों में तत्कालीन समाज के वातावरण को ही महत्व दिया गया है।

गोविन्द वल्लभ फा के "वमिताप", लम्बुन, नूरजहाँ वादि ऐसे सफल उपन्यास हैं जिनमें औपन्यासिक कला स्वतन्त्र विकास का अवसर पाती है।

कुछ विशेष प्रकारों के उपन्यास :

इन विविध धाराओं के चलते हुए भी, कुछ उच्च कौटि के लेखकों ने विषय और शैली में नवीन प्रयोग किए। डा० हजारो

प्रभाव द्विवेदी का 'बाण मट्ट की जात्मस्था', रणिय राघव का 'वीर की भूल' और धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोंडा' ऐसी ही उत्कृष्टतम रचनाएँ हैं। 'बाणमट्ट की जात्मस्था' शुद्ध साहित्यिक उपन्यास है। द्विवेदी जो के बाणभनात्मक ग्रन्थों में जो पांडित्य मरा पड़ा है, वही उसमें भी मिलता है। उसमें बाणमट्ट के काल की सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने 'कादम्बरी', 'रजपति बापि' का अवलम्बन किया है। यह हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक उत्कृष्ट देन है। 'सूरज का सातवां घोंडा' में नवीन एवं प्राचीन शैलियों का समन्वय है। उसमें काल्पनिक कथाओं को कुछ पात्रों द्वारा मिलाया गया है। यह शैली पति प्राचीन है और 'सूरज रजनी पति', 'हेमाचल', 'हेमाचल बापि' में प्रयुक्त हुई है। परन्तु भारती का विषय नवीन है। समाज की समस्याओं से सम्बन्धित है। 'वीर की भूल' विभिन्न व्यक्तियों द्वारा कही गई कथाओं का संग्रह है। विशिष्ट शैली के उपन्यासों में राहुल सांकृत्यायन के 'विस्मृति के गर्म में' का नाम भी लिया जा सकता है। उसकी कथा फिर देश से सम्बन्धित है। विषय में तथ्यों और कल्पना का सुन्दर मिश्रण है।

शिल्प प्रयोग :

उपन्यास मुख्यतः जीवन चित्रण की रूपरेखा है। समय के परिवर्तन के साथ ही साथ जीवन के नवीन रूप, नवीन समस्याएँ सामने आती हैं। इन नूतन जीवन तथ्यों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यकार को नूतन साहित्य शैलियाँ भी बनानी पड़ती हैं। शैली सम्बन्धी नवीन प्रयोग साहित्यकार की जीवनानुभूति के स्वरूप पर निर्भर होते हैं। इन प्रयोगों को भी हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। जहाँ कथन शैली का समन्वय प्रदर्शन ही

क्षीणित है, वस्तव्य वस्तु में कोई नवीनता या गहराई नहीं है वही प्रयोग मात्र प्रयोग के लिए ही सम्पन्न होना चाहिए। परन्तु जहाँ भावानुभूति की तीव्रता वस्तव्य वस्तु की नवीनता, जीवन सत्यों की गम्भीरता की समिप्यवित के प्रयास में नवीन रूप विधान अनिवार्य हो जाता है वही पारम्परिक साहित्यिक प्रयोग सम्पन्न होना चाहिए। इस प्रकार के प्रयोग किसी न किसी रूप में साहित्यकार में होते हैं।

प्रेमचन्द ने हिन्दी में एक विस्तृत चित्रण पर कार्य कारण ईश्वर से युक्त सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित कथा के द्वारा जीवन की उसकी सम्पूर्णता में चित्रित करने का प्रयास किया था। संपूर्ण प्रेमचन्द युग उसी परम्परा पर चलता रहा। इस युग के प्रायः जैत में जैन्ट ने अपनी कृतियों में किंचित् नूतन रूप विधान का जन्म दिया। उनकी कृतियों में कहानी पर अधिक आग्रह न होकर चरित्र के मनोविश्लेषण पर ही अपनी गहन दृष्टि का परिचय दिया। यही कारण है कि उनकी कहानी की ईश्वर टूटी हुई है। “कहीं एक साधारण भाव की वर्णन से जुला दिया है, कहीं बारीकी से काम लिया है, कहीं हल्की धीमी कलम से, और कहीं तीव्रता और मागती है उनके विचार से” “यह सब कुछ चित्र में लुकी और कसलीफ लाने के ही हो जाता है। यह कम ज्यादा रंग की सोपा रंग विरंगन में और स्वाद देती है।” स्टाचन्द्र जी में मनोविश्लेषण की प्रधानता है किन्तु रूप विधान की दृष्टि से इन दोनों लेखकों में कोई विशेष परिवर्तन का प्रयोग नहीं है। कहानी सुनाना इनका चाहे मुख्य उद्देश्य न हो किन्तु इनका चरित्र विश्लेषण कार्य-

१- परल कीभूमिका

२- ..

कारण श्रुतला से बाबह होकर कहानी के रूप से ही अभिव्यक्ति हुआ है। यह कहानी वास्तविक जीवन व्यापार की उतनी नहीं है जितनी व्यक्ति के अन्तर्गत की।

शेखर : एक जीवनी - हिन्दी उपन्यास में एक नवीन प्रयोग लेकर आया। यह पुरानी परम्परा से नितान्त भिन्न है बड़ी कारण है कि इसकी किताबों ने उपन्यास मानने से इनकार कर दिया। जब शेखर : एक जीवनी " के लेखक ने इस पर पूछा गया तो उन्होंने गम्भीर एँकर कहा " एट एज क प्रीक्स डॉक्यूमेंट "। वाक्य की ध्वनि स्पष्ट है।

मूल्यापान् विचार निधि होते हुए भी यह उपन्यास की धेणी में नहीं गिना जात। इसका रूप शिल्प नितान्त नवीन है। इसमें न तो कोई पूर्वनिर्धारित रूप व्यवस्थित है कथा प्रसंग है, न वर्णनों में कोई कार्य कारण श्रुतला इसका कारण यह है कि इसमें अतिरिक्त चटना प्रसंग अपना विचार तरंग बढ़ी ही विचित्र परिस्थिति में शेखर के मन में उदित हुए हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में दूसरा अभिनव प्रयोग है। १० हजारी प्रसाद त्रिवेदी की कृति " बाण भट्ट की वास्तव कथा " इसका प्रमाण है। " कथामुक्त " तथा " उपसंहार " में " दीदी " की कहानी कहकर लेखक ने बड़े कौशल से यह प्रेम उत्पन्न करने का प्रयास किया है कि वह कथा के कबला स्वयं बाणभट्ट है। यह ऐतिहासिक उपन्यास ऐक्यकृति की कथा वास्तविकता के ढंग पर लिखा गया है। ऊपर से देखने पर शैली में " कादम्बरी " की शैली की शान्तरूपता है- इसमें भी रूप का रंग का, शोभा का, सौंदर्य का जम्बर वर्णन किया गया है। कथा वास्तविकता शैली पर निर्भर है। भावों

के उतार चढ़ाव के साथ यहाँ भाषा भी रूप रंग बदलती चली है। जहाँ उसके (कथाकार) भावावेग की गति तीव्र होती है वहाँ वह जमकर लिखता है, परन्तु जहाँ दुःख का आवेग बढ़ जाता है वहाँ उसकी ऐसी छिपिल हो जाती है। संस्कृत साहित्य में यह शैली एक दम उपरिचित है। एक बात और है कादम्बरी में प्रेम की अभिव्यक्ति में एक प्रकार की वृत्त भावना है। उस कथा में सर्वत्र प्रेम की भावना गूढ़ और वदुस्त भाव से प्रकट हुई है। फिर कादम्बरी में प्रेम के जिन सारोहिक विकारों का- वसुमावों का हावों का , छावों का व्यत्यय वर्तकारों का प्राचुर्य है । उनके स्थान में कथा में मानस विकारों का- लज्जा का अवहित्था का, जड़िमा का- अधिक प्राचुर्य है। " इस प्रकार इस उपन्यास में कथा - वाक्यावली की प्राचीन भारतीय शैली तथा चरित्र वर्णन की वाधु-निकतम शैली का वपूर्ण संयोग है।

गत कुछ वर्षों में इन कृतियों में परिवर्तित परि-स्थितियों तथा नवीन जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए नूतन विशारद-कौशल अपनाये गये हैं जिनके द्वारा हिन्दी उपन्यास में इन षोड़े से वर्षों में वसुतपूर्ण रूप-वैविध्य दिखाई पड़ा है। इनमें धर्मवीर भारती कृत "सुरज का सातवाँ घोड़ा", शिवप्रसाद मिश्र तद्र कृत "बहती गंगा", गिरधर गोपाल कृत "बाँदनी के तण्डुल", सर्वेश्वरदास सक्सेना का "सोया हुआ जल", प्रभाकर मास्ते का "परन्तु", "फणीश्वर नाथ रेणु" का "मैला जूँबल" तथा "पत्नी परिकथा" और नागार्जुन के "बाबा बटेसर नाथ" अधिक प्रसिद्ध हैं। "सुरज का सातवाँ घोड़ा" में कई कहानियों को सम्मिश्रित करके बड़े कौशल से उपन्यास का रूप दे दिया गया है। प्रभाकर मास्ते का

१- बाणभट्ट की वाक्य कथा - उपरीहार

परन्तु 'भी' के शुद्ध प्रयोगवादी उपन्यास है। फणीश्वर नाथ रेणु के दोनों उपन्यास हैं, 'मेला वाँचल' तथा 'पत्नी परिकथा' उच्च कोटि के वाचस्पतिक उपन्यास हैं। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों 'बलवनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पीपल', तथा 'बाबा बटेसर नाथ' में जादू की चिन्मयी का यथार्थ चित्रण किया है और इन सभी में भाषा सम्बन्धी नये प्रयोग हैं, किन्तु बाबा बटेसर नाथ शिल्प की दृष्टि से एक नितान्त नूतन प्रयोग है। इन प्रयोगों के अतिरिक्त चिन्मयी उपन्यास क्षेत्र में और भी अनेक कृतियाँ छद्म दिखाई पड़ी हैं, जिनमें शिल्पात्मक विचित्रता लाने का प्रयास है। नरेश मेहता का 'हूबते मच्छुल' तथा वसुन्धरा नागर का 'सेठ वाकिमल' भी नवीन प्रयोग हैं।

उर्दू साहित्यकारों ने इस युग में अधिक उपन्यास नहीं लिखे। इस युग में उर्दू कथाकारों ने अधिकतर कहानियाँ ही लिखी हैं। वल्लभ नदीम कासिमी, एहादत हसन मन्टो, कृष्ण चन्दर, खाना वल्लभ वल्लभ, राजेन्द्र सिंह बेदी, आमत हुसनाई, लदीजा मस्तूर, राजरा फलर आदि जाते हैं।

वल्लभ नदीम की रचनाओं की विशेषता यथार्थवाद है। पहले वे कथा की तरह विश्व अस्तमवाद के आदर्श से प्रेरित होते थे किन्तु धीरे धीरे उनका विश्वास इस यथार्थवादी दर्शन में नहीं रहा और वे सामाजिक ढाँचे के आर्थिक परिवर्तन में विश्वास करने लगे हैं फिर भी वे कान्ति का प्रचार करते हुए कभी नहीं दिखाई देते। हाँ कहीं कहीं पर कुछ-कियाँ अवश्य लेते हैं। वे उपदेश नहीं देते, यथार्थ जीवन का कोई भी उपाय कर लेते कौण से दिखा देते हैं कि पाठक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है।

यथार्थवाद और उसके वंशर क्षिपा हुआ व्यंग्य ब्रह्मद नदीय कासियो के कथा-साहित्य की वैयक्तिकता तो प्रदान करता ही है साथ ही अपने उद्देश्य में वह अन्य शैलियों की अपेक्षा सफ़स भी अधिक होता है।

उर्दू कथा-साहित्य की जिन लेखकों ने यथार्थवाद की चरम सीमा तक पहुँचाया है उनमें महादत्त खान मन्टी का नाम प्रमुख है। उनकी बहुत सी कहानियाँ अद्वितीय होकर हिन्दी की पत्र पत्रिकाओं में स्थान पा चुकी हैं। कहानियाँ लिखना मन्टी ने बहुत पहले से ही आरम्भ कर दिया था। कई वर्षों बाद वे बम्बई आये और फिल्मों के लिए कहानियाँ लिखते रहे। बम्बई का वातावरण ही उनकी रचना का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। यह ध्यान देने की बात है कि जिस समय मन्टी ने लिखना आरम्भ किया उस समय उर्दू कथा साहित्य वादशीवाद से ताने न बंध सका। यह वादशीवाद भी प्रान्तिकारी नहीं थी वरन् नजीर अहमद और राशिद उल्लेखी की परंपरा में वैयक्तिक व्यवहार के सुधार की ओर प्रयत्नशील था। प्रेमचन्द वादि के प्रभाव से उसमें सामाजिक चेतना के बँसुर भी फूट रहे थे। परन्तु मन्टी ने इसके आगे की पंक्ति सामाजिक क्रान्ति की दृष्टि की एक दम से फसांग कर तत्कालीन यूरोपीय साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की जो फायद के मनोविज्ञान और सैंगिक मनोविकारों के अध्ययन पर आधारित था। इस प्रकार के साहित्य का यूरोप तक में गालियों द्वारा स्वागत हो रहा था फिर भारत में इसकी आलोचना स्वाभाविक ही थी। आलोचकों ने मन्टी के "नग्नवाद" की खूब खोला। मन्टी ने इसकी कोई धिन्ता नहीं की और अविरल समाज के यौन मनोविकारों के सङ्केत हुए पाप को लीककर दिताते रहे। "कासी शतवार" "बू", "धुआँ", "ठण्ठा गोश्त" वादि में तत्कालीन यूरोपीय लेखकों की भाँति किसी दार्ष्टिक अनुप्राति का विस्तृत वर्णन नहीं, बल्कि गठी हुई और श्रुतावद्ध

वनुप्रतियों के पूरे चित्र मौजूद हैं जो किसी गहरे सामाजिक अभाव को और इंगित करते हैं और उसे दूर करने के लिए वापन्वित भी करते हैं। मन्टो की कहानियाँ के दो दर्जे संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। शिल्पकता की दृष्टि से मन्टो की कहानियाँ बेजोड़ हैं। कुछ वासीचक उनके नग्नवाद पर प्रहार करते हैं। जो लोग उन्हें केवल वस्वस्य प्रवृत्तियों का कलाकार कहते हैं वे भी वहीर भिन्नक मानते हैं कि कलात्मक प्रौढ़ता और दोषहीन गठन की दृष्टि से मन्टो की कहानियाँ अब तक के समस्त उर्दू के कथाकारों की कहानियाँ से आगे बढ़ी हुई हैं।

कृष्णचन्दर भी उस युग के सर्वोत्कृष्ट कथाकार हैं। वापने उपन्यासों की अपेक्षा कहानियाँ ही अधिक लिखी हैं। उनके कई उपन्यास तथा कहानियाँ अनुदित होकर हिन्दी में भी आगये हैं। हिन्दी के अतिरिक्त क्रेजी, रूसी, चीनी, पोलिश, ऐरिथन आदि भाषाओं में भी उनकी रचनाओं के अनुवाद हो चुके हैं। उनकी रचनाओं की संख्या लगभग तीन दर्जे है। "अन्धदाता", "तिलस्मि त्याग", "सुबह होती है, बावन पय, स्वार्थ किस वादि उनकी उत्तम रचनार्थ हैं। कृष्णचन्दर की कहानियों को आरम्भ से ही प्रशंसा हुई है। "हुमायूँ", "अबकी दुनियाँ", "आदि के सम्पादकों ने उनकी कहानियाँ और लेखों की बहुत उछाला और उन्हें इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे राजनीति की अपेक्षा अपना सारा जीवन साहित्य सेवा में लगा दें। कृष्णचन्दर ने यही किया।

कृष्णचन्दर की कला की दो विशेषताएँ हैं- एक तो उनकी पारंपरिक दृष्टि एवं आगच्छक बौद्धिकता और दूसरी उनकी विशिष्ट बौद्धिकता का प्रश्न है, कृष्णचन्दर को कथा-क्षेत्र में वही स्थान

प्राप्त है, जो क्ली सरदार जाफरी की काव्य के क्षेत्र में। उनकी कहानियों की सर्जनात्मक दृष्टि विशाल भी है और स्पष्ट भी। वे जागृक समाजवादी हैं, साथ ही उनका परिप्रेक्ष्य भी इतना विस्तृत है जितना और किसी कथाकार का नहीं हुआ। वे काश्मीर के तख्तरवालों का भी उतना ही सजीव वर्णन करते हैं, जितना बंगला के जंगल पीढ़ियों और तलंगाना के विद्रोही किसानों का। बम्बई के कित्ने एकदंतों का भी दयनीय जीवन का चित्रांकन किया है तो वर्मा के पार्थ पर लड़ी हुई क्षत्रीको सैनिकों तथा कोरियार्ड युद्ध में बाहुति देती हुई बोरिंगनालों का भी उनकी प्रत्यक्ष कहानी है। सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता बिल्ला बिल्ला कर चील्लो पिटार्ड देती है। इसलिए उनकी आकर्षक शैली की वजह से उनको रचनाओं में एकरसता का दोष उतने प्रकार का जाता है जैसे नजोर वल्लभ की कहानियों में व्यावहारिक आविर्भाव से पैदा हो गया है। जहां तक टैक्नीक का सम्बन्ध है निःसन्देह उर्दू कथा साहित्य की कुरानचन्दर की यह घेन बहुत बड़ी है। उन्होंने उर्दू में पछती बार कहानियां लिखी जिनमें कथानक नहीं होता केवल शुद्ध चित्रों का एक समूह देकर वे एक प्रत्यक्ष वातावरण बना देते हैं और ऐसा प्रश्न चिह्न पैदा कर देते हैं, जो वाप ही अपना उत्तर बन जाते हैं। संक्षेप में कुरानचन्दर की टैक्नीक रिपीटिंग की टैक्नीक है।

इसी युग में स्वाजा वल्लभ अव्वाध वाते हैं। उनकी लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके कहानो संग्रहों में "एक लड़की", "जाफरान के फूल", "पांच में फूल", "बेबरा उबाला", "कहते हैं जिसको इश्क" आदि हैं। स्वाजा वल्लभ अव्वाध बुनियादी स्तर पर पत्रकार हैं। पत्रकारिता की विशेषता यह है किेशन में आकर्षण तो ही परन्तु प्रत्यक्ष

घात जांच तीत कर उस प्रकार कही गई हो कि कहीं से उसमें गलती का पत्तू न निकल सके । त्याजा साहब के सर्जित साहित्य में भी यही बात दिखाई देती है। उनकी कहानियों में लौकिक जागरूकता उनके भावात्मक वादों को दबाती ही दिखाई देती है। साथ ही साथ उनकी कहानियों में लौकिक जागरूकता, व्याख्या और बालीचना का कंठ भी काफी रहता है। फिर भी घात का सराफ विचारों का बाहुल्य और वर्णन की सजीवता त्याजा साहब के साहित्य की एक निज का रंग प्रदान कर देता है।

वर्तमान उर्दू कलाकारों में कुशनचन्दर के परचातू राजेन्द्र सिंह बेदी का नाम प्रमुख है। उपन्यासकार की दृष्टि से आप कहानी-कार अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। आपके तीन कहानी संग्रह "दाना-बी-घाम", "गुलन" और कोसबली तथा एकांकी संग्रह "सात सेत" प्रकाशित हो चुके हैं। राजेन्द्रसिंह बेदी की कहानियों की कला में बुद्धि और भावना का सही मनमौलिक सामंजस्य दिखाई देता है जो कुशनचन्दर की कहानियों में है। कुशनचन्दर की एक विशेषता तो यह है कि उन्होंने अपनी कितनी ही व्यस्तता की बावजूद बहुत अधिक लिखा और बेदी विचार तीन, बार संग्रह ही दे सके । दूसरी बात जो कुशनचन्दर के यहां दिखाई देती है वह उनकी नई कथानक होने रिपोसिज की टेक्नीक है, जिससे बेदी प्रभावित तो अधिक हुए हैं किन्तु पूर्णतः वास्तवता नहीं कर सके । बेदी की कहानियों के कथानक घटना प्रधान होने की बावजूद भावना-प्रधान कथ्य होते हैं फिर भी हमें संदेह नहीं कि उनकी कहानियां कथानक होने नहीं कही जा सकती । बेदी की दृष्टि कुशनचन्दर की बावजूद फैली है और वे सामाजिकता के अतिरिक्त वैयक्तिक जीवन के परिप्रदय में भी मार्मिक कहानियां लिखते हैं। उनकी कहानियों में "हम दोऊ", "गर्म कीट" "पान शाय"

बहुत ही अधिक प्रसिद्ध है। "पान शाय" की दृष्टि सामाजिक अधिक है।
 गर्म कीट" की विशेषता उनकी कोमलता है जो कि वार्षिक विमलता की
 पृष्ठभूमि में खूब उभरती है। इसके विपरीत हम दीर्घ" की कोमलता और
 कठुणात्मकता के जीवन मृत्यु संघर्ष की पृष्ठभूमि में उभरती है, जिसका
 वार्षिक प्रशनों से कोई लगाव नहीं। वेदी चाहे जिस दीर्घ की चुने, वे हमारी
 अनुभूतियों की कोई ऐसी रंग न देते हैं जिसका दुःख पहले सीया हुआ होता
 है किन्तु उनके स्पर्श से पूर्णतः जाग्रत हो जाता है।

उर्दू में मन्दी के बाद यथार्थवादी कथा-साहित्य में
 अस्मत् युगताई का नाम जाता है। वे उर्दू की सर्वश्रेष्ठ हास्य लेखक स्वर्गीय
 खजोम बेग युगताई की छोटी बहन हैं। अस्मत् युगताई की कहानियाँ जब पहले
 पक्ष प्रकाशित हुईं तो उन पर चर्चाओं और वे गालियों की बाजार प्रारम्भ
 हो गई। इसका कारण था कि उन्होंने स्त्रियों के सैंगिक मनोविकारों का
 सजीव और वास्तविक चित्रण करना प्रारम्भ किया। जैसा हर एक यथार्थ-
 वादी साहित्यकार की अभ्युत्थ होता है। अस्मत् की भी यह सुनना पड़ा कि
 उनका साहित्य बहुत गंदा होता है। उनके मनोविकारों के चित्रण, उनके
 स्त्रियों के सहसंगिकता के शुद्ध चित्र इतनी विपरीतता के साथ प्रस्तुत किये
 जाते थे तथा मनुष्य आवश्यक करते थे कि कोई स्त्री भी ऐसा लिख सकती है।
 धीरे धीरे ये आपत्तियाँ अपने आप समाप्त हो गयीं और अस्मत् ने भी शादी
 होने के बाद मनोवैज्ञानिक सत्य की इतनी प्रशंसा से नहीं दिया जैसे पहले
 देती थी। वास्तव में देखा जाय तो प्राथमिक उभार के पश्चात् अस्मत् युगताई
 की रचनाओं में प्रौढ़ता कभी नहीं है। मुखसिम घराना- विशेषतः निम्न
 मध्यम वर्ग के मुखसिम घरानों के परदा और रीति रिवाजों से छुटे हुए वाता-
 वरण में स्त्रियों की जो दशा होती है, उसके कठुणात्मक पहलू को अस्मत्

की कहानियाँ में अपनी मार्मिकता से उभारा गया है कि प्रस्तुत करते ही बनती है। उनकी कहानियाँ में हम ठाट के परदों के पोछे के चलन वाले कंकालों, पीछे पहरों, बुझी बुझी आँखों, लाँची के ठुस्तों और उसड़ी साँची को देख चुन सकते हैं। इन कहानियों में सदियों की यही छुटी जिवन्तगी को बाहर स्वच्छ हवा में लाने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि वस्त्र का सर्वात्मक एप्रोच केवल पुरुष चित्रण मात्र है। वे उपदेश नहीं देती, ऐसी आस्तविक पात्रों की दृष्टि नहीं करती जो उस वातावरण के विरोध विद्रोह करते दिखाई दें। यह दूसरी बात है कि पाठक के हृदय में विद्रोह ही भावना जाग्रत हो जाय। टेक्नीक की दृष्टि से वस्त्र की कहानियाँ बड़ी गठी हुई होती हैं। उनमें संवाद अपेक्षाकृत कम होते हैं। अधिकतर मनोविज्ञानिक, अध्ययन होता है, एकजून से भी मदद तो जाती है और इन दोनों की साफ़ी ऊँचे दर्जे पर पहुँचा दिया जाता है। कामत चुगताई का एक लघु उपन्यास "जिंदी" और एक उपन्यास "टेढ़ी कपड़ों की लकीर" प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हीं के अनुसृतार फिल्म लाइन में जाने के बाद से उनका पढ़ना सामना हट सा गया है।

उर्दू की नई कहानी लेखिकाओं में लखीजा मस्तूर और उनकी छोटी बहन राजरा मस्तूर काफी प्रसिद्ध हो चुकी हैं। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उन्होंने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया और अब तक लिखती आ रही हैं। भारत के विभाजन के पश्चात् यह परिवार लाहौर चला गया और यहाँ इनका विवाह भी जहीर बाबर के साथ हो गया। लखीजा की कहानियाँ में स्त्रियों की स्वाभाविकता और क्लेश भरपूर है। उन्होंने वस्त्र चुगताई की तरह सरम्भरावी और नैतिक मूल्यों पर कभी ऊँचे की चोट प्रहार नहीं किया, लेकिन उनके कलेज में भी एक सात तरह की चुप्पट है, जो पाठक पर अपना प्रभाव डालती ही है।

हिन्दी उर्दू कहानियों का बीसवीं सदी से पूर्व का रूप :

कहानी का प्राचीनतम रूप वेदों में मिलता है।

इसका सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद की संहिता में होता है। पुराणों और महाकाव्यों में वैदिक कहानियों के ही उपान्तर मिलते हैं परन्तु उपदेशात्मक लोक-कथाओं का वारम्भ विशेषतः महाकाव्यों से माना जाता है। रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों के बीच लोक प्रासंगिक कथाओं की कतारणा हुई है जो हमारे जीवन के सुख करने के साथ ही हमारे ऊपर में लोक तथ्यों की बड़ी मार्मिकता के साथ प्रतिष्ठित करती है। पुराणों की कहानियाँ भी उसी प्रकार की हैं जिनमें मानव की शुभा शुभ प्रवृत्तियों को विजय दितार गयी है। इस प्रकार मानव की साहित्य के लिए एक निश्चित उद्देश्य की ओर इंगित करना और भय की प्रेम की कान्ता महत्व देने का ही परम्परा की नींव उन पुराणों की ही डाली हुई है। समग्र भारतीय साहित्य में भारतीय जीवन तथा संस्कृति के अतुल्य हो वादस्वीयता कायीयान्त अत्युत्त है।

बीसवीं शताब्दी से पूर्व वेदिक काल के जातक ग्रन्थों में भी कहानियों के पण्डार मिलते हैं। इनमें मानव स्वभाव तथा राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की जो कल्प मिलती हैं वह कहानियों की कथा-वस्तु तथा कला के उज्ज्वल विकास की भीतक है। परवर्ती संस्कृत साहित्य में विस्तृत लोकप्रिय तथा कथा ग्रन्थ भी प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। इनमें वेताल पंचविंशतिला, शुकनृपति, पंचतन्त्र, रितीपदेश कावि महत्वपूर्ण हैं। यह कहानियाँ अतुरंजन करता हुई भी सहेतुक हो रही हैं। विस्तृत निरपेक्षा अतुरंजन न तो

भारतीय साहित्य की विशेषता रही और न भारतीय संस्कृति की । इन कहानियों में कोई न कोई उपदेश का तत्व लगा ही रहा । ग्यारहवीं शताब्दी से तेरहवीं शदी तक का समय हिन्दी का साहित्य के इतिहास में सामान्य है। जो सामग्री मिलती थी है वह विशुद्ध साहित्यिक नहीं है। प्राचीन कथाओं में घटनाएँ बिना किसी व्याघात के क्रमिक रूप से विकसित होती थी जबकि वर्तमान कहानी में घटनाओं का विन्यास कुछ टेढ़ा तथा चमत्कार पूर्ण हो जाता। आज का कहानीकार भाव और रचना की दृष्टि से चमत्कार का भी ध्यान रखता है।

बीसवीं शदी से पूर्व हिन्दी कहानियों में बहुत समय तक घटनाओं की ही प्रधानता रही । वारम्भ की कहानियाँ घटना-वैचित्र्य तथा चमत्कार के द्वारा बहुत काल तक लोगों का मनोरंजन करती रही । यद्यपि घटना प्रधान कहानियों के साथ साथ मार्मिकता से भरी कहानियाँ भी लिखी जाती रही फिर भी अधिकता और प्रधानता घटना और वैचित्र्य वाली कहानियों की ही है। इनके अन्तर्गत उपदेशात्मक कहानियाँ भी रचना होती थी, उनमें जीवन की किसी गम्भीर समस्या, नैतिक कष्ट या मार्मिक शिक्षा तथा दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन आदि रहता था । इनकी रचना का लक्ष्य मनोरंजन ही था । इनके द्वारा धर्म, कर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति का प्रयास किया है किन्तु वास्तविक दृष्टिकोण रखने वाली कहानीकार इनकी रचना करते थे । ये कहानियाँ मौलिक परम्परा के निकट अधिक हैं। उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से कम और कल्पनामय जीवन से अधिक है। उनमें तिलस्म जादू तथा कुतूहल का विशेष योग है। वाक्य की दृष्टि से अधिकतर कहानियाँ समीची हैं , उर्दू और फारसी का प्रभाव विद्यमान है।

उर्दू क्या साहित्य में बीसवीं सदी से पूर्व की कहानियाँ" कवच पत्र " नामक पत्रिका में प्रकाशित होती थीं । उनमें मुहम्मद, होली, शम्शिराज पर लिखे जाते थे और उर्दू पत्रिकाओं जैसे " मसजद " तमहुन " कलकशा , जमाना आदि में प्रकाशित होती थी । बीसवीं सदी से पूर्व फारस के सूफ़ी साहित्य पर भारतीय जैतवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। भारतवर्ष की कहानियों के तुल्य फारसी, अरबी, तुर्की आदि लोक भाषाओं में हुए हैं। हिन्दी का फारसी के इस रूप से जो मुसलमानों के भारत में आने के बाद विकसित हुआ, विशेष सम्बन्ध है। बीसवीं सदी के पूर्व उर्दू की कहानियाँ " फसाना " नाम से प्रसिद्ध थी और सभी रोमान्टिक थी जैसे " कलक सीता " , सीता मन्त्र " आदि जिनमें कल्पना का पुट अधिक है।

उस काल की हिन्दी उर्दू दोनों कहानियाँ घटना प्रधान थी उनमें कौतूहल अधिक था । प्रेमपरक कहानियाँ अधिक थी कभी कभी उनमें उपदेशात्मकता तथा धार्मिकता के स्पर्श भी हैं। दोनों भाषाओं की कहानियों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन से कम और काल्पनिक जीवन से अधिक है। उनमें तिलिश्म जादू जासूसी की हो अधिक प्रधानता है। दोनों में हिन्दू मुसलिम संस्कृतियों का प्रतिबिम्ब मिलता है। दोनों भाषाओं के कहानोकारों का मुख्य उद्देश्य पाठकों की मनोरंजन करना ही है अतः प्रेमपरक कहानियों की बहुतायत है। मुसलिम शासकों की भाषा फारसी और शासितों की भाषा संस्कृत में साहित्य के सब वर्गों का विकास पर्याप्त मात्रा में हुआ ।

उर्दू कहानियाँ प्रेमपरक अधिक हैं इसका कारण यह है कि उर्दू पर फारसी का अधिक प्रभाव है। इस कारण उसमें जासूसी, घटनाएं

वादि का होना स्वाभाविक है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों का आरम्भ उर्दू कहानियों की अपेक्षा कुछ बाद में होता है।

बीसवीं सदी में दोनों का रूप :

बीसवीं शताब्दी में जब हिन्दी कहानियों का नया युग पता तब भी आरम्भ में घटना प्रधान कहानियों की ही बहुतायत रही। इन घटना प्रधान कहानियों में घटनाएँ या वास्तव्य परिस्थितियाँ ही वस्तु-स्थिति की संवास्ति, नियमित या परिवर्तित करती थीं और घटनाओं का संयोग तथा घात प्रतिघात पात्रों के चरित्र में परिवर्तन उपस्थित करता था। घटना-वैचित्र्य, चमत्कार तथा कौतुहल के द्वारा कहानियाँ मनोरंजक बनारं जाती थी, यही उर्दू कहानियों का हाल था उसमें सनतनी घटना प्रस्तुत करके तथा किसी जासूसी घटना की दिक्कर पाठकों की विस्मय या चकाचाँय करना ही था। द्विवेदी युग में सुधार आन्दोलन भी घटना विधान द्वारा ही अधिकतर कहानियों में व्यंजित हुए हैं। प्रेमचंद, कौशिक, सुदर्शन, धाला-दच शर्मा आदि की द्विवेदी युग की आरम्भिक तथा अफिराँश कहानियाँ स्थूल घटनाओं की ही लेकर चलती हैं। प्रताप की आरम्भिक कहानियाँ घटना प्रधान हैं। यही बात श्रीदास्त, गुलेरी जी तथा अन्य कहानी लेखकों पर लागू होती है। द्विवेदी युग कहानियों का आरम्भिक काल था। इनकी कलात्मकता का सुष्मतर रूप आयावादी युग में ही विकसित हुआ।

आयावादी युग भावना प्रधान था। इस युग के लेखक अधिक भाव प्रवण तथा संवेदनशील थे। इस युग के लेखकों की दृष्टि बहिर्मुखी

न होकर वस्तुमूर्ती थी और उनको प्रतिमा के विश्लेषण को और उन्मुख हुई। फलतः काव्य में रहस्यवाद छाया और कहानी साहित्य में भावना प्रधान, रोमाण्टिक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से युक्त रचनाओं का युग प्रारम्भ हुआ। भावना प्रधान कहानियों के उन्मायक प्रसाद जो हो थे, बाद में बण्डी प्रसाद हृदयस्त तथा जैन्य जैसे लेखक भी इसी ओर जाये। कौस्तिक और सुदर्शन, प्रमचन्द स्कूल में परिगणित किए गये उसी प्रकार जैन्य वादि प्रसाद स्कूल के लेखक कहलाए। प्रातिवाद के वागमन ने कहानियों में स्थूल वस्तु विषय की स्थापना की। संघर्ष शोभा तथा विनामता के चित्र और उनके विरुद्ध ज़िहाद करते स्त्री पुरुष इन कहानियों के वस्तु विषय और पात्र बन गये। प्रतीकवाद में गांधीवाद तथा विनीता जो के प्रभाव स्वरूप वाध्यात्मिकता की तरह फिर घड़ी। हिन्दी ने कलात्मिकता के दर्शन हमें उन कहानियों में होते हैं जिनकी छायात्मक कहा जाता है और उन कहानियों में भी जिनकी सत्तात्मक कहते हैं। प्रमचन्द, प्रसाद, गुलरी, जैन्य, यशपात, कौय वादि ऐसे ही कुलत कथाकार हैं।

प्रमचन्द उर्दू कहानीकार के रूप में पहिचाने जाते हैं और बाद में हिन्दी कहानियों की ओर अग्रसर होते हैं। प्रमचन्द उर्दू कहानियों के दितित्व समर्पण जाते हैं। लेकिन उनको कहानियों में नई और एहज भाषा के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। प्रमचन्द की कहानी पुरानी दास्तखों की तरह फांत और अंगत की परिधि से बाहर नहीं निकलती। प्रमचन्द और उनके बाद आजम खुरशी, सुदर्शन और अली बघ्यास हुसैनी के यहां कला का

यही निष्पत्ति हमें मिलती है। प्रेमचन्द यथार्थवादी है। उनके पात्र जीवन में दृष्टि घुम जाते हैं। मुन्शी प्रेमचन्द की प्रायः सब कहानियाँ हिन्दी में कूट-पिप्त होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने उर्दू में १७८ कहानियाँ लिखी जो 'पुमाना' में निकली। 'दुनियाँ का सबसे कमील रत्न' इनकी प्रथम प्रसिद्ध कहानी थी।

'खार' की कहानियाँ में पहली बार वाष्पनिक कहानी के कुछ कला सम्बन्धी सत्व नजर आते हैं और कला के सर्वोपर्य पदा की वारम्भिक किरणें भी उन्हीं कहानियों के बीच ही कहीं लुपि मिलती हैं। कृष्णचन्दर ने कला के सर्वोपर्य पदा को अधिक उजागर करके अपने कई कव-गुण लुपा दिए हैं। कृष्णचन्दर अब साहित्यहीन कथा का प्रतीक बन चुके हैं। वेदी के यहाँ कला की वारोपियाँ तो थीं जो 'साज्वंती' में तनिक उजागर हुई हैं। साज्वंती कहानी में शुद्ध प्रेम प्रदर्शित किया गया है जिस प्रकार गुलेरी जी ने 'उत्तम कहा था' में किया है। 'वपन दुख मुझ दे दी' वेदी की चर्म धरी कहानी है। इसमें मुन्शी प्रेमचन्द की कला के दर्शन अधिक होते हैं।

हस्वत की कहानियाँ में नारी के परिवर्त्य रूप को देखा गया है। उन्हीं कहानियों में नारी के कृत्रिम, वस्त्राभाषिक और छिपित रूप ही अधिक मिलते हैं। वापकी तुलना हिन्दी कहानीकार जेन्द्र जीशी, पहाड़ी, रागेय राघव से की जा सकती है। मनःस्थिति का सूक्ष्म श्रिया क्लृपा, वातालाप या वर्णन द्वारा स्पष्ट करना इस वर्ग की कथानियों की रोचकता का रहस्य है। ये कहानियाँ प्रायः बुद्धिवादी एवं विचार

प्रधान होती है। मंटी में कहानी कला के सर्वाधिक तत्त्व मौजूद थे लेकिन दुर्भाग्य से मंटी की कीचड़ल प्रियता ने उसे नाटक के निकट कर दिया। यही कारण है कि मंटी की कहानियां में कला के विप्लव स्वरूप के दर्शन नहीं होते।

सन् १९३६ के बाद वाली कहानीकारों की यह पीढ़ी जिसका एक तट प्रेमचन्द से मिलता है और दूसरा मंटी से, यथार्थवाद के निकट रही है। यथार्थवाद के अन्तर्गत उन्होंने केवल मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक रूप का ही चित्रण किया है। उस पीढ़ी के लेखकों ने जीवन के व्य-
वस्थापकीय और उत्थिष्यवादी स्वरूप को नहीं पहचाना। यही कारण है कि इस पीढ़ी की कहानियां में रचनात्मक दृष्टि का अभाव लक्षित होता है। जैसे अहमद नदीम कासिमी ने उस पीढ़ी के अस्तित्व को रसा की है, परम्परावादी और फार्मुला कहानी द्वारा। उर्दू कहानी प्रतिस्था-
पित्व तो कर सकी परन्तु सम्प्रेषण नहीं बन सका। भुमताज शोरी, कुरुंगुल एन हैदर के बाद पहली बार संवेदना और रचनात्मक अनुभूति को विप्लव प्रतीकात्मक अभिव्यञ्जना "वेध महार" में प्रस्तुत करती है। कुरुंगुल एन हैदर की कहानियां रचानात्मक कहानी का सबसे अधिक उत्तम और प्रमुख द्योतिव है। उर्दू कहानी का नगरीकरण (अवनाशित) कुरुंगुल एन हैदर ने किया है। उनके पात्रों में नए शहरी जिन्दगी और शहरी समाज का एक विशिष्ट आर्थिक स्तर प्रकट होता है। "शोष के घर" की समस्त कहानियां आधुनिक इंसान की वास्तविकताओं की प्रतिनिधि हैं। रांगेय राख, प्रभाकर माचवे, जैनन्द मो वास्तविकता के अधिक निकट है। जैने हैदर ने ६ वर्ष पूर्व "पत-
फड़" की आवाज सितकर अपनी कला का एक और नया मोल का पत्थर

कायम किया है। " फाफर की वावाज़ " में हैदर की नायिका पहली बार बौद्धिकता से निकल कर पूरे सांस्कृतिक संस्कारों सहित भावनामय और वाचनामय रूप में सामने आती है। हैदर के हृदय निजीय नहीं, उनके पात्र एक विशेष बौद्धिक धरातल से शुरू होकर रचनात्मक कला तक की मंजिल पार करते हैं।

इस युग के कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द से अधिक प्रभावित हैं, क्योंकि मुन्शी प्रेमचन्द स्कूल की विशेषता सामयिक ऐतिहासिकता के अन्तर्गत है, भावुक या हास्यवर्णक चित्रण के भीतर नहीं। इन कहानियों की पृष्ठभूमि भी प्रत्यक्ष एवं सामाजिक यथार्थ है। इस स्कूल की कहानियों में जीवन की व्यापकता और विविधता अधिक है पर सूक्ष्मता एवं गहराई कम। यथार्थ के भीतर आदर्श का संकेत इस वर्ग की प्रमुख विशेषता है।

खाजा हसन निजामी की कहानियाँ धार्मिक, सामाजिक राजनीतिक हैं। उम्दाद की ताज की तुलना हम अमृतताल नागर और और भावती चरण वर्मा से कर सकते हैं। यह हास्य रस की कहानीकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुमताज खोरो ने उर्दू कहानी में प्रतीकात्मक शैली का प्रारम्भ किया। हिन्दी कहानीकारों में जैय स्कूल के अमलाकान्त वर्मा, प्रभाकर माधव, कर्मीर भारती का नाम ले सकते हैं। इनमें एक गहरी, सूक्ष्म भावुक की भी दृष्टि रहती है।

हन्तवार हुसैन नई पीढ़ी के कहानीकार हैं। उन्होंने कहानी को रचनाहीन अवस्था की भी क्षुब्ध कविता और अपनी राह के भी स्वयं तलाश करने की चेष्टा की। उन्हें सम्भवतः दूसरे कहानीकारों

की अपेक्षा उस वास्तविकता का अधिक एहसास है कि उर्दू कहानी कभी रचना निर्माण और कला की सोचा में नहीं आई है। "कंकरी" कहानियाँ इन्तजार के अविरत प्रयासों का प्रमाण हैं। इन्तजार ने कई प्रयोग किए हैं, कभी वह काव्य के ऊँचे सदियों के निकट जाने के लिए कहानी की हकालत के जीवन दर्शन का कुयायी बनाते हैं और कभी कहानी में सूफीवाद की प्रवृत्ति पैदा करने की कोशिश करते हैं। सूफीवाद का योग और दैत रचना के लिए प्रसव पीड़ा को अधिक बन जाता है। इस कारण उन्होंने सूफी-वाद की भी सहायता ली है। इन्तजार चुन के अवतिरिक्त जिन कहानीकारों में रचनात्मक प्रवृत्ति मिलती है, उनमें कमीरुद्दीन अकमद, रामलास, धेन्द्र हंस, सतीश बतरा, हकालत मजोब, वाजिद मुहम्मद का नाम लिया जा सकता है। रामलास ने इन सबसे ज्यादा कहानियाँ लिखी हैं। "रिफार्ड कीपर" में उन्होंने वही शैली अपनाई है जो कलाहीन कहानीकारों के वर्ग की। वही फार्मुला, वही परंपरा लेकिन कभी कभी नवीनता की एक ससर ली जा सकती है जो पूरी तरह उनकी कला की प्रकाश में जाने में असमर्थ है। इनकी तुलना जैन्ड्र, जौय, तथा जीशों से कर सकते हैं। इनकी कहानियाँ में विनाय, कला संस्थान तथा छेलोगत विकास स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। इसमें क्या विधान का आधार किसी स्पष्ट घटना के स्थान पर जीवन दर्शन और व्यक्ति विशेषणों की बनाया गया है।

उर्दू में नये लिखने वाले कहानीकारों में सुरेन्द्र प्रकाश, अबदुल्ला चुन, बतराज मेहरा, और राज का नाम प्रमुख है। सुरेन्द्र प्रकाश की एक कहानी "नये कदमों की जाय" सन् 49 में सामने आई है। प्रतीका-

त्मक संप्रेषणीयता की जो तीन चार कहानियाँ अभी लिखी गई हैं उनमें नये कर्मों की बाप "उत्प्रेक्षणीय" है। सुरेन्द्र प्रकाश ने इस कहानी के बाँचल से केनवास में इस बड़े विषय की रचनात्मक योग्यताओं से बाँच लिया है। घसराज मेहरा वात्पक्ष्या सरीसी कहानियाँ कहनेवाले कहानीकार हैं। उनको कहानियों में रचनात्मक पक्ष रुका सा प्रतीत होता है। हिन्दी कहानियों की अपेक्षा समस्त उर्दू कहानी कला और रचना की सीमा में विलुप्त नहीं जाती। जिन कहानीकारों की रचना उल्लिखित किया है वह कुल मिलाकर उर्दू कहानी का मिज़ाज नहीं बन सकी है, क्योंकि वह एक परंपरा के रूप में प्रचलित नहीं हो सकी है। जबकि हिन्दी कहानियाँ उत्कर्ष की तीन कहानी-कारों के निरन्तर अभ्यास के परिणाम स्वरूप हिन्दी कहानी का स्वरूप नितर कर सामने आया वह विषय, कला संस्थान तथा प्रतिपाद की शैली की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आज हिन्दी कहानी कार अपनी कृतियों में जातु और उसका जीवन कक्षा व्यक्ति और समाज पूर्ण दार्शनिकता के साथ चित्रित करने का प्रयत्न करते हैं।

उर्दू कहानीकार अधिकांश पाकिस्तान चले गये हैं जो हैं वे भी अब कहानी कम लिखते हैं। आज की कहानियों में पात्रों की जिन चारित्रिक विशेषताओं की आलोचना कक्षा व्याख्या की जाती है उनके आधार में भारतीय दार्शनिकता, मनोविज्ञान, समाजवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद तथा यूनियनवाद की विचार परम्परा रहती है। का संवाद नाटकीय कम और यौद्धिक अधिक हो चले हैं। उर्दू कहानी को और हिन्दी कहानी का

प्रारम्भिक युग तो एक सा ही है क्योंकि उसमें तिलस्म जादू तथा कौतूहल का विशेष स्थान रहा। उर्दू कहानी, हिन्दी कहानी को अपना कथा साहित्य में पहले आए। दोनों के विकास में मुन्शी प्रमनन्द का बड़ा हाथ है। उसके उपरान्त दोनों कथा साहित्यकार सामाजिक, मनोविरलक्षणआत्मक तथा ऐक्य सम्बन्धी कहानियाँ लिखते रहते। दोनों ही फ्राइड के यौनवाद से प्रभावित हैं। कृष्णचन्दर, पंटी जिस प्रकार यौनवाद से प्रभावित रहे हैं ठीक उसी प्रकार जीशो भी फ्राइडवाद के वर्णन से प्रभावित हैं। हाँ आज के युग में उर्दू की मांति हिन्दी की अपना धीमी पड़ गई है। यशपाल जो प्रारम्भिको जैसा है, की विचारधारा बेदी तथा पंटी से मिल जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि विभाजन के पश्चात् उर्दू कहानीकार थक गये हैं और लिखना बन्द हो कर दिया है। नये कहानीकार अपनी ओर न देखकर दूसरे के क्वाण्ड देखते हैं। अतः आधुनिक युग में हिन्दी कहानी उर्दू कहानी को अपना अधिक प्राप्ति पर है। पंटी की कहानी टीका टेक सिंह "बर्बा" का विषय बन जाती है तो अमृता प्रोत्तम को "ठाक" सुनाई देती है तो कभी अम्बास की "सरदार जी" लीगों की नौद हराम कर देती है। बेदी की "साज्जली", कृष्णचन्दर की "अन्मदाता" पेशावर बकस्रस" देश के एक सिर से गुजती चली जाती है। पं० गे सीधे सादे साथ अनुभव अश्लिष्ट सामयिक भावुकता और रोमान्टिक यथार्थवाद की अति-शयोक्तियों के साथ पैर फिर जाते हैं। इधर अमृतराय, राधिय राघव, भावत शरण उपाध्याय, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, नागर, चन्द्रकिरण सीनरीका,

कश्क, अस्थाना आदि कितने कहानीकार हैं जो राजनीतिक तथा सैद्धान्तिक घरातल पर साथ दे रहे हैं। उनके दर्द की बांट रहे हैं। उपाच विचारों और गम्भीर वृत्तियों की कहानियों का जामा पहनाने वाले जैन, जीसी, पहाड़ी, वीर्य कुल पाणों की सल्ला चुप होते हुए दीखते हैं।

इस युग में प्रत्येक व्यक्ति प्रतिष्ठियावादी तथा प्रगति-वादी विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है। मंटी की कहानी "वीरत रात शराब", इस्मत पहेन्द्र नाथ की मी "विगलित मानवता का लीढ़" चित्रित करनेवालों के रूप में प्रगतिशील होने की प्रतिष्ठा प्राप्त हो ती दूसरी और कुशमन्दर, यलपाल, लब्धास, बेदी, अमृतराय, नाथर, चन्द्र-किरण सीनरिक्ता आदि की वर्ग चेतना युक्त आशावादी लेखकों के रूप में। उर्दू साहित्य का कहानीकार मंटी की कहानियाँ "एतक", वू, मूयो, मम्मी, और "लीलवी" जातु प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी उर्दू कथा साहित्य में विषयमाला की दृष्टि से यह भेद न्यूनतर होता गया है। वैभिन्न परम्परायें ती राजनीतिक तथा धार्मिक कारणों से हो जुड़े हैं।

=====

सप्तम अध्याय

=====

सप्तम अध्याय

उपसंहार

यद्यपि हिन्दी तथा उर्दू साहित्य का परिचय बहुत पुराना है । दोनों कथा-साहित्य एक दूसरे के दुष्णी हैं क्योंकि दोनों भाषाएँ खड़ी बोली से ही निकली हैं । उर्दू भाषा फारसी से अधिक प्रभावित है । यदि इन दोनों भाषाओं के प्रारम्भिक कथा-साहित्य में विचयगत कथा रूपगत समानताएँ मिलती हैं तो उसका कारण यही है दोनों भाषाओं की संस्कृत-कथा साहित्य के रूप में ही प्राप्त हुआ । दोनों ने मनार्जन के लिए ख़री फारसी से कथानक लिया । प्रारम्भिक कथाकारों ने उपन्यास या कहानी लिखने की प्रेरणा या तो सीधे अंग्रेजी से ग्रहण की कथवा बंगला के माध्यम से । किसी भाषा के अनुचित ग्रन्थ पढ़कर भी दूसरी भाषा वाले उन अनुवादों से भी प्रभावित हो सकते हैं । इस दृष्टि से हिन्दी उर्दू कथा-साहित्य की परीक्षा करें तो दोनों ही अनुचित ग्रन्थों से प्रभावित हैं । मुश्की प्रेमचंद जी तो उर्दू से हिन्दी में वाये बाँर उनके उर्दू से हिन्दी में अनुवाद हुए । सेवा सदन, रंग भूमि, कर्म भूमि, गौदान, गबन, सेवा वादि उपन्यास सभी पहले उर्दू में लिखे थे बाद में हिन्दी में लिखे । बाजारे एश्न, चांगान

हसती, मैदान कमल, बेवा, गवन, ग्रीवाभ या सब उर्दू के ही उपन्यास थे। मुंशी प्रेमचंद पर टालुटाय, गौकी, रुसवा का किसी न किसी रूप में प्रभाव कवर्य है। सन् १९५० तक किसीरीलाल गोस्वामी, प्रेमचंद, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, जैनेन्द्र, कृष्ण चन्दर, मगवती चरण वर्मा के उपन्यासों से उर्दू कथा-साहित्य पर शाप पड़ी है। इनमें से प्रेमचंद के उपन्यास १९२२ के लगभग अनुदित होने प्रारम्भ हो गये थे।

उर्दू में अलफलेला, बरबरेक बागी बहार बादि का उद्देश्य मानव को मनोरंजन प्रदान करना था तथा यह सब उर्दू कथा-साहित्य में किसी तथा जासूसी पूर्ण समसनी लेख घटनाओं के लिए ही प्रसिद्ध है। इसी प्रकार किसीरी लाल गोस्वामी, गहमरी, झावस्ताली बादि भी मनोरंजन के लिए ही कथा-साहित्य लिख रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय दोनों ही कथा-साहित्यों का मुख्य उद्देश्य दिल बहाव एवं मनोरंजन प्रदान करना था। डा० नजीर उहमद, पी० खतनाय सखार, शार तथा रुसवा ने कुछ सामाजिक उपन्यास लिखे किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य समसनी पूर्ण घटना से ही था। प्रेमचंद, सिबा-रामशरण गुप्त, कौशिक, नागर एवं रेणु ने सामाजिक उपन्यास लिखकर हिन्दी कथा साहित्य की विचार धारा में एक नवीन मौड़ दिया।

राहुल और यशपाल साम्यवादी विचारधारा के शेरक हैं। यशपाल के राजनीतिक उपन्यासों में गान्धीवाद का विरोध तथा समाजवाद का समर्थन उतनी ही शक्ति एवं दृढ़ता के साथ किया गया है।

जितना कि पेदी, हयात उल्लाह एवं कसफा चुगताई ने । राहुल जी ने इतिहास के माध्यम से साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने की चेष्टा की है । उर्दू में ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से वाधुनिक विचार धारा का प्रचार करने वालों में नसीम अजाज़ी, एम० क़सतम० एवं अहमद जाफरी और दूसरे रामपुरी हैं ।

गान्धीवाद एवं समाजवादी विचार दर्शन देश में सर्वत्र एक ही समय उद्भूत हुए । उन्होंने हिन्दी तथा उर्दू ही नहीं भारत की अन्य भाषा भाषियों को भी एक साथ प्रभावित किया । उर्दू कथा-साहित्य में जनकलाब की ज्वालि दिताई देने लगी । सुली प्रेमचंद तथा जैन्द्र ने गान्धीवादी विचारधारा साहित्य में लाये । हिन्दी कथा-साहित्य तथा उर्दू कथा-साहित्य एक दूसरे से प्रभावित होने के स्थान पर बंगला से अधिक प्रभावित हुए हैं । जैन्द्र की कृतियों पर शरद और खीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है । "सुनीता" पर "घरे बाहरे" के प्रभाव को उन्होंने स्वयं स्वीकार दिया है । "परत" में "गौरी वाली" की जगह है परन्तु जैन्द्र पर शरद का प्रभाव अधिक सूक्ष्म है । उनके साहित्य सम्बन्धी वादशी एवं मान्यताओं पर शरद की छाप स्पष्ट है । जहाँ शरद से उन्होंने भाव बोध पाया, पीड़ा का दर्शन पाया, नारी के मुख्य सम्बन्धी दृष्टि पाई, वहाँ खीन्द्र ने उन्हें बाँधिका दी, कथा खड़ी करने के लिए ढाँचे प्रदान किये और नई संवेदनामयी भाषा शैली दी परन्तु बंगला उपन्यासों का उर्दू लेखकों पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना हिन्दी उपन्यासकारों पर ।

भारत में कथा-साहित्य वस्तुतः पश्चिम के सैशर्न का एो परिणाम है और बाज भी शिल्प जीवन दर्शन और विषय फिली भी क्षेत्र में, जिन कोई क्रान्ति पारम्पर्य उपन्यास वाङ्मय में होती है, सभी कुछ समय बाद भारतीय कथा-साहित्यकार या तो ज्यों का त्यों क्या कुछ परिवर्तन के साथ अपने साहित्य में वहीं से सीधा ग्रहण कर लेते हैं। शिल्प के क्षेत्र में कितना प्रभाव पड़ति, सिनेरियो तंत्र पूर्व दीप्ति वात्म संस्मरणात्मक पड़ति, जीवन दर्शन के क्षेत्र में, सत्ते का वस्तित्ववाद तथा मार्क्स का मार्क्सवाद उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं, यही बात मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में दिखाएँ देनेवाले यौनवाद के सम्वन्ध में कही जा सकती है। जिसका विकृत रूप चित्रित करने की प्रेरणा हिन्दी उर्दू लेखकों ने डी०स्व० लारेन्स बादि पारम्पर्य लेखकों से सीधे ग्रहण की है।

एम० कसलम०, रसै जहमद जाफरी तथा नसीम सय्याजी ने उर्दू में ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जवरय परन्तु हिन्दी कथा-साहित्यकार वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री तथा राहुल जो के उपन्यासों से निम्न कौटि के है। उर्दू के कथाकारों ने एतिहास की कौई अधिक परवाद नहीं की क्योंकि उर्दू कथा-साहित्यकार ऐतिहासिक पटनाओं से अधिक रोमान्स और प्रेम को ऐतिहासिक उपन्यास की बाधार सिता समझते हैं। वर्मा जी की कृति 'मृगयत्री' ऐतिहासिक अधिक है, रोमान्टिक कम। सारांश यह है कि वर्माजी का उपन्यास एतिहास और जन पुतियों के बाधार पर लिखा गया उर्दू कौटि का ऐतिहासिक उपन्यास है।

उर्दू कथा साहित्यकार कल्पा के आधार पर उस पर ऐतिहासिक सुलप्ता बढ़ाने का प्रयत्न अधिक करते हैं ।

हिन्दी- उर्दू कथा साहित्यकारों का केन्द्र उज्जयिनी, पंजाब तथा दिल्ली ही रहा है तथा दोनों साहित्यकारों के समस्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और वास्तविक परिस्थितियाँ तथा समस्याएँ एक ही रही हैं । उनको सुलप्ताने के लिए लगभग एक समय में एक ही प्रयत्न किये गये हैं । इसलिए विधवा, वैश्य, बूढ़, मजदूर, देश की स्वतंत्रता, हिन्दू- मुस्लिम संघर्ष, गरीबी और बेकारी आदि से सम्बन्धित प्रश्नों ने दोनों भाषाओं के कथा- साहित्यकारों को सोचने और समाधान ढूँढ़ने के लिए प्रेरित किया । हिन्दी में अधिकतर कथा साहित्यकारों ने गान्धीवाद का समर्पण किया है जबकि उर्दू साहित्यकारों ने मार्क्सवाद एवं गांधीवाद दोनों का । यशपाल तथा राहुल ने मार्क्सवाद का खूब सुलकर प्रयोग किया है । वास्तव में हिन्दी साहित्य ने उर्दू कथा- साहित्य को अधिक प्रभावित किया है । जो कुछ प्रभाव किसी भाषा के वाङ्मय को फलकर अन्य भाषा के साहित्य पर अप्रत्यक्ष रूप में फल सकता है वही दोनों भाषाओं के कथा- साहित्य क्षेत्रों पर फला है । हिन्दी में प्रसन्न माधव और वनतगोपाल लैकडे ने जो हिन्दी साहित्य की सेवा की वही उर्दू क्षेत्र में राजेन्द्रसिंह वर्मा, कृष्णाचन्दर, मिन्टो व एवं सप्त सुगताई ने की है ।

हिन्दी उर्दू कथा- साहित्य दोनों पर गान्धीवाद का प्रभाव रहा है । गांधी के व्यक्तित्व एवं उनकी राष्ट्र को जगाने वाली

शक्ति की देखकर समाजवादी या श्रान्तिकारी विचारधारा भी साहित्य-कारों के हृदय में छिलोरे लेने लगी और समाजवादी तथा- साहित्य लिखा जाने लगा । हिन्दू- मुस्लिम एकता पर जितने उपन्यास लिखी और उर्दू में निकले उतने अन्य किसी भाषा में नहीं । बकिात भारतीय उपन्यास-कार अपनी रचनाओं के लिए अपने प्रदेश और समाज की ही जफाते रहे हैं । क्योंकि उपन्यास की सफल बनाने के लिए यह परम आवश्यक है कि किस समाज, प्रदेश और व्यक्ति समूह का चित्रण उत्तम हो । उसका निरुद्ध एवं घनिष्ठ परिचय लेखक को होना चाहिए । दूसरे समाज एवं प्रदेशों के सम्बन्ध में घनिष्ठ जानकारी के लिए व्यापक और गम्भीर अध्ययन, सूक्ष्म अवलोकन एवं विस्तृत प्रयण की आवश्यकता होती है और इन उसके लिए भारतीय उपन्यासकारों की उपयुक्त अवसर एवं सुविधायें प्राप्त नहीं हो पाई हैं । कतः विदेशों की तो बात ही क्या, स्वयं भारत के अन्य प्रदेशों के समाज पर भी यहाँ के लेखकों ने प्रायः नहीं लिखा है । बंगाल की प्राकृतिक सुबभा यहाँ के जीवन की धार्मिक निष्ठा, बार्मिक सम्बन्ध और हिन्दू- मुसलमानों की प्रारम्भिक मित्रता एवं सह जीवन के बड़े जाकर्षक शब्द हिन्दी- उर्दू तथा साहित्यकारों ने चित्रित दिये हैं ।

भारत के इतिहास का कोई क्रमबद्ध, सच्चा लेखा जैसा नहीं मिलता । कतः प्राचीन भारत के अनेक ऐतिहासिक काल सड़ों की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति से हम अपरिचित हैं । यदि कुछ इतिहासकारों के प्रयत्नों से परिणामस्वरूप हमें विगत युगों की फाँसी मिलती भी है तो वह प्रथम तो वपूर्ण है, क्योंकि इतिहास लेखकों की दृष्टि प्रधानतः राजनीतिक हलकों एवं राज घरानों से सम्बन्धित ऊँचा पौछ पर ही रही है, साधारण जनता एवं उनके

जीवन पर नहीं। दूसरे इतिहास लेखकों के पूर्वाग्रह पक्षपातपूर्ण दृष्टि एवं अपने धर्म और संस्कृति के अभियान अन्य विकृत दृष्टिकोण के परिणाम-स्वरूप जो राजनीतिक चित्र प्रस्तुत किये हैं, वे भी शुद्ध निष्कर्ष एवं सत्य नहीं कहे जा सकते। हिन्दी तथा उर्दू उपन्यासकार लेखकों ने इस सम्बन्ध में बहुत एतादनीय कार्य किया है। प्रथम तो उन्होंने विदेशी इतिहासकारों के सच्चे चित्र प्रदान किये हैं। फाँसी वाली रानी के सम्बन्ध में यह प्रम फैला रहा था कि वह गदर के जमाने में फाँसी का प्रथम स्त्रीजों की ओर से करती रही थी और उनका शौर्य विवशता की परिस्थिति में उत्पन्न हुआ था। बुन्दावनलास वर्मा ने अपनी हिन्दी के उपन्यास "फाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" में इस प्रम का निराकरण किया है और तर्क एवं प्रमाण सहित यह सिद्ध कर दिया कि रानी के हृदय में तारम्य से ही देश प्रेम एक एवं स्वातंत्र्य की सच्ची लालन थी और उन्होंने गदर के समय जो किया वह यथायक परिस्थिति उत्पन्न होने के कारण नहीं किया बल्कि उसके लिए वह वर्षों पूर्व से नाना साधन तथा तात्कालिक विचार विमर्श करते हुए योजना बना रही थी। चारों तरफ से हिन्दी उर्दू लेखकों ने भारत का सच्चा इतिहास तथा उसके ऐतिहासिक व्यक्तियों का सच्चा स्वल्प हमें प्रदान दिया।

उर्दू कथा साहित्यकारों ने बौद्धिक दृष्टिकोण, गांधीवाद एवं समाजवाद का समन्वय, राष्ट्रवाद तथा हिन्दू मुस्लिम एकता, समाजशास्त्रीय विचारों का विवेचन, विदेशी समाजों के चित्र, पारसी ईसाई एवं जाचिकता, चेतना प्रवाह पद्धति आदि अनेक तत्वों द्वारा भारतीय उपन्यास वाङ्मय को समृद्ध बनाया।

हिन्दी उपन्यासों में हिन्दी प्रदेश के सामा-
जिक, राजनैतिक, जातिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का परिचय
उसी प्रकार कराया है जिस प्रकार उर्दू, गुजराती, बंगला, मराठी लेखकों
ने अपने अपने प्रदेशों के जीवन का । परन्तु उसमें कुछ ऐसे तत्व पाये जाते
हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं । उदाहरण के लिए मुसलमानों
के मध्यकालीन जन जीवन एवं इतिहास के चित्र जिन्हें मुन्दावनलाल वर्मा
की लेखनी ने बहुमूल्य साहित्य प्रदान किया है केवल हिन्दी उपन्यासों की
ही है । उसी प्रकार हिन्दू-मुस्लिम समस्या एवं एकता की जो महत्व
हिन्दी उपन्यासों में मिला है उतना अन्यत्र नहीं । हिन्दू मुस्लिम समस्या
की जिस रूप में सुलझाया गया है वही भारतीय उपन्यास के लिए
नवीन वस्तु है । यह एक अति कठिनी विचारधारा पर आधारित भारतीय
अध्ययन के राष्ट्रीयवाद की परिकल्पना हिन्दी उपन्यासों में मिलती है
वह भी भारतीय कथा साहित्य की अभिनव दैन है । गम्भीर अध्ययन,
ऐतिहासिक अनुसंधान एवं कलाकार के लिए आवश्यक कल्पना शक्ति इन सब
उपकरणों की सहायता से राहुल सांकृत्यायन, कुरुसेन शास्त्री, एवं
रमिय राय ने जो कृतियाँ प्रस्तुत की हैं, वे निश्चय ही भारतीय वाङ्मय
की दीप्तमान मणियाँ हैं, जिनसे उसका चौब शताब्दियों तक कामगाता
रेगा ।

बाव हिन्दी उर्दू उपन्यास क्षेत्र में गत्यावरोध
बात कही जा रही है कि मुन्शी प्रेमचंद के उपरान्त हिन्दी उर्दू में अच्छी

उपन्यास नहीं लिखे गये। यह बात बड़ा शः सत्य नहीं है। एक और मनोविज्ञान के जञ्जवरे और विस्मृत निर्णयों का प्रयोग किया गया है तो दूसरी ओर यथार्थता के नाम पर प्रकृतवाद की उपासना की है तो तीसरी ओर प्रयोगवाद के नाम पर तो वस्तु या चरित्र चित्रण को विस्मृत कर दिया गया है। जववा कुछ देकर चरित्र की सूक्ष्म वैज्ञानिक विशेषताओं का विश्लेषण करने में लगे होने के कारण अपने कार्य क्षेत्र को अत्यन्त सीमित बनाये रखे हुये हैं। आधुनिक काल के उर्दू- सिन्दी दोनों के कथा-साहित्यकार मनोविज्ञान से सहायता लेकर भी उसकी शक्ति से परिचित हैं। व्यक्ति की निष्ठा, सदिच्छा और वैवीर्य प्रवृत्तियों में विश्वास होने के कारण वे अवचेतन के भूचालों के साथ साथ मानव मन के देवालयों की कार्यक्रिया भी प्रस्तुत करते हैं। प्रकृतवाद की भी अधिकारि लेखक पीछे छोड़ चुके हैं। ऐसी कृतियाँ अब सुसंस्कृत रूप के पाठकों पर विपात्यों के पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाकर केवल रेलवे बुक स्टालों पर ही पारं जाती हैं। प्रयोगवाद की वाद के रूप में कुछ गुट बन्द लेखकों को छोड़कर अन्य स्वीकार नहीं कर रहे हैं।

मनोविज्ञान के जञ्जवरे प्रयोग, प्रकृतिवादी बर्लीलता प्रयोगवाद के नाम पर ऊँच जल्ल प्रवृत्तियों से सिन्दी तथा उर्दू साहित्य मुक्त हो चला है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें ये दोष या नहीं। उनके अतिरिक्त कभी कभी मानव पक्ष को निर्जीव और निष्क्रान्त छोड़कर उपन्यास को किसी विशेष मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक या धार्मिक

मतवाद का वाहन बनाने वाली चेष्टाएँ भी होती रहती हैं। उपन्यास-
कार के लिए यह वांछनीय नहीं कि वह पात्रों के आत्मान्वेषण के
स्थान पर उन्हें अपने स्वयं के फनाते और अपनी फाँडियों पर मोटे।
ऐसा करने से उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन कृत्रिम और सतही हो
जाता है। तथा पात्रों का व्यक्तित्व और निजत्व समाप्त हो जाता है।
परन्तु हिन्दी तथा उर्दू के उपन्यासकार इस दोष से अभी तक मुक्त नहीं
हो पाये हैं। उनके सम्बन्ध में निम्न कथन बिल्कुल उपयुक्त है, “नये
कथाकार सिद्धान्त को लेकर चलते हैं और जीवन उस प्रकार कभी प्रारम्भ
नहीं होता।” यह दोष विशेष रूप से समाजवादी उपन्यासकारों की
कृतियों में पाया जाता है।

इन विकृति के मूल में अध्यात्मिकता की प्रवृत्ति तथा
नवीनता के प्रति अधो दौड़ है। कुछ लेखकों का उद्देश्य पाठकों को चौंका
देने वाली बात कहना होता है जिससे उनकी कृतियों में एवं पत्रकारों
गाम्भीर्य का स्थान गाम्भीर्य संकलन ने ले लिया है। मूल्यों की मौलिकता
की बात छोड़कर, मानसिक विलक्षणता के चित्रण का सम्मान हुमा है।
प्रत्येक नवीन विषय को प्रातिवादी समझना महा भूल है और नययुग
की तुरही बजाकर अनुपस्थित समस्याओं को अतिसूक्ष्म उपन्यास में चित्रित
करना प्रातिवादी साहित्य का लक्ष्य नहीं। पनाहिश, गात्सवर्दी, क्लूसन
आदि ने समाज को चौंकाया अवश्य था परन्तु सच्चे एकीक प्रश्नों को उप-
स्थित करके। हिन्दी तथा उर्दू में अभी तक विशेष उपन्यास जो कुछ लिया
गया है उसका बहुत कुछ और अनुकरण तथा व्यकरण के रूप में ग्रहण किया

हैं। उदाहरण के लिए प्रेम के विविध चित्र जबकि पार्श्वान्त्य लेखकों ने स्वानुभूति में लिखे हैं, हमारे यहाँ के उत्प्रेरककारों ने अनुकरण, श्रुतकृत, एवं कृत्रिम के कारण उन्हें विकृत कर दिया है। हमारे यहाँ प्रेम कथा, काम कथा बन गई है, क्योंकि सजीव प्रेम कथा के लिए आवश्यक अनुभूति तथा उस अनुभूति की कलात्मक ढंग से चित्रित करने की कुशलता एवं सत्य-निष्ठा का यहाँ अभाव है। पार्श्वान्त्य प्रणालियों और प्रवृत्तियों को पचाकर अपने ढंग से सांस्कृतिक परम्परा में बँधी हुई अपनी जनता के मानवीय सत्य को, अपने पात्रों की वास्तविकता को ठीक ठीक अभिव्यक्ति प्रदान करने से ही कला का उत्कर्ष हो सकता है।

हम भारतीय सताभिद्यों से स्वप्नदर्शी बूढ़े हैं, मन मोहकों के वश्वस्त। अतः बाण यथावैराग्य के उपासक होते हुए भी यदि हमारे कथाकार इस मनोवृत्ति से प्रभावित हों तो वास्तव्य नहीं। उन मनोवृत्ति का परिणाम है कि कहीं कभी नायिका गरीब नायक के पीछे अपनी समृद्धि के लिये फिरती है (उद्धृष्ट) कहीं मध्य वर्ग की, युवती वार्धकीयों से वफावर को ठहराती है (दोषित) तो कहीं फौज-बिल परिवार की लड़कियाँ हुरूप या विकलांग नायक की ओर जाकृष्ट दिशाई जाती हैं (निर्वासित)। साहित्य एक मौलिक स्वप्न अवश्य है पर वह जागृतावस्था का है, सुषुप्तावस्था का नहीं। अतः लेखक उसमें अतिरिक्ता, विकृता, महकीले चित्रों से जहाँ तक पचा सके उतना ही श्रेयस्कर है। जो जीवन में नहीं है, उसमें कल्पना जात में देने की वृत्ति

ठीक नहीं ।

हमारी संस्कृति के मूल्यांकन में रंगिय राख, चतुर्वेन सास्त्री वादि का नाम प्रसिद्ध है उसी प्रकार उर्दू साहित्य में पेदी, मिन्टों, दूश्मनन्दर, जसमत, जसतन, चौधत धान की वादि का कार्य भी प्रसिद्ध है, फिर भी बहुत कार्य करने की है ।

पात्र के चरित्र विश्लेषण के साथ उसके व्यक्तित्व का सर्व पार्श्व-व्यापी चित्रण भी हमारे यहाँ बहुत कम हुआ है । विवरण विश्लेषण व वातावरण चित्रण के साथ साथ व्यक्तित्व के गुण में पूर्णता का कम अभाव बना हुआ है । मानव अस्तित्व की पूर्णतम खटितता, गहनता, समयता, अपराधिता और श्रेष्ठता के साथ-ही तक प्रस्तुत नहीं किया गया है । या तो वह कथाकार के रुग्ण स्वस्थ मन का प्रक्षेपण मात्र रहा है क्या उसके विचारों का वस्तुवारी चित्र । हमारे कथाकारों की मानव के अन्तःकरण के सम्बन्ध में सहृदयता तथा मानव जीवन के प्रति व्यापक विवेक पूर्ण दृष्टिकोण अपमाना होगा ।

फुमलात पुन्नालात बल्ली ने अपनी पुस्तक " हिन्दी कथा साहित्य " में लिखा है - " वाधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रेम, वासना, अत्याचार वादि का जो चित्र प्रदर्शित होता है उसकी व्यापकता के सम्बन्ध में मन में संदेह बना रहता है । ऐसा जान पड़ता है कि उसमें सत्य नहीं, सत्य का विकृत वेश ही है । उनमें प्रदर्शित प्रेम झूठा है, वासना झूठी है, उत्पीड़न, अत्याचार, अमानि किसे में भी सच्चाई नहीं है । बल्ली जी

१- फुमलात पुन्नालात बल्ली : " हिन्दी कथा साहित्य ", पृष्ठ ८१, ८२

का यह कथन उर्दू कथाकारों के लिये भी सच है । आज के कथाकार अपने अधिक रमे हुए हैं ।

लेखक के लिये कतना ही पर्याप्त नहीं है कि वह अपने समीप के जीवन को ही जाने और उसका चित्रण करे । लेखक को चाहिए कि वह उन प्रसंगों को भी फाँड़े जो मानव इतिहास की वे अपेक्षा-कृत स्थायी प्रेरणाओं को प्रतिफलित करते हैं । उन स्थायी समस्याओं को स्थान देना चाहिए जिनका अस्तित्व देश काल के सीमित घेरे में बा नहीं हो सकता ।

आज का जीवन व्यस्त व्यस्त है । अब पाठकों के पास चार सौ पन्नों का उपन्यास पढ़ने का समय नहीं है । आज कहानी का युग है । कुछ ही क्षण में कहानी समाप्त हो जाती है । उपन्यास का सत्र दिन प्रतिदिन दोनों भाषाओं में गिरता जा रहा है । उर्दू की अपेक्षा हिन्दीमें स्थिति कुछ अच्छी है । आज का कथा साहित्य एक ऐसी अवस्था तक पहुँच गया है जहाँ कि व्यक्ति और उसकी समस्या में व्यक्त संघर्ष है । व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति के साथ जीवन से जुड़ा रहा है । आज व्यक्ति का मौलिक प्रकाश की लीज में है । जी बटुक के शब्दों में -

“ चूंकि यह कथा साहित्य कविता और नाटक की विविधताओं मरी गलियों के बीच होकर आया है, इसलिए उसने भाव सत्य गति और प्रवाह मानता, उक्ति संक्षिप्त और नीति-सत्य, चरित्र संघर्ष और करुणावादि पुराने साहित्य रूपों की शिथिल और वस्तुगत विशेषताओं को अपनाया है ।

इन पचास वर्षों के जीवन काल में हिन्दी उर्दू कथा साहित्य ने सामाजिक जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को चित्रित करने का प्रसिद्धीय प्रयत्न करते हुए बीच बीच में पाठकों को तिलस्मों की सैर कराई, जासूसी गौरवर्धन के खेल पिल्लाए तथा भाव लोक के मनोरम दृश्यों का परिचय दिया। वास्तव में अपनी शैशव और वयः सन्धि की अवस्था तक ऐसा ही रहा। प्रेमचंद के द्वारा कथा साहित्य को युवावस्था की शक्ति मिली। जयशंकर प्रसाद ने अपनी कथानियों के द्वारा मानव अन्तरात्मा के मनोवैज्ञानिक चित्र खींचे। वृन्दावन लाल वर्मा ने अपनी कृतियों द्वारा जीवन का संघर्ष हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। मणवतीचरण वर्मा ने सामाजिक परम्पराओं का पौक उतार फेंकने का साहसपूर्ण कदम उठाया। मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यास लेखने का नैय उत्साह जोशी को है। व्यक्तिता हिन्दी उपन्यास का नवीनतम धरातल है। भारतीय संस्कृति और हिन्दू राष्ट्रवाद को आधार मानकर गुरुदत्त ने उपन्यास लिखे। उर्दू में छठी प्रकार की शैली को बनाने वाले मन्टो, बेदी और कृष्ण चन्दर हैं।

हम मानते हैं कि दोनों भाषाओं के लेखकों में कुछ कमियाँ हैं और कुछ समय बाद समाप्त हो जावेंगी। अतः इन प्रासंगिक न्यूनताओं को देखकर लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। पश्चात्य कथा-साहित्य की तीन सौ वर्षों की विकास यात्रा को हिन्दी तथा उर्दू ने पिछले साठ वर्षों में पूरा किया है। यह निःसंदेह गर्व की बात है। जिस कथा-साहित्य ने प्रसाद की संवेदना, जेनेन्द्र की कलात्मकता

निराला की वभिजात रसिकता, यमों जी का उत्तिहास कुशल चित्रण तथा प्रेमसर्वद का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया है, जिसमें शिल्प के विविध रूप, भाषा का ललित माधुर्य और मनोविज्ञान का सूक्ष्म अव्ययन विद्यमान है जिसके कथाकारों (प्रेमसर्वद, छापी रुसवा, गुरुदत्त, जैनेन्द्र, बेदी हुनाल, मिट्टी वादि) की कृतियाँ भाषान्तर द्वारा विदेशियों ने सम्मान किया है, उसका गौरव है ।

सहायक ग्रंथों की सूची

इंशाबुल्ला खां	रानी फतवी की कहानी - काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
गंगा प्रसाद पाण्डेय	बाधुनिक कथा साहित्य- इलाहाबाद , प्रदीप पुस्तकालय
गुलाबराय (डा)	सिद्धान्त और बध्ययन- दिल्ली- आत्माराम एण्ड सन्स
चन्द्रधर शर्मा गुलरी	गुलरी ग्रन्थ- काशी नागरी प्रचारिणी सभा
कविनाथ त्रिपाठी	कहानी कला और उसका विकास- देहरादून- साहित्य सदन
कान्हाय प्रसाद शर्मा	कहानी का रचना विधान- बनारस हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
त्रिभुवन सिंह	हिन्दी उपन्यास और कथार्थवाद- बनारस हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
देवराज उपाध्याय	बाधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान, इलाहाबाद- साहित्य मन्त्र
नंद दुलारे वाजपेयी	नया साहित्य : नये पश्चन : बनारस विद्या मंदिर हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - लखनऊ इंडियन प्रेस

पद्म सात पुष्पासात बत्थी	हिन्दी कथा साहित्य- बम्बई हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर
प्रमनन्द	कुल विचार - बनारस, सरस्वती मंदिर
बलदेव उपाध्याय	भारतीय साहित्य शास्त्र- प्रसाद परिणद काशी
बाबुदेव	हिन्दी कहानी और कहानीकार, बाणी विहार, बनारस
विनीत शंकर व्यास	उपन्यास कला, हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी
रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा
डा० राम विलास शर्मा	प्रमनन्द, सरस्वती मंदिर, बनारस
डा० लक्ष्मीनारायण सात	हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, साहित्य मन, इलाहाबाद
डा० लक्ष्मी सागर बाण्य	बाधुनिक हिन्दी साहित्य, विश्वविद्यालय हिन्दी परिणद, प्रयाग
लिवनारायण श्रीवास्तव	हिन्दी उपन्यास, सरस्वती मंदिर बनारस
डा० श्रीकृष्णदास	बाधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, विश्वविद्यालय हिन्दी परिणद, प्रयाग

हंसराज रक्षार	प्रमचंद : जीवन और कृतित्व, आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली
डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	विचार और चिंतन , साहित्य मवन, उताहाबाद
विजय शंकर पत्त	आधुनिक कहानियां
डा० बलमन्त लक्ष्मण कीर्तपुरी	हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों का उद्भव और विकास, किताब मस्त, उताहाबाद
डा० सुभाषा धन	हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन , दिल्ली
डा० मालचन्द्र गोस्वामी प्रखर	कहानी दर्शन- एक विवेचनात्मक अध्ययन, साहित्य रत्न फण्डार, आगरा
डा० ब्रह्मचर शर्मा	हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
नंद दुतार वाजपेयी	हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियां
शचीरानी गुर्द	हिन्दी के आलोचक- प्रमचन्द और गोर्की
रमाशंकर शुक्ल रसाल	हिन्दी साहित्य का इतिहास
प्रकाशचन्द गुप्त	नया हिन्दी साहित्य
मन्मथनाथ गुप्त	क्याकार प्रमचन्द
बलमन्त तिवारी	उताचंद जीशी के उपन्यास

इन्द्र नाथ मदान	प्रमचन्द एक विवेचन
शिवदान सिंह चौहान	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष
सुरेशचन्द्र तिवारी	यज्ञपाल और हिन्दी कथा साहित्य
रूपनारायण पाण्डेय	टंगौर की कहानियाँ, गल्प गुच्छ पाँच भागों में
डा० श्यामसुन्दर दास	साहित्यालोचन
डा० गुलाबराय	सिद्धान्त और अध्ययन
इलाचंद जीशी	साहित्य सर्जना
डा० सत्येन्द्र	प्रमचन्द और उनकी कहानी कला
गिरधारी लाल शर्मा	कहानी कला
श्रीपति शर्मा	कहानी कला और प्रमचन्द
विश्वनाथ प्रताप मित्र	बाहुमय विमर्श
मालचन्द्र गीस्वामी प्रखर	कहानी दर्शन
गिरधारीलाल गर्ग	कहानी कला
बलदेव उपाध्याय	वैदिक कहानियाँ
डा० हजारी प्रताप तिवेदी	आधुनिक हिन्दी साहित्य
राय कृष्ण दास	इक्कीस कहानियाँ
डा० रामरतन भटनागर	प्रमचन्द : कालीचरनात्मक अध्ययन

पत्र- पत्रिकारं

बालीचना

हन्दु

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

बाला बोधिनी

भारतेन्दु

विशाल भारत

समालीचक

सरस्वती

साहित्यकार

साहित्य संदेश

सुधा

हरिवचन्द्र पैगड़ोन

हिन्दो कुशोत्तन

हिन्दो प्रदीप

हिन्दो साहित्य सम्मेलन पत्रिका

सरिता

कवन्तिका

कल्पना

प्रतीक

युग भेतना

रस का प्रमचन्द स्मृति विशिष्टांक

Books on Urdu Literature

1. A history of Urdu Literature - Ram Babu Saksena
2. वास्तान से बकसाने तक - विकार अजीम , उर्दू एकेडमी, सिन्धु, करांची
3. A Critical survey of the development of the Urdu novel and short story - Shaiista Akhtar Banu Suhrawardy
4. उर्दू नावित की तनकीरी तारीत- डा० मुहम्मद ससन फारुकी
कमीनावाद ससनऊ
5. नावित की तारीत वीर तनकीद- टी० कती बख्श हुसैनी-इण्डियन बुक
ट्रिपो, ससनऊ
6. Outline of Islamic culture- Vol. I - A.M.A. Shustary.

English books

1. The twentieth Century novels - J.W. Beach
2. Modern fiction- J. Muller
3. Time and Novels - A.W. Mendilew
4. Art of Novel- H. James
5. Nevel and our time- Alex Comfort
6. The novel and the modern World- David Daichers
7. The structure of the Novel- Edwin Muir
8. Dictionary of World literature
9. A history of Persian language and literature at the
Mughal court- Part III - Muhammad Abdul Ghani.
10. Western influence in Bengali Novel- Priyaranjan Sen.

उर्दू के प्रमुख कहानीकार

(१९०५- १९३६)

- १- मुंशी प्रेमचन्द
- २- न्याज फतहपुरी
- ३- सज्जाद हैदर यल्दम
- ४- मुल्तान हैजर जीह
- ५- सुदडीन
- ६- राशद उल खरी
- ७- मजदू गीरजपुरी
- ८- हजाब हम्त्याज कली
- ९- अजीज का चुगताई
- १०- अली अब्बास हुसैनो
- ११- डा० जाजम कुरैवी
- १२- हाजिद उल्लाह अफसर

सन १९३६- १९४७

- १- रशीदजहाँ
- २- हयातउल्लास अंसारी
- ३- कली सरदार जाफरी
- ४- शहादत हुसैन मंटी
- ५- अतपत चुगताई

- ६- कृष्णचंदर
- ७- उपेन्द्रनाथ वरक
- ८- शफोक उल रहमान
- ९- सुस्त बाजमाबादी
- १०- बख्तर उन्नीवी
- ११- बख्तर कंठारी
- १२- बख्तर बली
- १३- बख्तर नदीम फासिमो
- १४- छान बरकरी
- १५- मुमताज शीरी
- १६- मुमताज मुफ्ती
- १७- शत्राहीम जलीम
- १८- देवन्द्र सत्याधी
- १९- जागा बाबर
- २०- पहेंद्र नाथ
- २१- हाजरा मख्दूम
- २२- किरास्तुल उत्तीन खैर
- २३- खदीवा मस्तूर
- २४- सतनीम नतीम
- २५- सलति बखिद हुसैन

सन् १९४७ से पूर्व

- १- गुलाम खन्वास
- २- हाजरा मख्दूम

- ३- खाजा बहमद अक्बारा
- ४- लखीचा मस्तूर
- ५- किराहतुल उर्शन रैदर
- ६- महेंद्र नाथ
- ७- मुमताज़ मुकुली
- ८- बलवन्त सिंह
- ९- देवेन्द्र सय्याणी
- १०- प्रमनाथ परदेशी
- ११- लखनीम सलीम
- १२- हुदरत उल्लाह गुलाब
- १३- अफगीक उल रहमान

सन् १९४२ ते १९४७

- १- बहमद अली
- २- राजेन्द्रसिंह बंदी
- ३- कुरनचन्दर
- ४- कामत कुमताई
- ५- स्यात उल्लाह अंतारी
- ६- शहादत खान मंटो
- ७- बहमद नदीम कासिनी
- ८- खान अरकरी
- ९- गुलाम अक्बारा

वाधुनिक कहानीकार

(१९४७- ६४ तक)

इन्ताज़ार हुसैन
२० वर्षमद
पैतरे नाथ उग्र
वनवर
जमीर उल्दोन
वनवर जमीम
ललोत जलमद
इबन उत हसन
वशफाक जलमद
शक्ति सिद्धीकी

हिन्दी के प्रमुख कहानीकार

(१९ वीं शताब्दी के अन्त में)

इंशाअल्ला तां
लल्लुलाल
सदल मिन
राजा शिव प्रसाद
भारतन्दु हरिश्चन्द्र

गौरिदत्त खर्मा
जैनयती
शेखर उज्जुल्लास बंगाली
हरिकृष्ण जीसर
शेखर उवावडल्लास उर्दू वादत
मुंशी देव प्रसाद
राधाकृष्णदास
पार्वतीनंदन
कुन्दनलाल
शिवनारायण शुक्ल
श्री चतुर्वेदी
सत्यदेव
रूपनारायण पाण्डेय
जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी
सुर्यनारायण दोसित
बंगमहिला
मट्टाचार्य
फिरोज़ीलाल गोस्वामी
गिरिजादत्त वाजपेयी
रामचन्द्र शुक्ल
महावीर प्रसाद द्विवेदी
कुन्दावनलाल वर्मा
गीपातराम गहमरो
निजाम शाह
मास्टर भावानदास

उदयनारायण वाजपेयी
वैश्वलोहरण गुप्त
विधानाथ शर्मा
जयशंकर प्रसाद
राधिकारमण प्रसाद सिंह
राय कृष्णादास
चण्डी प्रसाद बृद्धेश
विनीतशंकर व्यास
वैद्यन शर्मा उग्र
प्रमचंद
विश्वम्भर प्रसाद जिज्जा
ज्वालादत्त शर्मा
पद्मलाल पुन्नालाल बरहो
सुदर्शन
विश्वम्भरनाथ कौशिक
उपेन्द्रनाथ अक्षर
जी० पी० धीवास्तव
चन्द्रधर शर्मा गुलरी
चतुरसेन शास्त्री
भगवतो प्रसाद वाजपेयी
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
कृष्णकान्त मात्तोय
चन्द्रगुप्त विपातकार

शिवारामशरण गुप्त
सुमित्रानन्दन पन्त
महादेवी वर्मा
मगदतीचरणा वर्मा
जैनन्द
वैशय
हलाचन्द जीश्री
यशपाल
पहाड़ा
मोहनलाल महता वियोगी
कमलकान्त वर्मा
कमलादेवी चौधरी
उषादेवी मित्रा
हीमवती देवी
अवधित हृदय
हरिशंकर शर्मा
बन्धुपुणानन्द
राधाकृष्ण
वपुतलाल नागर
राहुल सांस्कृत्यायन
यमुनादत्त वैष्णव
श्रीराम शर्मा
रघुवीर सिंह

रामचन्द्र वर्मा
धन्यकुमार जैन
रमेश वर्मा
मोदू
कातिहा
दुग्गल
शिवडे
अनायकुमार वैव
मुक्तिदीप
मोहन राक्षस
शैलेश मटियानी
शरव जीशी
शानरंजन
ममता कातिहा
गंगा प्रसाद विमल
सुधा करीरा
कमलेश्वर
सोताराम लक्षरिया
लक्ष्मोचन्द्र जैन
चन्द्रगुप्त विधातकार
हरिशंकर परसाई
डा० लक्ष्मोनारायण लाल
गंगा प्रसाद विमल
श्रीकान्त वर्मा
देवी शंकर लक्ष्मी
धनंजय वर्मा
रवीन्द्र कातिहा
भोष्प लाल

विपल मित्र
मन्दू मण्डारी
सुदर्शन चौपड़ा
डा० प्रतिभा कृवाल
कुन्या जैन
किरण जैन
परमानंद चूड़ीवाला

उर्दू के प्रमुख उपन्यासकार

(प्रारम्भ का युग १८८०- १९०५)

मियां नजीर अहमद
पं० रतननाथ सरस्वार
अब्दुल हलीम खरर
सज्जाद हुसैन
मुहम्मद अली तबीस
मियां मुहम्मदशादी रुसवा

मुंशी प्रेमचन्द युग

(१९०५- १९३६)

प्रेमचन्द
सुलतान हिर जीश

मज्जू गौरतपुरी
 लाज फतहपुरी
 सज्जाद हैदर पन्चाम
 अली अब्बास हुसैनी
 आजम कुरोरी
 राम अहमद अकबरावादी
 शामिद अल्ला अफसर
 महशर आवदी
 तातब वागपती
 कीशर चांदपुरी
 फजल हक कुरैशी
 सुदर्शन
 राशद उत्तरी
 हयात उस्ताद अंसारी
 सज्जाद जहीर
 अल्तार हुसैन रामपुरी
 डा० अहमद अली
 डा० फय्याज मुहम्मद

सन् १९३६- १९४७

अली अब्बास हुसैनी
 कुशनबन्दर
 गुलाम अहमद अब्बास
 उपेन्द्रनाथ अरब

अहमद अली सुलत
अजीम जाबदी
अस्तर अन्तारी
हयात उल्लाह अन्तारी
सहायत खान मंटी
हज्जाब
राधेन्द्र सिंह वेदी
असमत चुगताई
अजीम अहमद
महेन्द्र नाथ
देवेन्द्र सत्याधी
अहमद नदीम कासिमो
खान अरकरी
वत्सन्त सिंह
मुमताज मुफ्ती
हाजरा मल्ल
शफाकुल रहमान
कुरैतन उलोम ह्यर
हजाब इन्त्याज अली
हन्तजार सुन
ए० अहमद
इब्राहीम अलीस
मुमताज शेर

देवेन्द्र षष्ठ

वनवर

जमीर उत्पीन

वनवर वजीम

सन् १९४७ से १९६४ तक

नसीम हज़ामी

रहीम अहमद जाफरी

नैसी रामपुरी

रखो इस्ताम

मुवज्जय अली

अशरफ रहमानी

मुफ़्ताद उत्पीन जफर

नजर बैदी

कुराब तुल ऐन ख़्दर

जजीज अहमद

इंतजार हुसैन

अली अब्बास हुसैनी

ताक़्त थानवी

खान महबूब तरजी

ए० अहमद

क़ुशन चन्दर

फातमा मुबीन
 जुबैदा सातून
 महमूद फारुकी
 दृश्य अशकरी
 शफोक उल रहमान
 हिजाब रम्याज खती
 अनवर अजीम
 अब्दुल्ला हुसैन
 मुपसाज मुक़्तो
 शीकत सिद्दीकी
 राजेन्द्र सिंह खेदी

हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार

(१९ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में)
 निर्माण काल- (भारतन्धु युग)

भारतन्धु हरिश्चन्द्र
 लाला मोनिवासदास
 जातकृष्ण मट्ट
 ठाकुर जगदीहनसिंह

महता लज्जाराम शर्मा
राधाकृष्णदास
पं० लक्ष्मीध्यासिंह उपाध्याय हरिद्वीप
देवकीनन्दन तन्त्री
विष्णुगोलास गोस्वामी
गोपातराम गहमरी
ब्रजानन्दन सहाय

प्रमचंद युग (बीसवीं शताब्दी १९०५-३६)

प्रमचन्द
२- जयशंकर प्रसाद
वृन्दावनलाल वर्मा
चण्डीप्रसाद द्विवेदी
विदधम्भर नाथ शर्मा कौशिक
चतुरसेन शारद्वी
पांडेय केचन शर्मा उग्र
कृष्णभरणा जैन
मगवती प्रसाद धाजिवी
जैनन्द कुमार
मगवती चरण वर्मा

प्रतापनारायण धीवास्तव
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
सियाराम शरण गुप्त
राधिकारमण ई प्रसाद सिंह
धीनाथ सिंह
अवधनारायण
गोविन्द वल्लभ पंत

प्रयोगकाल

(१९३६ से १९६४ तक)

हताचन्द जीन्नी
वैजय
यशपाल
उपेन्द्रनाथ तश्क
हजारो प्रसाद द्विवेदी
रामेय राघव
अमृतलाल नागर
नागाजुन
धर्मवीर भारती
फण्णेश्वर नाथ रेणु
प्रभाकर पाचवै
उदयचंकर भट्ट

देवराज

तदमोनारायण तात

क्षिप्रवाद मित्र रुद्र

वसुन्तराय

गिरिधर गीपाल

राजिन्द्र यादव

विष्णु प्रभाकर

राहुत सांकृत्यायन

उषादेवी मित्रा

वनूपलाल पण्डित

अंबल

पन्थनाथ गुप्त

यज्ञवध शर्मा

गुरुपत

मीललाल मस्तो

कु० अम्बलता सच्चरवाल

नरीणम प्रसाद नागर

देवेन्द्र सत्याधी

धैरव प्रसाद गुप्त

कमल जीती

वादेन्द्र नाम शर्मा

हन्त विधावाचस्पति

धरु दुग्गल

नरेश मेहता

कृष्ण चल्दैव

कमलेश्वर

गिरोह बस्थाना

जीउम प्रकाश

जितेन्द्र

गीविन्द सिंह

हर्षनाथ

करुणोन्म

खसोम प्रकाश जैन

राधाकृष्ण

पिक्कु कृष्णाचन्द्र शर्मा

वल्लभ सिंह

शिवरानो विशनोई

हन्दिरा नूपुर

रामप्रकाश कपूर

वनन्त गीपात शैवडे

शेठ गीविन्ददास